कैलास-मानसरोवर

स्वामी प्रणवानन्द

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

पूज्यपाद श्री ११०८ स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज
(ब्लॉक श्री सेठ हरशदलाल जी, अहमदाबाद के सौजन्य से प्राप्त)

कैलास-मानसरोवर

स्वामी प्रणवानन्द

[श्री कैलास-मानसरोवर-तीरवासी]

भूमिका-लेखक

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

एम० ए०, पी-एच० डी०

संग्रहाध्यक्ष

प्रांतीय संग्रहालय, लखनऊ

२०००

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिज़ हाइनस यशस्वी महाराजश्री सर कृष्णकुमारसिंह जी, [illegible]
महाराजा साहब, भावनगर (काठियावाड़)

समर्पण

ॐ

भावनगर (काठियावाड़) के यशस्वी महाराजा हिज हाइनेस

महाराजश्री सर कृष्णकुमार सिंहजी,

के० सी० एस्० आई०

ने

लेखक के

श्री कैलास-मानसरोवर

संबंधी अन्वेषणों और गवेषणाओं के

प्रति जिस रुचि तथा सहानुभूति का परिचय दिया

है, और विशेषकर मानसरोवर की झीलों में उसकी नौका-

विहार-संबंधी सुविधा की ओर जो ध्यान दिया है, उसके

लिये कृतज्ञता-ज्ञापनार्थ यह पुस्तक

उनके करकमलों में सप्रेम

समर्पित

है

प्रकाशक का वक्तव्य

इस पुस्तक के लेखक स्वामी प्रणवानंद जी ने १० बार कैलास और मानसरोवर की यात्रा की है और उन्होंने एक वर्ष घोर शीतकाल में भी मानसरोवर के तट पर निवास किया है। आध्यात्मिक साधना से बीच-बीच में अवकाश पाने पर उन्होंने कैलास-मानसरोवर प्रांत से संबंध रखनेवाली कुछ ऐसी बातों की खोज की है, जो वास्तव में महत्त्वपूर्ण हैं। ब्रह्मपुत्र, सिंधु, और करनाली के उद्गम-स्थानों के संबंध में उनका अन्वेषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वामी जी की खोज की महत्ता स्वीकार कर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने अपने यहाँ से उनकी 'एक्सप्लोरेशन इन टिबेट' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। लंदन की रॉयल जिओग्राफिकल सोसाइटी ने भी अपने मुखपत्र में पूर्वोक्त नदियों के उद्गम-स्थानों के संबंध में स्वामी जी के लेख को स्थान दिया है।

स्वामी जी की कैलास-संबंधी पुस्तक हिंदी में अपने ढंग की नयी है। यह न केवल कैलास-मानसरोवर के यात्रियों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी, बल्कि उसे पढ़कर साधारण पाठक घर बैठे उक्त पुनीत स्थानों के संबंध में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण और रोचक बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर ५०००) रुपये की जो सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उससे सम्मेलन ने सुलभ साहित्य-माला के अंतर्गत कई उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी माला में प्रकाशित हो रही है।

रामचंद्र टंडन
साहित्य-मंत्री

प्रस्तावना

हिंदी में अब तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी, जिसमें श्री कैलास तथा पुनीत मानसरोवर का विस्तृत विवरण दिया गया हो। कुछ ऐसी पुस्तकें अवश्य हैं, जिनमें उनके लेखकों ने अपनी यात्रा एवं अनुभवों के वर्णन किए हैं; पर इस प्रकार की पुस्तकों से कैलास-मानसरोवर-संबंधी विस्तृत विवरण की आशा नहीं की जा सकती। मेरे पास तो ऐसे सहस्रों पृष्ठ पड़े हैं, जिनमें अपनी यात्रा की दिनचर्या को लिखता गया हूँ, पर उक्त रूप में देने का मेरा विचार नहीं है। ईश्वर की कृपा से गत पंद्रह वर्षों से मैं पुनीत मानसरोवर के तट पर प्रति वर्ष कुछ मास तपस्या के लिये व्यतीत करता आया हूँ, और बीच-बीच में मैंने अवकाश के समय मानसखंड के कोने-कोने में भ्रमण भी किया है। अतः मुझे विश्वास है कि मैं कैलास-मानसरोवर का पूर्ण विवरण प्रस्तुत कर सकता हूँ। प्रस्तुत पुस्तक को पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयास मैंने अपने इसी विश्वास के बल पर किया है। सारी पुस्तक केवल २५ दिन के भीतर शीघ्रता में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त, मेरी कैलास-यात्रा का समय बिलकुल समीप आ जाने से, प्रेस-संबंधी शीघ्रता के कारण पुस्तक की भाषा तथा छपाई में कुछ अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है।

इस छोटे-से वक्तव्य में मैं पुस्तक में वर्णित विषय की पुनरुक्ति नहीं करना चाहता—उसे तो पाठक स्वयं ही पुस्तक पढ़कर जान सकेंगे; केवल यह निर्देशित कर देना चाहता हूँ कि मैं किन-किन विषयों को इस पुस्तक में नहीं दे सका। मेरी इच्छा थी कि पुस्तक में एक ऐसी सूची दी जाती, जिसमें श्री कैलास तथा मानसखंड का वर्णन संस्कृत वाङ्मय में जहाँ-जहाँ आया है उनका उल्लेख किया जाता। एक इस प्रकार की भी सूची देना चाहता था जिसमें हिंदी, अँग्रेजी, तथा भारत की अन्यान्य भाषाओं के कैलास-संबंधी ग्रंथों एवं उनके लेखकों का परिचय दिया जाता। एक और भी सूची संकलित करना चाहता था, जिसमें मेरे निवास एवं यात्राकालीन कुछ प्रमुख घटनाओं (एडवेन्चर्स) का उल्लेख रहता। पर इन सब को भी शीघ्रता के कारण नहीं दे सका। उन्हें पुस्तक के दूसरे संस्करण में देने का विचार है। फिर भी जो सज्जन कैलास-मानसरोवर-संबंधी किसी विशेष विषय की जानकारी प्राप्त करना

चाहते हों वे इन दो में से किसी एक पते के मार्फ़त मुझसे पत्र-व्यवहार कर सकते हैं—(१) मेसर्स लक्ष्मीलाल आनंद ब्रदर्स, जनरल मर्चेन्ट्स, अल्मोड़ा, (२) एसिस्टेंट लाइब्रेरियन, हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस।

पुस्तक की प्रत्येक तरंग को स्वतंत्र और अपने-आप में पूर्ण बनाने में कुछ ऐसी बातों की पुनरुक्ति हो गई है, जिसके लिये मैं विवश था।

इस अवसर पर मैं अपने गुरुदेव पूज्यपाद श्री १९०८ स्वामी ज्ञानानंद जी महाराज के प्रति अतिशय कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ, जिनकी असीम अनुकम्पा से आध्यात्मिक साधना की ओर मुझे प्रेरणा मिली।

बरवारी (भागलपुर) के राजा श्री भूपेंद्रनाथ सिंहजी ने सन् १९३६-३७ में प्रायः पूरे वर्ष का व्यय-भार स्वीकार कर मुझे कैलास-मानसरोवर की पुनीत तपोभूमि में निवास करने का सदवसर प्रदान किया था, जिसके परिणाम-स्वरूप मैंने मानसरोवर की चार महानदियों के उद्गम-स्थानों का पता लगाया, तथा इस पुस्तक में दिये हुए अधिकांश विषयों की जानकारी प्राप्त की।

काठियावाड़ के भावनगर राज्य के यशस्वी महाराजा हिज़ हाइनेस महाराजश्री कृष्णकुमार सिंहजी, के० सी० एस्० आई० ने अतिशय उदारता के साथ एक आधुनिक ढंग के 'सेलिंग डिंघी-कम-मोटरबोट' मानसरोवर में संतरण करने के लिये मुझे प्रदान किया है। इससे मानसरोवर के इतिहास में एक नवीन युग का प्रारंभ ही समझना चाहिये।

मद्रास की दलाल एंड को० के श्री टी० एन० कृष्णस्वामीजी ने परम सदाशयता के साथ राक्षसताल और कपाली सरों के प्रांतों में अन्वेषण करने का व्यय-भार वहन किया; परिणामतः कैलास-शिखर के समीपवर्ती कपाली सरों से मैं महत्त्वपूर्ण प्रस्तरावशेष तथा अन्य वस्तुओं का संग्रह कर सका।

उक्त तीनों महानुभावों की इस अयाचित सहायता द्वारा ही मैं अपनी चिरवांछित अभिलाषाओं को पूर्ण कर सका, जिसके लिये मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। इनके अतिरिक्त रायबहादुर लाला रामशरणदासजी, सी० आई० ई० (लाहौर), श्री रोहनलालजी चतुर्वेदी, बी० ए० (प्रयाग), श्री केशवमोहनजी ठाकुर, जमींदार, बरारी (भागलपुर), श्री दयाशंकरजी दुबे, एम० ए०, एल्-एल्० बी० अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर, प्रयाग विश्वविद्यालय, तथा श्री चैतमणि सिंहजी,

जमींदार, सुखपुर (भागलपुर) का भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मानसरोवर के एक-एक चातुर्मास का व्यय-भार वहन किया।

दिवंगत श्री के० नागेश्वर रावजी, संपादक, 'आंध्रपत्रिका' (मद्रास), श्री पं० बालकाकजी दर, जमींदार, श्रीनगर (काश्मीर), श्री त्यागमूर्ति गोस्वामी गणेशदत्तजी शास्त्री, मंत्री अखिल भारत सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा (लाहौर), श्री तारानंद सिंहजी, जमींदार, बनैली (पूर्णिया), श्री सूर्यमोहनजी ठाकुर तथा श्री नरेश मोहनजी ठाकुर, जमींदार बरारी (भागलपुर), श्री ठाकुरप्रसाद सिंहजी, जमींदार, सुखपुर (भागलपुर) के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरी कैलास-यात्राओं में पर्याप्त सहायता प्रदान की है।

इनके अतिरिक्त मेरे कई अन्य मित्रों ने समय-समय पर यथाशक्ति सहायता प्रदान की है। अल्मोड़े में मेसर्स लक्ष्मीलाल आनंद ब्रदर्स, तथा कई भोटिया और तिब्बती मित्रों ने मेरी कैलास-यात्रा में समय-समय पर कई प्रकार की सहायता एवं सुविधाएँ प्रदान की हैं, जिनके लिये मैं उनका आभारी हूँ। मेरे मित्र श्री पंडित योगींद्रनाथजी झा शांतिसदन, सुखपुर (भागलपुर) ने पुस्तक की पांडुलिपि प्रस्तुत करने में अति कष्ट उठाकर पर्याप्त सहायता दी है, जिसके लिये मैं कृतज्ञ हूँ। हिंदी साहित्य सम्मेलन के साहित्यिक संपादक श्री पं० इलाचंद्रजी जोशी ने पुस्तक की भाषा को सुधारने एवं प्रूफ-संशोधन आदि कार्यों में जो सहायता की है, उसके लिये मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

अंततः हिंदी साहित्य सम्मेलन के साहित्य मंत्री श्री रामचंद्र जी टंडन एम्० ए०, एल्-एल्० बी० का तो मैं अतिशय अभारी हूँ, जिन्होंने कार्य-बाहुल्य के होते हुए भी पुस्तक के प्रकाशन में पर्याप्त सहायता एवं सुविधाएँ प्रदान करने की कृपा की है, जिसके बिना कागज के वर्तमान अभाव में एवं इतने अल्प समय में पुस्तक का प्रकाशन कठिन था। साथ ही डाक्टर श्री वासुदेव-शरणजी अग्रवाल, क्यूरेटर, प्रांतीय म्यूजियम, लखनऊ का भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समस्त पुस्तक पढ़कर भूमिका लिख देने की कृपा की है।

प्रयाग
वैशाख पूर्णिमा, २००० वि०
१९ मई, १९४३ ई०

स्वामी प्रणवानन्द
(श्री कैलास-मानस-तीरवासी)

भूमिका

कैलास और मानसरोवर के पुण्य प्रदेश जगतीतल में अपनी रमणीयता के लिये अद्वितीय हैं। उनके अनुपम सौन्दर्य के साथ घनिष्ठ परिचय प्राप्त करना हमारे ऊपर मानों एक राष्ट्रीय ऋण है। हमारे पूर्वजों ने अपने इस कर्तव्य को ठीक प्रकार समझा था। उन्होंने अपने चरणों के तप से इन स्थानों की यात्रा की, अपनी वाणी की विभूति को इनके माहात्म्य-गान से सफल किया और अपने उदार भावों से सोने और चाँदी के रंग-बिरंगे रूप भर कर इन हिममंडित प्रदेशों को अमर सौन्दर्य के दिव्य प्रतीकों की भाँति हमारे साहित्य में चिर-प्रतिष्ठित किया। कैलास-मानसरोवर के साथ हमारा सौहार्द भाव आज का नहीं, बहुत पुराना है। किसी देवयुग में जब गंगा-यमुना ने अपने कर्मठ ताने-बाने से मिट्टी के सुंदर-सुंदर पट उत्तरापथ की भूमि में फैलाने शुरू किये और जब प्रथम बार अन्तर्वेदी के राजहंस अपनी वार्षिक यात्रा के सिलसिले में आकाश में पंख फैलाए हुए मानसरोवर के तट पर जाकर उतरे, तभी से मानों कैलास के साथ हमारा सख्य भाव शुरू हुआ और वह सम्बन्ध आज तक उसी प्रकार अविचल है। हमारे शरत्कालीन निर्मल आकाश की गोद को प्रतिवर्ष क्रौञ्च पक्षियों की कलरव करती हुई पंक्तियाँ आज भी भरती रहती हैं। उस समय वे कैलास और मानसरोवर का कुशल संदेश लेकर लौटती हैं। हमने अपने बचपन से उनको देखा है और बालपन के तरंगित स्वरों से उनका सहर्ष स्वागत भी किया है। व्योम के उन यात्रियों का हमें उपकार मानना चाहिये जो कैलास-मानस की स्मृति को हमारे लिये हरी-भरी बनाये रखते हैं।

इसी प्रकार की कृतज्ञता प्रस्तुत यात्राग्रंथ के लेखक के प्रति हमारे मन में आती है। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार यात्रा के दो प्रकार होते हैं, एक शुक-मार्ग और दूसरा पिपीलिका मार्ग। शुकादि पक्षी एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ कर पहुँच जाते हैं, पर अपने पीछे वे कोई पदचिह्न नहीं छोड़ते। परंतु चींटी एक-एक पैर उठाती हुई श्रमपूर्वक मार्ग को तय करती है और उसकी पूरी पगडंडी स्पष्ट हमारे सामने दिखाई पड़ती है। यों तो अनेक भारतवासी हर साल हिमालय के दुर्गम पथों को पार करके कैलास-मानसरोवर के दर्शनों को जाते हैं, परन्तु स्वामी प्रणवानंद का कैलास-दर्शन एक स्तुत्य घटना है॥

उसका कारण यह है कि उन्होंने अपनी कैलास-यात्रा की पिपीलिका गति को हमारे सामने स्पष्ट मूर्तिमान् करने का एक सुंदर और सराहनीय प्रयत्न किया है। कैलास मानसरोवर के दर्शन से उनको जो स्फूर्ति प्राप्त हुई और उनके मन तथा नेत्रों को जो स्वर्गीय सुख पहुँचा, उसमें उन्होंने सबको हिस्सा दिया है। वे अपने प्रसाद में सब को सम्मिलित करने के उत्साह से प्रेरित हुए हैं। कैलास यात्रा पर इतनी पूर्ण और प्रशस्त पथ-प्रदर्शक पुस्तक शायद ही किसी भाषा में अब तक लिखी गई हो। पुस्तक की तीसरी और चौथी तरंगों को पढ़ने के बाद कैलास के दुरूह मार्ग की अनेक कठिनाइयाँ पिघलती हुई जान पड़ेंगी। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते भावी यात्रा के लिये हमारे मन में एक नया उत्साह और संकल्प उत्पन्न होने लगता है।

पुस्तक की दूसरी विशेषता यह है कि उससे कैलास और मानसखंड के जीवन का एक जीता-जागता चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। पहली तरंग में मानसरोवर की जो काव्यमय प्रशस्ति है उसे पढ़कर बाण भट्ट के अच्छोद सरोवर के वर्णन का ध्यान हो आता है। स्वामी जी ने कैलास-मानसरोवर में १६३६-३७ में एक वर्ष तक रहकर स्वयं वहाँ के प्राकृतिक परिवर्तनों का, कैलास के कुंद के समान श्वेतवर्ण महाकूटों का तथा विपुलोदका मानस की हिमराशि का सूक्ष्म निरीक्षण किया और वैज्ञानिक पद्धति से उसका वर्णन किया है। दूसरी तरंग में उन्होंने उस देश के मानवों के जीवन का परिचय दिया है। हमारे प्राचीन साहित्य में पहले भी हृष्ट-पुष्ट नर-नारियों से आकुल शैलराज की कुक्षियों का कई बार वर्णन आया है। इस परिचय को नई आँख से देखने का एक प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है।

स्वामी प्रणवानंद ने १६२८ में प्रथम बार कैलास-मानस की यात्रा की थी। अब तक आपने पुनीत कैलास की पंद्रह और मानसरोवर की सत्रह परिक्रमाएँ की हैं। इन परिक्रमाओं में हमारा कुतूहल विशेष इस कारण से है कि हर बार स्वामी जी ने कैलास और मानस के भूखंड को एक वैज्ञानिक की आँख से समझने का मार्ग हमारे लिये प्रशस्त किया। कैलास और मानस का जो ऊँचा कूट है उसके चार तटांतों से चार महानदियों का उद्गम

हुआ है—उत्तर में सिंधु, पूर्व में ब्रह्मपुत्र, दक्षिण में कर्णाली और पश्चिम में शतद्रु या सतलज। इन चार महानदों की जीवन-गाथा का उद्घाटन संसार के भूगोलवेत्ताओं का एक अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। इनके उद्गम स्रोत का निर्णय करने का प्रयत्न सर्वप्रथम स्वीडन के प्रसिद्ध यात्री स्वेन हेडिन ने किया था और अब तक उन्हीं की खोज मान्य समझी जाती रही है। स्वामी जी ने अपने अन्वेषण से इन नदी-मुखों के असली उद्गमों का निर्णय करके एक अत्यंत प्रशंसनीय कार्य किया है। आपकी खोज को सर्वे आफ इंडिया कलकत्ता तथा लंडन की राजकीय भूगोल परिषद् ने भी आदर के योग्य ठहराकर तत्संबंधी प्रकाशन की सुविधाएँ प्रदान कीं। उनका संकेत रूप से उल्लेख इस पुस्तक में (पृष्ठ ५०-५४) भी हुआ है, पर विस्तृत वर्णन कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'एक्सप्लोरेशन इन टिबेट' नामक ग्रंथ में हुआ है। उसके साथ जो सर्वे आफ इंडिया द्वारा प्रकाशित केदार-खंड और मानसखंड का एक सुंदर मानचित्र है वह किसी भी यात्रा-ग्रंथ के लिये एक गौरव की वस्तु हो सकती है। स्वामी जी ने उसको बनाकर हिमालय के साथ हमारे परिचय को कई कदम आगे बढ़ाया है।

लेखक ने एक स्थान पर लिखा है—'आज से सहस्रों वर्ष पहले हमारे पूर्वजों ने सारे हिमालय का अन्वेषण कर डाला था। वे उसके कोने कोने पर पहुँच चुके थे।' (पृ० ५६) इस वाक्य में जो बात पहले अतिशयोक्ति जान पड़ती है वही संस्कृत साहित्य की छान-बीन करने पर सत्य में बदल जाती है। हिमालय की त्रैकालिक सत्ता हमारी आँख से कभी ओझल न होने पावे इसीलिये मानों कवि ने कुमारसम्भव के दिव्य संगीत का प्रारंभ इस प्रतिज्ञा के साथ किया है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

अर्थात् हमारी उत्तर दिशा में पर्वतराज हिमालय विद्यमान है। वह मिट्टी-पानी और पत्थरों का ऊँचा ढेर नहीं, वरन् देवतात्मा है, अर्थात् देवत्व के अमर भावों से संयुक्त है। वह हिमालय पूर्व और पश्चिम के समुद्रों के बीच के भूभाग को व्याप्त करके पृथिवी के मानदण्ड की तरह स्थित है।

इसी के साथ कवि ने हिमालय की एक काव्यमयी प्रशस्ति दी है जिसमें भारतवर्ष का हिमालय के प्रति जो सात्विक भाव है उसको सुंदरतम शब्दों में कहा गया है। अनन्त रत्नों के प्रभव स्थान हिमालय पर सुंदरता और शोभा की विविध सामग्री है। कहीं शिखरों पर रंग-बिरंगी धातुओं का प्रवाह है, कहीं सनातनी हिमराशि है, कहीं चोटियों पर ऊपर धूप और नीचे मेघों की छाया है, कहीं तुषार-स्रुति या बर्फानी गल हैं, कहीं भूर्जपत्रों की शोभा है, कहीं देवदारु के वृक्षों की सुगंधि वायु के द्वारा पर्वतों में फैलती है, कहीं चमकने वाली औषधियाँ और कहीं दरीगृह या कन्दराओं के प्राकृतिक भूमिगृह (भुईंहरे) बने हुए हैं, कहीं मार्ग शिलीभूत हिम से अवरुद्ध हैं, कहीं अंधकार से भरी हुई गुफाएँ हैं, कहीं पर सुरभि या चमरी गाएँ अपनी पूँछ का चमर डुलाकर गिरिराज के ऐश्वर्य की वृद्धि करती हैं, कहीं पर भागीरथी के निर्झरों से शीतल मंद सुगंध वायु बहती है और कहीं पर्वत की चोटियों के पास खिले हुए कमलों से भरे हुए सरोवर हैं। यह हिमालय बड़ा सारयुक्त है। यह सचमुच धरणीधर है, पृथिवी को दृढ़ता से अपने स्थान में टिकी हुई रखने की इसकी क्षमता को देखते हुए कहना पड़ता है कि ब्रह्मा ने उपयुक्त ही इसको शैलाधिपति की पदवी से विभूषित किया है। (कुमारसम्भव १।१-१७)

हिमालय का फैला हुआ गिरिजाल, सहस्रों शैलों को दारण करके बहनेवाली महानदियाँ, चित्र प्रपात, पुण्योदक सरोवर, निकुंज और कन्दरदरी, पुष्पश्री से भरे हुए क्रीड़ावन और लताद्रुमों से शोभित विहार-भूमि—इन सब का सूक्ष्म वर्णन मत्स्य पुराण (अ० ११७), वायु पुराण (अ० ४१-४२), महाभारत (वनपर्व १०८-१०९), तथा पुराणों के भुवनकोषों में आया है। इस साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन होना चाहिए। यदि हिमालय पर एक पूरा ग्रंथ लिखा जाय, तो इन वर्णनों से बहुत से पारिभाषिक शब्दों का उद्धार किया जा सकता है। परन्तु इस साहित्य की सब से बड़ी विशेषता उसका सूक्ष्म भूगोल है। इस भौगोलिक ज्ञान का युक्ति-युक्त सचित्र सम्पादन एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। हिमालय की नदियों के नामकरण का श्रेय भारतवासियों को है। यह बात हमारे लिये कुछ कम गौरव की नहीं है कि हर एक शैल से

निकलनेवाली क्षुद्र नदियों के, जिन्हें कुमाउँनी भाषा में गधेरे कहते हैं, और उन नदों सहस्रों से अनुगत महानदियों के, जिन्होंने करोड़ों वर्षों के पराक्रम से अपने वेग को रोकने वाले गंडशैलों को चीर कर अपने प्रवाह के लिये मार्ग बनाया है, सुंदर-सुंदर नामों का चुनाव सर्वप्रथम हमारे पूर्वजों ने संस्कृत भाषा के द्वारा किया। मालूम होता है कि किसी नियमित संघ के अधिवेशनों में उन्होंने इस कार्य को संपादित किया होगा। उदाहरण के लिये, हम गंगा के नामों को ही देखते हैं। बंदरपूँछ से लेकर नंदादेवी तक गंगा का प्रस्रवण क्षेत्र फैला है। उसके पूर्व और पश्चिम दो भाग हैं। पूर्व के क्षेत्र में बदरीनाथ की ओर से अवतीर्ण विष्णुगंगा (जिसे सरस्वती भी कहते हैं) और द्रोणगिरि के पश्चिम से धौलीगंगा की धाराएँ जोशीमठ के पास मिली हैं, उस संगम का नाम विष्णुप्रयाग है। इससे कुछ ही पहले नंदादेवी से आनेवाली ऋषिगंगा धौली-गंगा में मिली है। विष्णुप्रयाग के बाद संयुक्तधार अलकनंदा कहलाती है। कुछ दूर आगे चलकर उसमें नंदाकना पर्वत से आई हुई नंदाकिनी मिलती है। उस स्थान का नाम नंदप्रयाग है। फिर कुछ आगे नंदाकोट और त्रिशूल शिखरों के जलों को लाकर पिंडरगंगा कर्णप्रयाग के संगम पर अलकनंदा से मिलती है। इसके आगे केदारनाथ की ओर से आकर मंदाकिनी रुद्रप्रयाग के संगम पर अलकनंदा से मिली है। और उसके आगे भागीरथी और अलकनंदा का संगम देवप्रयाग में होता है। अब अपने पूर्ण विकसित रूप में अलकनंदा गंगा बनकर हृषीकेश में होती हुई हरिद्वार में उतरी है जिसे गंगाद्वार कहा गया है। इस द्वार में प्रवेश करने पर गंगा अपनी हिमालय यात्रा का मनोरम अध्याय समाप्त करती हैं, इसीलिए कवि ने मेघ को मार्ग बताते हुए कहा है—

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्
जह्नोः कन्यां सगरतनय स्वर्ग सोपान पंक्तिम्। (मेघ० १।५०)

जह्नु की कन्या जाह्नवी गंगा का एक पर्याय होते हुए भी गंगा की एक उपरली धारा का नाम है। महान् हिमालय की ऊँची चोटियों के उस पार गंगोत्तरी से भागीरथी का उद्गम है। यह जाह्नवी की धारा गंगोत्तरी से कुछ ही मील नीचे भागीरथी में मिली है। पर वह हिमालय के भी उस पार जाकर

पर्वत-शृंखला से निकली है जो सतलज और गंगा के बीच में जल-विभाजक है। जाह्नवी का उद्गम टीहरी रियासत का सब से ऊपरी छोर है। इस प्रकार अक्षांश के हिसाब से जाह्नवी सब से उत्तरी धारा है जिसका जल गंगा में मिला है। अलकनंदा-मंदाकिनी-भागीरथी-जाह्नवी, यद्यपि ये सब गंगा के ही नाम हैं पर हिमालय में पृथक् पृथक् धाराओं के द्योतक हैं। यह नामकरण का अध्याय किस युग में रचा गया और किन कारणों से इसकी प्रेरणा हुई, इन प्रश्नों का अनुसंधान अत्यंत रुचिकर होगा जो किसी भावी स्थान-नाम-परिषद् के लिए सुरक्षित है। परंतु इतना अवश्य कहना पड़ता है कि गंगा की धाराओं के संगम के लिये विष्णुप्रयाग-कर्णप्रयाग-रुद्रप्रयाग-देवप्रयाग सदृश प्रयागों का नामकरण जिसका पर्यवसान गंगायमुना के संगम प्रयाग में होता है, अवश्य ही एक अत्यंत रहस्यपूर्ण और रोचक घटना है, जिसमें क्रमिक व्यवस्था की छाप स्पष्ट है। यह तो हम स्पष्ट देख सकते हैं कि इस प्रकार नदियों और पर्वत-शिखरों की खोज, उनका नामकरण, और उन नामों का देशव्यापी प्रचार— इन महान् कार्यों के संपादन में हमारे पूर्वजों को जब इस भूमि के साथ उन्होंने अपने संबंध को दृढ़ किया था, भरसक प्रयत्न करना पड़ा होगा। इस नाम-करण के विषय का पूरा अनुसंधान होना चाहिये और हिमालय की संपूर्ण नदियों का इस दृष्टि से विवेचन किया जाना चाहिए। हिमालय की नदियों का एक दूसरा गुच्छा कूर्मांचल (कुमायूँ) और पच्छिमी नेपाल में है। जिस प्रकार गंगा हिमालय के केदारखंड को व्याप्त करके बही है उसी प्रकार सरयू-काली-कर्णाली का यह संस्थान-चक्र हिमालय के मानसखंड में है, और नंदाकोट और गुरला-मांधाता के प्रस्रवण क्षेत्र के जलों को लेकर खीरी और गोरखपुर के बीच के मैदानों को सींचता है। मैदान में इसे शारदा, चौका, घाघरा कई नामों से पुकारते हैं। सरयू-काली-गोरीगंगा और धौलीगंगा कूर्मांचल की प्रधान नदियाँ हैं। जिस प्रकार विशाला—बदरी के मार्ग की धमनी अलकनंदा नदी है उसी प्रकार कैलास-मानसरोवर का अल्मोड़े से जाने वाला मुख्य रास्ता काली नदी के किनारे-किनारे गया है। यही नदी नेपाल और अल्मोड़े के बीच की सीमा है। इसके पूर्व में करनाली नदी है जिसे कौड़ियाला भी कहते हैं।

इस कर्णाली का स्रोत राक्षस-ताल (पुराणों के बिंदुसरोवर) के दक्षिण में है, जिसकी यात्रा स्वामी प्रणवानंद ने उसका उद्गम-स्थान जानने के लिये की थी। मध्य नेपाल और पूर्वी नेपाल में दो नदी-गुच्छक और हैं, जिन्हें नेपाली अपनी भाषा में बहुत समय से सप्तगंडकी और सप्तकोशी (सप्तकौशिकी) के नाम से पुकारते रहे हैं। इन नामों के साथ उसी से मिलते-जुलते नाम 'सप्तगंगं और 'सप्तगोदावरं' याद आते हैं। जान पड़ता है कि वैदिक सप्तसिंधु के ढंग पर इन सब नामों का विकास हुआ था। सप्तगंडकी और सप्तकोसी के बीच की पतली पटरी वाग्मती और उसकी शाखा विष्णुमती की घाटी है जिसमें नेपाल की राजधानी काठमांडू है। कर्णाली, गंडकी, वाग्मती और कोशी या कौशिकी की सम्मिलित चार द्रोणियों का नाम ही नेपाल है जो हिमालय का एक विशिष्ट खंड है। इसी के साथ उसके सबसे ऊँचे भूधर शृंग, गोसाईं थान, गौरीशंकर और कांचनजंगा सटे हुए हैं। गौरीशंकर के भूगोल का उल्लेख वनपर्व के तीर्थयात्रा पर्व में आया है। उसमें महादेवी गौरी के शिखर को त्रैलोक्य-विश्रुत कहा गया है और उस वर्णन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारतवासी इस ऊँचे शिखर की चढ़ाई करते थे—

शिखरं वै महादेव्या गौर्यास्त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
समारुह्य नरः श्राद्धः स्तनकुंडेषु संविशेत् ॥

(पूना संस्करण, वनपर्व ८२।१३१)

पुराने मानचित्रों के अनुसार यह गौरीशंकर ही एवेरस्ट शिखर था, पर अब उन दोनों का निर्देश पृथक् किया जाता है। इसी प्रसंग में महाभारतकार ने ताम्रारुण संगम और कौशिकी अरुण संगम का भी उल्लेख किया है (वन० ८२। १३३-१३५)। ताम्रनदी आधुनिक तामड़ है और अरुण अब भी इसी नाम से विख्यात है। ताम्र कांचनजंगा से और अरुण गौरीशंकर से उतर कर सुनकोसी के साथ मिल जाती हैं। यह अरुण नदी संसार की सब नदियों में विलक्षण है। स्वीज़रलैंड के दो पर्वतारोही हाइम और गंसेर १९३६ में कैलास-मानसरोवर गए थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'सेन्ट्रल हिमालय' में लिखा है कि अरुण नदी ने पहाड़ को चीर कर अपने लिये जो द्रोणी बनाई है वह संसार की सब नदी-

घाटियों से गहराई में अधिक है (डीपेस्ट ट्रेन्सवर्स गॉर्ज ऑफ अवर ग्लोब, पे० २६)। अरुण नदी को अपने इस वीर्यशाली पराक्रम के लिये अवश्य ही हमारे समाज में अधिक ख्याति मिलनी चाहिए। एवरेस्ट चोटी के ऊँचे विंदु से अरुण नदी की भीमकाय दरी की तलहटी अठारह-बीस हज़ार फुट गहरी है (सेंट्रल हिमालय पृ० २२६)। उन वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि इस अरुण नदी की यशोगाथा का ठीक प्रकार गान करने के लिये कोई भी भूगर्भशास्त्री अभी तक वहाँ नहीं गया है। पश्चिम में सिंधु की गिलगित के पास गंभीर दरी और पूर्व में अरुण की गहन द्रोणी, ये हिमालय के दो अपूर्व दृश्य हैं और नदियों ने पर्वतों पर जो विजय पाई है उसके अमर कीर्तिस्तम्भ हैं। हिमालय का विशाल प्रदेश इस प्रकार के आश्चर्यों की खान है और इसीलिए उसके रहस्यमय अस्तित्व के प्रति हमें अधिक सचेत होने की आवश्यकता है। यदि हिमालय के प्रति हमारी उदासीनता का पूर्व युग समाप्त होकर उसके विश्वमुखी परिचय की प्रबल जिज्ञासा का हमारे हृदयों में उदय हो जाय तो यह परिवर्तन हमारे सांस्कृतिक अभ्युदय में भी सहायक होगा। जिस नदी का संबंध जितने ऊँचे गिरिशिखर से होता है उसकी धारा का वेग भी उतना ही शक्तिशाली होता है। जैसे आध्यात्मिक अर्थों में हमको अपने ज्ञान के हिमालय से जुड़ने की आवश्यकता है वैसे ही भौतिक अर्थों में भी हिमालय के हिममंडित उच्छ्रित शृंगों का सान्निध्य और परिचय हमारे राष्ट्र-शरीर के रुके हुए संस्कृति स्रोतों में नवीन हरकत और चेतना उत्पन्न कर सकता है। स्वामी प्रणवानंद का यह प्रयत्न इसी दिशा में होने के कारण विशेष अभिनंदनीय है।

कैलास पर्वत भी हिमालय का ही एक विशेष प्रदेश है। प्राचीन हिमालय की व्यापक परिभाषा यही थी—

मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः। (मत्स्य पु० १२१।२)

उस कैलास-मानसरोवर तक पहुँचने के लिये सुमहान् मध्य हिमवान् (ग्रेट सेन्ट्रल हिमालया) को पार करके जाना पड़ता है। अतएव कुमायूँ में फैले हुए हिमालय के शिलाजाल के साथ अच्छा परिचय कैलास यात्री को प्राप्त करना चाहिए। मध्य हिमवान् के दो खंड कहे गए हैं, पश्चिम

में गंगा से परिपूत केदारखंड और पूर्व में सरयू से मानसरोवर तक विस्तृत मानसखंड। मानसखंड का वर्णन मानसखंड ग्रंथ में है जो स्कंद पुराण का एक अंश माना जाता है। पर पंडित बदरीदत्त जी पांडे का अनुमान है कि यह धार्मिक भूगोल का संग्रह-ग्रंथ कूर्मांचल में कूर्मांचली पंडितों के द्वारा किसी समय रचा गया (कुमायूँ का इतिहास, पृ० १७७)। इस पुराण की यह काव्य-मय कल्पना कितनी मधुर है कि विष्णु हिमालय के रूप में, शिव कैलास के रूप में और ब्रह्मा विंध्याचल के रूप में प्रगट हुए। पृथ्वी के विष्णु से यह पूछने पर कि 'तुम अपने रूप को छोड़ कर पर्वत रूप में क्यों प्रगट होते हैं'? विष्णु ने पर्वतों की महिमा में क्या ही ठीक कहा है—'पर्वत के रूप में जो आनंद है, वह प्राणीरूप में नहीं है; क्योंकि पर्वतों को गर्मी, जाड़ा, दुःख, क्रोध, भय, हर्ष आदि विकार तंग नहीं करते।' प्राचीन दृष्टि से कैलास और मानसखंड के भूगोल का स्पष्टीकरण करने के लिये मानसखंड ग्रंथ का समुचित संपादन होना चाहिए। तिब्बती कैलास पुराण का, जिसका स्वामी जी ने उल्लेख किया है, प्रकाशन होना भी आवश्यक है। इस प्रकार कैलास-मानसखंड एवं हिमालय के भूगोल का फिर से उद्धार किया जा सकता है।

हिमालय के अध्ययन की एक और दृष्टि भी है जो हमें पश्चिमी वैज्ञानिकों से प्राप्त होती है। वह है हिमालय की प्रस्तर रचना और भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से उसके आयुष्य का निर्धारण। हाइम और गंसेर का 'सेंट्रल हिमालय' नामक ग्रथ, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है, इस विषय में अत्यंत रोचक है। उसमें और भी सहायक ग्रंथों के नाम आए हैं जिनमें बुरार्ड और हेडन कृत 'हिमालय के भूगोल और भूगर्भ की रूप-रेखा' (ए स्केच ऑफ़ दि जिओग्रॉफी एण्ड जिओलॉजी ऑफ दि हिमालयाज़, दिल्ली १६३४) नामक ग्रंथ अत्यंत उपयोगी है। इनसे ज्ञात होता है कि कैलास और हिमालय पर्वत का जन्म मध्य जंतुक युग के अंत में और तार्तीयक युग टर्शियरी के आरंभ में किसी समय हुआ। भूगर्भ-शास्त्रियों के अनुसार भूरचना के मुख्य युग-विभाग निम्नलिखित हैं—

१. प्रत्यग्रजंतुक केनोज़ोइक ४ करोड़ वर्ष—स्तन्यपायी जंतु

२. मध्यजंतुक	मेसोज़ोइक	१४ करोड़ वर्ष—सरीसृप, दानवसरट आदि
३. अपर पुराजंतुक	लेटर पेलीओज़ोइक	२६ ,, मीन झष आदि
४. पूर्व पुराजंतुक	अर्ली पेलीओज़ोइक	३६ ,, अमेरु जीव, समुद्रबिच्छू आदि
५. प्रारंभ जंतुक	प्रोटेरोज़ाइक	६० ,, काई, श्यान मास्य आदि
६. अजंतुक	एज़ोइक	८० ,, कोई जीव नहीं

अपर पुराजंतुक युग से बाद के काल को वैज्ञानिक आर्ययुग और उससे पूर्व को द्राविड़ युग कहते हैं। मध्यजंतुक काल में बड़े-बड़े दानवसरट (डाइनोसॉर्स) जैसे सरीसृपों का ज़ोर था। जब वह युग बीता तो प्रत्यग्रजंतुक नामक नया युग आरंभ हुआ। उसका पूर्वकाल विभाग 'टर्शियरी' या तृतीयक और पिछला 'कार्टरनेरी' या तुरीयक कहलाता है। इस तृतीयक युग के आरम्भ में भारतीय भूगोल में बड़ी चकनाचूर करनेवाली घटनाएँ घटीं। बड़े-बड़े भूभाग बिलट गए, पर्वतों की जगह समुद्र और समुद्र की जगह पर्वत प्रगट हो गए। बंगाल की खाड़ी (महोदधि) और अरब समुद्र (रत्नाकर) की धरती डूब गई और उसका संतुलन पूरा करने के लिये मध्य हिमवान् का उत्तुंग भाग समुद्र तल से ऊपर फेंक दिया गया। उस युग में समस्त पृथ्वी पर भारी हड़कंप मचा हुआ था। वैदिक शब्दों में धरित्री व्यथमान थी और पर्वत प्रकुपित थे—

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्
यः पर्वतान प्रकुपितों अरम्णात्। (ऋ० २।१२।२)

पृथिवी पर हज़ारों मीलों की दूरी में तक्षणात्मक धक्के (टेकटोनिक अर्थ-बिल्डिंग मूवमेन्ट्स) लग रहे थे, भूधर लड़खड़ा कर अपना संतुलन संभाल रहे थे। कुछ काल बाद पृथिवी पर स्तंभन का युग आया, धरती अपने स्थान पर दृढ़ हुई। यह भगीरथ घटना तृतीयक काल विभाग के उषःकाल में लगभग चार करोड़ वर्ष पूर्व घटी। उसी समय हिमालय और कैलास भूगर्भ से बाहर आए। उससे पूर्व हिमालय में एक अर्णव या पाथोधि था, जिसे वैज्ञानिक 'टेथिस' का नाम देते हैं। जो हिमालय इस अर्णव के नीचे छिपा था उसे 'टेथिस हिमालया' कहा जाता है, जिसे हम अपनी भाषा में अर्णवहिमालय

या पाथोधि-हिमालय कह सकते हैं। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में भी लिखा है कि यह भूमि पहले अर्णव जल के नीचे छिपी हुई थी।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्। (अथर्ववेद १२-१-८)

जब से इस पाथोधि-हिमालय का जन्म हुआ तभी से भारतवर्ष का वर्तमान स्वरूप, जो कुमारी अन्तरीप मे आरम्भ होकर शिवालक तक फैला है, स्थिर हुआ और जो कूर्म संस्थान (कॉनफिगरेशन) उस समय बना वह प्रायः बिना परिवर्तन के अभी तक चला जाता है। इस प्रकार पाथोधि-हिमालय और कैलास के जन्म की कथा अत्यंत रोचक है। और चट्टानों के ऊपर नीचे जमे हुए परतों को खोल-खोल कर इन शैलसम्राटों के इतिहास का अध्ययन विज्ञान का एक आश्चर्यजनक चमत्कार है। हमारे भूगर्भवेत्ता हिंदी भाषा में जब इस विषय का विवेचन प्रस्तुत करेंगे उस समय इस शिलीभूत पुरातत्त्व का सम्यक् महत्व हमारी समझ में आ सकेगा। हिमालय के साथ हमारे परिचय की गति में जिस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होगी उसी प्रकार ये रहस्य भी प्रकाश में आने लगेंगे। हमारी अभिलाषा है कि जिस प्रकार स्वीडन और स्वीज़रलैंड के उत्साही विद्वान् शास्त्रीय चक्षुष्मत्ता लेकर हिमालय के शिखरों का आरोहण करते हैं और उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानचित्र प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार की भावना हमारे विद्वानों में भी जाग्रत् हो और हम भी सर्वलोक नमस्कृता अलकनन्दा या यशोमती अरुण नदियों की जीवन कथा एवं हिमालय के शालग्रामीय प्रस्तरों (एमोनाइट फ़ॉसिल्स) की कहानी को स्वयं समझें और उसका उद्धार करें।

हिमालय की पूर्व-पश्चिमगामिनी त्रिपुण्ड्र रेखा से परिचित होने का हम जितना भी प्रयत्न करें हमारे लिये श्रेयस्कर है। हमारे देशवासियों ने प्राचीन काल में हिमालय की बाहरी शृंखला भीतरी शृंखला और गर्भशृंखला की तीन समानांतर वाहियों को पास से देखा था और उनके भेद को पहचान लिया था। उन्हें वे उपगिरि (सिवालिक रेंज), बहिर्गिरि (लेसर हिमालयाज़) और अन्तर्गिरि (ग्रेट सेन्ट्रल हिमालयाज़) कहते थे। ये तीन गिरि हिमालय पर चढ़ने की निसेनी के तीन डंडे हैं या हिमालय रूपी विष्णु के चक्रमण के तीन पैर हैं, जिन्हें हर एक यात्री बदरीनाथ या कैलास की यात्रा में तुरंत पहचान

सकता है। उपगिरि दो ढाई हजार फीट तक ऊँचा है। उसके बाद एक दम बहिर्गिरि का सिलसिला आ जाता है, जो ६ हजार से १० हजार फुट तक ऊँचा है। हिमालय की सुंदरतम बस्तियाँ और घाटियाँ, जैसे काश्मीर, कुल्लू, गढ़वाल, कूर्मांचल और नेपाल, इसी बहिर्गिरि में हैं। इसके बाद सबसे ऊँची चोटियों से भरा हुआ सुमहान् हिमवंत (ग्रेट हिमालया) है, जिसमें बंदरपूँछ, बदरीनाथ, केदारनाथ, द्रोणगिरि, नंदादेवी, त्रिशूली, पंचशूली, गौरीशंकर आदि ऊँचे शिखर हैं, जिन पर सनातन हिमराशि जमी रहती है और जिनके ढाल पर अनेक हिमनदी और हिमश्रथों के अद्भुत मनोहारी दृश्य विद्यमान हैं।[1] इस पर्वतमाला के उस पार तिब्बत की ओर कैलास श्रेणी है, जिसे हिमालय के उत्तरी ककुद् की ही एक बाढ़ कहना चाहिए। कैलास के दक्षिण में मानों उसके दोनों चरणों को धोने के लिये निर्मल पाद्योदक से भरे हुए दो सुंदर सरोवर हैं, जिनमें से एक राक्षसताल या रावणह्रद कहलाता है और दूसरा मानसरोवर है, जहाँ देवों का निवास कहा जाता है। राक्षसताल और मानसरोवर के जमने, दड़कने और उनके द्वीपों का अत्यन्त रोचक अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ में दिया गया है जिसमें खोज की बहुमूल्य सामग्री पहली बार ही दी गई है। इसी प्रकार दोनों सरोवरों को मिलाने वाली गंगा छू धारा के विषय में भी अधिकांश सामग्री पहली बार ही ग्रंथ-लेखक ने प्रस्तुत की है। शीतकाल में मानसरोवर का और गंगा छू का अध्ययन करने का सौभाग्य किसी यूरोपीय अन्वेषक को भी अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। स्वामी जी का यह कार्य अत्यंत मौलिक है। इस प्रकार यह ग्रंथ हिंदी जगत् के लिये एक नवीन संदेश लाता है। आशा है हमारे साहित्यिक, लेखक की तरह.ही, हिमालय की देव-भूमियों में स्वयं अपने पैरों से विचरण करेंगे और हिमालय का इस भारत-भूमि पर जो ऋण है उसके मूल को और विस्तार को भली प्रकार समझने का उद्यम करेंगे।

३१—५—४३
लखनऊ

वासुदेवशरण अग्रवाल

---

[1] हिमालय के विभागों का अत्यंत विशद वर्णन श्री जयचंद्र जी ने अपनी 'भारतभूमि' पुस्तक में किया है, जो अत्यंत पठनीय है। (पृ० १०८)

कैलास और मानसरोवर
मानस-सवोवर
रावणहृद
स्वामी प्रणवानन्द
नेपाल

विषय-सूची

प्रथम तरङ्ग—श्री कैलास-मानसरोवर में बारह मास

अध्याय १—श्री कैलास तथा पुनीत मानसरोवर

अध्याय २—मानसरोवर का जमना

अध्याय ३—मानसरोवर का पिघलना

द्वितीय तरङ्ग—कैलास-मानसखंड

अध्याय १—मानसखंड

अध्याय २—खनिज

अध्याय ३—निवासी

अध्याय ४—धर्म

अध्याय ५—कृषि और आर्थिक स्थिति

अध्याय ६—शासन

तृतीय तरङ्ग—श्री कैलास-मानसरोवर-पथप्रदर्शक

अध्याय १—यात्रा की तैयारी

अध्याय २—लीपूलेख घाटा होकर कैलास जाने का मार्ग

यह मार्ग छः खंडों में विभक्त किया जा सकता है—

चतुर्थ तरङ्ग—मार्ग-तालिकाएँ

श्री कैलास-शिखर

(ब्लॉक कलकत्ता विश्वविद्यालय के सौजन्य से प्राप्त)

प्रथम तरङ्ग

श्री कैलास-मानसरोवर में बारह मास
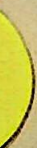
अध्याय १

श्री कैलास तथा पुनीत मानसरोवर

१—हिमालय

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वाऽपरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥१॥
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सम् मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥२॥

कुमारसंभव, सर्ग १, श्लोक १-२

उत्तर दिशा में देवताओं की आत्मा, अर्थात् देवता-स्वरूप पर्वतराज हिमालय पृथ्वी के मानदंड की भाँति पूर्व और पश्चिम समुद्रों का अवगाहन करते हुए स्थित है ॥१॥ राजा पृथु की आज्ञा से सभी पर्वतों ने हिमालय को बछड़े की कल्पना कर एवं सुमेरु पर्वत को कुशल दोग्धा (दुहनेवाला) बनाकर धरित्री का दोहन किया, जिससे बहुत-से चमकीले रत्न और महौषधियाँ प्राप्त हुई ॥२॥

हिमालय पर्वत प्राचीन काल से परम पवित्र माना गया है। संस्कृत ग्रंथों में यह हिमाचल, हैमवत, हिमालय, हिमाद्रि, हेमाद्रि, हिमगिरि, हेमवंत, गिरिराज इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। बहुत-से विद्वानों का मत है कि वेदवर्णित सुमेरु या मेरु पर्वत यही है। हिमालय संसार में सब से ऊँचा पर्वत है, जिसका

विस्तार पश्चिम में गांधार और काश्मीर से लेकर पूर्व में ब्रह्मदेश तक है। इसकी लंबाई लगभग १६०० एवं चौड़ाई २०० मील है। यह भारत की उत्तरी सीमा में दुर्भेद्य प्राकृतिक दीवाल के रूप में अवस्थित है। काश्मीर, काँगड़ा, कुल्लू, लाहुल, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल, भूटान आदि रमणीक प्रदेश इसी की गोद में हैं। वृहत् हिमालय, क्षुद्र हिमालय, काराकोरम, हिंदूकुश[1], हिंदूराज, कैलात, लदाख, जस्कार, महाभारत, पीरपंजाल, धवलधार, व्यास, नागटिब्बा शिवालिक इत्यादि पर्वतमालाएँ इसके अंतर्गत हैं। इसमें गगनचुंबी एवरेस्ट शिखर (गौरीशंकर वा चोमो लुङ्मा[2], ऊँचाई समुद्रतल से २९१४१ फीट) काराकोरम का दूसरा शिखर (गाड्विन् आस्टिन्, २८२५० फीट), कांचनजंघा (२८१४६ फीट), मकालू (२७७९० फीट), धवलगिरि (२६७९५ फीट), नंगापर्वत (२६६६० फीट), गोसाइ-थान (२६२९१ फीट), नंदादेवी (२५६४५ फीट), कामेट (गणेश शिखर, २५४४७ फीट), मांधाता (२५३५५ फीट), जोङ्सोङ (२४४७२ फीट), चोमोल्हारी (२३९३० फीट), द्रोणगिरि (२३१८४ फीट), गौरीशंकर (२३४४० फीट), त्रिशूल (२३४०६, २२४९०; और २२३६० फीट), स्वर्गारोहिणी (चौखंभा २३२४० फीट), पंचचूल्ही (२२६५० फीट), नंदाकोट (२२५१० फीट), कैलास (२२०२८ फीट), इत्यादि कई बर्फ़ीले शिखर हैं। ऐसे शिखर पचास से भी अधिक हैं जो समुद्रतल से २५००० फीट से अधिक ऊँचे हैं और इनके अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे शिखर भी हैं जो समुद्रतल से २०००० फीट से अधिक ऊँचाई के हैं।

पुराणों तथा प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों में इसे देवगणों की तपोभूमि, विहारस्थल और समावेश-स्थल कहा गया है, एवं हिमालय को एक राजा, पार्वती को उसकी पुत्री, तथा शिव नाम के एक महायोगेश्वर को पार्वती के पतिरूप में वर्णित किया गया है। हिमालय पर्वत अनंतकाल से शिव-पार्वती का निवास-

---

[1] ए० विल्सन रॉयल (सन् १८७४) का मत है कि हिंदूकुश भी हिमालय के अंतर्गत है।

[2] इसकी ऊँचाई पिछली माप के अनुसार २९००२ फीट है।

स्थान माना गया है। सुर, असुर, नर, यक्ष, किन्नर, किंपुरुष, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग, अप्सरस्, हाहा-हूहू इत्यादि पौराणिक पात्रों के लिये यह पर्वत एक क्रीड़ाभूमि रहा है। कहा जाता है कि यक्षराज कुबेर की राजधानी अलकापुरी या कांचन नगरी कैलास के आसपास है। लक्ष्मण के मूर्च्छा-निवारण के लिये हनुमान ज्योतिष्मती संजीवनी बूटी को जिस द्रोणगिरि से लाए थे, वह इसी हिमालय में है। पांडवों ने अपने राजसूय यज्ञ के लिये जिस गंधमादन पर्वत से सुवर्ण प्राप्त किया था, वह भी यहीं है। वीराग्रणी अर्जुन ने इसी पर्वत पर शिव की तपस्या करके पाशुपत आदि दिव्यास्त्रों को प्राप्त किया था। अश्वमेध के अनंतर इसी हिमालय के स्वर्गारोहण पर्वत से पांडवों ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया था। यहीं के वनों में रहकर वाल्मीकि और वेदव्यास आदि महर्षियों ने रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथरत्नों की रचना की थी। अनुपमेय महाकवि कालिदास के अंतस्तल में कविता के अविरल प्रवाह को इसी पर्वत ने जागरित किया था।

हिमालय में ही प्राचीनकाल से नर-नारायण, मुचकुंद आदि ऋषि, अत्रि भरद्वाज, वशिष्ठ आदि महर्षि, कपिल, कणाद, गौतम आदि दार्शनिक, गौड़पाद, शंकर आदि आचार्य, तथा कतिपय साधक, सिद्ध, योगी, ऋषि आदि महात्माओं ने तपस्या की है। इसी के गर्भ में अलौकिक, पवित्र और उत्कृष्ट आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, बदरीनाथ, केदारनाथ, कल्पनाथ, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, उत्तरकाशी (सौम्यकाशी), पशुपतिनाथ, मुक्तिनाथ, दामोदर कुंड (शालग्राम तीर्थ), त्रिलोकनाथ, अमरनाथ, शारदा, नारदा, विष्णुपाद, ज्वालामुखी, पद्मसर (रेवाल सर), श्री कैलास, और मानसरोवर इत्यादि अनेक तीर्थस्थान विराजमान हैं। गंगा, यमुना, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, भागीरथी, जाह्नवी, मंदाकिनी, करनाली, अलकनंदा, सरस्वती, सरयू, गंडकी, गोमती, शतद्रु (सतलज), वितस्ता (झेलम), व्यास, चंद्रभागा (चेनाब), रावी इत्यादि महानदियों का उद्गम-स्थान यहीं पर है। इसका प्राकृतिक सौंदर्य अनुपम और वर्णनातीत है। इसी में काश्मीर जैसे भूतल-स्वर्ग प्रदेश, संसार-प्रसिद्ध ऊँचे से ऊँचे शिखर, प्रदीप्त ज्वालामुखी और उष्ण तथा शीतल जल के

स्रोत[1] स्थित हैं। उत्तुंग अधित्यकाएँ, अति रमणीय पुष्पों से सुशोभित घाटियाँ और शस्य-श्यामला उपत्यकाएँ[2] भी यहाँ विद्यमान हैं। गिल्गित और ब्रह्मपुत्र गंभीर गर्त्तवाले कगार (गोज), खैबर जैसे दर्रे, पिंडारी और बालतरो जैसी बड़ी-बड़ी हिमनदियाँ (ग्लेशियर), अति सुंदर और मनोमोहक दिव्य दृश्य, और आत्मविस्मरणकारी जलप्रपात इसी में स्थित हैं। अष्टवर्ग, ज्योतिष्मती, ममीरा, ब्राह्मी, संधानकरणी, सोमा, ठुमा इत्यादि अगणित महौषधियाँ सबसे अधिक यहीं उत्पन्न होती हैं। विविध जातियों के रंग-बिरंगे सुगंधित पुष्प और सैकड़ों प्रकार के कंद-मूल फल, भूर्ज, देवदारु, चीड़, टीक, शीशम, इत्यादि महावृक्ष जातियों को उत्पन्न करने का गौरव इसी को है। सोना, चाँदी, सुहागा, लोहा, सीसा, राँगा, पारा, चूना, शोरा, गंधक, हरताल, इत्यादि धातुओं की खानें इसी के गर्भ में हैं। कई प्रकार के सुंदर पक्षी, मृग, हाथी, शेर, चीता, भालू, साही, कस्तूरी-मृग, चँवरी गाय, हरिण, जंगली घोड़े आदि जंतु भी यहाँ पाये जाते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है—"स्थावराणां हिमालयः", (१०,२५) 'अर्थात् स्थावरों में मैं हिमालय हूँ।'

मनोरम और विशाल दृश्यों में हिमालय यूरोप के आल्प्स और अमेरिका के रॉकी पर्वतमाला के सुदर-से सुंदर दृश्य को तिरस्कृत करता है। संस्कृत

---

[1]पर्वत या पृथ्वीतल का भेदन कर जो निरंतर जल-प्रवाह निकलता है उसे स्रोत, सोता, या चश्मा की संज्ञा दी गई है, अंग्रेज़ी भाषा में उसे स्प्रिंग कहते हैं। स्रोत या सोता यहाँ नदी के अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है।

[2]कोई नदी यदि दो पहाड़ों के बीच में होकर बहती है और उसके दोनों ओर समतल भूमि है, तो उसे नदी की 'घाटी' कहते हैं। यदि भूमि बहुत संकीर्ण है, तो उसे प्रस्तुत पुस्तक में 'संकीर्ण घाटी' संज्ञा दी गई है; यदि बहुत विशाल है, तो 'दून' नाम से सूचित किया गया है। ये तीनों अंग्रेज़ी के 'वेली' शब्द के समान अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। साधारणतया 'उपत्यका' शब्द भी 'वेली' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

साहित्य में इसका चित्ताकर्षक वर्णन है तथा इसकी प्रशंसा में पाश्चात्य देश-वासियों ने सैकड़ों पुस्तकें लिखी हैं। महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव तथा मेघदूत नामक काव्यों में इसका बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। लंदन नगर के रॉयल जिओग्राफिकल सोसाइटी के भूतपूर्व अध्यक्ष सर फ्रैंसिस यंगहस्बैंड ने सन् १९३७ में लिखा था—"भारतीयों में धार्मिक भावना को जागरित करने के लिये हिमालय ही उत्तरदायी है। इसीलिये उन्होंने यहाँ कई तीर्थस्थानों का निर्माण किया है। हम लोगों का पूर्ण विश्वास है कि हिमालय में उत्तम और सुंदर स्थानों का पता लगाने के लिये भारत और इंग्लैंड में समान उद्योग किया जाय तो इसके प्रति भारतवासियों की श्रद्धा पहले से कहीं अधिक बढ़ जायगी। यदि इस पर्वतराज के उत्तम और रमणीक दृश्यों का पता लगाकर उनसे बाह्य संसार को परिचित करा दिया जाय, तो ये स्थल भी तीर्थस्थान बन जावेंगे और आजकल के तीर्थों के समान सुरक्षित रक्खे जावेंगे।"

हिन्दुओं के भूतल-स्वर्ग कहलाने वाले कैलास और मानसरोवर नामक दो महातीर्थ हिमालयांतर्गत कैलास पर्वतमाला के मध्यङरी नाम से प्रसिद्ध, पश्चिमी तिब्बत में हैं। तीर्थपुरी, जहाँ पुराणों में वर्णित भस्मासुर भस्म हुआ, रावणहृद, जहाँ लंकाधीश रावण ने शिव की तपस्या की थी, तथा मांधाता पर्वत, जहाँ चक्रवर्ती मांधाता ने तपस्या की थी, कैलास और मान-सरोवर के निकट हैं। इन्हीं के आसपास शतद्रु, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, और करनाली नदियों के उद्‌गम-स्थान हैं।

२—श्री कैलास

(क) केलयोर्जलभूम्योः आसनम् स्थितिः यस्य केलासः स्फटिकम्, तस्या-ऽयम् कैलासः। जल और भूमि में स्थिति है जिसकी उसे 'केलास' अर्थात् स्फ-टिक कहते हैं और स्फटिकस्वरूप होने से इसे कैलास कहते हैं।

(ख) कुबेरस्य स्थानम् कैलासः। कुबेर का निवास-स्थान होने से इसका नाम कैलास है। (सचमुच कैलास के आसपास सोने और सुहागे की खानें हैं)।

(ग) के शिरसि (शिवयोः) लासः नृत्यम् अस्मिन् इति कैलासः। शिखर

पर शिवपार्वती के नृत्ययुक्त होने से इसका कैलास नाम पड़ा।

(घ) केलीनाम् समूहः कैलम् तेन आस्यते स्थीयत इति कैलासः, (आस् उपवेशने)। केलियों (क्रीड़ाओं) के समूह का नाम कैल है। उसके (केलियों के समूह के) साथ होने के कारण इसका कैलास नाम पड़ा।

ऊपर केलियों का तात्पर्य मंगल एवं आनंदस्वरूप शिव तथा हिमवान पर्वत की पुत्री एवं सम्मोहिनी स्वरूपा पार्वती की केलियों से है। अतः कैलास का अर्थ हुआ जहाँ पर आनंद एवं प्रकृति का ताण्डव नृत्य हो रहा हो। यही कारण है कि कैलास के समीप जानेवाले सभी प्राणी वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य से आकृष्ट होकर आनंदविभोर हो उठते हैं।

इस कैलास के समीप जानेवाले मानव अपनी ग्राह्यशक्ति के अनुसार शिव तथा पार्वती का साक्षात्कार कर तन्मय या समाधिस्थ हो जाते हैं। इसलिये पुराणों में शिव तथा पार्वती के निवासस्थान स्वरूप जिस कैलास का वर्णन किया गया है, वह इस दृष्टिकोण से सर्वथा सत्य है।

श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर युक्तप्रांत के अंतर्गत अल्मोड़ा नगर से २४० मील ईशान-कोण में और तिब्बत की राजधानी ल्हासा से ८०० मील पश्चिम की ओर हिमालय में स्थित हैं। इनके विशाल एवं मनोरम दृश्य हिमालय के अत्यंत रमणीक दृश्यों में से अन्यतम हैं। विश्वकर्मा की अति प्राचीन और प्रसिद्ध कारीगरी की शुभ्र और निर्दोष आदर्श छबि स्वरूप कैलास शिखर अपनी सम्मोहिनी और विवश करनेवाली सौंदर्य-राशि के साथ सर्वदा स्वच्छ श्वेत हिम से आच्छादित होकर, पीठिका के ऊपर स्थापित महान् रजत-लिंग के समान शोभायमान है। वास्तव में यह श्री कैलास शिखर जगत्स्रष्टा की ऐश्वर्यमयी विभूति का अनुपम एवं निराला चमत्कार है। भूमंडल में हिमाच्छन्न तथा नैसर्गिक शिवालय का प्रथम नमूना है। जब इसके विशाल शिखर के ऊपर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उस समय इसकी शोभा शुभ्र चाँदी जैसी प्रतीत होने लगती है और आँखों को चकाचौंध कर डालती है। इसीलिये इसका रजताद्रि नाम सार्थक है। इसके लिंग-स्वरूप शिखर में बर्फ के गिरते रहने से गोलाकार का त्रिपुंड्र एवं दक्षिण मुख में सीढ़ी जैसा ऊर्ध्वपुंड्र विराजमान

है। यह तिब्बती भाषा में 'कङरिम्पोछे' (पवित्र हिम) के नाम से प्रसिद्ध है। इसे 'तिसी' भी कहते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यहाँ पर सर्वोत्कृष्ट साधनोपयोगी वातावरण विद्यमान है। इसके ऊपर दृष्टिपात करते ही ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों यह सर्वशक्तिमान् की प्रत्यक्ष मूर्ति है, जो किसी भी दर्शक को श्रद्धा और भक्ति से अपने सामने नतमस्तक होने के लिये विवश करती है। इसका जाज्वल्यमान रजत शिखर अपनी निराली और अद्भुत छटा से सर्वदा शोभित रहता है। इसके मनोहर गगनचुंबी धवल शृंग की दिव्य छटा गिरिराज हिमालय को स्वर्गीय शोभा प्रदान करती है। समुद्र के वक्षस्थल से २२०२८ फीट की ऊँचाई पर अवस्थित यह कैलास अपने मस्तक को उन्नत कर अपनी उज्ज्वल छवि का प्रदर्शन करता हुआ नीलाकाश का भेदन कर रहा है। इसकी परिक्रमा की परिधि ३२ मील है। उसके चारों ओर पाँच गोम्पा (बौद्ध मठ) हैं, जिनमें दिन-रात शिखर पर स्थित प्रबुद्ध भगवान् बुद्ध और उनके पाँच सौ बोधिसत्वों का यशोगान होता रहता है। संस्कृत ग्रंथों में श्री कैलास-शिखर की अनंत महिमा गायी गई है और उसके ऊपर सर्वमंगलकारक शिव का निवास-स्थान माना गया है। यह शुभ्र शिखर दक्षिण में २० मील की दूरी से राजहंसों से सुशोभित मानसरोवर और रावणह्रद का अवलोकन कर रहा है।

३—पुनीत मानसरोवर

मानस-सरोवर सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक स्पन्दनों से युक्त परम पवित्र, सर्वप्रसिद्ध, अति प्राचीन, गरिमामय एवम् मनोमोहक सरोवरराज है। "भूगोल जगत् के सर्वप्रथम ज्ञात सरोवर में मानसरोवर ही सर्वप्रथम है। हिंदू पुराणों में भी मानसरोवर अतिप्रसिद्ध है। जिनेवा सरोवर के प्रति किसी सभ्य मनुष्य के हृदय में प्रशंसा के भाव उठने के कई शताब्दी पहले ही यह सरोवर अलौकिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इतिहास के प्रादुर्भाव के पहले ही यह परम पुनीत सरोवर बन चुका था और चालीस लाख वर्षों से अब तक वैसा ही रहता चला आया है।"[1] यह मानसरोवर गंभीर और प्रशांतभाव से दो महान् रजतमय

---

[1] एस० जी० बरांर्ड और एच० एच० हाईडेन, 'ए स्केच ऑफ दी

पर्वतों के बीच में जड़े हुए महोज्ज्वल नीलमणि या पिरोजा पत्थर की भाँति उत्तर में श्री कैलास और दक्षिण में गुरला-मांधाता, पश्चिम में रावणह्रद और पूर्व में कई छोटी पहाड़ियों के मध्य में अवस्थित है। इसका तरंग-पूर्ण वक्षस्थल अस्तकालीन सूर्य की प्रोज्वल स्वर्ण रश्मियों और सान्ध्य आकाश के आनंद-दायक चित्र-विचित्र रंगों को प्रतिबिंबित करता हुआ तथा तरंगरहित प्रशांत निर्मल नीलोदक का तल उदयकालीन सूर्य की रश्मियों एवम् पूर्णिमा के चन्द्रमा की रजत किरणों को प्रतिबिम्बित करता हुआ अपनी अलौकिक प्रतिभा, शोभा तथा सम्मोहक सौंदर्य को और भी सम्मोहित और सुशोभित करता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से वह मानसरोवर तन्मय करनेवाले अपने उच्चकोटि के आध्यात्मिक स्पंदनों से चंचल से भी चंचल मन को एकाग्र कर देता है; तथा अपने साथ लय मिला सकनेवालों को अनायास ही तन्मय और समाधिस्थ कर देता है। इसी कारण लाखों की संख्या में न केवल भारतवासी, प्रत्युत अन्य प्राच्य और पाश्चात्य देशों के निवासी भी इस पुनीत मानसरोवर के दर्शन के लिये लालायित रहते हैं। समुद्रतल से १४९५० फीट की स्वर्गीय ऊँचाई पर ५४ मील की परिधि में और लगभग २०० फीट की गहराई के साथ, इस सरोवर का विशाल विस्तार २०० वर्गमीलों में साम्राज्य वैभव के साथ तिब्बती अधित्यका रूपी एक विस्तृत पालने में फैला हुआ है। इसके पवित्र तट पर आठ बौद्ध मठ हैं, जिनमें भिक्षु लोग जीवन पर्यंत निर्वाण-प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहते हैं।

मानसराज के महत्त्व को पूर्णरूप से जानने एवम् उसके सौंदर्य को देखकर आनंद लूटने के लिये कम से कम सरोवर के तीर पर बारह महीने निवास करना चाहिये। जिन्होंने मानसरोवर को एक बार भी नहीं देखा है, उनके लिये प्रत्येक ऋतु में होनेवाले परिवर्तनों को निकट में रहकर देखनेवालों के आनंद की कल्पना करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। तथापि शीतकाल

जॉग्रफी ऑफ दी हिमालया मौन्टेनूस एन्ड टिबेट', सर्वे ऑफ इंडिया (१९३४), भाग ३०, पृ० २२८।

में सरोवर के जमते समय एवम् वसंत में पिघलते समय स्वच्छ नीलोदक के रूप में उसका दृश्य सचमुच अद्वितीय और रोमांचोत्पादक होता है। बहुधा सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य तो वर्णनातीत होते हैं। कुशल चित्रकार अपने चित्रों से या भावुक कवि अपनी भावमयी कविता से इसके सौंदर्य का केवल आंशिक वर्णन करने में समर्थ हो सकता है। इन लोगों के अतिरिक्त औरों का वर्णन तुच्छ और अपूर्ण होगा। इसके अपार सौंदर्य से मुग्ध होकर अपने अपार आनंद की अनुभूति को अल्प योग्यता द्वारा व्यक्त करने का प्रयास मात्र ग्रंथकार का उद्देश्य है।

४—तिब्बती पुराण-गाथाएँ

तिब्बती भाषा में कैलास-पुराण के दो पाठ हैं, जिनमें से एक कैलास के उत्तरी मठ डिरफुक् गोम्पा में और दूसरा दक्षिण के गेङ्टा गोम्पा में प्रकाशित किये गये हैं।[1] वे 'कङरी—करछक' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें से पहला ३२ और दूसरा १२४ पृष्ठों का है। इनके अतिरिक्त 'कङरी-सोलदेप' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका के संस्करण भी उन मठों से अलग-अलग प्रकाशित हुए हैं। ये दोनों पुस्तिकाएँ १४ और १३ पृष्ठों की हैं। इनमें करछक के संक्षिप्त विवरण हैं, जो नित्यपाठ के लिये लिखे गए हैं। ऐसा हिंदुओं का विश्वास है कि श्री कैलास-शिखर पर शिव-पार्वती का निवास है और पाँच सौ बोधिसत्वों के साथ बुद्ध भगवान वहाँ पर विराजते हैं, इसीलिये यह स्थान सत्तर करोड़ हिंदू और बौद्ध धर्मावलंबियों के लिये परम पवित्र तीर्थस्थान बन गया है। तिब्बती पुराणों में कहा गया है कि चक्की के मध्यदंड की भाँति भूमंडल के मध्यभाग में अवस्थित यह श्रीकैलास शिखर आकाश का भेदन करते हुए शोभित हो रहा है। इसके वर्गाकार पार्श्व भाग स्वर्ण और रत्न-खचित हैं; तथा इसका पूर्व मुख स्फटिक-निर्मित, दक्षिण मुख नीलमणि-जटित, पश्चिम मुख माणिक्य-खचित,

---

[1] ग्रंथकार की इच्छा है कि इन दोनों ग्रंथों को भाषाविशेषज्ञों की सहायता से हिंदी में अनुवाद करके उनका तुलनात्मक संपादन और प्रकाशन करे।

और उत्तरमुख स्वर्ण-जटित है। इसके शिखर सुगंधित पुष्पों और औषधियों से सुसज्जित हैं तथा शिखर पर पहुँचने के मार्ग में अमरत्व प्रदान करनेवाला कल्प-वृक्ष है। कैलास शिखर के उत्तर तल पर कङ्लुङ की घाटी में एक प्रकार की औषधि होती है, जिसे खाने से कोई व्यक्ति सारे संसार को देख सकता है।

बुद्ध भगवान् ने इस आशंका से कहीं यक्षगण इस शिखर को उखाड़ कर ऊपर न ले जायँ, इसे चारों ओर से अपने पैरों से दबा रखा है (कैलास के चारों ओर बुद्ध भगवान् के चार पद-चिह्न हैं) तथा नाग लोग कहीं इसे पाताल में न ले जायँ, इस डर से इसके चारों ओर साँकलें लगाई गई हैं। कैलास का अधि-ष्ठातृ देवता देमछोक है, जो पावो के नाम से भी पुकारा जाता है। वह व्याघ्र चर्म का परिधान और नर-मुंडों की माला धारण करता है। उसके एक हाथ में डमरू और दूसरे में त्रिशूल है। इसके चारों ओर ऐसे ही आभूषणों से आभू-षित प्रत्येक पंक्ति में पाँच सौ की संख्या से नौ सौ नब्बे पंक्तियों में अन्यान्य देवगण बैठे हुए हैं। देमछोक के पार्श्व में खडो या एकाजती नामक देवी विराजमान है। इस कैलास शिखर के दक्षिण भाग में वानरराज 'हनुमानजू' आसीन हैं। इसके अतिरिक्त कैलास और मानसरोवर में शेष अन्य देवगण का निवास है' यह कथा 'कङरी-करछक' नामक तिब्बती कैलास-पुराण में विस्तृत रूप से वर्णित है। उपर्युक्त देवताओं के दर्शन किसी किसी पुण्यात्मा अथवा उच्च कोटि के लामा को ही हो सकते हैं। कैलास के शिखर पर मृदंग, घंटा, ताल, शंख आदि और अन्य कतिपय वाद्यों का रव सुनायी पड़ता है।

गोंबोफेङ नामक राक्षस अपना एक पद भारत में और दूसरा कैलास के पश्चिम भाग में रखकर कैलास को ले जाने के प्रयत्न में इसके अधिष्ठातृ देवता द्वारा शापित होकर शिला रूप में परिणत हो गया है। आजकल कैलास के पश्चिम में जो गोंबोफेङ नामक पहाड़ है, वह वही राक्षस है।

एक समय लङ्गक् छो (रावणह्रद) का राजा केवल तीन पग में भारत जाकर बुद्ध भगवान् की स्वर्ण-मूर्ति लाकर राक्षसताल में रखने के उद्देश्य से कैलास गया, और उसको चारों ओर से रस्सी मे बाँधकर उठाने को उद्यत हुआ। इस बात को बुद्ध भगवान् दिव्य दृष्टि से जानकर अपने पाँच सौ बोधि-

सत्त्वों के साथ हंस रूप में वायु पथ से उड़कर सेरशुङ पहुँच गए। वहाँ मनुष्य रूप धारण कर उन्होंने ऐसा सम्मोहन नृत्य किया, जिसे राजा मुग्ध होकर देखता रहा। देखते-देखते प्रातःकाल हो गया। वह कैलास को पीठ पर बाँध कर ले जाना चाहता था, परंतु उठाने से पहले ही बुद्ध भगवान् ने कैलास को चारों ओर से अपने पैर से दबा दिया, और उस राजा को शाप दिया कि वह पत्थर हो जाय। उस शिलीभूत का स्वरूप गोंबोफेङ नामक पर्वत है। कैलास-शिखर की मेखला में आजकल जो रेखा दिखाई पड़ती है उसे तिब्बती लोग गोंबोफेङ की तथा हिंदू यात्री रावण की रस्सी का चिह्न मानते हैं। कैलास के पश्चिम की ध्वजा के पास टचुङ-मपग्या (५०० पदचिह्न) नामक पहाड़ है, जिसके ऊपर कई पद-चिह्न दिखाई देते हैं।

कहते हैं कि कैलास और दोर्जेदेन (वज्रासन या बुद्धगया) के मध्य में नौ पर्वत विद्यमान हैं।

तिब्बती कैलास-पुराण में मानसरोवर के संबंध में निम्नलिखित बातें कही गयी हैं—एक बड़ी भारी मछली ने भारत से जाकर सरोवर में ऐसे प्रवेश किया जैसे कोई बच्चा अपनी माँ की गोद में पड़ जाता है। इसलिये यह 'छो मफम' (सरोवर-माता की गोद) कहलाने लगा। इसे तिब्बती भाषा में 'छो मवङ' (सर-अजेय) भी कहते हैं! छो मवङ या मानसरोवर के चारों ओर वृक्षों की सात पंक्तियाँ हैं। सरोवर के मध्य में एक महान् भवन है जिसमें नागों के राजा निवास करते हैं। यह सरोवर समतल नहीं है, धनुषाकार है। मध्यभाग में ऊँचा है। उस ऊँचे स्थान पर एक बड़ा वृक्ष है, जिसके बड़े-बड़े फल सरोवर में 'जम्' शब्द के साथ गिरते हैं। इसी लिये आसपास का भूभाग जम्बूलिङ या हिंदू पुराणों में वर्णित जंबूद्वीप कहलाता है। सरोवर में गिरे हुए कुछ फलों को नाग खा डालते हैं और बचे हुए फल सोना बनकर सरोवर के तल में चले जाते हैं। इसके दक्षिण भाग में ढुगोल्हो के पास सोना, चाँदी, मूँगा, पिरोजा, और मोती—इन पाचों, से युक्त पंच जल हैं; पूर्वी किनारे पर सेरलुङ के पास सोना, चाँदी, पिरोजा, मूँगा और लोहे की पंचरेत है, जो चेमानेङा के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण तट पर पाँच प्रकार की धूप हैं, पश्चिमी किनारे

पर पाँच प्रकार के शंख हैं, और उत्तरी किनारे पर पाँच प्रकार के पत्थर हैं।

इस मानसरोवर के पश्चिम में लङ्चेन खम्बब् या हस्ति-मुख नदी (शतद्रु), उत्तर में सिंगी खम्बब या सिंह-मुख नदी (सिंधु), पूर्व में तमचोक खम्बब् या अश्व-मुख नदी (ब्रह्मपुत्र), और दक्षिण में मप्चा खम्बब् या मयूर-मुख नदी (करनाली) के उद्गम-स्थान हैं। इन नदियों में प्रत्येक की पाँच-पाँच सौ सहायक नदियाँ हैं। शतद्रु का जल शीतल, सिंधु का जल गरम, ब्रह्मपुत्र का जल ठंडा, और करनाली का जल उष्ण है। शतद्रु में सुवर्ण, सिंधु में वज्रमयी, ब्रह्मपुत्र में नीलम, और करनाली में रजतमय बालू है। शतद्रु के जल को पान करने-वाले प्राणी हाथी जैसे बलवान, सिंधु के जल को पीनेवाले सिंह जैसे शूरवीर, ब्रह्मपुत्र के जल को पीनेवाले अश्व जैसे बलिष्ठ, और करनाली के जल को पीने-वाले मयूर जैसे सुंदर होते हैं। ये चारों महानदियाँ कैलास और मानसरोवर की सात प्रदक्षिणा करके क्रमशः पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती हैं। शतद्रु नदी प्रारंभ में कैलास की पूर्व दिशा से निकलकर पश्चिम की ओर; सिंधु नदी दक्षिण दिशा से निकलकर उत्तर की ओर, ब्रह्मपुत्र पश्चिम दिशा से निकल कर पूर्व की ओर, और करनाली उत्तर दिशा से निकल कर दक्षिण की ओर बह रही है। मानसरोवर के किनारे सीधी रेखा में पैंतालिस मील के भीतर ही इन चारों नदियों के उद्गम-स्थान होने के कारण तिब्बती पुराणों में, मानसरोवर से इनके निकलने का जो कवित्वमय वर्णन आया है, वह सत्य से दूर नहीं है; क्योंकि कैलास-पुराण के ग्रंथकर्ताओं ने कैलास, मान-सरोवर, और इन नदियों के उद्गम तक के भाग को कैलास-मानसरोवर प्रांत माना है। इसीलिये और अन्य कुछ कारणों से मैं भी कैलास-मानसरोवर के पश्चिम में छिनकु नदी तक, उत्तर में सिंधु नदी के उद्गम तक, पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के उद्गम तक, और दक्षिण में भारत की सीमा तक के प्रांत को कैलास-मानस प्रांत, कैलासखंड, या मानसखंड के नामों से प्रयोग करता हूँ।

५—हिंदू पुराण-गाथाएँ

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खम्
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥

मेघदूत, पूर्व, ५८

(यक्ष कहता है) हे मेघ! तुम आगे जाकर कैलास-पर्वत पर पहुँचना, जिसके प्रांत रावण ने हिला दिए थे और जो देवांगनाओं के दर्पण के समान है। यह पर्वत शुभ्र कुमुदों के समान अपने श्वेत शिखरों को आकाश में फैलाए हुए हैं, और उसे देखकर ऐसा बोध होता है जैसे शिव जी के प्रतिदिन का अट्टहास एक स्थान पर इकट्ठा हो गया हो।

भारत में आर्यों के आगमन काल से ही तिब्बत और विशेषकर कैलास-मानसरोवर प्रांत हिंदू पुराणों में हिमालय के अंशरूप में वर्णित हैं। रामायण और महाभारत में, विशेष रूप में स्कंदपुराण के 'मानसखंड'[1] में और साधारणतया सभी पुराणों में मानसरोवर का माहात्म्य वर्णित है।

भगवद्गीता में भी कैलास भगवान् की विभूतियों में वर्णित है—

"मेरुः शिखरिणामहम्" (१०, २३)। अर्थात् शिखरों में मैं मेरु (कैलास) हूँ।

एक पौराणिक गाथा है कि जंबूद्वीप के मध्य में विविध वर्णों से युक्त दिव्य मेरु पर्वत या कैलास है। उसका पूर्वभाग ब्राह्मण जैसा श्वेत, दक्षिण भाग वैश्य जैसा पीत, उत्तर भाग क्षत्रिय जैसा रक्तवर्ण, और पश्चिम भाग शूद्र जैसा

---

[1]मानसखंड की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ अलमोड़े में विद्यमान हैं। एक प्रति श्री लक्ष्मीचंद्र जी जोशी रईस के ईश्वरी भवन पुस्तकालय में है। दो अन्य प्रतियाँ मैंने दो अन्य व्यक्तियों के पास देखा भी। इनमें से दो एक ही पुस्तक की प्रतिलिपियाँ हैं। तीसरी कैसी है इसे मैंने ध्यान से नहीं देखा। ये तीनों प्रतियाँ आधुनिक हैं। स्कंदपुराण के अंतर्गत न होकर अलमोड़े के किसी पण्डित द्वारा लिखी गयी हैं। क्योंकि कोई भी प्रति दो तीन सौ वर्ष से पुरानी नहीं जान पड़ती। इनके अतिरिक्त 'कैलासखंड' नामक एक और हस्तलिखित पुस्तक को भी मैंने अलमोड़े में देखा था।

श्याम वर्ण है। चारों दिशाओं में रक्षा के लिये चार पर्वत हैं, जिन पर क्रमशः कदंब, अश्वत्थ, जंबू और औदुम्बर या वट के वृक्ष हैं। रामायण के किष्किन्धाकांड में लिखा गया है कि कैलास के जिस भाग में मानसरोवर स्थित है, वह क्रौंच पर्वत है। महाभारत के भीष्मपर्व में कैलास को हेमकूट कहा गया है। इसी प्रकार महाभारत के वन, द्रोण, तथा अनुशासन पर्वों में भी कैलास का वर्णन मिलता है।

एक समय लंकाधीश रावण ने लगातार कई वर्षों तक कैलासपति शंकर की घोर तपस्या की। तिसपर भी वे प्रसन्न न हुए और उसे दर्शन तक नहीं दिए। इस पर रावण एक दिन कैलास शिखर के नीचे घुसा और चाहा कि कैलास को जोर से हिला दें ताकि शिव अपनी समाधि से उठकर इष्ट वरदान दें। उसके इस उद्देश्य को पहले ही से जानकर शिव ने रावण को कैलास के नीचे दबा दिया जिससे कि वह बाहर न निकल सके। तब रावण ने अपने दश शिरों में से एक को काटकर उसका सितार बनाया और शिव के परम प्रिय तांडव-नृत्य का स्तोत्र रचकर गाने-बजाने लगा। इस बात से प्रसन्न होकर शिव ने रावण को वरदान दिया।

एक समय सनक, सनंदन, सनत् कुमार, सनत् सुजात आदि ऋषि कैलास शिखर पर शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या कर रहे थे, इसी अवधि में बारह वर्ष तक अनावृष्टि होने के कारण आसपास की सब नदियाँ सूख गईं। स्नान आदि के लिये ऋषियों को बहुत दूर मंदाकिनी तक जाना पड़ता था, इसलिये उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने अपने मानसिक संकल्प से कैलास के पास एक सरोवर का निर्माण कर स्वयं हंस-रूप हो उसमें प्रवेश किया। ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि होने के कारण इसका नाम मानस-सरोवर पड़ा। अब इसे मानसरोवर या केवल मानस भी कहते हैं। इसके जल के ऊपर सरोवर के मध्य भाग में एक कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ।

एक अन्य गाथा के अनुसार महाराज मांधाता ने इस सरोवर का पहले-पहल पता लगाया या निर्माण किया। मानसरोवर के दक्षिण की ओर के पर्वत पर मांधाता ने तपस्या की, जिससे वह अब भी मांधाता के नाम से प्रसिद्ध है।

इसे गुरला-मांधाता भी कहते हैं। तिब्बती भाषा में तो इसे नमोनानी या मेमो-नानी कहते हैं। मांधाता तिब्बत में सबसे ऊँचा पर्वत है।

दत्तात्रेय ऋषि विंध्याचल से हिमालय का अवलोकन कर हिमालय के दर्शनार्थ गए। उन्होंने मानसरोवर में स्नान कर राजहंसों का दर्शन किया। तदुपरांत कैलास की एक गुफा में आसीन शिव-पार्वती के दर्शन प्राप्त किए और पूछा—"संसार में सबसे पवित्र स्थान कौन-सा है?" शिव ने कहा—"सबसे पवित्र स्थान हिमाचल है, जिसमें कैलास और मानसरोवर विराजमान हैं। हिमालय का दर्शन तो दूर रहा, जो उसका ध्यान भी करता है उसके सभी पाप तत्काल धुल जाते हैं। हिमाचल का ध्यान मात्र काशी की यात्रा से अधिक पुण्यदायक है। मेरे मूल वासस्थान कैलास के ध्यान, दर्शन, स्पर्श आदि का अनंत फल है। उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता; वह धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का प्रदाता है।"

कैलास के प्रति, स्वीडन देश के विख्यात भूगोल-शास्त्री डाक्टर स्वेन हेडिन लिखते हैं—"कोई परदेशी भी क्यों न हो, कैलास के पास एक गंभीर मनोभाव और श्रद्धा के साथ जाता है। निस्संदेह कैलास संसार-भर में विख्यात पर्वत है। एवरेस्ट शिखर और माउन्ट ब्लाँक उसके सामने प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकते।"

ईसाई धर्म के प्रसिद्ध प्रचारक साधु सुंदरसिंह मानसरोवर के संबंध में लिखते हैं—"यह सरोवर अति रमणीक और पवित्र स्थान है। मेरे देखे हुए स्थानों में यह सब से सुंदर है।"

एटकिन्सन का मत है कि राक्षसताल ही पुराणों में वर्णित बिंदु-सरोवर है।

बौद्धधर्म के अनेक पालि और संस्कृत ग्रंथों में यह कहा गया है कि मान-सरोवर 'अनवतप्त' है, या शीतोष्णादि दुःखों से विमुक्त है। इसके मध्य में समस्त शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करनेवाला, फल को प्रदान करनेवाला एक वृक्ष है। इसी कारण से वह देवता और मनुष्यों द्वारा विशेषरूप से सेवित है। यही अनवतप्त भूतल-स्वर्ग है। अमिताभ-बुद्ध के आकार के समान बड़े-

२

बड़े कमल पुनीत सरोवर में खिलते हैं, जिन पर बहुधा बुद्ध भगवान् और उनके पाँच सौ बोधिसत्त्व आसन लगा कर बैठते हैं। इसमें स्वर्गीय राजहंस तैरते समय दिव्य गीत गाते रहते हैं। इसके आसपास के पहाड़ों पर शतमूलिका नामक दिव्यौषधि पाई जाती है। जैन ग्रंथों में कैलास को अष्टपद कहा गया है।

कैलास से लगभग २८ मील की दूरी पर तीर्थपुरी नामक एक स्थान है, जहाँ पुराण-प्रसिद्ध भस्मासुर भस्म हुआ था। यहीं पर गर्म जल के स्रोत हैं, जो बहुधा स्थान बदलते रहते हैं या कभी-कभी कुछ समय के लिये बंद भी हो जाया करते हैं। इन स्रोतों के पास बहुत-से चूने जैसे श्वेत पदार्थ के ढेर हैं, जिन्हें भस्मासुर का ढेर कहते हैं। यात्रीगण इस श्वेत पदार्थ को पवित्र मान-कर प्रसाद के रूप में ले जाते हैं।

हिंदू पौराणिक कथाओं तथा देवी-देवताओं को कुछ-कुछ परिवर्तनों के साथ बौद्ध धर्म ने अपनाया। इसलिये कैलास मानसरोवर-संबंधी कई तिब्बती गाथाएँ पौराणिक गाथाओं से बिल्कुल मिलती-जुलती हैं।

६—परिक्रमा

कैलास पर्वत-श्रेणी काश्मीर से लेकर भूटान तक फैली हुई है। इसमें से ल्हा छू और झोङ छू नदियों से घिरे हुए भाग को कैलास पर्वत कहते हैं, जिसके उत्तरी सिरे पर शिवलिंग के आकार में कैलास शिखर अवस्थित है। यदि कैलास पर्वत की परिक्रमा करनी हो तो ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में ही की जा सकती है। इसका कारण यह है कि शीतकाल में कैलास के चारों ओर १० से लेकर २० फीट तक बर्फ गिरती है। कैलास पर्वत की परिक्रमा शीघ्रता से दो दिन में और सुगमता से तीन दिन में कर सकते हैं। परंतु कुछ तिब्बती लोग 'निङकोर' नामक परिक्रमा को एक ही दिन में पूरा कर डालते हैं। तिब्बती पुराण में लिखा है कि कैलास की एक परिक्रमा एक जन्म में किये हुए, और १० परिक्रमाएँ एक कल्प में किये हुए पापों को नष्ट करती हैं; और १०८ परि-क्रमाएँ करने से इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त होता है। एक अन्य गाथा के अनु-सार एक परिक्रमा करने से मरने के बाद जीव मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण

करता है, १२ परिक्रमाएँ करने से मुनि या देवता हो जाता है, और १३ परिक्रमाएँ करने से साक्षात् बुद्ध हो जाता है।

धर्मपरायण तिब्बती लोग कैलास की तीन या तेरह परिक्रमाएँ करते हैं। कुछ विशेष धार्मिक व्यक्ति बड़ी श्रद्धा भक्ति से कैलास की साष्टांग दंडवत् परिक्रमाएँ पंद्रह दिन में और मानसरोवर की अट्ठाईस दिन में करते हैं। जिस प्रकार भारत में लोग ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अपने लिये पूजा-पाठ, शांति, और अभिषेक आदि कराते हैं, उसी प्रकार तिब्बत में धनी और रोगी, गरीब और भिखमंगों को पैसा और भोजन देकर परिक्रमा करवाते हैं। सभी तिब्बती कैलास या मानसरोवर की परिक्रमा पैदल ही करते हैं। घोड़े या याक पर चढ़ कर परिक्रमा करने से यात्रा का फल तो यात्री को होता है, परंतु परिक्रमा का फल उसके वाहन को मिल जाता है। यदि कोई संपन्न व्यक्ति मरता है तो उसकी आत्मा की शांति के लिये लोग गरीबों को कुछ रुपये या एक-एक भेंड़ देकर कैलास और मानसरोवर की अनेक परिक्रमा करवाते हैं। मैंने कैलास की पंद्रह परिक्रमाएँ की हैं। पोनधर्म या बौद्धधर्मावलंबी तिब्बती कैलास और मानसरोवर की उल्टी परिक्रमा करते हैं। इन लोगों में भी साष्टांग दंडवत् प्रदक्षिणा की प्रथा प्रचलित है।

कैलास के (१) पश्चिम में न्यनरी[1] या छुकू गोम्पा, (२) उत्तर में डिरफुक्

---

[1] तिब्बती भाषा में 'न्यन' हिरन को कहते हैं। एक बार एक न्यन (हिरन) इस पर्वत में घुस गया। इसलिये इसका नाम न्यनरी (हिरन-पर्वत) पड़ा है। वहाँ के मठ को न्यनरी गोम्पा कहते हैं। भारतवासी अपभ्रंश कर इसे नंदी कहते हैं। परंतु कुमाऊँ के कत्यूरी राजा नंदीदेव या शिव के नंदीगण से इसका कोई संबंध नहीं है। क्योंकि कत्यूरी राजा नंदीदेव अशोक के समय में था, उसका काल ईस्वी सन् से ढाई सौ वर्ष पहले का है, और बुद्ध धर्म का आरंभ तिब्बत में ईसा की सातवीं शताब्दी में हुआ। न्यनरी गोम्पा का निर्माण इससे बहुत ही पीछे हुआ है; इसलिये कुछ ऐतिहासिकों ने (उदाहरण के लिये 'कूर्मांचल कांति' के लेखक ने) न्यनरी को नंदी समझ कर उसे नंदीदेव के और नंदीगण

या डिथिनफुक् गोम्पा, (३) पूर्व में जुंठुलफुक् गोम्पा, (४) दक्षिण में गेङ्टा, और (५) सिलुङ गोम्पा हैं। श्री कैलास की परिक्रमा में बुद्ध भगवान् के चार पद-चिह्न हैं—(१) पश्चिम में ध्वजा से थोड़ी दूर पर टचुङ मपूग्या के पास, (२) गोंत्रोफेङ के आगे तमडिन डोङखङ के पास, (३) पूर्व में गौरीकुंड के उतार के अंत में शप्जे-डक्थोक् के पास और (४) दक्षिण में जुंठुलफुक् और गेङ्टा गोम्पो के मध्य में शप्जे-करमा। चौथा शप्जे बारह वर्ष पूर्व गेङ्टा गोम्पा में ले जाया गया। इसके अतिरिक्त चार चकूतक् या संकल हैं—(१) गेङ्टा गोम्पा के पास, (२) लङ्चेनफुक् के पास (न्यनरी गोम्पा के नीचे), (३) चरोक डोङखङ के पास (डिरफुक् गोम्पा और डोलमा ला के मध्य में), और (४) ल्हलम-थरथक्-तोलमो-करमो के पास।

कैलास के चारों ओर निम्नलिखित चार 'थुटुप' हैं। इन स्थानों पर यात्री गण अपने रक्त और बालों को चढ़ाते हैं, एवं चित लेटकर मरने का अभिनय करते हैं और कैलास के इन स्थानों में देह त्याग करना पुण्य-प्रद मानते हैं—(१) तरबोछे के पास टचुङ-मपूग्या, (२) डोलमा ला के मार्ग में चरोक डोङखङ के पास शिवाछल थुटुप, (३) जुंठुलफुक् गोम्पा के ऊपर, और (४) गेङ्टा गोम्पा और सिलुङ के मध्य मार्ग में। कैलास के चारों ओर चार छकछल-गङ हैं, जहाँ से साष्टांग दंडवत् नमस्कार किया जाता है; इन्हें चंगजा-गङ भी कहते हैं—(१) तरछेन के २¾ मील आगे, (२) न्यनरी गोम्पा से करीब ३ मील पर, (३) डोलमा ला के पास, और (४) खंडोसङलम छू[1] के मुखद्वार पर।

कैलास के पश्चिम भाग में सेरशुङ नामक स्थान में तरबोछे या एक बड़ी ध्वजा है। यहाँ प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ल चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिन बड़ा भारी मेला लगता है। यात्री लोग चतुर्दशी के दिन उस ध्वजा को उतार कर

के साथ जोड़ने का जो यत्न किया है वह सर्वथा अशुद्ध, भ्रमात्मक, और सत्य से दूर है।

[1]नदी या नाले।

रंग-बिरंगी मंत्रयुक्त पताकाओं और झंडों को बाँध कर शाम के समय आधा खड़ा कर देते हैं, और पूर्णिमा के दिन सवेरे नौ बजे तक पूरा खड़ा करके परिक्रमा के लिये आगे बढ़ जाते हैं। गरतोक से पश्चिमी तिब्बत के दोनों वायसरायों (गरपोन) के दो प्रतिनिधि आकर ध्वजारोहण के उत्सव की देखभाल करते हैं। ध्वजा को खड़ा करने का काम पुरङ-तकलाकोट की जनता द्वारा संपन्न होता है। मैं इस मेले में दो बार जा चुका हूँ। वैशाख पूर्णिमा बुद्ध भगवान् के जन्म, ज्ञानोदय, और निर्वाण का दिवस है। यह तिथि बौद्ध धर्मावलंबियों के लिये परम पवित्र है। यहाँ घोड़े के वर्ष में एक बृहत् मेला लगता है। उस समय चीन, साइबेरिया, मंगोलिया, जापान, ब्रह्मा, श्याम, लंका इत्यादि देशों के बौद्ध यात्री परिक्रमा के लिये जाते हैं। उस वर्ष भारत से भी बहुत यात्री परिक्रमा के लिये जाते हैं। इस विशेष वर्ष की कैलास या मानसरोवर की परिक्रमा अन्य समय की तेरह परिक्रमाओं के समान मानी जाती है।

ध्वजा के पश्चिम में दो सौ गज की दूरी पर छोरतेन-कङ्नी नामक एक लाल द्वार है, जिसमें होकर पशुओं को भी ले जाना कल्याणप्रद माना जाता है। ध्वजा से एक मील आगे ल्हा छू के दाहिने किनारे के पर्वत न्यनरी गोम्पा के दक्षिण में प्रख्यात सिद्ध मिलरेपा की गुफा, और नदी के बाएँ किनारे पर मार्ग से २०० गज दूरी पर पोनधर्मी (वाम-मार्गी) नरोपुंजुंग की गुफाएँ हैं। सन् १९३७ में मैंने मानसरोवर पर निवास किया था। उस समय जब मैं इस मेले में गया तो कैलास की परिक्रमा के समय इसके उत्तर डोलमा ला के पास पाँच छः फीट बर्फ पड़ी हुई थी। दिन में बर्फ गलकर भीतर धँस जाने का भय रहता था। इसलिये मैंने उस घाटा को रात के बारह बजे के समय पार किया था। तिब्बतियों का कहना है कि मानसरोवर की अपेक्षा कैलास के चारों ओर देवीदेवताओं के स्थान (फुटङ) अधिक हैं।

कैलास-शिखर कैलास पर्वत की उत्तर दिशा में वज्रपाणि (छानादोर्जे) और अवलोकितेश्वर (चेनरेसी) नामक दो चोटियों के मध्य भाग से उत्तरादि मठ डिरफुक् के भिक्षुओं के साथ एकांत में मौन-वार्त्तालाप करता रहता है। कैलास शिखर का उत्तरी दृश्य अति चंचल-प्रकृति के व्यक्तियों को भी पूर्णरूप से

सम्मोहित करके एकाग्र बना देता है। उसकी नैसर्गिक शोभा और प्रतिभा यात्रियों को स्वर्गीय आनंद प्रदान करनेवाली है।

डिरफुक् गोम्पा से १$\frac{1}{4}$ मील आगे चलने के पश्चात्, राजमार्ग छोड़कर दाहिनी ओर उतर कर जाने से सामने जम्बयङ और छोगेल-नोरसङ नामक पहाड़ों के मध्य में एक सुंदर बर्फीला घाटा दिखाई पड़ता है, जिसका नाम खंडोसङलम ला[1] है। तिब्बती पुराणों का आदेश है कि कैलास की १२ परिक्रमाएँ करने के बाद यात्री तेरहवीं परिक्रमा में उस मार्ग से जाने का अधिकारी हो जाता है। यह पथ डोलमा ला के आगे ४$\frac{3}{4}$ मील पर परिक्रमा-मार्ग पर मिल जाता है। अब तक इस घाटे को तिब्बतियों के अतिरिक्त अन्य कोई न तो जानता था न कोई उस रास्ते से होकर गया ही था। पहलेपहल मैंने इस घाटे को दो बार, ११.७.१६४१ और १३.६.४२ में पार किया था।

कैलास के पूर्व में, डोलमा ला से दो सौ गज उतरकर गौरीकुंड नामक एक छोटा-सा सर है, जिसे तिब्बती भाषा में ठुकीजिङबू कहते हैं। यह सर कपाल के आकार का लगभग पौन मील लंबा और आधा मील चौड़ा है, जो बारहों महीने बर्फ से ढका रहता है। यहाँ प्रतिदिन किसी न किसी समय कुछ-न-कुछ बर्फ पड़ती ही रहती है। यात्रीगण पत्थरों या लाठियों से बर्फ को तोड़ कर उसमें स्नान करते हैं। शीताधिक्य से स्नान न कर सकनेवाले केवल

---

[1] विशेष विवरण श्री कैलास-परिक्रमा की तालिका में दिया गया है। प्रायः पर्वत-मालाओं को सभी स्थानों से आरपार लाँघ नहीं सकते। पहाड़ की रीढ़ पर कोई निचला स्थान, जहाँ से होकर एक ओर से चढ़ कर दूसरी ओर उतर सकते हैं, उसका नाम 'घाटा' है। इसी को हिमालय से पहाड़ों में 'धुरा', 'जोत', और कभी कभी 'डाँडा' भी कहते हैं। घाटा चौड़ा भी हो सकता है और तंग भी हो सकता है। यदि घाटा बहुत ही संकीर्ण हो और दोनों पार्श्व के पर्वत ऊँचे और दीवाल की भाँति हों, तो उसे 'दर्रा' कहते हैं, जैसे खैबर दर्रा। कम ऊँचाई के घाटों को अल्मोड़े ज़िले में 'छीना' और गढ़वाल में 'खाल' कहते हैं। इन सभी को अंग्रेजी में केवल 'पास' कहते हैं और तिब्बती में 'ला'।

मार्जन और आचमन करके ही तृप्त हो जाते हैं। इसमें दक्षिण की ओर के पहाड़ों से बड़े-बड़े हिमखंड सदा गिरते ही रहते हैं। यात्रीगण गौरीकुंड का जल प्रसाद के रूप में ले जाते हैं। मैं वैशाख की पूर्णिमा के अवसर पर जब इसके ऊपर से होकर गया उस समय यह मोटी बर्फ से ढका हुआ था, जिसको तोड़ने पर भी आचमन के लिये जल नहीं मिला।

गौरीकुंड के संबंध में कङरी-करछक में लिखा हुआ है कि एक समय खम् तेश की एक स्त्री अपनी गोद में बच्चे को लेकर कैलास की परिक्रमा कर रही थी। बारहवीं परिक्रमा करते समय गौरीकुंड में जब वह पानी के लिये झुकी तो बच्चा गोद से गिर कर जल में डूब गया। बच्चे के गिर जाने से कुंड अपवित्र हो गया। इस प्रकार की अन्य दुर्घटना फिर घटित न हो जाय इस आशंका से गौरीकुंड बारह मास जमा हुआ ही रहने लगा।

तरछेन से, जहाँ से कैलास की परिक्रमा प्रारंभ होती है, सिलुङ मठ होकर सात मील की दूरी पर, शिखर की जड़ में, खड़ी दीवाल की मेखला में सेर-दुङ-चुकसुम (सोने का स्तूप-तेरह) नाम से उन्नीस छोर्तेन या स्तूप हैं, जो तीन झुंडों (८, ६, २) में विभक्त हैं। डेकुङ[1] नामक विहार के प्रधान लामाओं की यहाँ समाधि है। कैलास शिखर से दक्षिण मुख की सीढ़ियों से होकर सेरदुङ-चुक-सुम के पार्श्व में बर्फ गिर कर चावल का ढेर-सा लगा देती है। यहाँ से चरोकफुरदोद ला होकर उतर कर चार मील नीचे छो कपाला या कपाल सर नामक पत्थरों के मध्य में दो छोटे-छोटे तालाब हैं। इनमें से ऊपरवाले का जल काला और नीचेवाले का श्वेत होता है। तिब्बती भाषा में काला जलवाला कुंड 'रुक्ता' और श्वेत जलवाला कुंड 'दुरची' के नाम से प्रसिद्ध है। रुक्ता की परिधि ६६० और दुरची की १३२० फीट है। कङरी-करछक में लिखा हुआ है कि रुकता का जल 'छंग' जैसा काला और दुरची का दूध जैसा श्वेत

[1]यह विहार ल्हासा के ईशान कोण में सौ मील की दूरी पर है।

[2]इस नाम की दो गुफाएँ हैं, जिनमें से एक मानसरोवर के उत्तरी तट पर और दूसरी न्यनरी गोम्पा के पास अवस्थित है।

है। कहा जाता है कि कैलास की कुंजी (दिमिक) दुरची में और मानसरोवर की कुंजी लङ्छेनफुक् में है।

तिब्बती पुराणों में यह नियम है कि श्री कैलास की तेरह परिक्रमा करनेवालों को छोड़ कर और कोई दूसरा इस सेरदुङ-चुकसुम और कपाली सर में नहीं जा सकता। मैं इन दोनों तीर्थों पर सन् १९३७ में दो बार और १९४२ में एक बार गया था। तिब्बतियों को छोड़ कर मेरे सिवा किसी अन्य देश का कोई भी व्यक्ति इन स्थानों में अब तक नहीं पहुँच पाया है। स्वीडेन निवासी भूगोल-शास्त्रवेत्ता डाक्टर स्वेन हेडिन ने इन कपाली सरों को विना देखे ही कैलास-शिखर के पूर्व में अवस्थित गौरीकुंड को ही छो कपाला का नाम दे दिया है। इन्होंने छो कपाला का नाम तो सुना होगा, परंतु इस नाम का एक भिन्न सरोवर है, इसका उन्हें पता नहीं था।

गत वर्ष (१५.९.४२) मैं छो कपाला के रुक्ता तालाव से ७ सेर वजन का सामुद्रिक जंतुओं का एक प्रस्तरावशेष (फॉसिल-बेड) लाया। छो कपाला की ऊँचाई समुद्र-तल से १७०००-१८००० फीट के मध्य में होगी। मैंने इन प्रस्तरावशेषों को निरीक्षण के लिये 'जिओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' के अध्यक्ष डाक्टर वेनीप्रसाद जी को दे दिया है। वे परीक्षा करके उसकी रिपोर्ट शीघ्र ही देनेवाले हैं। ये प्रस्तरावशेष उस समय के सीप और घोंघा जातीय जंतुओं के हैं, जब कि कैलास लाखों वर्ष पहले समुद्र के गर्भ में अंतर्निहित था। इनके बारे में यह पता चला है कि अब तक कैलास-पर्वत-माला से (जो आधुनिक ट्रेन्स-हिमालया के अंतर्गत है,) संगृहीत सामुद्रिक जंतुओं के सबसे पहले प्रस्तरावशेष ये ही हैं। यदि ये कुछ विशेष महत्त्व के निकले तो इस वर्ष (१९४३ में) जब मैं कैलास जाऊँगा तो कुछ और भी प्रस्तरावशेषों को लाने का मेरा विचार है।

कैलास पर्वत के पश्चिम होकर बहनेवाली ल्हा छू, पूर्व होकर बहनेवाली झोङ छू, और बीच में होकर बहनेवाली तरछेन छू नामक नदियाँ तिब्बती धर्म-ग्रन्थों में केङमा, रेङमा, और उमा या इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना नाम से, तथा कैलास सहस्रार चक्र के रूप में वर्णित हैं। ये तीनों मिल कर

राक्षस-सरोवर में गिरती हैं।

मानसरोवर की वास्तविक परिधि अधिक-से-अधिक ५४ मील की है। मानसरोवर के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तरी तट क्रम से १६, १०, १३, और १५ मील लंबे हैं। सरोवर की लंबाई व चौड़ाई इस पार से उस पार तक लगभग १३-१४ मील होगी। यह उत्तर में कपाल जैसा चौड़ा और दक्षिण में संकीर्ण है। एकाई कावगूची ने एक बार भी मानसरोवर की परिक्रमा पूरी नहीं की, यद्यपि तिब्बत में तीन वर्ष तक भ्रमण किया। उनके तथा उन्हीं के समान अन्य व्यक्तियों के अनुसार, इसकी परिधि २०० या ८० मील बतायी जाती है। परंतु यह बात नितांत भ्रमपूर्ण और अशुद्ध है।

सरोवर के किनारे पर (१) पश्चिम में गोछुल गोम्पा, (२) वायव्य कोण में च्यू गोम्पा, (३) उत्तर में चेरकिप, (४) लङ्पोना, (५) पोनरी गोम्पा, (६) पूर्व में सेरलुङ गोम्पा, (७) दक्षिण में येर्नगो गोम्पा, और (८) ठुगोल्हो गोम्पा अवस्थित हैं। सभी मठों को देखते हुए परिक्रमा करने से ६४ मील का पूरा चक्कर हो जाता है। शीतकाल में जब सरोवर और उसमें गिरनेवाले नदी-नाले जम जाते हैं तब उनके किनारे-किनारे परिक्रमा की जा सकती है। उस समय या तो वसंत या शरद ऋतु में, जब छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती हैं और बड़ी नदियों में जल कम रह जाता है, जिससे सुगमता से उन्हें लाँघा जा सके, तब तिब्बती लोग परिक्रमा करते हैं। ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में नदी में बाढ़ आने के कारण कोई भी यात्री किनारे से होकर नहीं जा सकता। उत्तर में तो किनारे को छोड़कर बहुत ऊपर होकर जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु में गलती हुई बर्फ के कारण बाढ़ आ जाने से सरोवर में गिरनेवाले सभी नदी-नाले बहुत भयानक और वेगशील हो जाते हैं और बहुधा दोपहर के बाद तो अलंघनीय हो जाते हैं। ऐसे समय यात्री को उसी किनारे पर रुकना पड़ता है और दूसरे दिन जब पानी घटता है तब नदी को पार करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जिस समय भारत से यात्री जाते हैं उस समय मानसरोवर के किनारे पर पूर्व दिशा से डाकुओं के झुंडों के आने की संभावना रहती है; इसलिये ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में कैलास-यात्रा की इच्छा रखनेवाले लोगों को

चाहिये कि वे झुंड बाँधकर बंदूक और अच्छे घोड़ों को साथ लेकर जायँ।

मानसरोवर के चारों ओर चार लिङ या छोरतेन (चैत्य या स्तूप) हैं, जो वहाँ के विख्यात लामाओं के स्मारक हैं और च्यू गोम्पा, लङपोना गोम्पा, सेरलुङ गोम्पा, और ठुगोल्हो गोम्पा में बने हुए हैं। मोमोदुनगु (नैऋत कोण), सेराला (पश्चिम), हवासेनी-मदङ (पूर्व), और रिलजुङ (आग्नेय कोण)—यहाँ पर चार छकछल-गङ हैं।

सरोवर की परिक्रमा चार या पाँच दिनों में सुगमतापूर्वक की जा सकती है। शीतकाल में शीघ्रता से तीन दिन में और अति शीघ्रता से दो दिन में भी परिक्रमा पूरी की जा सकती है। मैंने शीतकाल में मानसरोवर की जमी हुई अवस्था में छः और अन्य ऋतुओं में ग्यारह (कुल १७) परिक्रमाएँ की हैं, जिनमें से कुछ चार दिन में, कुछ तीन दिन में, और एक दो दिन में समाप्त की थी।

७—कैलास-मानसरोवर की चार महानदियों के उद्गम-स्थानों पर नवीन प्रकाश

नदियों के उद्गम-स्थान का निर्णय करते समय यह समस्या सामने खड़ी होती है कि यदि किसी नदी की एक से अधिक प्रधान उपनदियाँ हों तो उनमें से कौन-सी प्रधान मानी जाय? इसके उत्तर में पाँच और प्रश्न उठते हैं—(१) जिस उपनदी को स्थानीय जनता परंपरा से प्रधान नदी मानती आई है, क्या उसको प्रधान नदी मान लिया जाय? (२) जो उपनदी सब से लंबी हो उसको प्रधान मान लिया जाय? (३) जो सब से बड़ी या अधिक जलवाली नदी हो उसको प्रधान मान लिया जाय? (४) जो हिमनदी से निकल रही हो उसको प्रधान मान लिया जाय? या (५) जो उपनदी इन चारों लक्षणों की पूर्ति करती हो उसको प्रधान नदी मानकर उसके सिरे को उद्गम-स्थान निर्धारित किया जाय? कोई यह कहे कि सब कसौटियों को ध्यान में रखकर निर्णय करना चाहिये, तो इन चार नदियों का या हिमालय की अन्य नदियों का उद्गम-स्थान निर्णय करना ही असंभव हो जायगा, क्योंकि कोई भी नदी इन चारों लक्षणों को पूरा नहीं

करती हैं। ऐसी परिस्थिति में एक अन्य प्रश्न भी उठ खड़ा होता है कि किन लक्षण या लक्षणों को प्रधानता देनी चाहिये ? और क्यों ?

यदि नदी की लंबाई को प्राधानता दे दी जाय तो गंगा का उद्गम-स्थान हिमालय में नहीं रहेगा, अपितु मध्यभारत में महू के पास चंबल नदी के सिरे पर होगा; क्योंकि चंवल नदी गंगा की सहायक नदियों में सब से लंबी है। इसका अर्थ यह होगा कि गंगा जैसी हिमालय की विख्यात नदी का उद्गम विंध्याचल में मानना पड़ेगा, जो कि हास्यास्पद है। अधिक जल के प्रमाण से निर्णय करना हो तो गंगा का निकास अलकनंदा का (जो गंगा से दुगुनी बड़ी है) मूल सतोपंथ या माना घाटा में रखना पड़ेगा। इसलिये बहुत दूरदर्शिता के साथ सर्वे ऑफ इंडिया ऑफ़िस ने गंगा का उद्गम-स्थान गोमुख में ही निश्चित किया है, जो परंपरा से चलता आया है।

इसलिये मैंने भी श्री कैलास-मानसरोवर की चार महानदियों का उद्गम-स्थान निर्णय करने में तिब्बती परंपराओं को प्रधानता दी है। कभी कालांतर में इन नदियों के उद्गम का निर्णय करने में कसौटियों के बदलने पर इनके बारे में मेरे अन्वेषण या निर्णय वृथा या विस्फोटित न हो जायँ, इस बात को दृष्टि में रखकर सभी दृष्टिकोणों से (परंपरा, लंबाई, अधिक जल, और हिमनदी की कसौटियों से) इन चार महानदियों के विविध उद्गम-स्थानों पर मैंने स्वयं जाकर जाँच की है।

तिब्बती परंपरा के अनुसार सतलज (लङ्चेन खम्बब्) का उद्गम-स्थान मानसरोवर से ३७ मील पश्चिम में दुलचू गोम्पा के समीपवाले स्रोतों में है। सिंधु नदी (सिंगी खम्बब्) का उद्गम कैलास के उत्तर में और मानसरोवर से ६२ मील की दूरी पर सिंगी खम्बब् नामक स्रोतों में है। ब्रह्मपुत्र नदी (तमचोक खम्बब्) सरोवर के आग्नेय कोण में ६३ मील की दूरी पर चेमायुङ्डुङ नाम की हिमनदियों से निकलती है और करनाली (मप्चा खम्बब्) का निकास मान-सरोवर के वायव्य कोण में ३० मील की दूरी पर मंप्चा चुंगो नामक स्रोतों में है।

यदि जल के परिमाण के विचार से देखा जाय तो सतलज का उद्गम, दारमा-याङ्ती नदी के सिरे पर दारमा घाटा के पास; सिंधु नदी का उद्गम,

गरतोङ छू के सिरे पर या लुङ्ढेप छू के सिरे पर तोंपछ्न घाटे में; ब्रह्मपुत्र का उद्‌गम-स्थान कुबी कङरी हिमनदियों में, और करनाली का निकास लंपिया घाटा के समीप सिद्ध होगा। इस अवस्था में इन चारों नदियों के उद्‌गम-स्थान हिमनदियाँ ही हैं; परंतु तिब्बती परंपरा के अनुसार करनाली को छोड़कर अन्य नदियों का उद्‌गम-स्थान च्युत हो जाता, या बदल जाता है।

यदि लंबाई की दृष्टि से देखा जाय तो सतलज का उद्‌गम टग छुम्पो के सिरे पर कङलुङ कङरी हिमनदियों में, या टग नदी की दक्षिणी उपनदी गंगा के सिरे पर, या समो छुम्पो के सिरे पर, या ल्हा छू के सिरे पर सिद्ध होगा। इसी प्रकार सिंधु नदी का उद्‌गम-स्थान तोंपछेन घाटा के समीप, ब्रह्मपुत्र का चेमायुङ्डुङ में, और करनाली का लंपिया घाटा में होगा। लंबाई के दृष्टि-कोण से सिंधु को छोड़कर अन्य तीनों नदियों के उद्‌गम, परंपरा से आये हुए स्थानों में होंगे; परंतु इन सभी नदियों के उद्‌गम हिमनदियों में ही होंगे।

इन नदियों के उद्‌गम-स्थानों के संबंध में बहुत वर्षों से चर्चा होती चली आती थी। सन् १९०७–८ में डाक्टर स्वेन हेडिन के अन्वेषणों से यह चर्चा समाप्त-सी मान ली गई। उक्त डाक्टर ने उद्‌गम-स्थानों का निर्णय करते हुए ब्रह्म-पुत्र के विषय में जल के परिमाण को महत्त्व देकर, सिंधु के विषय में अन्वेषण करते समय तिब्बत सरकार की रुकावट और समयाभाव के कारण परंपरा को मुख्य मानकर, और सतलज के विषय में लंबाई को प्रधानता देकर संपूर्ण तार्किक, शास्त्रीय, एवम् वैज्ञानिक प्रमाण और नियमों को उल्लंघित करके ठुकरा दिया है। साथ ही वे इस बात का गर्व करते हैं कि "इन नदियों का पूरा अन्वेषण करनेवाला पहला पाश्चात्य और श्वेत व्यक्ति मैं ही हूँ।" परंतु स्वेन हेडिन के निर्णय के अनुसार सतलज का उद्‌गम-स्थान कङलुङ कङरी में, सिंधु का सिंगी खम्बब् के सोतों में, और ब्रह्मपुत्र का कुबी कङरी में होगा। उनका यह निर्णय उक्त परंपरा, जल का परिमाण, और लंबाई इन तीनों कसौटियों में से किसी एक पर भी पूर्ण रूप से खरा नहीं उतरता। उनके लेख या कृतियों में प्रमादवश या अज्ञात रूप से कोई त्रुटि हो गई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। परंतु महान् खेद की बात यह है कि

इन नदियों के उद्गम पर स्वयम् जाकर पहले-पहल पता लगाने का महान् गौरव पाने के यत्न में उन्होंने जान-बूझकर कई बातों को तोड़-मरोड़ दिया और कई बातों को दबा दिया। इनके बारे में जो अपूर्ण और त्रुटि-युक्त निर्णय दिये गए हैं वे स्वेन हेडिन जैसे आजन्म भूगोल-शास्त्रवेत्ता, वैज्ञानिक, तथा अन्वेषक (एक्सप्लोरर) के लिये उचित नहीं जँचते। इसलिये इन नदियों के उद्गम स्थान के पहले पता लगानेवाले वे नहीं कहे जा सकते। उन्होंने स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि मानसरोवर पर तपस्या के लिये गया हुआ एक साधारण संन्यासी, जिसके पास पाश्चात्य वैज्ञानिकों की भाँति आधुनिक साधन संपत्ति किंचित् मात्र भी नहीं है, उनके निर्णयों को ठुकराकर त्रुटिपूर्ण सिद्ध कर देगा!

स्वेन हेडिन के ठीक तीस वर्ष बाद, सन् १९३७ में, मैंने इन चारों नदियों के उद्गम-स्थानों का सभी दृष्टिकोणों—परंपरा, जल का परिमाण, लंबाई और हिमनदियों—से स्वयम् उन स्थानों में जाकर पता लगाया।[1] मेरे इन नदियों के संबंध में किये हुए निर्णय और मानसखंड में किये हुए अन्य अन्वेषणों को सर्वे ऑफ इंडिया ऑफिस ने स्वीकार कर लिया है, और दिसंबर १९४१ के अपने मानचित्रों में भी छाप दिया है।

इन नदियों के संबंध में मेरे लेख और पुस्तक की समालोचना करते हुए 'रॉयल ज्याग्रफिकल सोसाइटी' के सदस्य डाक्टर लांगस्टेफ और एवरेस्ट एक्स-पेडिशन के डा० सोमरवेल ने लिखा है—"पाश्चात्यों की धृष्टता है कि अपने विचार-भावों को दूसरी जातियों पर उनकी परंपरा के विरुद्ध अनुचित रूप से

---

[1] इसके विषय में विशेष जानने की इच्छा रखनेवाले कलकत्ता विश्वविद्यालय से छपे हुए ग्रंथकर्ता के 'एक्स्प्लोरेशन् इन् टिबेट्' नामक ग्रंथ को, देख सकते हैं। ग्रंथकार ब्रह्मपुत्र के उद्गम-स्थान पर १७, १८-६-१९३७ को, सिंधु नदी के उद्गम पर ४-७-१९३७ को, दुलचू गोम्पा पर ३०-८-१९३६ और ६-७-१९४१ को, कङ्लुङ कङरी पर १६-६-१९३७ को, मप्चा-चुंगो पर ९-९-१९२८ और २३-८-१९३६ को, गरतोङ छू के मूल पर १९-९-१९२८ को, और तोपछेन घाटा पर ७-७-१९३७ को गया था।

लादना चाहते हैं। कैलास-मानस के इन चार महानदियों के उद्गमों के संबंध में स्वामी जी के निर्णय से हम पूर्णरूप से सहमत हैं।''

सिंधु नदी की लंबाई १८०० मील, ब्रह्मपुत्र की १६८० मील, सतलज की प्रायः ६०० मील, करनाली की (जो गंगा की उपनदी है) प्रायः ६०० मील, और गंगा की १५१४ मील है। भौगोलिक जटिल वाद-विवादों को छोड़कर, साधारण जनता के लिये सीधी भाषा में यह कहा जा सकता है कि सतलज ही एक ऐसी नदी है जो राक्षसताल के वायव्यकोण से निकलती है।

लीपूलेख से आनेवाली काली नदी नंदाकोट शिखर से आनेवाली सरयू से मिलकर टनकपुर से चलकर शारदा नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। मप्चा-चुंगो से आनेवाली करनाली या मप्चा खम्बब् मानसखंड और नेपाल से उतर कर घाघरा नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। शारदा और घाघरा चौकाघाट के पास मिलकर वहाँ से गंगा में गिरने तक सरयू और घाघरा इन दोनों नामों से पुकारी जाती हैं। सरयू नदी मानसरोवर से निकलती है—ऐसा कितने लोगों का भ्रम-पूर्ण विश्वास है। इसीलिये यहाँ इसका स्पष्टीकरण किया गया है।

हृषीकेश के श्री स्वामी शिवानंद जी अपनी 'ए ट्रिप टू कैलास-मानसरोवर' नामक पुस्तक में लिखते हैं—''ब्रह्मपुत्र मानसरोवर से निकलती है; डिरफुक् गोम्पा के सामने, कैलास-शिखर के उत्तरी जड़ पर, हिमखंडों से सिंधु नदी निकलती है, और सतलज नदी गौरीकुंड से निकलकर कैलास के पूर्व में बहती है।''

श्री पुरोहित स्वामी 'दी होली मौन्टेन' नामक पुस्तक में लिखते हैं—''सिंधु नदी मानसरोवर से निकलकर कैलास के दक्षिण पाद-तल पर पश्चिम दिशा में बहती है। कैलास के ईशान कोण में १९००० फीट की ऊँचाई पर गौरीकुंड नामक ताल है, जिसके पूर्व भाग से निकलकर ब्रह्मपुत्र, कैलास-शिखर की तलहटी के किनारे-किनारे बहती है।''

ऐसा ही 'डायरी ऑफ ए पिलग्रिमेज टू लेक मानसरोवर एंड मौंट कैलास विद एच. एच. दी महाराजा ऑफ मैसूर इन १९३१' नामक पुस्तक में श्री रंगाचार लिखते हैं—''मानसरोवर के पूर्व से ब्रह्मपुत्र और पश्चिम से

सतलज या सिंधु निकलती है।"

'कैलास का दर्शन' नामक पुस्तक में श्री रामशरण विद्यार्थी लिखते हैं—"कैलास के चारों ओर से चार महानदियाँ निकलती हैं। इसके दक्षिण से सिंध, पश्चिम से लाच्छू, उत्तर से सतलज, और पूर्व से गुंग छू नदी निकलती हैं; इनमें से दो नदियाँ तिब्बती हैं और दो भारत में प्रवेश करती हैं। यहाँ हम सतलज नदी के तट पर पहुँचे। इसका निकास गौरीकुंड के समीप में ही है।" स्पष्ट मालूम पड़ता है कि रामशरण जी ने इन अशुद्धियों का अनुकरण ऊपर उल्लिखित पुस्तकों से ही किया है।

यद्यपि पूर्वोक्त भ्रमात्मक वार्ताओं तथा कल्पनाओं का उत्तर देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि उनके लेखक भूगोल-शास्त्रवेत्ता नहीं हैं, तथापि कई सज्जन उक्त पुस्तकों को पढ़कर अब भी इन नदियों के उद्‌गमों के बारे में पत्र द्वारा और स्वयम् मिलकर मुझसे बहुत वादविवाद करते हैं। इसलिये जनता के प्रश्नों के उत्तर के रूप में उक्त वार्ताओं का संक्षेप विवरण दे देना मैं उचित समझता हूँ, जिससे भविष्य में बहुतों को व्यक्तिगत रूप से उत्तर देने की आवश्यकता न पड़े। कैलास-मानसखंड की महानदियों के बारे में पूर्वोक्त सारी वार्ताएँ त्रुटि-पूर्ण और भ्रमजनक हैं। वायव्य कोण में गङ्गा छू के अतिरिक्त मानसरोवर से अन्य कोई नदी नहीं निकलती। कैलास-शिखर की उत्तरी तलहटी से जो छोटी-सी नदी निकलती है, उसका नाम कङजम छू है। यह डिरफुक् गोम्पा के सामने ल्हा छू में जाकर गिरती है। जिस नदी को सतलज के नाम से इन लोगों ने पुकारा है वह झोङ छू है। यह आगे चलकर ल्हा छू में मिलती है। कैलास के दक्षिण में सिंधु का होना केवल काल्पनिक है। कैलास की दक्षिण दिशा से तरछेन छू निकलती है और झोङ छू में जाकर मिलती है। पूर्वोक्त लेखकों ने जिस नदी को उत्तर में सतलज और पूर्व में गुंग छू बतलाया है वे वास्तव में झोङ-छू है। पश्चिम की लाच्छू, ल्हा छू है। झोङ छू और तरछेन छू मिल कर ल्हा छू में गिरती हैं। ल्हा छू राक्षसताल में जाकर गिरती है।

यह एक शोचनीय विषय है कि इस हिमालय के महान् प्राकृतिक सौंदर्य का दर्शन कर आनंदित होने या इस दुर्भेद्य साम्राज्य में अन्वेषण करने के

लिये देश-देशांतरों से कितने साधारण यात्री, वैज्ञानिक, अन्वेषक, या पर्वता-रोहण करनेवाले आते हैं। किंतु भारत-संतान स्थाणु की भाँति जड़भाव से बैठी है। जिज्ञासा करने पर इस जड़भाव के सैकड़ों कारण उपस्थित कर दिए जाते हैं। हमारे देशवासी प्रायः सभी कार्यों के लिये राजकीय दासता की दुहाई दे-देकर संतोष कर लेते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि एवरेस्ट के उत्तुंग शिखर पर आरोहण करने के लिये, नंदादेवी, सतोपंथ, या त्रिशूल की चोटियों पर स्थित होकर वास्तविक आनंद का अनुभव करने के लिये, बालतरो की हिमनदी का अन्वेषण करने के लिये, सिंधु या ब्रह्मपुत्र के उद्गम-स्थानों का निर्णय करने के लिये, या मानसरोवर तथा राक्षसताल के ऊपर नौकाविहार में आनंद लूटकर उसकी अतल गहराई का पता लगाने के लिये भले ही कोई अँगरेज, अमेरिका निवासी, जापानी, जर्मन, स्वीडेन-निवासी, स्वीटज़रलैंड या किसी अन्य देश के यात्री सात समुद्र और तेरह नदियों को पार कर यहाँ आते हों, पर यहाँ के निवासियों के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

पूर्वकाल में अवस्था ऐसी नहीं थी। जब संसार के अन्य देशवासी, पर्वत और कंदराओं से भय खाते थे और प्रकृति नटी की सुंदरता का आनंद उपभोग करना भी नहीं जानते थे, उस समय अर्थात् आज से सहस्रों वर्ष पहले, हमारे पूर्वजों ने सारे हिमालय का अन्वेषण कर डाला था। वे उसके कोने कोने पर पहुँच चुके थे। एकांत में रहकर प्रकृति नटी से मौन-वार्तालाप किया करते थे। उन्होंने सुंदर से सुंदर स्थानों का पता लगाया और उनके सौंदर्य तथा शोभा का पूरा आस्वादन किया। इसका प्रमाण यही है कि आजकल के दुर्भेद्य और दुर्गम पर्वत, नदी, नाले, और घाटों का नामकरण-संस्कार तक वे कभी कर चुके थे। एक शब्द में, उन्होंने जीवन के सार-रूप लौकिक और पारलौकिक रचनाओं—वेद आदि ग्रंथों—की प्रेरणा पर्वतों से ही पाई। पर हम लोग आजकल इतने गिर गए हैं कि कोई किसी को 'पहाड़ी' कहे तो अप-मान-सा समझते हैं।

आठवीं और दसवीं शताब्दी में महापंडित आचार्य शांतरक्षित और दीपंकर श्रीज्ञान हिमाच्छादित पर्वत-पंक्तियों के दुर्गम घाटों को पार कर १०० या

६३ वर्ष की अवस्था में भी तिब्बत देश में बौद्धधर्म का प्रचार करते थे। इनके अतिरिक्त प्राचीन काल के सैकड़ों पंडित धर्मप्रचारार्थ दुर्गम हिमालय को लाँघकर तिब्बत में भी जाते थे; पर आज उसी उत्साही देश में लोग अवसन्न हैं—मूक हैं! भारत में भी लक्ष्मी के लाड़ले सेठ और राजा महाराजाओं की कमी नहीं है। यहाँ भी विद्वान् हैं, संस्कार-सम्पन्न व्यक्ति हैं, वैज्ञानिक हैं, विख्यात विश्वविद्यालय हैं; पर दुःख की बात है कि हिमालय में भ्रमण और अन्वेषण की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। यहाँ पर न रुपये का अभाव है और न साधन-सामग्री की ही न्यूनता है। मेरी सम्मति में इसका एक ही कारण हो सकता है, वह यह कि भारतीयों में महान् तूष्णीभाव छाया हुआ है—तटस्थता है, आलस्य है। इन दोषों को त्याग देने पर रुपया अपने आप आ जाता है, सहायक अनायास मिल जाते हैं और प्रकृति नटी अपने सुपुत्र के भव्य भाल पर विजयश्री का तिलक लगाकर उसे कृतार्थ कर देती है!

८—मानस और राक्षसताल, सह-सरोवर

मानसरोवर के पश्चिम में १½ से लेकर ६ मील की दूरी पर रावणह्रद है, जो आजकल रक्कसताल, राक्षसताल, राक्षससरोवर, और रावणसरोवर के नामों से प्रसिद्ध है। मानसखंड के चीनी तथा पाश्चात्य मानचित्रों में भी दो तीन सौ वर्ष पहले तक इसका नाम रावणह्रद ही पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि 'राक्षसताल' नाम बहुत अर्वाचीन है। तिब्बती लोग इसे लङ्क् छो कहते हैं। इस सरोवर के किनारे पर लंकापति रावण ने कैलासाधिदेव शिव की तपस्या की थी। मानसरोवर और राक्षसताल कभी एक ही ताल रहे होंगे। उन दोनों को विभक्त करनेवाली पर्वतश्रेणी बाद के भूगर्भ के आंदोलनों से निकल आई है। मानसरोवर का अधिकांश जल वायव्य कोण में स्थित गङ्गा छू नामक एक नाले से राक्षस-सरोवर में प्रवाहित होता है।

कई वर्षों के यत्न के पश्चात् रावणह्रद की पूरी परिक्रमा मैं गतवर्ष अक्तूबर मास में (१३ से १७. १०. १९४२) कर सका। पथ-प्रदर्शक के न मिलने और ऋतु अनुकूल न होने के कारण परिक्रमा असावधानी और शीघ्रता

से करनी पड़ी। आँधी की भाँति प्रचंड वायु चल रही थी, मार्ग दुर्गम और पथरीला था। रात को इतनी शीत पड़ती थी कि तापमान हिमांक से १६ डिग्री (फारिनहाइट) नीचे रहता था। तंबू के भीतर बालटी में रखा हुआ जल एकदम जम जाता था। परंतु रावणहृद का प्राकृतिक सौंदर्य भी निराला था। एक-एक मोड़ पर एक-एक नया दृश्य था। प्रायः ताल में लहरें इस प्रकार उछलकर टक्कर खा रही थीं कि फेन से चारों ओर सफेद ही सफेद दीख रहा था। थोड़ी दूर आगे चलकर एक मोड़ पर बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। जल ऐसा निर्मल और निश्चल था कि नीचे का एक-एक पत्थर और छोटी-छोटी मछलियाँ स्पष्ट देखने में आ रही थीं। किसी और कोने में सैकड़ों लाल बतखें पानी में गोते लगा-लगा कर निर्भयतापूर्वक तैर रही थीं। एक मोड़ पर दक्षिण दिशा में अवस्थित मांधाता सामने हो जाता था। थोड़ी ही दूर पर एक दूसरी खाड़ी में सारा जल काँच जैसा जम गया था और उत्तर का कैलास प्रतिबिंबित हो रहा था। यात्रा में यद्यपि बहुत कष्ट हुआ, परंतु कष्ट से अधिक आनंद भी आया।

रावणहृद की परिधि ७७ मील है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर के तट क्रम से १८, २२, २८½, ८½ मील लंबे हैं। फिर से सावधानी के साथ परिक्रमा करने से संभव है कि ये अंक कुछ घट जायँ। उत्तर से दक्षिण की लंबाई लगभग १७ मील और पूर्व से पश्चिम की चौड़ाई १३ मील होगी। पश्चिमी किनारे पर एक गाँव है, जहाँ एक ही घर है।

वायव्य कोण में तट से २½ मील की दूरी पर चार संकीर्ण घाटियों के मेल में एक गंभीर और रमणीक स्थान में छेपगे नामक गोम्पा है। बिना मंजिल का एक साधारण मकान है। इसके चारों ओर के पहाड़ों पर मणि-दीवालें[1] और कई छोरतेन हैं। यह पहले तकलाकोट के सिबिलिङ गोम्पा की एक शाखा थी, परंतु आजकल यह मशङ गोम्पा की शाखा हो गई है। इसके चारों

---

[1]वे दीवालें जिन पर मणि-पत्थर रखे रहते हैं। मणि-पत्थर एक ऐसा पत्थर है जिस पर मणि-मंत्र खुदा रहता है।

ओर एक हजार फ़ीट से अधिक ऊँचाई के पहाड़ की दीवालें हैं और गोम्पा घाटी में बना हुआ है। पास ही दो तीन स्वच्छ जल के सुंदर स्रोत विद्यमान हैं। इनसे निकला हुआ जल एक छोटे-से नाले के रूप में नीचे बहता है। अनेक भिक्षु-भिक्षुणियाँ और गृहस्थ लोग पहाड़ की दीवालों पर ऊँची-ऊँची गुफाओं में मकान बनाकर रहते हैं। छेपगे गोम्पा लालटोपी संप्रदायवालों का है। मशङ्ग गोम्पा के लामा की जन्मभूमि यहीं है। इस समय उनकी आयु ६ या ७ वर्ष की है। वे अवतारी लामा हैं और सन् १९४१ में गद्दी पर बैठाये गए। मशङ्ग गोम्पा की गद्दी पर बैठनेवाले दूसरे लामा यही हैं। इनका भी एक मकान गोम्पा के समीपवर्ती पहाड़ की गुफा में विद्यमान है। सन् १९४१ में जब कज़ाकी लुटेरों ने पश्चिमी तिब्बत पर चढ़ाई की तब छेपगे गोम्पावालों ने ही उनकी अगुआ एक स्त्री को मार डाला और शेष लुटेरों को भारत की सीमा में प्रवेश करने से रोका।

स्वेन हेडिन ने राक्षसताल में भी नौका-यात्रा की थी और लाचातो द्वीप में गए थे। पर झंझावात के कारण पूर्ण रूप से राक्षसताल की गहराई का मानचित्र तैयार नहीं कर सके।

गतवर्ष परिक्रमा करते समय मैंने राक्षसताल के चारों ओर से पत्थरों के नमूने लाकर हिंदू-विश्वविद्यालय के भूगर्भशास्त्र-विभाग के अध्यक्ष डा० राजनाथजी को अवलोकनार्थ दिए थे। ताल के पूर्वी तट पर भी अर्दङ फुक से एक मील वायव्य कोण में मानसरोवर की भाँति चेमानेङ्गा नामक एक रेत मिलती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें हरे कणों का आधिक्य है।

राक्षसताल के वायव्य कोण से सतलज नदी निकलती है। जहाँ से वह निकलती है, वहाँ इतनी गहराई थी कि मैं १५-१०-१९४२ को नदी पार करने में असमर्थ रहा। पार करने के लिये मुझे एक मील नीचे जाना पड़ा। नदी का बहाव लेजनडक तक सन् १९३५ में भी मैंने स्वयं देखा था। सतलज नदी जहाँ से निकलती है, उसके पास ही कुछ ऐसे छोटे-छोटे स्रोत हैं, जिनका जल राक्षसताल में गिरता है। इसी कारण कुछ लोग इस भ्रम में पड़ गए कि राक्षसताल से जल बाहर नहीं निकलता। इसके किनारे-किनारे दोनों ओर दुलचू गोम्पा तक दलदल प्रदेश है।

६—राक्षसताल के द्वीप

राक्षसताल में लाचातो और तोप्सेरमा (दोप्सेरमा) नामक दो द्वीप हैं। इन्हें १६३७ की १५ और १६ अप्रैल को, जब समस्त ताल बर्फ से ढका हुआ था, मैं देखने गया था। याक पर चढ़, जमे हुए राक्षसताल के ऊपर होकर पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तट तक मैं गया था। लाचातो राक्षसताल से दक्षिणी तट के एक प्रायद्वीप की ओर अपनी ग्रीवा को बढ़ाये हुए कछुए के आकार का एक पहाड़ी टापू है। पहाड़ का पत्थर कुछ नीले रंग का है। देखने में यह 'पेरीडोटाइट' मालूम पड़ता है, जो धीरे-धीरे 'सर्पेन्टाइन' (ज़हरमोरा) के रूप में बदल रहा है। इसी प्रकार के पत्थर कैलास में जुंठुलफुक् गोम्पा से चार मील नीचे और गुरला ला के नीचे भी पाये जाते हैं। इस की ग्रीवा और प्रायद्वीप के सिरे के मध्य की दूरी आधे मील की होगी। टापू की परिधि लगभग एक मील की है। इसके पहाड़ की चोटी पर एक विशेष प्रकार के सफेद पत्थरों का लपचे (पत्थरों का ढेर) और मणि-पत्थर हैं। पहाड़ के पश्चिमी और पूर्वी भागों में हंसों के अंडे जमा करनेवालों ने पत्थरों की दीवालों के घेरे डाल रखे हैं। द्वीप के पूर्वी भाग में थोड़ी-सी समतल पथरीली भूमि पर हंस बहुत रहते हैं। अप्रैल के अंतिम सप्ताह में जब हंस अंडे देते हैं, तो करदुरु के गोबा (प्रधान) के नौकर अंडे जमा करने के लिये जाया करते हैं।

आज से बहुत वर्ष पहले राक्षसताल में घटी हुई दो घटनाओं का हाल एक बूढ़े तिब्बती ने मुझे सुनाया था। एक रात को जब अंडे जमा करनेवाले दो तिब्बती लाचातो पर थे, तो अचानक, राक्षसताल की बर्फ फट जाने से टापू किनारे से अलग हो गया। दोनों मनुष्य टापू में ही रह गए और उन्हें अपने पास के कुछ सामान, खरगोश के मांस, और कुछ अंडों से ही दूसरे वर्ष के शीतकाल में बर्फ जमने के समय तक निर्वाह करना पड़ा। भोजन की कमी के कारण वे बहुत दुबले-पतले हो गए और दूसरे साल जब बाहर निकले तो उनमें से एक दुर्बलता के कारण कुछ ही दिनों में मर गया। परंतु किसी को यह नहीं सूझी कि एक छोटी-सी चमड़े की नाव या लड़कियों की तख्ती बना

कर उन बेचारों को वहाँ से बाहर ले आते। ऐसे ही दूसरी बार वसंत के प्रारंभ में, बोझ से लदा हुआ एक याक तालाब को पार करते समय बर्फ के टूट जाने से बोझ के साथ बर्फ के नीचे तालाब में डूब गया।

लाचातो के समान तोप्सेरमा भी एक पर्वतीय टापू है, पर यह उससे बहुत बड़ा है। इस टापू का दक्षिणी भाग तोनक (पत्थर—काला) के नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि वहाँ का पहाड़ काला है। यह टापू पूर्व से पश्चिम की ओर एक मील और उत्तर से दक्षिण की ओर पौन मील लंबा है। पहाड़ के पूर्वी सिरे पर पक्की दीवाल के मकान के खंडहर हैं। कहा जाता है कि एक खंपा लामा ने इसमें सात वर्ष तक निवास किया था। वे शीतकाल में बर्फ जमने के बाद द्वीप से बाहर आकर वर्ष भर की लकड़ी और खाने-पीने का सामान आदि ले जाया करते थे। उस द्वीप के पर्यवेक्षण के स्मारक के रूप में मैं इन टूटी दीवालों में से चेनरेसी (अवलोकितेश्वर) की छोटी-सी मूर्ति लाया था, जो इस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष संग्रहालय में रखी गई है। तिब्बतियों को छोड़ इन पंक्तियों का लेखक ही ऐसा पहला व्यक्ति है, जो राक्षसताल के इन टापुओं के पहाड़ों की चोटियों पर खड़ा हुआ है। इन खंडहरों के नीचे के मैदान में दीवालों के घेरे हैं। यह द्वीप शुङ्वा के गोबा के अधिकार में है। जब लेखक यहाँ गया था तो कोई भी जलपक्षी यहाँ नहीं था।

स्वेन हेडिन के और गवर्नमेन्ट ऑफ़ इंडिया सर्वे के मानचित्रों में तीन टापुओं को दिखलाया गया है, पर उनमें से दो के ही नाम दिये गए हैं। तीसरा टापू, जिसका नाम नहीं दिया गया है, और तोप्सेरमा—ये दो स्थान टूटी लकीरों द्वारा दिखलाये गए हैं। अपने पर्यवेक्षण और अन्वेषण से लेखक ने राक्षसताल में दो ही टापुओं को पाया। राक्षसताल प्रांत के शुङ्बा के गोबा ने, जिनके अधिकार में तोप्सेरमा का टापू है, टापू से तीन मील की दूरी पर राक्षसताल के पश्चिमी किनारे पर १९३० में अपना मकान बनवाया है। उनका भी कहना है कि राक्षसताल में दो ही टापू हैं। सन् १९३८ में तकलाकोट के सिंबिलिङ मठ के एक भूतपूर्व लामा द्वारा चित्रित कैलास-मानसरोवर का एक चित्रपट हमें प्राप्त हुआ। राक्षसताल के पश्चिमी किनारे

पर छेपगो नाम से सिंबिलिङ मठ की एक शाखा है। इसलिये उक्त लामा को राक्षसताल के संबंध में विश्वस्त ज्ञान हुआ होगा। उन्होंने अपने चित्र में राक्षस-ताल में केवल दो टापुओं को चित्रित किया है। एक बात और है; जिस समय स्वेन हेडिन राक्षसताल की परिक्रमा कर रहे थे उस समय उनके साथ तिब्बती मार्गदर्शक भी थे। यदि मानसरोवर में तीसरा टापू रहा होता, तो वे लोग उन्हें अवश्य बता देते। इसलिये यह स्पष्ट है कि सर्वेवालों, और स्वेन हेडिन के मानचित्र तीसरे द्वीप के अस्तित्व और तोप्सेरमा की ठीक स्थिति के संबंध में संदेहास्पद हैं। इतने संदेहास्पद होते हुए भी दोनों मानचित्रों में तीसरा टापू दिया गया है। इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि स्वयं स्वेन हेडिन को इन टापुओं के संबंध में पक्का और विश्वस्त ज्ञान नहीं था।

"ये दोनों टापू सरोवर के नैऋत्य कोण से सुगमतापूर्वक दिखलाई पड़ते हैं, परंतु इस बात का निर्णय कठिनाई से किया जा सकता है कि ये यथार्थ में टापू हैं या किसी पहाड़ के निकले हुए भाग। संभवतः यहाँ तीन टापू हैं। सब से बड़े का नाम डोप्सेरमा है, यद्यपि कुछ अन्य तिब्बती लोग इसे डोप्सर भी कहते हैं।"[1]

गत वर्ष मैंने केवल इन द्वीपों का निर्णय करने के लिये किनारे-किनारे चलकर ताल की पूरी परिक्रमा की, परंतु वहाँ दो ही टापू देखने में आए। यही मेरा अंतिम निर्णय है। इतना अवश्य कहूँगा कि सरोवर के मोड़ और उसकी बनावट ऐसी है कि दूर से देखने पर या किनारे-किनारे चलकर भी ध्यानपूर्वक न देखने से कई टापुओं का भ्रम हो जाता है। इसीलिये मानसरोवर प्रांत के कई लोगों ने भी मुझे बताया कि राक्षसताल में चार-पाँच टापू हैं। परिक्रमा में इन टापुओं के पास से जाते समय मुझे ऐसी उमंग आती थी कि उड़कर एकदम उनपर जा बैठूँ। सोचता कि यदि नाव पर बैठकर इन पर सैर की जाती तो कैसा आनंद आता।

---

[1] डा० स्वेन हेडिन, 'सदर्न टिबेट' खंड २, पृ० १६७।

१०—गङ्गा छू

मानसरोवर और राक्षसताल को मिलानेवाली नदी या नाला का नाम गङ्गा छू है। यह तिब्बती नाम है। राक्षसताल और गङ्गा छू के बारे में एक तिब्बती पौराणिक गाथा इस प्रकार है—"पूर्वकाल में राक्षसों का निवास-स्थान होने के कारण राक्षससरोवर का जल कोई नहीं पीता था। एक समय मानसरोवर की दो सुनहली मछलियाँ आपस में लड़कर एक दूसरे का पीछा करती हुई राक्षसताल में जा पड़ीं। उनके जानेवाले मार्ग का ही नाम गङ्गा छू है। उसी समय से मानसरोवर का जल राक्षससरोवर में जाने लगा और तभी से वह पवित्र माना जाने लगा और लोग उसका जल पीने लगे।"

जब मानसरोवर का पानी बढ़ जाता है तब गङ्गा छू में बहकर राक्षसताल में जाता है, न कि राक्षसताल से मानसरोवर में। प्रायः जुलाई से लेकर अक्टूबर तक इसमें जब पानी का बहाव रहता है, तब यह ४० से लेकर १०० फीट तक चौड़ा और २ से ४ फीट तक यह गहरा रहता है। इसकी गति टेढ़ी-मेढ़ी है, जिसकी लंबाई ६ मील है। मैंने इसके दक्षिणी तट पर किनारे-किनारे चलकर राक्षसताल से लेकर मानसरोवर तक १४.४.१९३७ को जाँच की थी। मैं २६ बार भिन्न-भिन्न ऋतुओं एवम् भिन्न-भिन्न स्थानों से गङ्गा छू के आर-पार जा चुका हूँ। प्रायः सभी समय और प्रत्येक वर्ष इसमें जल मौजूद मिला। कभी-कभी जब सरोवर में पानी की सतह नीची हो जाती है तब यह सूख भी जाता है और कभी-कभी इस नाले में प्रारम्भ में सौ गज तक सूख जाने पर भी आगे चलकर पानी बहने लगता है, क्योंकि इसमें सरोवर के नीचे ही नीचे पानी आता रहता है। शीतकाल में इसका प्रवाह बंद हो जाता है या जम जाता है। यदि किसी वर्ष अनावृष्टि से सरोवर में जल की सतह बहुत गिर जाय तो संभव है कि गङ्गा छू में पानी का बहाव बिलकुल बंद हो जाय। १५ वर्षों में (सन् १९२८ से लेकर १९४२ तक) नौ वर्ष तो मैंने स्वयम् गङ्गा छू में पानी का बहाव जारी देखा; शेष ६ वर्षों के बारे में भी प्रतिवर्ष कैलास में व्यापार के लिये जानेवाले भोटियों से पूछ-ताछ की, पता

चला कि उन छः वर्षों में भी बहाव जारी ही रहा। दारमा के कई बूढ़े भोटिये व्यापारियों से भी सन् १९२८ से पहले के वर्षों के बारे में पूछा था; परंतु संयोग से कोई ऐसा नहीं था जो यह कह सके कि अमुक वर्ष में गङ्गा छू पूरा सूख गया हो।

मानसरोवर का पानी बढ़ने और गङ्गा छू से पानी राक्षसताल में बहने का कारण वर्षा ही नहीं है; विशेष गर्मी के कारण बर्फ का गलना भी है। मानसरोवर से जल बढ़कर गङ्गा छू द्वारा राक्षसताल में जानेवाले जल के प्रवाह से, राक्षसताल से सतलज में जानेवाला जल-प्रवाह संवंधित है।

श्री वल्लभदास तुलसीदास भाटिया नामक एक सज्जन, जो सन् १९३१ में कैलास यात्रा को गए थे, लिखते हैं—"राक्षसताल का जल नीचे ही नीचे होकर अलकनंदा के उद्गम पर जाता है।" अलकनंदा का उद्गम-स्थान चाहे सत्यपथ में मानें या माना घाटा में मानें, समुद्रतल से १५००० फीट से अधिक ऊँचाई पर है और राक्षसताल १४९०० फीट की ऊँचाई पर। अब पाठकगण स्वयं सोच सकते हैं कि राक्षसताल का जल अलकनंदा के उद्गम पर जा सकता है या नहीं। मानसरोवर की कई परिक्रमाएँ करने के अनंतर जाँच करने पर यह निश्चित हुआ कि मानसरोवर से बाहर जानेवाला नाला गङ्गा छू को छोड़कर और कोई नहीं है; अन्य सभी नदी-नाले इसी में गिर रहे हैं। इसलिये मानसरोवर की एक बार भी बिना परिक्रमा किये हुए व्यक्तियों की यह उक्ति कि "ब्रह्मपुत्र और सिंधु नदी मानसरोवर से निकलती हैं," ठीक उसी प्रकार मिथ्या और निराधार है, जैसे यह धारणा कि सिंधु कैलास के उत्तर या दक्षिण तल से निकलकर उसके पश्चिम या दक्षिण की दिशा में बहती है, या सतलज गौरीकुंड से निकलकर कैलास के पूर्व होकर बहती है।

गङ्गा छू में जल के बहाव का विवरण

क्रम संख्या	पार करने की तिथि	गहराई अंगुलों में	बहाव कैसा था	पार करने का स्थान	मानसरोवर से बहाव आरंभ है या नहीं	वर्षा ऋतु कैसी
१	४·६·१६२८	४२	बहुत वेग	सरोवर से १०० गज पर	है	अनावृष्टि
२	२१·८·३५	३४	मंद वेग	राक्षस से दो मील पर	,,	साधारण
३	५·६·३६	२७	मध्य वेग	सरोवर से ३ फर्लांग पर	,,	,,
४	२८·१·३७	१८ अंगुल		मानसरोवर से		
५	२·२·३७	जल का		लेकर ½ मील		
६	६·२·३७	जमा हुआ		नीचे तक अलग-		
७	१३·३·३७	बर्फ		अलग स्थान		
८	१८·३·३७					
६	१४·४·३७	६ से २४	मद	सारा गङ्गा छू	,,	
१०	३०·४·३७	६	,,	गर्म सोतों के पास	,,	
११	२०·५·३७	७	,,	,,	,,	

१२	२६.६.३७	१०	मंद	गर्म सोतों के पास	है	
१३	१२.७.३७	१०	,,	,,	साधारण	
१४	२७.७.३७	१६	मध्य वेग	,,	,,	
१५	२०.८.३८	{ ३६ २१	वेग ,,	{ मानस से १०० गज मानस से ½ मील	,, ,,	अतिवृष्टि
१६	२६.८.३८	{ ४२ २७	बहुत वेग ,,	{ मानस से १०० गज ,, ½ मील	,, ,,	,,
१७	२०.८.३६	२०	मंद वेग	राक्षस से २ मील	,,	,,
१८	२२.८.४०	६	मंद	गर्म कुंड के पास	,,	,,
१९	२६.६.४०	६—९	,,	सरोवर के पास	,,	अनावृष्टि
२०	१.१०.४०	६	,,	सरोवर से १०० गज	,,	,,
२१	१३.७.४१	६	,,	गर्म कुंड के पास	सरोवर से १०० गज बहाव नहीं है	,,
२२	३१.७.४१	१५	,,	मानस से १ मील	है	साधारण
२३	५.८.४१	२०	मध्य वेग	,,	,,	,,
२४	१२.८.४२	१२	,,	गर्म कुंड	,,	,,
२५	१०.६.४२	१२	,,	,,	,,	अति वृष्टि
२६	१८.१०.४२	१३	,,	सरोवर से १० गज	,,	,,

११—गङ्गा छू-गंगा-सतलज भ्रम

कई पीढ़ियों से गंगा और सतलज के संबंध में बहुत-से भ्रम जनता में प्रचलित हैं। ये प्रायः दो प्रकार के हैं। स्वेन हेडिन के पहले, अर्थात् सन् १६०७ से पहले, बहुत-से पाश्चात्य और प्राच्य भूगोल-शास्त्री, सर्वेवाले, अन्वेषक, एवम् यात्री इस भ्रम में थे कि गगा और सतलज मानसरोवर और राक्षसताल से निकलती हैं। कुछ लोगों ने गंगा को सतलज या सतलज को गंगा मान लिया था। कुछ एक को दूसरे की सहायक नदी मान बैठे थे। हिंदू पुराणों में यह कहा गया है कि गंगा कैलास-शिखर से उतरती है। इसब्रैंट्स आईड्स को सन् १७०४ में चीन की राजधानी पेकिंग में टिके हुए जेसुइट पादरियों से ज्ञात हुआ था कि गंगा का उद्गम स्थान मानसरोवर और राक्षसताल में ही है। यह समाचार उन पादरियों को चीनियों से मिला था। डेसीडेरी (सन् १७१५) ने लिखा है कि गंगा नदी कैलास और मानसरोवर से निकलती है। पादरी गौबिल (सन् १७२६) कहते हैं कि गंगा की तीन सहायक नदियाँ मानसरोवर में गिरती हैं। डी० एन-विल (सन् १७३५) लङ्चेन खम्बब् (सतलज) और गंगा को एक मान लेते हैं। पादरी जोसेफ टिफेनथलेर (सन् १७६५?) गंगा और सतलज को एक कर देते हैं। पंडित पूर्णगिरि जी, जो बोगल और टर्नर के साथ तिब्बत गए थे (सन् १७७३), लिखते हैं कि गगा कैलास से निकलकर मानसरोवर में प्रवेश करके फिर बाहर बहती है। मेजर जे० रेन्नल (सन् १७८२) कहते हैं कि गंगा मानसरोवर से निकलती है। केप्टेन एफ० विलफोर्ड (सन् १८००) लिखते हैं कि वास्तव में मानसरोवर से निकलनेवाली गंगा ही एक मात्र नदी है। अंततः लेफ्टिनेंट वेब् ने (सन् १८०८) यह पता लगा या कि गंगा का वास्तविक उद्गम गोमुख में है। इस पर भी वेब्बर (सन् १८८६) गंगा के उदगम-स्थान को गुरला-मांधाता पहाड़ के दक्षिण पार्श्व में ही मान बैठे। जापानी बौद्ध भिक्षु एकाई कावगूची ने, जिन्होंने १८६६-१६०३ में भारत और तिब्बत में यात्रा की थी, मानसरोवर के आग्नेय कोण में बीस मील की दूरी पर स्थित छूमिक-थुङ्टोल नामक स्रोत से 'गंगा जी का पवित्र जल' पान किया था। उन्होंने सतलज को गंगा की सहायक नदी मान लिया है। यहाँ पर मैं उन बहुत-से धार्मिक तीर्थयात्रियों और महात्माओं के

नामों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझता, जिनका अब भी विश्वास है कि पवित्र गंगा का उद्गम-स्थान मानसरोवर ही में है।

अब तक स्वेन हेडिन भी इसे संतोषजनक रीति से नहीं बता सके कि बड़े-बड़े अन्वेषकों और लेखकों से लगातार इस प्रकार की भयंकर भूलें क्यों होती आई हैं। इसमें कोई ऐसा कारण तो अवश्य होना चाहिये जिसने अब तक लगातार इतने व्यक्तियों को भ्रम में डालकर उनके द्वारा ऐसा मिथ्या वर्णन करवाया। आज भी बहुत-से पूर्वाचारपरायण एवम् पाश्चात्य विद्या के शिक्षित भारतीय, मानसरोवर से राक्षसताल में गिरनेवाले 'गङ्गा-छू' को गंगा नदी से मिलाकर गड़बड़ी उत्पन्न कर देते हैं, क्योंकि गंगा शब्द दोनों में समान है; और मिथ्या धारणा में पड़कर ऐसा कहते हैं कि सिंधु, ब्रह्मपुत्र, सरयू, और सतलज की भाँति श्री गंगा जी भी मानसरोवर से निकलती हैं। स्वेन हेडिन ने यह बताया है कि गंगा मानसरोवर से नहीं निकलती, पर वह इतने व्यक्तियों द्वारा हुई भूलों का कोई मूल कारण नहीं बता सके। इसलिये यह समस्या हमारे हल करने के समय तक बिना सुलझी जैसी की तैसी ही बनी रह गई।

इसका समाधान बहुत ही सरल है। हाँ, यदि किसी को कङरी-करछक नामक तिब्बती पुराण देखने का अवसर प्राप्त हुआ हो, तो उसके अनुसार लङ्चेन खम्बब् या सतलज का भारतीय नाम गंगा है। तिब्बती लोग हरिद्वार को छोमो गंगा या छमो गंगा कहते हैं, जिनके अर्थ क्रमशः उनकी भाषा में गंगा माई और बड़ी नदी हैं। कैलास-पुराण में ऐसा वर्णन आया है कि सतलज का उद्गम-स्थान मानसरोवर के पश्चिम में है, और वह तिब्बत और कुछ दूर तक भारत में पश्चिम की ओर प्रवाहित होकर, पूर्व की ओर मुड़कर, बुद्धगया से उत्तर होते हुए, पूर्वी समुद्र में जाकर गिरती है। इन तीनों कारणों के आधार पर तिब्बती लोग गंगा छू और परिणामतः सतलज को हरिद्वार के पास की गंगा ही मानते हैं; या यह भी संभव है कि इस मिथ्या और उलझन पैदा करनेवाली समझ (परिज्ञान) के आधार पर सतलज के संबंध में पूर्वोक्त वर्णन कङरी-करछक में लिखा गया हो। जो हो, इसमें नाम और भावों की अशुद्धि और गड़बड़ी है, जिसमें संशोधन की आवश्यकता है।

	तिब्बती नाम	हिंदी अनुवाद	कैलास पुराण के अनुसार भारतीय नाम	वर्त्तमान समय के प्रचलित भारतीय नाम	मानसरोवर से किसदिशा में स्थित
१.	लङ्चेन खम्बब्	हाथी के मुख से निकली हुई नदी	गंगा	सतलज या शतद्रु	पश्चिम
२.	सिंगी खम्बब्	सिंह के मुख से निकली हुई नदी	सिता	सिंधु	उत्तर
३.	तमचोक खम्बब्	अश्व के मुख से निकली हुई नदी	पत्तु वा वत्तु	ब्रह्मपुत्र	पूर्व
४.	मप्चा खम्बब्	मयूर के मुख से निकली हुई नदी	सिंदु	करनाली	दक्षिण

इसलिये यही 'गङ्गा छू' शब्द है, जिससे भारतीयों और विदेशी अन्वेषकों को भ्रम में डालकर इस निष्कर्ष पर पहुँचाया है कि गंगा जी मानसरोवर से निकलती हैं। कङ्री-करछक में वर्णित लङ्चेन खम्बब् (सतलज) के भारतीय नाम 'गंगा' ने तिब्बतियों को धोका देकर यह विश्वास कराया कि हरिद्वार के पास की गंगा और मानसरोवर के पास की गङ्गा छू और परिणामतः सतलज एक हैं। भारतीयों और तिब्बतियों में फैली हुई यही मिथ्या धारणा है, जिसने अन्वेषकों, भूगोल-शास्त्रज्ञों, और सर्वे करनेवालों को बहुत अंश में प्रभावित किया है।

गङ्गा-सतलज भ्रम का एक कारण और भी है। फादर एंटोनियो एण्ड्रेड सन् १६२४ में माना घाटा होकर छबरङ गए थे। उन्होंने माना घाटा के पास के दो बहुत छोटे से बर्फानी तालाबों का वर्णन किया है, जिनमें से एक का नाम राक्षसताल और दूसरे का देवताल है। देवताल से बर्फानी सुरंग द्वारा एक नदी निकलकर अलकनंदा में आकर मिलती है। यही सरस्वती नदी है।

एंड्रेंड द्वारा वर्णित छोटे-से राक्षसताल और देवताल को जगत्प्रसिद्ध राक्षस-ताल और मानसरोवर समझकर प्राच्य और पाश्चात्य अन्वेषक भी भ्रम में पड़ गए। बाद में तो यह भ्रमात्मक वार्ता यहाँ तक फैल गई कि गंगा नदी मानसरोवर और राक्षसताल से निकलती है। सतलज तो राक्षसताल से निकलती ही है। इसलिये 'सतलज और गंगा दोनों मानसरोवर से निकलती हैं'— यह भ्रम लोगों में फैल गया। इन काल्पनिक बातों के आधार पर यह कल्पना भी की गई है कि गंगा और सतलज एक हैं, या एक दूसरे की सहायक हैं।

मुझे पूरी आशा है कि मेरा यह छोटा-सा उपयोगी अन्वेषण उक्त विषय पर पूर्ण प्रकाश डालकर कई शताब्दियों से फैले हुए 'गंगा-सतलज भ्रम' को समूल निराकृत कर देगा। गंगा नदी का वास्तविक उद्गम टिहरी राज्य के अंतर्गत गोमुख में है। इस संबंध में यह स्मरण रखने की बात है कि मानसरोवर और गंगा जी के उद्गम-स्थान 'गोमुख' के मध्य की दूरी बहुत-से पहाड़ और नदियों के ऊपर होकर सीधी रेखा में १३५ मील है।

१२—मानसरोवर का विस्तृत वर्णन

अति गंभीर और गुरुतर आध्यात्मिक स्पदनों से युक्त पुनीत मान-सरोवर चारों दिशाओं में पर्वतों से घिरा हुआ है। जब उत्तुंग तरंगें उठती हैं तो यह महासागर की भाँति भीषणरूप धारणकर प्रणवनाद करने लगता है। कभी तो अति प्रशांत होकर कैलास, पोनरी, मांधाता आदि शिखरों, और सूर्य नक्षत्रादिकों के लिये महादर्पण बन जाता है, और कभी मंदहास करता हुआ छोटी-छोटी लहरियों से युक्त होकर उत्तर और दक्षिण में स्थित कैलास और मांधाता, चंद्र और ताराओं को अपनी छोटी-छोटी लहरों पर झुलाता है। कभी जब जम जाता है तो पूर्व में उदय होनेवाले सूर्य या पूर्णेंदु की कांतियों को पूर्व से लेकर पश्चिम तट तक स्वर्ण या रजतमयी धारा प्रतिबिंबित करके अपने आप को दो रूपों में भासमान करता है। कभी निशीथ में तरंगों से युक्त होकर चंद्रकांति से मिल कर चाँदी के बिखेरे हुए पत्रों की भाँति जगमगाता है और साथ ही मध्य भाग में निर्मल और निश्चल होकर चंद्र-ताराओं को

प्रतिबिंबित करता है। किसी और समय मध्याह्न में अपनी उत्ताल तरंगों से मिल-कर सूर्य-किरणों को विकीर्ण स्वच्छ मौक्तिक के समान बनाकर आँखों को चका-चौंध कर देता है। कभी विविध वर्णों से युक्त मेघमालाओं से क्रीड़ा करते हुए, प्रतिभासित होकर अपने नील वर्ण को छिपाकर, कुछ काल के लिये मेघों के विविध वर्णों को ही धारण कर लेता है। कभी मांधाता से ऐसी प्रचंड आँधी का आह्वान करता है, जिसमें पड़कर मनुष्य, भेड़, और बकरे गिरकर लोटपोट हो जाते हैं; और कभी आँधियों द्वारा उठी हुई अपनी महान् तरंगों से गोद में क्रीड़ा करती हुई मछलियों की पाँखों को तोड़ तथा मार कर यात्रियों के धूप के काम में लाने के लिये उन्हें किनारे पर पहुँचाता है। एक क्षण महा प्रणवनाद का उद्घोष करता है और दूसरे ही क्षण महाशून्य की भाँति निश्शब्द हो जाता है; कभी लहरों और नीली जलराशि से युक्त होता है, तो कभी अक-स्मात् रातोंरात स्वच्छ निर्मल बर्फ के रूप में जमकर निश्चल और गंभीर हो मौन-मुद्रा धारण कर लेता है।

यह मानसराज कभी तो राजहंसों के झुंडों को अपने वक्षस्थल पर चढ़ा-कर क्रीड़ा करता है; और कभी इसके ऊपर वसंत में हंस के जोड़े दस-दस पाँच-पाँच बच्चों को बीच में रखकर गर्व से पूँछ फैलाये एवम् छाती अकड़ा कर बातचीत करते और खेलते हुए दिखाई देते हैं। उनके अनुपम सौंदर्य और मंद गमन को देखकर यह आनंद और उमंग से फूला नहीं समाता। कभी-कभी उन्हें कहीं अन्यत्र भेज देता है; उसकी आज्ञा को न मानकर जो हंस वक्षस्थल पर खेलते ही रहते हैं, उन्हें ढिठाई के लिये दंड देने के विचार से अकस्मात् एक रात में ही झुंड के झुंड को पानी जमाकर मार डालता है। जब एक समय (जन्माष्टमी के पश्चात्) सूर्यास्त हो जाने पर दो-दो, तीन-तीन सौ हंस और डरूसिरचुड के बच्चों के झुंड उसके ऊपर उड़-उड़ कर थक जाते हैं तो वह उन्हें अपने वक्षस्थल पर विश्राम कराकर, शीतकाल में परदेश की दीर्घ-यात्रा करने के लिये उड़ने का अभ्यास कराता है।

कभी चारों दिशाओं में—अवनि से अंबर तक—सघन श्वेत मेघपुंजों के स्तंभों से सारे भूभाग को छिपाकर, गंभीर अतल समुद्रमध्यस्थित नौका-निवास

की भाँति मठ निवासियों को भ्रम में डालकर, ऐसा भान कराता है कि मानो वे पर्वतों के बीच में नहीं हैं। कभी श्रद्धा से परिक्रमा करनेवाले भक्तों को किनारे-किनारे जाने के लिये मार्ग दे देता है; तो कभी "अपनी इच्छा से जब चाहो तब इस मार्ग से नहीं जा सकते, दूर से जाओ।" इस प्रकार का आदेश सुनाता है। साष्टांग प्रदक्षिणा करने के लिये आये हुए भक्तों के पैर न भींगने पावें, इस उद्देश्य से यह कभी कई नदियों को सुखा और कभी कई नदियों को जमा देता है। किसी और समय "तुम इतने विलंब से आए, इसलिये तुम्हें आगे नहीं जाने दूँगा"—मानो ऐसा कहकर सारी नदियों को बर्फ से गले हुए जल से भरकर इतने वेग से बहा देता है कि उसमें बलिष्ठ घोड़े और याक भी नहीं चल सकते; किंतु फिर थोड़ी ही देर में उनके ऊपर दया करके, "जो आए हो तो आज इसी किनारे पर ठहरकर दूसरे दिन जाओ"—कहकर नदियों के पानी को घटाकर उन्हें जाने के लिये मार्ग भी देता है। एक समय एक प्रांत के यात्री को बुलाता है तो फिर दूसरी ऋतु में किसी अन्य प्रांत के यात्रियों का स्वागत करता है। कभी भक्तों को अपनी गोद में बिठाकर ध्यानावस्थित करके उन्हें योगनिद्रा में मग्न कर देता है और कभी "जाओ, अब बाहर नहीं आ सकते, अपनी कुटिया में बैठकर ध्यान करो"—इस प्रकार का अनुशासन करता है। कभी बौद्ध भिक्षुओं को श्रोत्रिय ब्राह्मणों की भाँति तट पर बिठाकर देवार्चन कराता है और सरोवर में उनसे फेंके हुए निर्माल्य को खाने के लिये मछलियों के झुंडों को भेज देता है। कभी प्रचंड वायु और ठंढ उत्पन्न करके अपने किनारे पर खड़े भी नहीं होने देता। एक समय समधिक जल प्रदान कर संतरण कराता है, तो दूसरे समय आचमन के लिये भी एक बूँद जल देखने में न आवे, इस उद्देश्य से सारे जल को चतुरतापूर्वक अपनी श्वेत चादर के नीचे छिपा लेता है, उस समय सब्बर से तोड़े जाने पर चूहे के बिल-बराबर छेद से भी किसी को जल नहीं प्रदान करता।

कभी सूर्यास्त के समय अपने उत्तर में स्थित सारी कैलास-पंक्तियों को अचानक अग्निमंडल की भाँति बनाकर मनुष्य को खड़े-खड़े ही समाधिस्थ कराके, स्मृति होने पर फिर पूर्व रजताचल को ही दिखा देता है। और किसी दूसरे

सूर्यास्त के समय दक्षिण में स्थित मांधाता में आग लगाकर पश्चिम दिशा को अग्निज्वालाओं से भर देता है। किसी दिन सूर्योदय होने के पहले सारी कैलास-पंक्ति को श्वेत मेघमालाओं से छिपा देता है; और किसी दिन सूर्योदय के समय कैलास और मांधाता की चोटियों को शुद्ध स्वर्णांबरों से अलंकृत कर समस्त अवशिष्ट भागों को कृष्णांबरों से आच्छन्न कर देता है। एक समय (शीतकाल में) सारे मानसखंड को श्वेत वसनों से ढककर कई दिनों तक अखंडैकरस ब्रह्म के समान एक-रूप रहता है।

भोज महाराज की कीर्ति के संबंध में महाकवि कालिदास के जो निम्न-लिखित श्लोक बताए जाते हैं, वे केवल कवि-चातुरी के प्रमाण और अतिशयोक्ति मात्र हैं—वास्तविक नहीं।

महाराज श्रीमन्! जगति यशसा ते धवलिते,
पयः पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते।
कपर्द्दी कैलासं करिवरमभौमं कुलिशभृत्,
कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥
नीरक्षीरे गृहीत्वा निखिलखगततीर्याति नालीकजन्मा,
तक्रं धृत्वा तु सर्वानटति जलनिधींश्चक्रपाणिर्मुकुन्दः।
सर्वानुत्तुङ्ग शैलान्दहति पशुपतिः फालनेत्रेण पश्यन्,
व्याप्ता त्वत्कीर्तिकान्ता त्रिजगति नृपते भोजराज क्षितीन्द्र॥

हे महाराज! हे श्रीमान्! जगत् में आपके विमल यश की कांति की सफेदी फैलने से परम पुरुष विष्णु क्षीर-समुद्र को खोजने लगे हैं। महादेव कैलास को ढूँढ रहे हैं। इंद्र अपने सफेद हाथी—ऐरावत को, राहु चंद्रमा को, और ब्रह्मा राजहंस को खोज रहे हैं। (आशय यह है कि आपके यश ने अपनी सफेदी से समस्त विश्व को एकाकार, श्वेतमय कर दिया है, और किसी वस्तु या व्यक्ति को पहचानना असंभव-सा हो गया है।) ब्रह्मा नीर और क्षीर को मिलाकर निखिल जगत् के पक्षियों के पास इस आशा से ले जा रहे हैं कि जो कोई पक्षी दूध से पानी को अलग कर देगा उसी को हंस समझ लेंगे; विष्णु भगवान् मट्ठा लेकर सब समुद्रों में उसे इस उद्देश्य से डाल रहे हैं कि जो

समुद्र इसे डालने से फट जायगा उसी को क्षीर-सागर के रूप में पहचान लेंगे; और शिव समस्त ऊँचे शिखरवाले पर्वतों को अपना तीसरा नेत्र खोलकर इस आशय से जला रहे हैं कि जो कैलास पर्वत होगा वह भस्म नहीं होने पावेगा। हे भोजराज! आपकी कीर्ति रूपी कांता तीनों लोकों में व्याप्त हो गई है।

परंतु यहाँ पर बर्फ से आवृत होने पर सभी स्थलों के श्वेतमय हो जाने से ऊँचाई-नीचाई, तट-सरोवर, टीला-मठ, घर-तंबू आदि वास्तव में एक-से हो जाते हैं, और कौन कहाँ है और कैसा है, इसका निर्णय नहीं हो पाता। किसी और समय (सरोवर पिघलने के पहले, मई के महीने में) सूर्योदय के पूर्व रात ही रात सारे दृश्य को श्वेतांबर से ढककर मध्याह्न होने तक ऐंद्रजालिक की भाँति उसे अदृश्य कराकर पुनः विश्व की सृष्टि कराता है। देखिए, अभी अच्छी धूप चमक रही है; कुछ देर कोठरी में विश्राम करके आइए तो मोती जैसे ओले और चूने जैसी कोमल बर्फ से भूमि और आसपास के पहाड़ ढके हुए दिखाई पड़ेंगे; और पुनः कुछ ही समय पश्चात् मेघों के अदृश्य हो जाने से पर्वतों के ऊपर धूप का पूर्ण प्रकाश फैला हुआ दीखेगा। इसी प्रकार के दृश्यों को देखकर ही किसी कवि ने लिखा है—'मानसरोवर कौन परसे। बिन बादल हिम बरसे।' ऐसे ही अनेक अपूर्व दृश्य कवियों की सामग्री बन जाते हैं।

एक किनारे पर प्रसाद के लिये पंचरंग की रेत (चेमानेङा) देता है, तो दूसरे तट पर पूजा के लिये विविध रंगों के कोमल और छोटे-छोटे पत्थरों को प्रदान करता है, और एक दूसरे किनारे पर पानी के नीचे प्रचुर मात्रा में एक प्रकार की घास उपजाता है। एक प्रांत पंकयुक्त है, तो दूसरा सैकतपूर्ण, तथा तीसरा पर्वतमय। एक ओर भिक्षुओं की तपस्या के लिये गुफाएँ निर्मित हैं, तो दूसरी ओर घर और मठों के निर्माण के लिये उपयुक्त स्थान हैं। कुछ मठों से श्री कैलास का रमणीक दृश्य दिखलाता है तो कुछ मठों से इस दृश्य को छिपा भी लेता है। एक मठ से राक्षससरोवर का दर्शन कराता है और दूसरे से मांधाता के मनोहर शिखरों को प्रदर्शित कराता है। कुछ मठों का निर्माण जल के समीप, कुछ का छोटे पहाड़ों के ऊपर, और कुछ का तट से दूर पर कर-वाता है। एक मठ काश्मीर को प्रदान कर दिया, दूसरा भूटान को, कुछ

गोम्पाएँ पुरङ को, और कइयों को ल्हासा के पास के विश्वविद्यालयों के साथ संमिलित कर दिया है। कुछ मठों में लामाओं (आचार्यों) को नियुक्त किया है और कुछ में डाबाओं (साधारण भिक्षुओं) को रख दिया है। एक तट को उष्ण रखता है और दूसरे को अति शीतल। कहीं-कहीं तट के आस-पास ही हंसादि जल-पक्षियों के विहार के लिये छोटे-छोटे तालाबों का निर्माण किया है। उत्तर में देवताओं के स्नानार्थ कुर्क्यल छुंगो नामक छोटे सरोवर का निर्माण किया है, जिसे तिब्बती लोग मानसरोवर का सिर कहते हैं। पश्चिम में संग के लिये अपने ही अंग से रावणह्रद नामक सहसरोवर को निर्मित किया है, जिसमें हंसों और एकांतवासी भिक्षुओं के निवासार्थ लाचातो और तोप्सेरमा नामक दो पर्वतीय द्वीपों को बनाया है।

एक कोने में गर्म सोतों के उबलते हुए पानी को फव्वारे के रूप में फाड़ कर निकालता है, तो दूसरे कोने में उष्णकुंडों से गर्म पानी की नहरों को निकाल कर लाता है। एक ओर सोने की खानें हैं तो दूसरी ओर सुहागे की खानें रखता है। किसी-किसी स्थान पर सोडा और शोरा के मैदानों को बिछा दिया है। एक कोने में बर्तन बनाने के लिये सुंदर चिकनी मिट्टी उत्पन्न करता है। किसी घाटी के एक कोने की गुफा में श्वेत मिट्टी (एक प्रकार का चूना), किसी अन्य घाटी में लाल मिट्टी (एक प्रकार की गैरिक धातु), और किसी तीसरी घाटी में मठों के रँगने के लिये पीली मिट्टी संचित रखता है। मणि-मंत्र खुदवाने के लिये एक ओर गोल और चिपटे पत्थरों को उपजाया है, तो दूसरी ओर गोगण (चँवर), भेड़, और बकरियों के चरने के लिये विशाल चरागाहों को फैलाये हुए है। सात-आठ वर्षों में एक बार गोगणों के ऊपर क्रुद्ध होकर या उनके स्वामियों के किये हुए अपराधों के दंडस्वरूप, या यमपुरी को शून्य समझकर, या किसी अन्य अज्ञात कारण से प्रचुर परिमाण में बर्फ गिराकर घास और झाड़ियों को अनेक दिनों तक ढककर सैकड़ों चँवर गायों एवम् हजारों भेड़-बकरियों को यमालय भेज देता है। कभी-कभी झुंड के झुंड जंगली घोड़ों को बर्फ से अकड़ा कर खड़े-खड़े ही यमपुरी भेज देता है। एक भाग में सुगंधित औषधियों को धूप के लिये उत्पन्न करता है तो किसी दूसरे

भाग में (कैलास-शिखर के तल में) किसी अन्य प्रकार की औषधि का पालन करता है, और कहीं इंधन के लिये डमा नामक पौधों को प्रचुर मात्रा में उपजाता है। किसी दून में वीर्यवर्द्धक और वाजीकरण 'ठुआँ' नामक औषधि को, किसी दूसरे भाग में छौंकने के लिये जिंबू और गोक्पा नामक मसालेदार पौधों को अधिक परिमाण में उत्पन्न करता है, और किसी दून में घास को बढ़ाता है। एक ओर मैदान में सैकड़ों जंगली घोड़ों के झुंडों को शरण देता है, तो दूसरी ओर छोटे छोटे तालाबों में हंसों और सारसों को आश्रय प्रदान करता है।

शीतकाल में, कहीं बंदर जैसे छोटी पूँछवाले पहाड़ी चूहों को लंबिका-योग में सुला कर पाँच-छः महीनों तक बर्फ से ढके रखता है। संभवतः इन चूहों, ध्रुव-प्रदेशीय भालुओं, और मेढ़कों को देखकर ही योगियों ने खेचरी मुद्रा का आविष्कार किया था। एक दिशा में छोटे-छोटे चीतों का और दूसरी दिशा में झुंड के झुंड जंगली बकरियों का पालन करता है। कुछ प्रांतों में तट से दूर, १६००० फीट की ऊँचाई पर, भयानक जंगली चँवर गायों को शरण देता है और इधर-उधर डमा की झाड़ियों में भेड़ियों के आहार के लिये खरगोशों को पालता है। एक स्थान पर रेशम जैसे कोमल घास को उगाता है तो दूसरे स्थान में सुई के समान तीखे अंकुर उत्पन्न करता है। एक कोने में देवगणों के विहारार्थ या करुणा वरुणालय गुरु के कृपाभाजन महाभागों के कुछ देर विश्राम कर आनंद लूटने के लिये अति कोमल हरे-हरे कालीनों को बिछाकर उनके ऊपर छोटे-छोटे पीले फूलों से पुष्पशय्या का निर्माण कर देता है। किसी दूसरे कोने में झूमक और करनफूल जैसे गुलाबी रंग के फूलों को बिछा देता है तो किसी और ऊँचे दून को बैंगनी और पीले फूलों से सजाता है। कभी-कभी इन हरे कालीनों को छोटी फुल्ली (नाक में पहनने का भूषण) जैसे फूलों से अलंकृत कर देता है। कोई ऐसा न समझने लगे कि मानसखंड शाकविहीन है, इसलिये अपने एक कोने में बिच्छू-बूटी और बकरियों के टिकने के स्थानों में वास्तुकी या बथुआ साग (जो पंचशाकों में एक है) को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करता है।

मानसराज गड़रियों को शीतकाल में एक कोने में बुलाता है तथा

ग्रीष्मकाल में दूसरे कोने में भेज देता है। कभी-कभी मीलों तक फैले हुए सरोवर के ढालुओं में चरते हुए सहस्रां भेड़ों के झुंडों को देखने का अति मनो-रंजक दृश्य प्रदान करता है। यात्रियों को सभी ऋतुओं में दूध-मक्खन बहुलता से प्रदान करता है। यदि एक कोने में भारतीयों की मंडी लगाता है तो दूसरे कोने में नेपालियों की और किसी और कोने में तिब्बतियों के छोङरे लगाता है। प्रतिवर्ष हज़ारों मन उत्तम ऊन भारत को भिजवाता है। किसी नदी से अल्प और किसी से अधिक जल ग्रहण करता है। इस प्रकार सभी दिशाओं से जलराशि ग्रहणकर राक्षसताल में और वहाँ से शतद्रु नदी के द्वारा भारत-भूमि को पवित्र करने के लिये और कैलास से आई हुई इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना (ल्हा छू, झोङ छू, और तरछेन छू) के पवित्र जल का स्वागत करने के लिये गंगा छू नामक नद के द्वारा वायव्य कोण में अपने अधिक जल को रावणह्रद में पहुँचा देता है।

विविध प्रांतों से आनेवाले सभी मार्गों को यह यहाँ पर मिला देता है। श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर केवल तीर्थयात्रियों के लिये ही नहीं, अपितु कवि और चित्रकार, वेदांती और प्रकृतिवादी, जंतुशास्त्रज्ञ और रसायन-परिशोधक, खनिज-परिशोधक और भूगर्भशास्त्रवेत्ता, भौगोलिक और ऐति-हासिक, मनोविज्ञानी और समाजविज्ञानी, नौकाविहारी और वायुयानचारी, अर्थशास्त्रवेत्ता और राजनीतिज्ञ, बड़े और छोटे, स्त्री और पुरुष, हिंदू और मुसलमान, ईसाई और पारसी—सभी प्रकार के लोगों को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार यथेच्छ सामग्री मन खोलकर प्रदान करता है, और सब को संतुष्ट और परितृप्त करता है।

१३—कमल और राजहंस

मानसरोवर में स्वर्ण-कमल, मोती, और राजहंस हैं, तथा वहाँ की गुफाओं में कई सौ वर्ष की आयुवाले पुराने महात्मा ऋषिगण, सिद्ध, और योगी निवास करते हैं—ऐसी वार्ताएँ समाचार-पत्रों और पुस्तकों में लिखी हैं। वे कहाँ तक सत्य या मिथ्या हैं, इस संबंध प्रायः अनेक मित्र मुझसे पूछा करते

हैं। अतः इस प्रसंग पर कुछ कह देना आवश्यक समझता हूँ। इस संबंध में मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि स्वर्ण-कमल और मुक्ता के वर्णन तो पूर्ण रूप से पौराणिक ही हैं। हो सकता है, कई लाख वर्ष पहले वे वहाँ होते रहे हों, ऐसा मान कर संतोष करनेवालों से मेरा कोई विवाद ही नहीं है।

मानसरोवर में कहीं कहीं २०-३० फ़ीट के भीतर, जहाँ गहराई कम है, जल के ऊपर एक प्रकार की लता होती है। उसपर ¼ इंच व्यास के पीले रंग वाले बहुत-से फूल होते हैं। परंतु नीलकमल या किसी और प्रकार का फूल वहाँ कहीं नहीं दिखाई देता।

मैं यह सूचित कर देना चाहता हूँ कि गत तीन वर्षों से मैं स्वयम् मानसरोवर और राक्षसताल में कमल तथा कुमुद (लिली) और राक्षसताल तथा अन्य छोटे-छोटे सरों में सिंघाड़ा उगाने के लिये गवेषणापूर्ण यत्न कर रहा हूँ। इसके लिये काश्मीर और कलकत्ते से मैंने बीज मँगाए हैं। इस वर्ष यदि हो सकेगा तो कमल और कुमुद की गाँठें भी ले जाने का विचार कर रहा हूँ। देखना है कि मेरे ये प्रयत्न कहाँ तक सफल होते हैं। इस संबंध में रुचि रखने-वाले कोई विशेषज्ञ यदि उपयुक्त सम्मति दे सकें तो बड़ा अनुग्रह होगा।

सरोवर में तीन प्रकार के जलपक्षी पाये जाते हैं। जिनमें से एक श्वेत और भूरे रंग का होता है, जिसे तिब्बती भाषा में ङङबा कहते हैं। यही हंस है। इसके पैर और चोंच लाल रंग के होते हैं। तिब्बतियों का कहना है कि यह मछली, सीप, और घोंघों को नहीं खाता, प्रत्युत घास, सिवार आदि ही खाकर रहता है। वहाँ के निवासी इसे पवित्र मानकर खाने के लिये नहीं मारते, पर अंडों को तो अवश्य खा लेते हैं, जो कि मुर्गी के अंडों से तिगुने बड़े होते हैं। यह मानसरोवर की अपेक्षा राक्षससरोवर में अधिक पाया जाता है। संभवतः इसका एक कारण यह है कि शीतकाल में कुछ दिनों को छोड़ कर मनुष्य या भेड़िये वहाँ नहीं जा पाते हैं, और न उन पर या उनके अंडों पर हाथ ही लगा सकते हैं। लाचातो के ऊपर के हंस शीतकाल में, जब कि राक्षसताल जमा रहता है, घास और सिवार को खाने के लिये सतलज के किनारे पर चले जाते हैं। अप्रैल के पहले सप्ताह में करदुङ के गोबा के नौकर

अंडे जमा करने के लिये टापू पर जाते हैं और वहाँ से दो सप्ताह में ही चले आते हैं, क्योंकि उसके बाद तट के किनारे की बर्फ़ के फट जाने के कारण टापू प्रधान भूमि से अलग हो जाता है। ऐसा कहा जाता है कि उन दो सप्ताहों में वे लोग दो से चार हज़ार तक अंडे जमा कर लेते हैं। हंस मानसरोवर में ठुगोल्हो, युशुप छो, गोछुल, छेती छो, च्यू गोम्पा, गङ्गा छू, कुरक्यल, छुंगो, डिङ छो, टग और समो नदियों के मुखद्वार में अधिक संख्या में पाये जाते हैं। ये सरोवर के बालुकामय तटों पर अंडे देते हैं।

दूसरी जाति का ङरू सिरचुङ नामक पक्षी बादामी रंग की बतख़ जैसा होता है। तीसरी जाति वाला चकरमा कहलाता है। सिर, पूँछों और पंखों को छोड़कर इसका सारा शरीर श्वेत रंग का होता है। इन दोनों जातियों के पक्षी विशेषकर मछलियों और घोंघों को खाते हैं। ये कुछ अंशों में बतख़ और कुछ अंशों में बगुले के समान होते हैं। डिङ छो, कुरक्यल छुंगो और सतलज के किनारे सारस भी पाये जाते हैं। मेरी धारणा है कि हंस, बड़ी बतख़, और जंगली बतख़ आदि पक्षी एक ही वर्ग के हैं। भारत के बड़े नगरों की कई जंतु-शालाओं में श्वेत रंग के और आस्ट्रेलिया में काले रंग के होने के कारण हंस केवल काल्पनिक पक्षी नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त मैंने एक वैज्ञानिक मासिक पत्र में पढ़ा था कि बंद करके रखने पर भी हंस सौ वर्षों से अधिक जीते पाये गए हैं। किंतु इस पौराणिक गाथा की परीक्षा मैं नहीं कर सका कि मानसरोवर के हंस नीर और क्षीर को पृथक् कर देते हैं। इस विषय का निर्णय या विशेष विवरण तो पक्षी-शास्त्रवेत्ता ही दे सकते हैं। कालिदास ने इस बात का वर्णन किया है कि राजहंस वर्षा के प्रारंभ में हिमालय की पर्वत-मालाओं को पार करके मानससरोवर में जा पहुँचते हैं, और शरत् का आगमन होने पर फिर नीचे गंगा के किनारे वापस चले आते हैं।

१४—महात्मा, सिद्ध, और योगी

तिब्बत शब्द का नाम लेते ही ऊँचाई, शीत, अलंघ्य पर्वत, बौद्ध भिक्षु, लामा, सिद्ध, महात्मा, सैकड़ों वर्षों की आयु के योगी, मंत्र-तंत्र-यंत्र, और जादू

के भाव तथा संस्कार एक साथ मन में उत्पन्न हो जाते हैं। भारत और पाश्चात्य देशों में भी समाचार पत्रों और पुस्तकों में दुर्गम तिब्बत के महात्मा, सिद्ध, और योगियों के बारे में बहुत-सी सनसनीखेज और चित्र-विचित्र कथाएँ आए दिन छपती रहती हैं। इस प्रकार की प्रचलित कथाओं में, अधिकतर उत्प्रेक्षा, भ्रमोत्पादक, काल्पनिक विनोद और उत्सुकता बढ़ानेवाली वार्ताओं के होने के सिवा और कुछ नहीं है।

सन् १९१२ में ईसाई धर्म के प्रसिद्ध प्रचारक साधु सुंदर सिंह ने कैलास और मानसरोवर की यात्रा की थी। उनकी लिखी हुई निम्नलिखित बातें पढ़ने योग्य हैं—"कैलास के महर्षि, एक ईसाई संत को हमने एक गुफा के भीतर ध्याननिमग्न अवस्था में देखा। इनके पास फ्रेन्सिस ज़ेवियर की ग्रीक भाषा की इंजील है। इन्होंने हमें एक ऐसी बूटी की पत्ती दी जिसके खाते ही भूख शांत हो गई और शरीर में ताजापन और प्रकाश आ गया। उन महर्षि का कहना है कि उन्हें यहाँ पर रहते सैकड़ों वर्ष बीत गए तथा ये आस-पास के पहाड़ों और जंगलों की बूटियों को ही खाकर निर्वाह करते हैं। ये अपने को गुप्त-संन्यासी-मंडल का सदस्य बताते हैं, जिसके २४००० सदस्य भारत के विविध भागों में संन्यासियों के रूप में गुप्तरूप से कार्य कर रहे हैं।" कैलास और मानसरोवर के प्रांत के कोने-कोने की परीक्षा मैंने की है। पर कैलास के सैकड़ों वर्ष की आयु वाले उक्त ईसाई महर्षि का कहीं भी पता नहीं लगा।

सन् १९३७ में मि० स्मिथ ने जेसकार पर्वत-माला की सात चोटियों पर चढ़ाई की थी, उस चढ़ाई में उन्होंने बड़े-बड़े पैरों के चिह्न और चिह्नित-मार्ग देखे थे, जिनके विषय में उस समय के तिब्बती कुलियों ने उनसे कहा था कि वे पाद-चिह्न एक महान् ऋषि के थे जो बर्फ़ के पहाड़ों में नंगे फिरते थे। यह बात बड़ी सनसनी के साथ समाचार पत्रों में फैली, परंतु अंततः वैज्ञानिकों के अन्वेषणों से यह पता लगा कि ये मार्ग और पाद-चिह्न वहाँ के भालुओं के थे। किंतु भालूवाली पिछली बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

भगवान् हंस स्वामी ने अपनी कैलास-यात्रा को महाराष्ट्र भाषा में लिखा है। उनके शिष्य श्री पुरोहित स्वामी ने अंग्रेज़ी में 'दी होली मौन्टेन'

नामक पुस्तक में उसका अनुवाद किया। इस पुस्तक में कई मनोरंजक बातें लिखी गई हैं। एक स्थान पर श्री हंस स्वामी लिखते हैं—"मयूरपंखी बाबा ने मुझे 'विषपाचन' नामक एक औषधि दी, जो अति शीत में भी शरीर में गरमी पहुँचाती है। बाबा ६० वर्ष की आयु के हैं, और रोज ६० मील चला करते थे। वे तकलाकोट से तरछेन तक एक दिन में पैदल चलते थे।" ये बातें असत्य नहीं तो अत्युक्तिपूर्ण अवश्य हैं। मयूरपंखी बाबा कैलास के गेङ्टा गोम्पा में रहकर शीतकाल में ठंड से मर गए, यद्यपि उनके पास बहुत धन और विस्तृत साधन थे। साठ वर्ष के एक भारतीय का मानस खंड में १५०० फ़ीट की ऊँचाई पर रोज ६० मील चलना तो एकदम असंभव है। तरछेन तकलाकोट से ६३ मील की दूरी पर है। मार्ग में बर्फ़ीले जल की कई नदियाँ और एक घाटा पार करना पड़ता है। मैं मानसखंड से कई वर्षों से परिचय रखता हूँ पर अब तक तिब्बतियों में भी कोई मुझे ऐसा नहीं मिला जो तकलाकोट से तरछेन तक एक दिन में पैदल चलकर गया हो। इसके अतिरिक्त उक्त बाबा जी से परिचय रखनेवाला कोई भोटिया या तिब्बती भी इस बात की पुष्टि नहीं कर सका।

आगे चलकर श्री हंस स्वामी लिखते हैं—"मानसरोवर के किनारे एक अगोचर महात्मा द्वारा गाये गए मांडूक्योपनिषद् को एक घंटे तक सुना।··· ···कैलास के पास मेरे पथ-प्रदर्शक ने बताया कि कैलास के पूर्व में एक हिंदू महात्मा १००० फ़ीट ऊँचाई की गुफा में रहते हैं। मैं उन महात्मा के पास गया। वे हिंदी, मराठी, अंग्रेज़ी और कई अन्य भाषाएँ भी जानते थे। ये वे ही महात्मा हैं, जिन्होंने मानसरोवर पर मांडूक्योपनिषद् को गाया था। उनके साथ मैं तीन दिन तक रहा। गौरीकुंड के पास दत्तात्रेय का सशरीर दर्शन पाया। तीन दिन तक वहीं रहा। दत्तात्रेय ने हवन कराकर संन्यास दीक्षा दी और मेरा नाम हंसगिरि रख दिया। अंत में गौरीकुंड से अपने डेरे पर दत्तात्रेय की कृपा से १५ मिनट में पहुँचा दिया गया, जब कि जाते समय १५ घंटा लगा था; इसके उपरांत तीर्थपुरी में कैलास-महात्मा के शिष्य को मिला।" इन बातों के बारे में पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं कि इनमें तथ्य कितना है। ऐसी ही अनेक कथाएँ थियोसोफिकल सोसाइटी के धर्मग्रंथों में महात्मा और

सिद्धों के बारे में लिखी गई हैं।

श्री स्वामी सच्चिदानंद सरस्वती जी नामक एक महात्मा प्रायः शीतकाल में कलकत्ता जाया करते हैं। गर्मी के दिनों में नेपाल में रहते हैं; परंतु अपने लिये वे कहते हैं कि मानसरोवर के पास सिद्धाश्रम में रहते हैं और स्नान के लिये नित्य ब्रह्मपुत्र के उद्गम पर जाया करते हैं। कलकत्ता निवासी उनके एक वकील शिष्य ने ये बातें मुझे सुनाईं। मानसखंड भर में सिद्धाश्रम या उक्त महात्मा को मैंने न कभी देखा न उनके बारे में कभी सुना। महात्मा जी के शिष्य स्वयं सन् १९४१ में मेरे साथ कैलास-मानसरोवर गए थे, परंतु वह भी उक्त महात्मा जी का कुछ पता न लगा सके। 'स्टूडेंटस् न्यू हाईजीन ऐंड फिजिकल कल्चर' नामक पुस्तक में 'ऋषि सच्चिदानंद सरस्वती (गिरनारी बाबा) मानसरोवर के परमहंस देव' का एक फोटो दिया गया है। उनकी आयु ७५० वर्ष की बताई गई है। ये 'आल इंडिया यंग मेंस बेनिवोलेंस सोसाइटी और आर्यन एसेटिक्स एसोसियेशन ऑफ़ इंडिया' के फौंडर-प्रेसीडेंट हैं। एक मित्र ने मुझे हाल ही में बताया है कि यह महात्मा उपर्युक्त सच्चिदानंद जी ही हैं। आजकल भी ऐसी-ऐसी बातें फैलाई जाती हैं। जनता में अंधविश्वास बढ़ाकर स्वार्थसाधन (एक्सप्लोइटेशन) करने का यह एक साधन नहीं तो और क्या है!

तिब्बत के विख्यात सुधारक चोङ्खपा का जन्म सन् १३५५ में हुआ था। भगवान् बुद्ध की भाँति उनका जन्म भी एक वृक्ष के नीचे हुआ था। इसलिये वह वृक्ष पवित्र माना जाता था। तिब्बती ग्रंथों में यह कथा आई है कि अपने पिता को चोङ्खपा से भेजे हुए कुछ चित्र और 'ॐ म णि प द्मे हुँ' मंत्र के अक्षर उक्त वृक्ष पर एक लाख की संख्या में देखने में आए। वृक्ष के पास ही 'कुमबुम' (कु=मूर्ति, बुम=एक लाख) नामक मठ का निर्माण किया गया। कुछ वर्ष बाद वृक्ष के ऊपर ५० फ़ीट की ऊँचाई पर एक छोरतेन (स्तूप) निर्मित किया गया। सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस के पादरी हक् और गेबट 'कुमबुम' गए थे। वे अपनी तिब्बत-यात्रा-संबंधी पुस्तक में लिखते हैं—"जिस वृक्ष के नीचे चोङ्खपा का जन्म हुआ था उसके पत्ते और

स्कंध पर 'ॐ म णि प द्मे हूं' ये अक्षर हमने स्पष्ट रूप से पढ़े।" आश्चर्य की बात यह है कि उक्त पादरियों के वहाँ जाने के दो शताब्दी पहले से ही वह वृक्ष एक छोरतेन के भीतर बंद था। अतः उस वृक्ष को या उसके पत्तों को देखना ही मिथ्या है, और उन पर मंत्र के अक्षरों को देखना तो निरी गप ही समझनी चाहिये।

सन् १९३९ में ल्हासा के एक प्रतिष्ठित लामा से मिलने का सौभाग्य मुझे मिला। वह 'कुमबुम' मठ के दर्शन कर चुके थे। उन्होंने कहा—"कुमबुम के छोरतेन के भीतर बंद वृक्ष की संतति के कुछ वृक्ष अब भी वहाँ मौजूद हैं, परंतु उन पर कोई मंत्राक्षर नहीं दिखाई देते।" स्थानीय लोगों के विश्वासों के अनुसार इन पादरियों ने अपनी पुस्तकों को मनोरंजक बनाने के लिये बहुत-सी विचित्र बातों का वर्णन इस रूप से किया है जैसे उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से देखा हो। ऐसे ही मनोविनोदार्थ लिखी हुई सैकड़ों मिथ्या कथाओं में से यह एक उदाहरण मात्र है।

मैंने पश्चिमी तिब्बत और लदाख में (प्रायः सभी स्थानों में) पचास मठों का निरीक्षण किया और १५०० लामा और डावाओं का दर्शन प्राप्त किया। परंतु उनमें एक भी बड़े, नामी, सिद्ध और योगी को नहीं पाया। निस्संदेह ऐसे बहुत-से लामा हैं, जो अपने धर्मग्रंथों में पारंगत हैं और बाह्य तांत्रिक क्रिया-कलापों में निपुण हैं, जो कई दिनों तक विस्तारपूर्वक चालू रहते हैं। इन तांत्रिक पूजाओं में देवी-देवताओं का विस्तृत रूप से पूजन किया जाता है। मठों में रंग-बिरंग के बड़े-बड़े यंत्र (किलकोर या किङ्कोर) और बलिपिंड (तोरमो) चतुरता के साथ बनाये जाते हैं। बहुधा वहाँ के लोग बहुत धार्मिक, भक्तिपरायण, वहमी और भूत-प्रेतों के उपासक होते हैं। भारत के श्रोत्रिय ब्राह्मण गायत्री मंत्र का जितना जप करते हैं, वहाँ के साधारण स्त्री-पुरुष भी उससे कई गुना अधिक अपने महामंत्र का जप करते हैं। मैंने उन प्रांतों में अपने १५ वर्ष के भ्रमण में, आध्यात्मिक साधना में उन्नत किसी लामा, योगी या १०० वर्ष से अधिक आयुवाले बूढ़े को नहीं देखा, यद्यपि कितने ही लोगों का कहना है कि उन्होंने व्यास, दत्तात्रेय, अश्वत्थामा, और 'हजारों वर्ष की आयु वाले बूढ़े भिक्षु, ऋषि

और महात्माओं' को सैकड़ों की संख्या में पंचभौतिक शरीरों में विचरण करते हुए देखा है। मैं स्वयं इन बातों पर विश्वास नहीं करता और न अपनी बात पर दूसरों को विश्वास करने के लिये बाध्य करता हूँ, अतः इस विषय में वास्तविकता पर विचार करने के लिये विचारशील पाठक स्वतंत्र हैं।

इससे कोई यह न समझे कि संसार में बड़े-बड़े महात्मा, संत, और योगी लोग हैं ही नहीं, या उनके अस्तित्व को मैं नहीं मानता। हमारे गुरु परम पूज्य भगवान् श्री ११०८ ज्ञानानन्द योगीन्द्र यतीन्द्र पूज्यपाद उच्चकोटि के योगियों में से एक हैं, जो अंगरेजी की प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण नहीं थे, तथापि समाधि द्वारा उच्च विज्ञान संबंधी विषयों का (जो एम० एस-सी० वालों की भी समझ में नहीं आते) परिचय उन्होंने संसार को दिया है,[1] जिसको आधुनिक विज्ञान द्वारा सिद्ध करने के लिये चेकोस्लोवाकिया के चार्ल्स विश्वविद्यालय की अनुसंधान-शाला में उन्हें तीन वर्ष लगे। सारांश यह कि सच्चे उन्नत महात्मा और योगीजन अपने ही देश के समान तिब्बत में भी अत्यल्पसंख्यक है।

हाँ, मैंने तकलाकोट के गवर्नर और अन्य तिब्बती मित्रों से सुना है कि पूर्वी तिब्बत में कुछ लामा और भिक्षु लोग जादू का सामान्य और विशेष रूप से अभ्यास करते हैं, जिसे बाहर के लोग (विशेषकर पाश्चात्य देश के) बहुत बड़ा मानते हैं। ये छोटे-छोटे चमत्कार अवश्य दिखाते हैं। पर वे ऐसे ही हैं जैसे यहाँ के जादूगर या मंत्र-यंत्र जाननेवाले। किंतु इतना अंतर अवश्य है कि ये लोग अपने शास्त्रों के विद्वान होते हैं। पूर्वी तिब्बत में ऐसे भी लामा पाये जाते हैं जो चारदीवारी के भीतर एक, दो, या चार वर्ष या अपना समस्त जीवन बिता देते हैं। पर यह उनकी सिद्धता या आध्यात्मिक उन्नति का लक्षण नहीं कहा जा सकता। यह तो उनकी कष्ट-तपस्या और हठकारिता के सूचक हैं।

हाँ, पश्चिमी तिब्बत की कई यात्राओं में सन् १९३६ में मुझे ल्हासा से

---

[1] डा० स्वामी ज्ञानानंद, एम्० एम्० पी०, एफ० आर्० एस० एस०, (प्राग), 'न्यू एंड प्रिसाइज़ मेथड्स इन दी स्पेक्ट्रोस्कोपी आफ एक्स रेडियेशन्स'।

कैलास की यात्रा के लिये आये हुए एक टुलकू लामा (अवतारी लामा) से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने तकलाकोट के सिंग्रिलिङ मठ में तीन दिन बड़े-बड़े यंत्रों को बनाकर तांत्रिक अनुष्ठान किया। यद्यपि इन क्रियाओं को देखने का अधिकार गृहस्थों को और परदेशियों को नहीं होता; पर उन्होंने मुझे वहाँ उपस्थित होकर सारी क्रियाओं को देखने का सुअवसर दिया था। उस समय से मेरा नाम भी लामाओं की श्रेणी में गिना जाने लगा, और मुझे 'ग्यगर लामा-गुरु' (भारत के लामा-गुरु) के नाम से पुकारने लगे। निस्संदेह ये अच्छे साधक और तांत्रिक हैं। कैलास यात्रा करते समय मैं उक्त लामा के साथ २० दिनों तक रहा। उनसे तिब्बत के महात्मा और सिद्धों के बारे में बहुत कुछ वार्तालाप हुआ। उसमें से कुछ बातों का सार यहाँ दे देना उचित समझता हूँ—

"पूर्वी तिब्बत में कई 'गोमछेन' और 'नलजोरपा' या 'नलह्योरपा' हैं। गोमछेन वह है जिसने विशेष तांत्रिक साधना करने से मारण, वशीकरण आदि सिद्धियों को प्राप्त किया हो। वह डाकिनी (खंडोमा) का उपासक होता है। इनका दिया हुआ तावीज पहनने से किसी तलवार या बंदूक की गोली का प्रभाव नहीं होता[1]। गोमछेन विशेष अनुष्ठान क्रिया-कलाप करके तलवार या खुकरी का अभिमंत्रण करता है जिससे उस तलवार में शत्रु को संहार करने की शक्ति आ जाती है। उस प्रकार अभिमंत्रित तलवार को 'फुरबा' कहते हैं। 'नलजोरपा' या 'नलह्योरपा' योगी को कहते हैं। योगाभ्यास से इनको कई प्रकार की सिद्धियाँ आ जाती हैं। एक प्रकार का साधन करने से अणिमादि अष्ट सिद्धियों में से लघिमा प्राप्त की जा सकती है; जिससे पर्वत की एक चोटी से दूसरी चोटी पर अनायास कूद सकते हैं। इस सिद्धि को प्राप्त किये हुए योगी को

---

[1] भोटियों और मानसखंड के तिब्बतियों का कहना है कि सन् १९४० में और कई अन्य अवसरों पर ऐसे मंत्रयुक्त तावीज को पहने हुए डाकुओं ने आकर मंडियों में बहुत लूटमार मचाई। परंतु उन पर बंदूक की गोलियाँ कुछ काम की नहीं हुई और न किसीको उन डाकुओं पर गोली चलाने का साहस ही हुआ।

'लुङ-गोमपा' (लुङ-वायु) कहते हैं। इस प्रकार का योगी ग्रीष्म ऋतु में सूर्योदय के समय ल्हासा से चलकर सूर्यास्त तक कैलास पहुँच सकता है[1]। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने तक उनको बाह्य जगत् की स्मृति नहीं होती। लुङ-गोमपा की लघिमा की सिद्धि की सीमा यहाँ तक पहुँच जाती है कि जौ की बाल की नोक पर आसन लगाकर बैठने पर बाल तनिक भी नहीं झुकती, अर्थात् उसका तोल नहीं के बराबर हो जाता है।

"एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करने से शरीर में इतनी उष्णता उत्पन्न हो जाती है कि तिब्बत जैसे शीत प्रदेश में भी नंगा या एक पतला सा सूती वस्त्र पहनकर रह सकता है। उस साधन को 'टुमो' (उष्ण) कहते हैं तथा उसका अभ्यास करनेवाले को 'रेपा' (सूती वस्त्र पहननेवाला अर्थात् नागा) कहते हैं। मिला रेपा ने इस प्रकार के भी साधन किए। उन्होंने एवरेस्ट शिखर के उत्तरी तलहटी पर 'लचीकङ' नामक बर्फीले स्थान पर रहकर ये साधन किये। किसी एक अन्य प्रकार का योगाभ्यास करने से परकाय-प्रवेश करना, दूरस्थ विषयों का ज्ञान लेना या दूर तक अपने संदेश को भेज देना संभव हो सकता है। इन सब सिद्धियों की ओर ध्यान न देकर साधन करने से मनुष्य बुद्धत्व की प्राप्ति करता है।"

उक्त लामा से विदा होने के दिन परस्पर भेंट और लेन-देन के पश्चात् मैंने उनसे एक प्रश्न किया—"आपने अपने वर्णन के अनुसार किसी प्रकार की सिद्धि या उन सिद्धियों से युक्त किसी योगी को देखा हो या आप स्वयं उक्त प्रकार का कोई साधन कर रहे हों तो कृपा करके सचसच बताइए।" मेरे इस सीधे से प्रश्न पर लामा ने दस-पंद्रह मिनट निश्चेष्ट खड़े होकर धीरे से उत्तर दिया—"ग्यगर लामा-गुरु! जो बातें मैंने आपको सुनाई हैं, वह सब सच हैं। इन बातों को मैंने स्वयं अपने धर्म-ग्रंथों में पढ़ा है और सुना भी है। परंतु इन

---

[1]ल्हासा से कैलास की दूरी ८०० मील है; इस प्रकार १५ घंटे में ८०० मील चलने का अर्थ एक घंटे में ५३ मील चलना है, जो एक अच्छी मोटर की रफ़्तार है!

सिद्धियों को प्राप्त करनेवाले किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष नहीं देखा। मैं उन सिद्धियों के पीछे नहीं पड़ता।" यह ल्हासा का एक प्रतिष्ठित गेशे रिंपोछे (डी. डी.) लामा का उत्तर है।

अब आप स्वयं निर्णय कर लीजिए। भारत में इस प्रकार की कितनी ही कथाओं को साधारण से साधारण व्यक्ति भी जानता है; योग और तंत्रशास्त्र के ग्रंथों में भी वे इस तरह की कथाएँ पढ़ते आए हैं। कितने ही समाधिस्थों और कायाकल्प करनेवालों को वे बराबर देखते रहते हैं, परंतु वास्तव में कितने सच्चे योगी और सिद्ध भारत में विद्यमान हैं ? यही हाल तिब्बत में भी समझना चाहिए। मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि भारत से तिब्बत में सच्चे सिद्धों और योगियों की संख्या कम है। भारत में ही जब उँगलियों में गिने जा सकते हैं, तो तिब्बत में कितने होंगे, इस पर पाठक स्वयं विचार करें। अँगरेज़ी में एक कहावत है कि नदी अपने उद्गम की सतह से ऊपर कभी नहीं उठ सकती। जो कुछ योग या आध्यात्मिक साधन तिब्बतियों में है वह सब भारत से ही गया है और वह भी भारतीय योग का एक अंशमात्र है; वह अंश भी अब मिश्रित और विकृत हो गया है। इसलिये जो लोग यह सोचते हैं कि तिब्बत में सिद्धों की भरमार है और वहाँ सिद्धि बड़े सस्ते मूल्य में प्राप्त हो जाती है, वे बड़े भ्रम में पड़े हुए हैं—ऐसी मेरी सम्मति है। इसे मानना न मानना पाठकों के विचार पर निर्भर है।

पाश्चात्य देश निवासी तिब्बत-संबंधी विषयों का वर्णन इतना बढ़ा-चढ़ा कर क्यों करते हैं, इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि आध्यात्मिक क्षेत्र में वे अभी शैशवावस्था में हैं, इसलिये इस संबंध में उनका मापदंड बहुत छोटा है। इसका परिणाम यह होता है कि वे साधारण से साधारण आध्यात्मिक साधना को बहुत बढ़ा देते हैं। दूसरे, इस प्रकार की चटपटी बातों से वे अपने वर्णनों को रोचक बनाना चाहते हैं। जनता भी सीधी और सच्ची बात की अपेक्षा सनसनी पैदा करनेवाली बातों को अधिक पसंद करती है।

गत वर्ष मैंने ठुगोल्हो में एक तिब्बती गड़रिया पर देवता की सवारी होते देखा। देवता का प्रवेश विशेष-विशेष व्यक्तियों पर ही होता है, जो 'ल्हामी'

(ल्हा = देवता, मी = आदमी) कहे जाते हैं। देवता चढ़ते समय वे लोग सिर पर रंग-बिरंगे कपड़ों का पंचपटल वाला मुकुट पहनते हैं। गरुड़ासन पर बैठकर एक हाथ में घंटा या दोर्जे, और दूसरे हाथ में डमरू लेकर बजाते हुए सिर को खूब ज़ोर से हिलाते हैं, और तरह-तरह की भविष्यवाणी करते हैं या पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देते हैं; ठीक जिस प्रकार भारत में देवी और देवता से आविष्ट व्यक्ति करते हैं।

यह एक शोचनीय विषय है कि भोले-भाले और सीधे-सादे लोगों को धोका देकर अनुचित लाभ उठाने के लिये कुछ लोग मनगढ़ंत और विनोद-पूर्ण विचित्र कथाओं को फैलाते हैं, जो सर्वथा मिथ्या और निराधार होती हैं। हाँ, श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर के प्रांत महोत्कृष्ट आध्यात्मिक स्पंदनों से अवश्य व्याप्त हैं, जहाँ पर जाकर मनुष्य तन्मय हो उच्च मानसिक स्थिति में पहुँच सकते हैं।

अध्याय २

मानसरोवर का जमना

१—ताप-प्रमाण

सन् १९३६-३७ में जब मैं मानसरोवर के तट पर निवास कर रहा था तब सितंबर के दूसरे ही सप्ताह से शीतकाल का आगमन हो गया। अक्टूबर की पहली से १४वीं तारीख तक न्यूनतम तापक्रम लगातार हिमांक से नीचे था। उस वर्ष बरामदे में उच्चतम तापक्रम का विस्तार १९वीं जुलाई के दिन ६७ अंश (डिग्री) फारेनहाइट था। अल्पतम तापक्रम २८वीं फरवरी के दिन—१८.५ अंश था, अर्थात् हिमांक से ५०.५° नीचे था। उन दिनों यदि कोई खड़ा होकर थूकता तो थूक ऊपर से ही बर्फ बनकर नीचे गिरता था। १६ फरवरी को तापक्रम दिनभर २° से ऊपर चढ़ा ही नहीं, अर्थात् हिमांक से ३०° नीचे था। उस समय घर के भीतर भी स्याही के जम जाने के कारण फ़ाउन्टेन-पेन काम में नहीं आती थी। अधिक क्या, इन दिनों कड़ुआ और तिल का तेल भी पत्थर के समान जम जाता था। घी का तो क्या कहना, बसूले से काटना पड़ता था। साढ़े तीन मास तक उच्चतम तापक्रम हिमांक से नीचे ही रहा। शीतकाल में कई बार मध्याह्न में भी तापक्रम –१०° रहा, अर्थात् हिमांक से ४२° नीचे रहा। सचमुच सन् १९३६—३७ में श्री कैलास-मानसरोवर प्रांत में शीतकाल में कड़ाके का जाड़ा पड़ा।

२—मानसरोवर के जमने के पहले का उपक्रम

सितंबर के दूसरे सप्ताह से बर्फ पड़ने लगी। सरोवर के किनारे पर भयंकर वायु के कारण डेढ़ फीट से अधिक कभी बर्फ नहीं गिरी, परंतु गंगोत्तरी की

भाँति कैलास के आसपास १० से १८ फीट की ऊँचाई तक बर्फ गिरने से मठों के लोगों के इधर-उधर जाने का मार्ग अवरुद्ध हो गया। पहली नवंबर से ही प्रचंड वायु दिन-प्रतिदिन तीव्रता से, गर्जना के साथ बढ़ने लगी। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा (१४वीं दिसंबर) के दिन मैंने अपने पूज्यपाद श्री गुरुदेव के जन्म-दिवस को बड़े समारोह के साथ मनाया। उसी दिन से मेरी पहले की शारीरिक और मानसिक दुर्बलताएँ दूर हो गईं और मेरा जीवन सचेत होकर नूतन उत्साह और शक्ति से भर गया। सरोवर के किनारे का जल दो-दो फीट दूर तक जमने लगा। मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी के दिन (२१. १२. ३६) अधिकतम तापक्रम १०° और अल्पतम तापक्रम –२° था। उसी दिन से अत्यधिक ठंड पड़ने लगी। झंझावात का पारावार नहीं रहा। कुछ-कुछ बर्फ भी पड़ने लगी। अधिक-तम तापक्रम हिमांक से ३२° नीचे ही रहा। सरोवर के मध्य में दो-दो अंगुल मोटी और ५० से १०० गज लंबी बर्फ की तहें जमकर किनारे पर तैरती हुई आने लगीं। मांधाता की ओर आँधी के झोंके सरोवर में अति गंभीर शब्दों से समुद्र की भाँति उत्ताल तरंग उत्पन्न करने लगे। आँधी की भयंकरता और कड़ाके की ठंडक का सामना कर सकूँगा या नहीं—इस आशंका से जो भय अब तक बना था, वह दूर हो गया और मन नये उत्साह और आनन्द में निमग्न होकर अधिक दृढ़ और धैर्यशील हो गया।

३—मानसरोवर का जम जाना

लामा और अन्यान्य तिब्बती लोग पहले से ही कह रहे थे कि पूर्णिमा के दिन समस्त मानसरोवर जम जायगा। अंत में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा आ गई। सोमवार का दिन था। प्रातःकाल का समय था। मैं आनंदोल्लसित हो उठा। किसी अज्ञात कारण से, उस दिन नित्य से पहले ध्यान में बैठ कर आसन से सात बजे उठकर असमय में ही कोठरी से बाहर आया; आते ही देखता क्या हूँ कि जिस प्रकार गंगोत्तरी में हिमखंडों के गिर जाने से गंगा के प्रवाह के अवरुद्ध होने के कारण पूर्व का प्रणवनाद पूर्णतः बंद होकर निस्त-ब्धता छा जाती है, उसी प्रकार यहाँ भी महानिशि या महाशून्य जैसी निस्तब्धता

छाई हुई है। प्रकृति नटी के स्वरूप में इस विलक्षण परिवर्त्तन के कारण का अन्वेषण करने के लिये अपने मठ के ऊपर गया और कुछ समय तक वहीं खड़ा रहा। खड़े-खड़े ही पुलकांकित हो गया और शरीर की सारी सुधि-बुधि भूल गई—ज्ञात नहीं कितनी देर तक !

कुछ देर उसी प्रकार खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद, पता नहीं कितने समय, स्फुरण आने पर आँखों के सामने दूर पर नीलाकाश का भेदन करनेवाले उदयकालीन भानु के—जिनकी रश्मियाँ अभी धरातल पर कहीं नहीं पड़ी थीं—स्वर्णाम्बरों से सुसज्जित होनेवाले और गंभीरता से सरोवर का अवलोकन करने-वाले श्री कैलास-शिखर को देखा। उस समय उसका दिव्य स्वरूप सारे चराचर विश्व को संमोहित करने के लिये आई हुई मूर्त्तिमती जगन्मोहिनी जैसा प्रतीत हुआ। ऐसा लग रहा था मानो साक्षात् शिव और पार्वती संमुख आकर खड़े हो गए हैं। भेड़-बकरियाँ घेरों में से मिमियाती तक नहीं थी। जिस समय विवश करनेवाले उस दिव्य दृश्य का आनंद लूट रहा था, श्री कैलास-शिखर विविध रंगों के वस्त्रों को शीघ्रता से बदल-बदलकर, अंत में अपने स्थायी रजत-वस्त्र को धारण करना निश्चित करके सरोवर के मध्यभाग में सुशोभित स्वच्छ नील जल-रूपी दर्पण में अपने स्वरूप का अवलोकन कर रहा था। चकाचौंध लगने पर मैंने अपनी आँखों को ज़रा नीचे कर सामने स्थित सरोवर पर दृष्टि डाली। सरोवर पर दृष्टि पड़ते ही पुलकांकित हो गया और सामने के सरोवर और अपने शरीर को भूलकर निश्चेष्ट हो गया।

फिर स्मृति आने पर देखता हूँ कि भगवान् भास्कर पूर्वी पहाड़ के बहुत ऊपर चढ़ गए हैं। सरोवर के किनारे-किनारे एक मील भीतर तक चारों ओर दूध जैसी श्वेत बर्फ़ जम गई है। उस का मध्यभाग गंभीर, शांत, शुद्ध, और निर्मल जल से युक्त होकर श्री कैलास और हिमाच्छादित पोनरी के शिखर तथा प्रातःकालीन प्रकाशमान सूर्यरश्मियों को बड़ी सुंदरता से प्रतिबिंबित करके विराजमान हो रहा था। उस दिन का वह आनंदप्रद और सुंदर दृश्य कभी भी भूलने का नहीं। वह अनिर्वचनीय शोभा केवल अनुभव की वस्तु है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह निराली और अनोखी छवि चिरस्मरणीय और तन्मय

करनेवाली थी। उस समय वहाँ पर सर्वत्र पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी। निर्वाण की पूर्ण प्रशांतता की भाँति सर्वत्र शांति विराज रही थी। इस धराधाम में कौन ऐसा प्राणी होगा जो उस निर्मल और गंभीर वातावरण को देखकर आनंद-विभोर न हो जायगा! मानस के दर्शन को जानेवाले भक्तों को वह क्षण तन्मनस्क करके निर्जीव प्रतिमा की भाँति निश्चेष्ट कर देता है। अति चंचल चित्तवाले एवं परम शुष्क तार्किकों को भी एकाग्र करके ईश्वरोन्मुख कर देता है। प्लेटफार्मों के ऊपर से दिये गए आडंबरमय व्याख्यानों एवं बने-बनाये उपदेशों की अपेक्षा इस प्रकार का एक दृश्य भी मनुष्य को अंतर्मुख करने के लिये पर्याप्त है। उस वातावरण के साथ अपनी लय मिलाकर मैं छत की मुड़ेर का सहारा लेकर खड़ा हुआ और पुनः निश्चेष्ट हो गया। संसार भर में परम पुनीत और सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक स्पंदनों की अनोखी छटा से परिपूर्ण इन दोनों स्थानों ने अपनी विवश करनेवाली सौंदर्यराशि से हमें अभिभूत कर दिया। कितना प्रशांत, कितना संमोहक, कैसा आनंददायक वह दृश्य था!

दस बज गए थे। आँख खुलने पर मुड़ेर पर रक्खे हुए हाथ ठंढ से अकड़ गए। शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक समस्त वातावरण में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन हो गया और ऐसा अनुभव होने लगा कि एक दूसरे लोक में पहुँच गया हूँ। उस समय तीर-वासी जनता अपने मठों और मकानों की छतों पर चढ़कर रंग-बिरंगे झंडों और तोरणों को चढ़ा, धूप जला, प्रार्थना और स्तोत्रों का पाठ कर रही थी। सभी लोग उत्साह में भरकर उच्च स्वर में सो! सो! सो! की ध्वनियों से देवताओं को उद्बोधित कर रहे थे और मंत्र, पुरश्चरण और विशेष रूप से पूजापाठ कर रहे थे। पूरे तीन दिनों में—३० दिसंबर को—सारा सरोवर पुराण-कथित दधि-समुद्र के समान बर्फ़ से जमकर घनीभूत हो गया था। किंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वेन हेडिन लिखते हैं—"सारा मानसरोवर घंटे भर में जम जाता है[1]।" उनका यह

---

[1]स्वेन हेडिन, 'ट्रेन्स-हिमालया', (सन् १९२०), खंड २, पृ० १८० ।

कथन सर्वथा भ्रमजनक और निराधार है।

४—मानसरोवर में दरार, शब्द, और उनके कारण

पहली जनवरी से ही सरोवर में कभी-कभी विचित्र ध्वनियाँ और गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी थीं। सातवीं तारीख से लगभग एक महीने तक सरोवर में आंदोलन ने तीव्र रूप धारण कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता था कि सरोवर पेट की पीड़ा से व्यथित है या संभवतः परिक्रमा करनेवाले यात्रियों को डराने के लिये विविध प्रकार की ध्वनि, शेर का गर्जन, गड़गड़ाहट, गाड़ी की सीटी, विविध पक्षियों के कलरव, कई प्रकार के संगीतमय वाद्यों और कई प्रकार के साधारण और उच्च शब्दों को सुनाता है। ऐसा विदित होता था मानो सरोवर शीतकाल की श्वेत चादर को पहनने की अनिच्छा से, या हृदय से चादर को धारण करने की इच्छा रहते हुए भी प्राथमिक लज्जा या झिझक का प्रदर्शन करने के लिये ऐसा कर रहा है। शीतकाल की अधिकता के साथ यह आंदोलन बहुत घट गया जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो इसने वस्त्र धारण करना अंगीकार कर लिया है। पर वसंतागम में सरोवर के पिघलने के पहले फिर उच्च ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं। जहाँ तक मैंने देखा, मानसरोवर और राक्षसताल में, जल के ऊपर जमी हुई बर्फ की मोटाई २ से ६ फीट तक थी।

मानसरोवर और उसमें गिरनेवाली नदियों के (च्यू गोम्पा के पास और डिङ्छो और टग नदी के मुहाने के समीप को छोड़कर) जमने के लगभग एक महीने के बाद अंतर्वाहिनियों (सबटेरेनियन चेनल्स) के द्वारा जल राक्षस-सरोवर में जाता है। इस कारण मानसरोवर के ऊपर की बर्फ के नीचे के जल की सतह बारह अंगुल से अधिक घट गई, जिससे उसमें चारों तटों तक जमी हुई बर्फ का विशाल और भारी स्तर अपने ही महान् भार से भयंकर शब्दों के साथ फट गया, और बड़ी-बड़ी दरारें (फिश्यूर) बन गईं। उसके बाद शीतकाल में और भी पानी घट गया होगा, जिसे मैं नाप नहीं सका। ये दरारें (जिसे तिब्बती भाषा में 'मयुर' कहते हैं) तीन से छः फीट

तक चौड़ी थीं। उनसे सारा सरोवर कई भागों में विभक्त हो गया था। दो-तीन दिनों में पानी जमकर भली भाँति से न जुड़ने के कारण फिर फट गया जिससे उन दरारों के ऊपर बर्फ के बड़े-बड़े खंडों के छः-छः फीट की ऊँचाई के ढेर लग गए। इन ढेरों के बर्फ के टुकड़े कभी-कभी दरारों के ऊपर वैसे ही एक के ऊपर एक पड़े रहते हैं और कभी दरारों के दोनों किनारों में और आपस में जुड़ जाते हैं। इस प्रकार की दरारें तट के किनारे-किनारे और तट से कुछ दूरी पर सरोवर में भी बन जाती हैं, जिन्हें मैं 'किनारे की दरारें' कहूँगा। इसके उपरांत मई के महीने में जब सरोवर पिघलने लगता है तो इन्हीं दरारों में फट जाता है। सरोवर के गर्भ में अवस्थित गर्म स्रोतों से उत्पन्न होनेवाले आंदोलन भी उसके भीतर के शब्द और दरारों के होने का एक कारण हो सकता है।

इन शब्दों और दरारों से डरकर और सरोवर में नीचे धँस जाने के भय से कोई भी व्यक्ति मानसरोवर की बर्फ के ऊपर से आर-पार जाने का साहस नहीं करता। च्यू गोम्पा के भिक्षु लोगों के मना करने पर भी, शीतकाल में एक बार मैं साहस करके च्यू गोम्पा से चेरकिप गोम्पा जाने के लिये जमे हुए मानसरोवर के ऊपर एक मील तक गया। आगे चलकर अकस्मात् एक दरार के सामने पहुँच गया, जिसके ऊपर बिना जुड़ी हुई बर्फ के पाँच फीट की ऊँचाई के बड़े-बड़े टुकड़ों का ढेर लगा हुआ था। मैं उस परिस्थिति के लिये पहले से प्रस्तुत नहीं था। अंत में बड़ी ही कठिनता से विपत्ति के साथ एक घंटे तक इधर-उधर भटकते हुए उसे लाँघ सका। चेरकिप गोम्पा पहुँचने के पहले एक अन्य दरार के ढेर और एक किनारे की दरार को बड़ी कठिनाई से पार करना पड़ा। उस दिन के पूरे ब्यौरे को यदि सुनाऊँ तो बड़ी ही विस्तृत कथा हो जायगी। उस समय मुझे इस उक्ति का स्मरण हो आया कि "मनुष्य जिसे करना असाध्य कहते हैं उसे करने में बड़ा आनंद आता है।" यदि कोई वैज्ञानिक साधन-सामग्रियों से संपन्न हो तो वह शीतकाल के मध्य में प्रातःकाल के समय बर्फ के ऊपर से सरोवर को अच्छी तरह से पार कर सकता है।

५—मानसरोवर और राक्षसताल की तुलना

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, जमे हुए राक्षसताल के ऊपर लदे हुए भेड़, बकरी, याक, और घोड़े पर सवारी करनेवाले भी पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक आ-जा सकते हैं। मैंने एक बार राक्षसताल के टापुओं का निरीक्षण करने के लिये याक पर सवारी की थी। राक्षसताल में मानसरोवर जैसी बड़ी-बड़ी दरारें और फाड़ न होने का यही कारण हो सकता है कि राक्षसताल से बर्फ के नीचे से बाहर निकलनेवाले जल की पूर्ति मानसरोवर की बर्फ के नीचे से आनेवाला जल कर देता है। दोनों सरोवरों के मध्यवर्ती पहाड़ के नीचे के रेतीले स्तरों से मानसरोवर का जल सर्वदा राक्षस-ताल में निःस्यंदित होता रहता है। इसलिये राक्षसताल के ऊपर की बर्फ और नीचे के जल के मध्य में कई रिक्त स्थान नहीं है। फलतः उसमें अधिक दरारें या फाड़ नहीं होते। हाँ, कहीं-कहीं किनारे की फाड़ और छोटी-छोटी दरारें पर्याप्त मात्रा में होती हैं। राक्षसताल के बीच के टापुओं में जाते समय मैंने भी एक-एक फुट चौड़ी दरारों को पार किया था। एक बूढ़े तिब्बती से मैंने सुना था कि कभी-कभी आठ या दस वर्षों पर राक्षससरोवर में भी फाड़ और दरारें अधिक संख्या में बन जाती हैं। जमने के समय दोनों सरोवर शुद्ध और स्वच्छ, किंतु अपारदर्शी बर्फ के रूप में जम जाते हैं और एक महीने में पारदर्शी और हरे-नीले रंग के हो जाते हैं। बर्फ की मोटाई दो से छः फीट तक रहती है।

राक्षसताल मानसरोवर से २० दिन या एक मास पहले जम जाता है और १५-२० दिन बाद पिघलता है। वैसे तो राक्षसताल अक्टूबर के महीने के मध्य भाग से ही जमना प्रारम्भ हो जाता है; कहीं कहीं एक-एक मील दूर तक भी जम जाता है। इस स्थान पर यह लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि स्वेन हेडिन के इस कथन से कि "मानसरोवर से १५ दिन पहले ही राक्षस-सरोवर फट जाता है,"[१] हमारा पूर्वोक्त अनुभव एकदम विपरीत है। राक्षसताल

---

[१]स्वेन हेडिन, 'ट्रेन्स-हिमालया', खंड २, पृ० १८०।

मानसरोवर से २० दिन पहले पूरा जम गया और उस वर्ष एक महीने देर से पिघला। मानसरोवर में बहुत सी छोटी-छोटी और बड़ी-बड़ी दरारें हैं, पर राक्षसताल में बहुत कम हैं। इन दोनों झीलों में एक और भेद है कि राक्षसताल के पूरे जमने में कम-से-कम पूरा एक सप्ताह और पूरा पिघलने में उससे कुछ अधिक दिन लग जाते हैं, जब कि मानसरोवर के जमने और पिघलने में तीन ही दिन लगते हैं। राक्षसताल के फटने के समय कई दिनों तक बर्फ के बड़े-बड़े टुकड़े इधर-उधर तैरते हुए दिखलाई पड़ते हैं। जिससे कैलास के पास की तरछेन मंडी को पहले पहल जानेवाले भारतीय भोटिया-व्यापारी उक्त ताल पर तैरते हुए बर्फ के टुकड़ों को देखते हैं, पर मानसरोवर में ऐसा नहीं होता।

मैंने राक्षसताल के आसपास का वातावरण मानसरोवर से अधिक ठंढा पाया है और उसके चारों ओर अधिक बर्फ पड़ती है। शीतकाल में राक्षस-सरोवर के दक्षिण और पश्चिम के किनारों पर ऊँचे-नीचे पर्वत और घाटियों में प्रचुर परिमाण में गिरी हुई बर्फ से बनी हुई विचित्र ढंग की धारियाँ 'ज़ेब्रा' के समान बहुत शोभायमान लगती हैं। खाड़ी, अंतरीप, प्रायद्वीप, जलसंधि, डमरूमध्य, और पथरीले तटादिओं से युक्त टेढ़े-मेढ़े किनारे और बीच के पहाड़ी द्वीप राक्षसताल के प्राकृतिक रम्य दृश्य की शोभा को और भी बढ़ा रहे हैं। मानसरोवर का किनारा अपने पश्चिमी साथी के किनारे से अधिक सीधा है।

भूगोलशास्त्रवेत्ता के दृष्टिकोण से राक्षसताल मानसरोवर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह (राक्षसताल) एक कोने में बड़ी-बड़ी उछलती हुई तरंगों से युक्त है, दूसरे कोने में दर्पण जैसा निर्मल और शांत है, तीसरे कोने में दूर तक पानी जमा हुआ दिखाई देता है और उस पर कैलास प्रतिबिम्बित दीख पड़ता है!

मानसरोवर की गहराई प्रायः ३०० फीट है, पर राक्षसताल की गहराई उत्तर में उसकी आधी है। संभव है दक्षिण की ओर इसकी गहराई अधिक भी हो, पर अभी तक यह नापा नहीं गया। मानसरोवर तिब्बत के सभी सरोवरों से अधिक गहरा है। इसके किनारे आठ मठ और कई घर बने हुए हैं और

१. लाचातो—राक्षसताल का छोटा द्वीप।

२. तोप्सेरमा—राक्षसताल का बड़ा द्वीप।
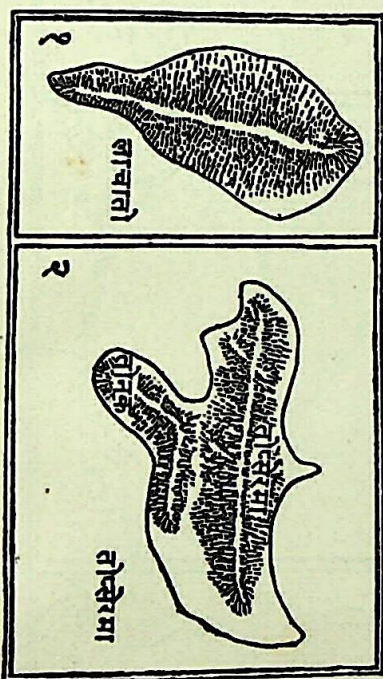
३. मानसरोवर कैसे जमा । ४. मानसरोवर में दरारें (सन् १६३६—३७) । ५. मानसरोवर कैसे पिघला ।
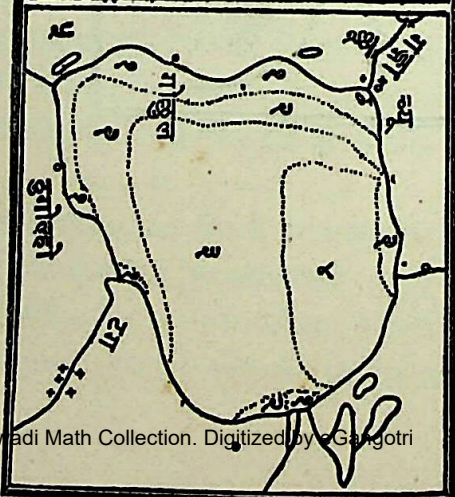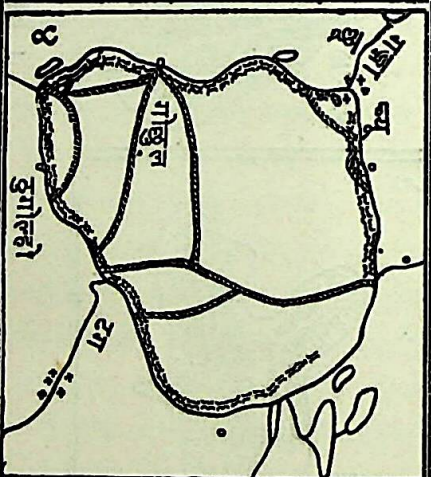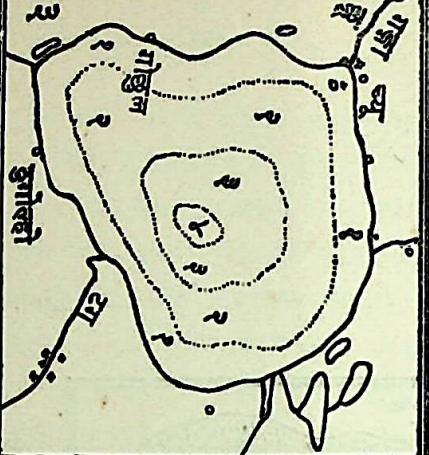
१. पहली रात में जमा ।
२. दूसरी रात में जमा ।
३. तीसरी रात में जमा ।
४. चौथे दिन प्रातः जमा ।

IIIIIIII प्रधान दरारें ।
किनारे की दरारें ।
\+ गर्म जल के सोते ।

१. मानसरोवर पिघलने से एक महीना पहले गल गया ।
२. मानसरोवर पिघलने से दस दिन पहले गल गया ।
३. मानसरोवर पिघलने के दिन ।
४. मानसरोवर पिघलने से तीन दिन बाद ।

राक्षसताल के किनारे पर वायव्य कोण में छेपगो[1] (चपग्ये) गोम्पा और पश्चिम में शुङ्वा के गोवा का केवल एक घर है। मानसरोवर की परिधि लगभग ५४ मील और राक्षसताल की ७७ मील है। मानस का क्षेत्रफल २०० वर्ग मील और राक्षस का १४० वर्गमील है। मानसरोवर का उत्तरी तट अधिक और दक्षिणी तट कम लंबा है; राक्षसताल का उत्तरी तट संकीर्ण और दक्षिणी तट लंबा है। मानसरोवर उत्तर से दक्षिण १३ मील और पूर्व से पश्चिम १४ मील लंबा है। और राक्षसताल क्रम से १७ और १३ मील है। मानसरोवर के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर के तट १६, १०, १३, और १५ मील लंबे हैं और राक्षसताल के तट क्रमशः १८, २२, २८½, और ८½ मील हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य में राक्षसताल मानसरोवर से किसी अंश में कम नहीं है; परंतु आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मानसरोवर अद्वितीय, अतुल, और निराला है। संभवतः स्थानीय वायु के कारण मानसरोवर की अपेक्षा राक्षसताल के पास अधिक आँधी और ठंढक रहती है। मानसरोवर की अपेक्षा राक्षसताल के किनारों के विशेष ठंढे, उसके शीघ्र जमने और विलंब से पिघलने में राक्षसताल की कम गहराई भी एक कारण हो सकती है। यह एक आकर्षण का विषय है कि इन दोनों के साथ रहते हुए एवं परिमाण में लगभग समान होते हुए भी प्रकृति और स्वभाव में इतना महान् अंतर है।

स्वेन हेडिन लिखते हैं—"शीतकाल में मानसरोवर का पानी बर्फ के नीचे २० अंगुल घट जाता है...परंतु राक्षसताल का जल केवल ¾ या १ इंच घटता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वह सदा पूर्वी सरोवर से पानी ग्रहण करता है और बहुत अल्प जल को बाहर भेजता है।"[2] स्वेन हेडिन जुलाई और अगस्त के महीनों में इन सरोवरों पर गए थे, न कि उस समय जब कि वे जमे हुए थे। इसलिये शीतकाल की उनकी सारी जानकारी उनके तिब्बती नौकरों या पथ-प्रदर्शकों से प्राप्त सुनी-सुनाई सामग्री के आधार पर

---

[1]इस मठ का प्रधान देवता ल्हमो है। यह मशङ्गोम्पा की शाखा है।

[2]'ट्रेन्स हिमालया', खंड २, पृ० १८०।

थी, जो कि उन्हें अयथार्थ रूप में बताई गई थी। जब राक्षसताल मानसरोवर से लगातार जल ग्रहण करता है और बहुत अल्प परिमाण में ही बाहर भेजता है, तो मानसरोवर से अंतर्वाहिनियों द्वारा निःस्यंदित होकर आया हुआ २० अंगुल का जल कहाँ चला गया? वे जैसा लिखते हैं कि राक्षसताल से जल अत्यल्प परिमाण में ही बाहर जाता है, तो उस अवस्था में राक्षसताल के जल की तह बढ़ जानी चाहिये थी और परिणामतः उसके ऊपर की बर्फ फटकर उसमें मानस से अधिक नहीं तो कम से कम उतनी ही दरारें और फाड़ें होनी चाहिये थीं। परंतु वे साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि राक्षसताल का जल $\frac{3}{4}$ या १ इंच ही घटा है! क्या वे उन तिब्बतियों से जिन्होंने मानसरोवर के जल की सतह के बारे में कई फीट के अंतर बताए थे, यह आशा कर सकते हैं कि वे $\frac{3}{4}$ या १ इंच का अंतर बता सकेंगे? अतः उनके कथन के विरुद्ध हम डंके की चोट पर यह कहते हैं कि राक्षसताल से, अंतर्वाहिनियों के द्वारा तथाकथित 'सतलज के पुराने रास्ते' (ओल्ड बेड ऑफ दी सटलेज) से या किसी अन्य रूप से बाहर जानेवाले जल का परिमाण उतना ही होना चाहिये जितना कि वह मानसरोवर से ग्रहण करता है, संभवतः अधिक भी।

६—जमे हुए सरोवर में विचित्रताएँ

जमे हुए मानसरोवर में लगातार चित्र-विचित्र और अद्भुत् दृश्य दिखलाई पड़ने लगते हैं, जिनका पूर्ण रूप से वर्णन करना असंभव है। तथापि कुछ वर्णन करने की चेष्टा की जायगी। कभी तो सरोवर दधिसमुद्र की भाँति धवलातिधवल अतिश्वेत हिम से ढका रहता है, और कभी दूसरे समय में संभवतः अपने पूर्वरूप को धारण करने की इच्छा से, अकस्मात् रात भर में अपारदर्शी श्वेत हिम को स्वच्छ पारदर्शी हिम के रूप में परिवर्तित करके गर्भस्थ छोटे-बड़े पत्थर, रेत, घास, जमकर मरी हुई और जीवित चलती-फिरती मछलियों को प्रदर्शनियों में रक्खे हुए शीशे के बक्स की वस्तुओं की भाँति प्रदर्शित करता है। एक बार कभी विविध नादों को सुनाता है और किसी दूसरे समय में एकदम निःशब्द हो जाता है।

ऐंद्रजालिक की भाँति एक समय में निमापेंडी के दक्षिण में बर्फ को तोड़कर पतले-पतले पौन इंच के मोटे शीशों के टुकड़े जैसे बर्फ के टुकड़ों को धमाधम ऊपर फेंककर ढेर के ढेर लगा देता है। सवेरा होने तक किनारे की दरारों के कारण तीन-तीन, चार-चार फीट मोटे बर्फ के बड़े-बड़े ढेरों और खंडों के छः से नौ फीट तक ऊँचे, १० से २१ फीट तक चौड़े तथा सैकड़ों गज लंबे बाँध का निर्माण कर देता है। किसी और समय में हठात् अंदर के अन्यान्य आंदोलनों से उत्पन्न हुए भूकंप की भाँति तरंगों को उत्पन्न करके, उन बाँधों को ताश के बने हुए महलों के समान धड़ाधड़ गिरा देता है; और किनारे से मन में मगन होकर माला फेरते हुए परिक्रमा करनेवाले यात्रियों को चौंका देता है। ये बाँधवाले बर्फ के टुकड़े कुछ तो ठुगोल्हो से शुशुप छो तक टेढ़े होते हैं और वहाँ से गोछुल तक सीधे होते हैं। गोछुल से छेती छो तक एक-एक, दो-दो अंगुल के मोटे और बड़े-बड़े तख्ते जैसे बर्फ के टुकड़ों के ढेर लगा देता है। ठुगोल्हो से छेती छो तक किनारे के दरारों के फूटने से बीस-बीस, पचास-पचास घनफीट के बर्फ के टुकड़ों को किनारे के ऊपर जल की सतह से पाँच फीट से साठ फीट तक प्रचंड वेग से ऊपर फेंक देता है।

छेती छो से लेकर मल्लाठक नामक ज्वालामुखी पर्वत के सिरे तक, सरोवर में बहकर आये हुए घास को एकत्रित करके कोमल गद्दी बना देता है। एक कोने में ज्वालामुखी पहाड़ के सिरे पर जल को भूमि तक पारदर्शी हिम के रूप में जमाकर अपने तल को दिखा देता है। तटों पर ही नहीं, प्रत्युत् अपने गर्भ में भी गर्म स्रोतों को दिखाने के लिये मध्य-शीतकाल में भी जब सरोवर २ से ६ फीट बर्फ से ढका रहता है और तापक्रम हिमांक से ३०° नीचे रहता है (२८-१-१९३७) तो च्यू गोम्पा के पास ज्वालामुखी पहाड़ की नोक से ५० गज, सरोवर के भीतर, ३० फीट लंबे स्वच्छ और नीले जल का प्रदर्शन करता है, जिसमें उस कठोर शीतकाल में भी कुछ जलपक्षी आश्रय ग्रहण करते हैं। एक कोने में बर्फ का समतल और विशाल मैदान बना देता है। कुछ दूर तक सभी प्रकार के बर्फ के टुकड़ों को एकत्रित कर लेता है।

चङ डोङखङ से ग्युमा छू तक आलू की खेती के समान एक-एक फुट

ऊँचे और ३ फीट के अंतर पर किनारे से लेकर सरोवर में आधी मील की अपारदर्शी बर्फ की कतारें बना देता है। उस के मुखद्वार पर सैकड़ों छोटी-छोटी मछलियों को तैरते-तैरते पारदर्शी बर्फ के रूप में जमा कर प्रदर्शित करता है। आगे ग्युमा छू से लेकर शम छो तक ८ फीट की ऊँचाईवाले अपारदर्शी बर्फ से बने हुए शिखरों, घाटियों, घाटों, और अधित्यकाओं से युक्त पर्वतश्रेणियों के सुंदर नमूने बना रक्खे हैं। मैंने शीतकाल में मानसरोवर की परिक्रमा करते समय हिमालय के विविध शिखरों के सादृश्य का पता लगाते-लगाते पूरे दो-घंटे बिता दिए थे। इन पर्वत-पंक्तियों में गोले, चौड़े, नुकीले, तिरछे, चौपहले, जुड़े हुए, फणोंवाले और ढालू तथा विविध प्रकार के शिखरों को देखा।

शम छो से लेकर गुगटा के मुख तक धान रोपते समय बैलों के खुरों से चिह्नित खेत की भाँति बर्फ के विस्तृत मैदान को फैलाए हुए है। सचमुच पुनीत सरोवर की शीतकाल की प्रथम परिक्रमा के समय उन चिह्नों को मैंने जंगली घोड़े और याकों का खुर-चिह्न समझा था। गुगटा के मुख में बारहों महीने तक जल रखे रहता है, वहाँ से एक मील आगे तक श्वेत बर्फ को प्रवाल की शैलश्रेणी की भाँति बनाये रखता है। और यहाँ से ठुगोल्हो तक निमापेंडी के मुखद्वार को छोड़कर किसी अन्य विशेष दृश्य का प्रदर्शन नहीं करता, वरन् सभी प्रकार के बर्फों के टुकड़ों को दिखलाता है। विशेषकर ग्युमा छू और टग के बीच में किनारे-किनारे छः से दस फीट तक चौड़ाई की बर्फ की विशाल सड़क बना रखी है, जिस पर स्केटिंग सीखनेवाले अभ्यास कर सकते हैं। उस पर चलते समय थक जाने पर मैं आनंद से फिसल-फिसल कर दौड़ते हुए चलने लगता था।

इसके अतिरिक्त जमे हुए मानसरोवर की कुछ अन्य मनोरंजक बातों को कहकर फिर सरोवर के फटने के विषय में कहूँगा। कुछ स्थानों पर बर्फ को तोड़कर जल को पिचकारी की भाँति फेंक कर एक छोटा-सा तालाब बना देता है और फिर रात में उस को जमा देता है। पर वसंत ऋतु के आरंभ में उस प्रकार के बने हुए तालाब बड़े होते हैं, जो आरंभ में आये हुए हंस के जोड़ों

के स्वागत के लिये प्रस्तुत रहते हैं। सर्वदा गंभीर भाव से बने रहना मानस के लिये भी कठिन हो जाता होगा, मानो इसलिये कभी-कभी वह विनोदियों की भाँति पारदर्शी स्फटिक के समान अपने गंडस्थल में हज़ारों बड़ी-बड़ी आलपीनों और सुइयों को लगा लेता है। किसी दूसरे समय में दूसरे गाल के ऊपर और भीतर भी छोटी-छोटी बिंदियों, कई प्रकार की चित्र-विचित्र लताओं और फूलों को लगाकर यात्रियों को हँसा कर आनंदित कर देता है। मानो रात के समय देवगण बिहार करके चले गए हैं, इसलिये अपने पारदर्शी नीले बर्फीले वस्त्र के ऊपर कई श्वेत पगडंडियों और लकीरों का निर्माण कर देता है, जिन्हें अचानक किसी रात में इंद्रजाल की भाँति अदृश्य कर देता है। इन मार्गों और लकीरों में फाड़ न होने पर भी इन्हें एक प्रकार की छोटे दरारें कह सकते हैं। दक्षिण भारत में मकर-संक्राति के अवसर पर जिस प्रकार महिलाएँ आँगनों में चौक पुराते समय भाँति-भाँति के पद्म और लताओं को चित्रित करती हैं, ठीक उसी प्रकार किसी समय मानसराज अपनी नीली चादर को तरह-तरह के सफेद बेल-बूटों से सुसज्जित कर देता है। जब सरोवर पिघलने लगता है तो वर्फ के बड़े-बड़े दरारों में फटने तथा आपस में टकराने से इन पगडंडियों और छोटी-छोटी लकीरों में छोटे-छोटे टुकड़े बन जाते हैं।

किसी समय बालकृष्ण की भाँति अपने मुँह को खोलकर अपने जबड़े के मध्य में उदर-स्थित पत्थर, रेत और मिट्टी को, विश्वरूप की भाँति प्रदर्शित करता है। कुछ समय बाद उस विश्वरूप को समेटकर उन पत्थर आदि को किनारे से कुछ दूर तट पर बिछा देता है, या ढेर बना देता है। कभी एक कोने में एक आँख से आँसू बहाता है, और कभी दूसरे समय आनंदाश्रु की वर्षा करता है। कभी-कभी रात में कई मनों के भारवाले बड़े-बड़े हिमखंडों को किनारे के ऊपर मध्यमार्ग में फेंककर यात्रियों को अचंभे में डाल देता है। कभी रात में तोप की फायर करके किनारे के पास के उदरस्थित छोटे-छोटे पत्थर आदि वस्तुओं को सात-आठ गज दूर ढकेल देता है। कुछ काल के बाद उनको वहीं ढेर रूप में छोड़कर अंतर्हित हो जाता है। गर्मी के दिनों में जानेवाले यात्रीगण किनारे के ऊपर के मार्गों में पड़े हुए इन पत्थरों के ढेरों

को देखकर 'सरोवर के भीतर के ये श्वेत रेत और पत्थरादि किस प्रकार यहाँ जल से इतनी दूर पर आए होंगे'। ऐसा विचार कर अनेक प्रकार के तर्कवितर्क करते हैं। एक यात्री दल में आपस में जो बातें हो रही थीं उसका वास्तविक वर्णन यहाँ पर कर रहा हूँ, जो बहुत ही मनोरंजक है।

७—यात्रियों के एक दल का मनोरंजक वार्तालाप

इंजिनीयर—डाक्टर साहब, यह एक आश्चर्य की बात है कि सरोवर के भीतर के पत्थर, रेत, और मिट्टी किनारे के ऊपर इतनी दूर कैसे आ गये?

पुरोहित—इसके लिये इतने आश्चर्य और विचार की क्या आवश्यकता है! शीतकाल में जब यहाँ पर मनुष्यों का आवागमन नहीं रहता उस समय देवताओं ने विहार के लिये यहाँ आकर खेल में इन पत्थरों को एकत्रित किया होगा।

डाक्टर—'ऑर्थोडॉग' लोग तो ऐसे ही भ्रम में पड़ते हैं। जहाँ पर कच्चा मांस खानेवाले राक्षस हों वहाँ देवताओं का आगमन कैसा?

वकील—शायद उन्हें हंसों ने लाकर इकट्ठा किया होगा।

कालेज का एक सायन्स का विद्यार्थी—नानसेन्स! इतने बड़े-बड़े ढेर! इतने बड़े-बड़े पत्थर! (बड़े-बड़े पत्थरों को दिखाते हुए) भला इतने बड़े-बड़े पत्थरों और रेत को हंस कैसे ला सकते हैं? यदि सचमुच में हंस ही लाए हों तो वे राक्षस-हंस होंगे। ऐसा यदि मान भी लिया जाय तो उनके पैरों के चिह्न तो कहीं दिखलाई नहीं पड़ते।

पुरोहित—हंस के पद-चिह्न वायु के कारण मिट गए होंगे। उन के अंडे तो मुर्गी के अंडों से तीन चार-गुना बड़े देखे गए हैं। इससे अनुमान होता है कि वे हंस बड़े-बड़े होंगे और संभवतः इन पत्थरों को लाने में समर्थ भी होंगे।

डाक्टर—संभवत: शीतकाल में सरोवर की बर्फ फटती होगी और उसके बड़े-बड़े टुकड़े सरोवर से इन पत्थरों को ढकेल कर ऊपर लाते होंगे। पीछे बर्फ के गलने पर ये यहाँ रह गए और अब हमें आश्चर्य में

डाल रहे हैं।

थोड़ी-सी अंगरेजी जानने वाले पंडित—आजकल के 'हेट्रोडॉग' और नव-नागरिक लोग ऐसा ही वितंडावाद करते हैं। 'देवताओं द्वारा लाये गए' कहने पर आपने पुरोहित जी को आँर्थोडॉग कहा। 'हंसों के द्वारा लाये गए' कहने पर उस स्कूलिये लौंडे ने नानसेन्स कहा। शीतकाल में सरोवर का फटना कैसा? फिर फटी हुई बर्फ के टुकड़ों का इतनी दूर आना कैसा? यदि आ भी जायँ तो इतने पत्थर, रेत और मिट्टी का पाँच गज तक ढकेल कर आना! ऐसा ही सायन्स है, जिसे तुमने डाक्टरी में पढ़ा है?

डाक्टर—हमारे स्वयं न देखने पर भी यदि बर्फ के बड़े-बड़े टुकड़ों के ढकेलने से ये नहीं आए हों तो सरोवर से इन ढेरों तक दो-दो गज के चौड़े रास्ते जैसा निशान क्या है?

सायन्स का विद्यार्थी—(ताली बजा कर) हाँ, पुरोहित जी, ज़रा इसका जवाब तो दे दो।

पंडित—(विद्यार्थी की ओर देखकर) रे मूढ़! चुप रह। (डाक्टर की ओर मुड़कर) सरोवर से इस ढेर तक रास्ता है। अच्छा (दूसरे पत्थरों की ओर निर्देश करके) यहाँ भी तो पत्थर बिछे हुए हैं। सरोवर से यहाँ तक कोई रास्ता या चिह्न नहीं है। इसका क्या उत्तर देते हो?

पुरोहित—(उच्चस्वर से) क्यों डाक्टर! दो, उसका उत्तर दो! अभी देना होगा!

डाक्टर—देखिये, यह सरोवर के पानी के नजदीक है और इसमें सरोवर की मिट्टी भी है। इससे मालूम होता है कि शायद मानसरोवर के नीचे के पत्थर के साथ जमी हुई बर्फ फटकर ऊपर उछल कर आ गई है। इसीलिये सरोवर से यहाँ तक कोई निशान नहीं है।

पंडित—एक गज लंबे-चौड़े बिछे हुए पत्थरों को लाने-वाले बर्फ के टुकड़े कितने बड़े होंगे? फटकर उतने बड़े टुकड़े सरोवर से ऊपर किनारे पर उछल कर चले आए—ऐसा तुम्हारा सायन्स कहे तो सच, और

देवताओं और हंसों के द्वारा लाये जाने की बात हमारे शास्त्रोंकी झूठी है?

डाक्टर—प्रकृति में कितनी शक्ति छिपी है, इसका भी कुछ पता है आपको? अपनी अटकल और अनुमानों को छोड़कर ज़रा सरोवर के किनारे पर साल भर निवास करनेवाले स्वामी जी से पूछें (मेरी ओर निर्देश करके) कि इन्होंने शीतकाल में किसी देवता को देखा है?

पंडित—हाँ, इसी तरह रास्ते पर आइए। (हमारी ओर होकर) स्वामी जी! आप शीतकाल में यहाँ रहे क्या? आप बता सकते हैं कि सरोवर के बीच से ये पत्थर किनारे पर कैसे आ गए?

मैं—डाक्टर साहब ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। (और कुछ कहना चाहता था कि बीच में ही पुरोहित जी बोल उठे)

पुरोहित—कहाँ देवताओं का निवास-स्थान मानसरोवर और कहाँ कठोर शीतकाल में स्वामी जी का यहाँ पर रहना! ग्रीष्म में यात्रा करने पर भी तो यहाँ ठंढक के कारण हमारी मरने की दशा हो रही है। शीतकाल में इनके यहाँ रहने की बात को मानने पर भी—पहले तो हम इसे मानते ही नहीं—ये शीतकाल में कैसे बाहर आए होंगे और इन सभी वस्तुओं को किस प्रकार इन्होंने देखा होगा! इसके अति-रिक्त साधु लोग तो बड़ी लंबी-चौड़ी गपें हाँकते हैं।

मैं—(थोड़ा मुस्कराते हुए) हाँ, पुरोहित जी महाराज, मैंने सचमुच वर्ष भर मानसरोवर के तीर पर निवास किया है तथा श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर की कई परिक्रमाएँ भी की हैं। उसमें भी मानसरोवर के पूरे जमने के बाद छः परिक्रमाएँ पूरी की थीं। इन सभी बातों को घटते हुए तो मैंने स्वयं देखा है।

पुरोहित—वाह! वाह! वाह! इतनी देर तो हमें कुछ विश्वास भी था, अब तो हम आपकी बातों को मानेंगे ही नहीं। सभी सरासर गप और झूठी हैं। क्या स्वामी जी आप भी कुछ इंगलिस पढ़े हैं जो डाक्टर की बकवास में हाँ में हाँ मिला रहे हैं?
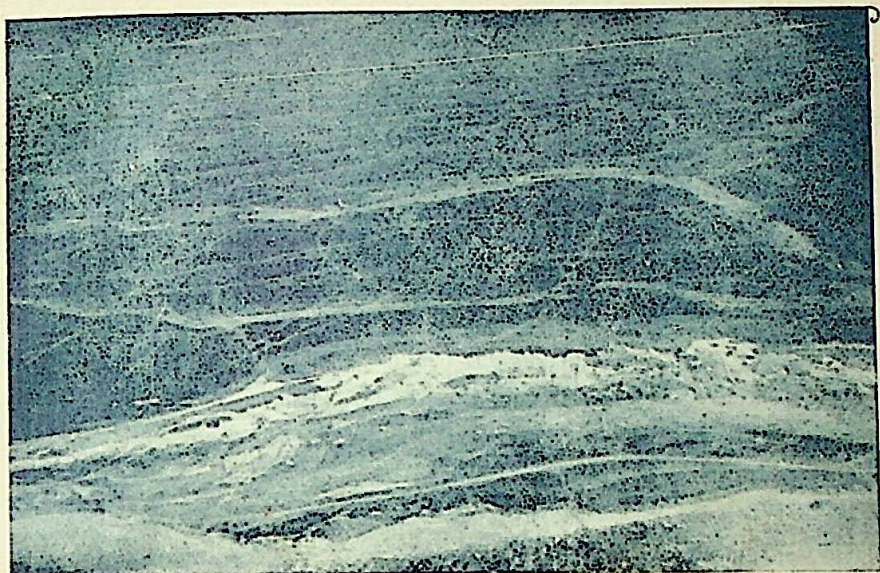
दरार और फाड़ों से युक्त जमा हुआ मानसरोवर

[देखो पृ० १०१
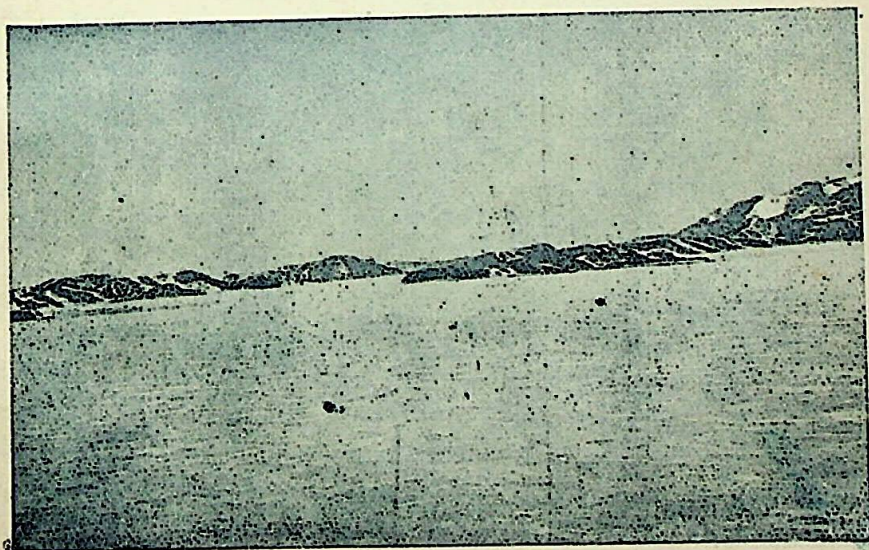
दरार रहित राक्षसताल—लाचातो से तोप्सेरमा की ओर

[देखो पृ० ९५
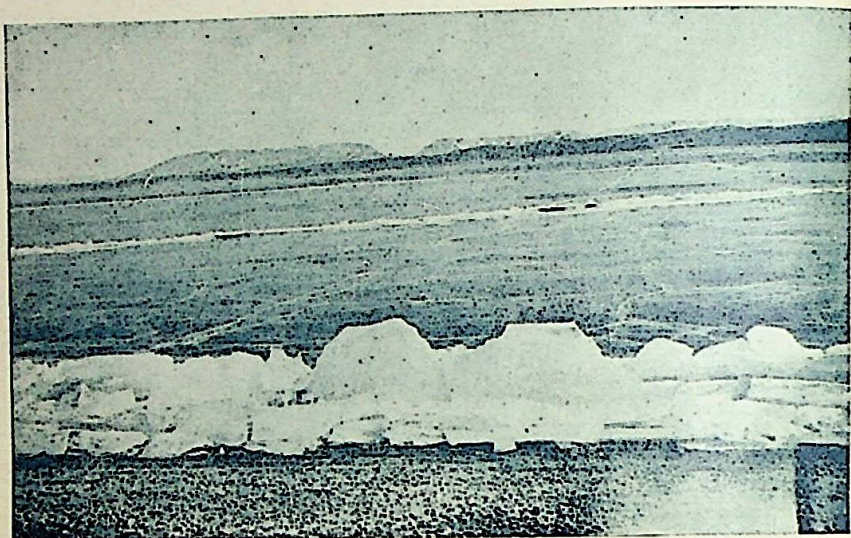
शीतकाल में जमे हुए मानसरोवर में बड़े-बड़े सीधे हिम खंड

[देखो पृ० ९९
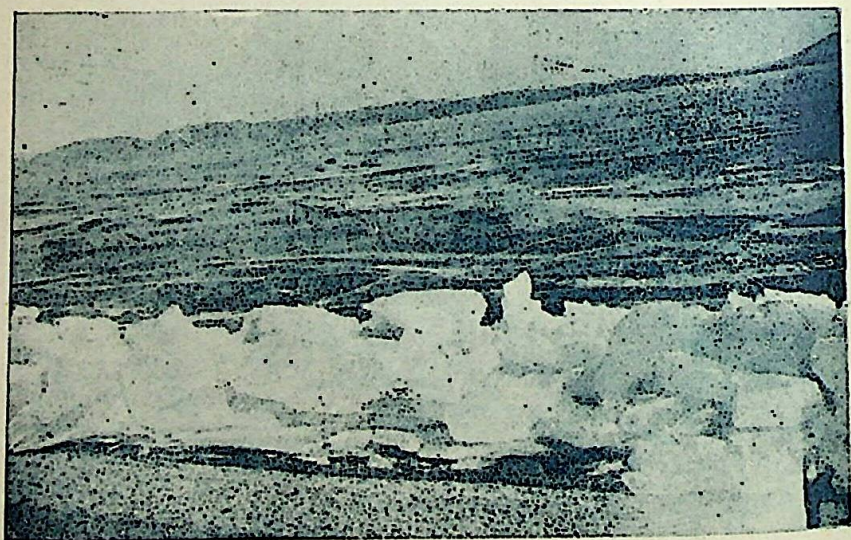
शीतकाल में जमे हुए मानसरोवर में टेढ़े-मेढ़े हिमखंड

 [देखो पृ० ९९
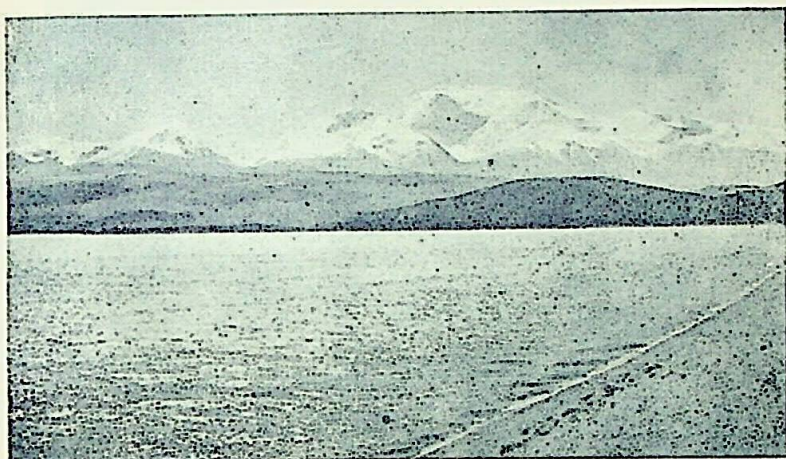
एक कोने में तरंगों से युक्त राक्षसताल और मांधाता

[देखो पृ० ६६
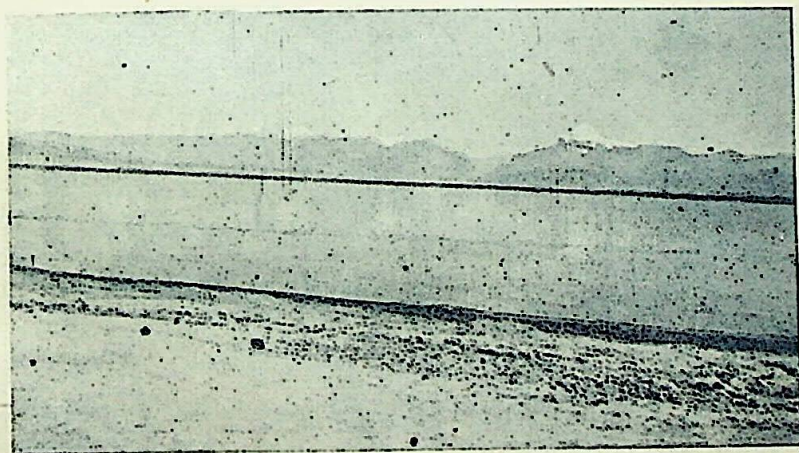
दूसरे कोने में जमा हुआ रावणह्रद और कैलास-शिखर
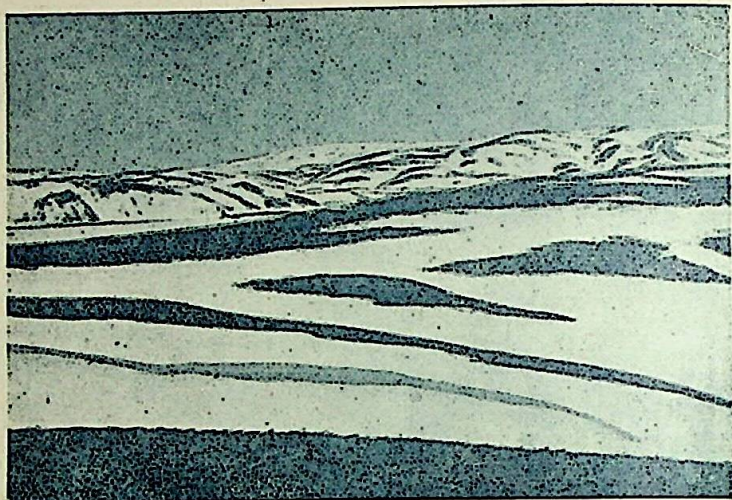
[देखो पृ० ६६

शीतकाल में 'जेब्रा' के समान बर्फ की धाराओं से युक्त राक्षसताल का दक्षिणी तट

[देखो पृ० ६६
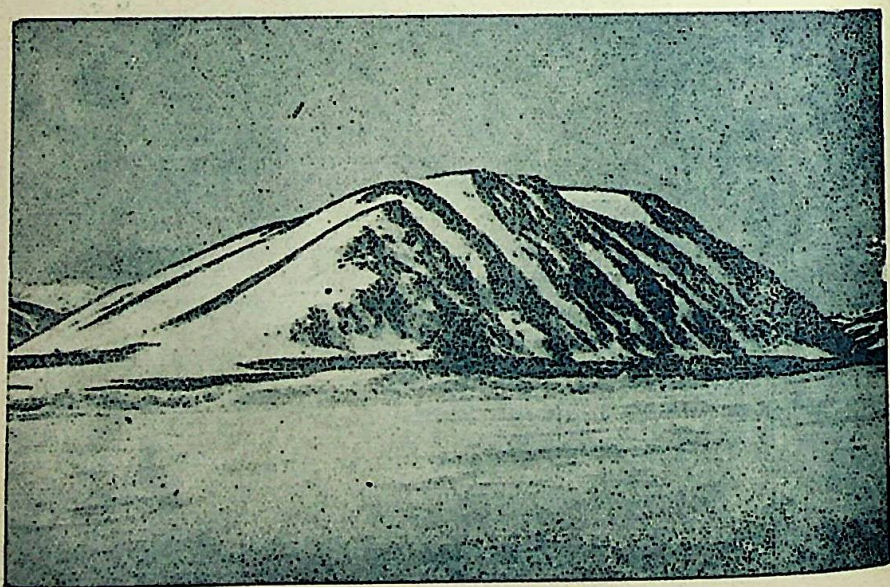
लाचातो—राक्षसताल का छोटा द्वीप
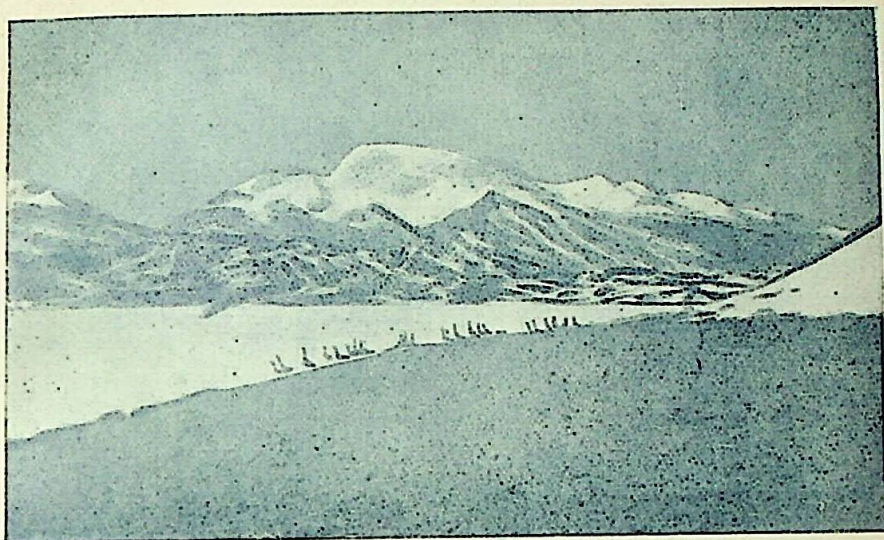
[देखो पृ० ६०

लाचातो-द्वीप पर हंस

[देखो पृ० ६०
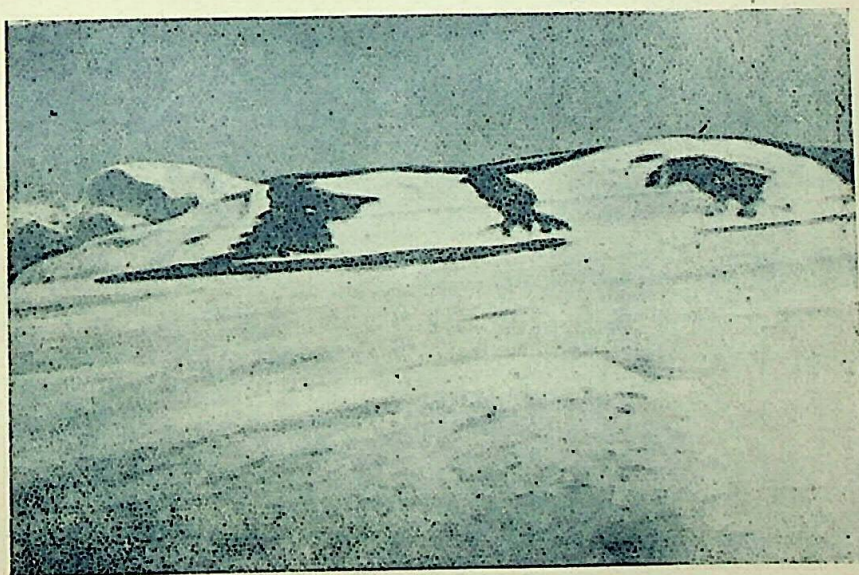
तोप्सेरमा—राक्षसताल का बड़ा द्वीप

 [देखो पृ० ६१
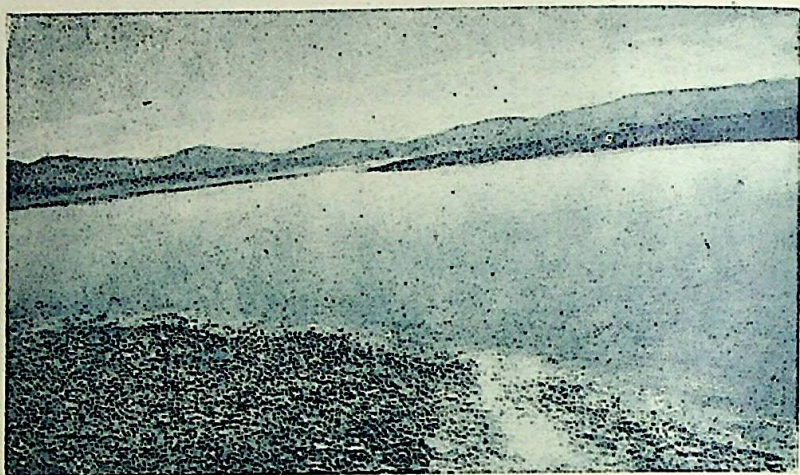
राक्षसताल से सतलज का निकास

[देखो पृ० ५६
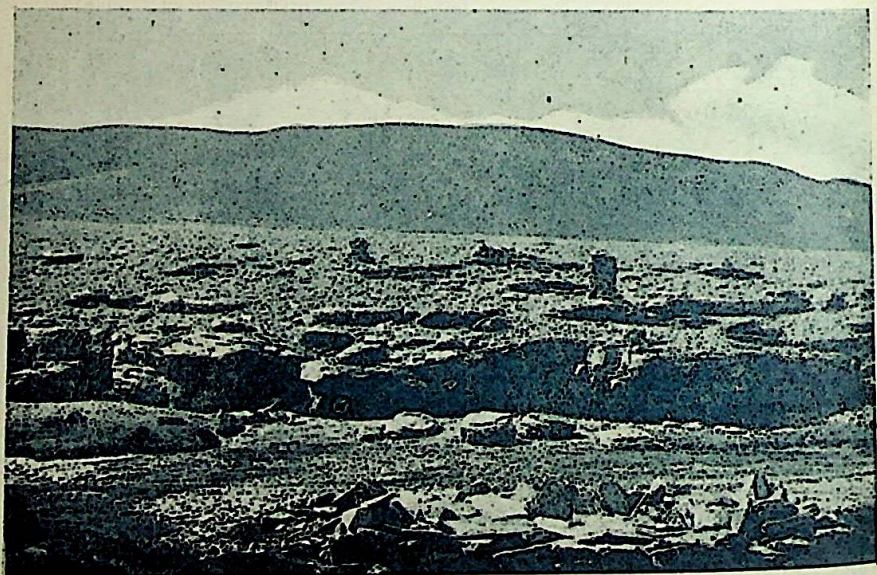
सिगी खम्बब् के सोते—सिधु नदी का उद्गम

[देखो पृ० ५१
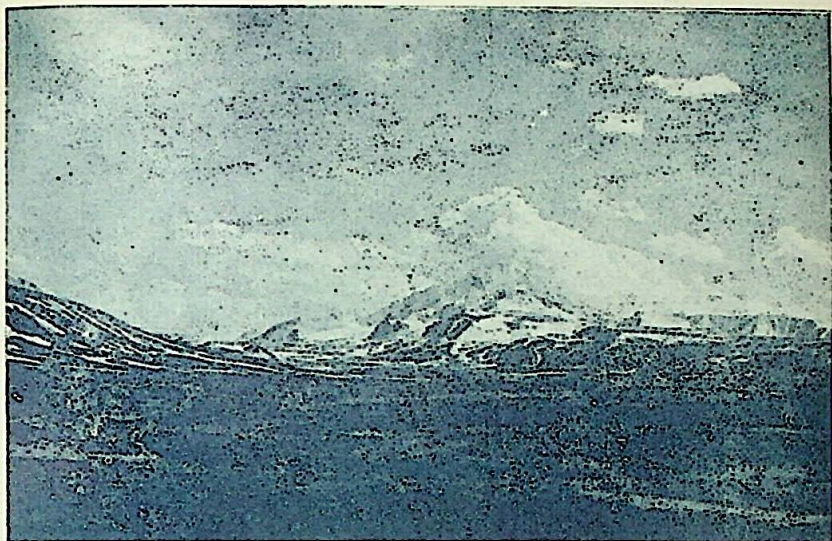
कङलुङ कङरी की हिमनदियाँ--टग नदी का उद्गम

[दखो पृ० ५२

चेमायुङडुङ-पू हिमनदी—ब्रह्मपुत्र के उद्गम की एक हिमनदी
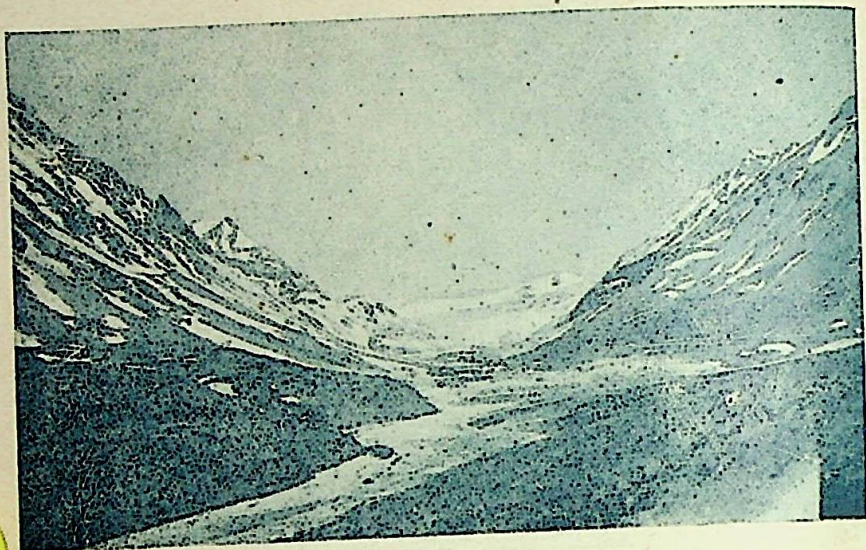
[देखो पृ० ५१

तमचोक खम्बव् कङ्री हिमनदी—ब्रह्मपुत्र के उद्गम की मुख्य हिमनदी

[देखो पृ० ५१
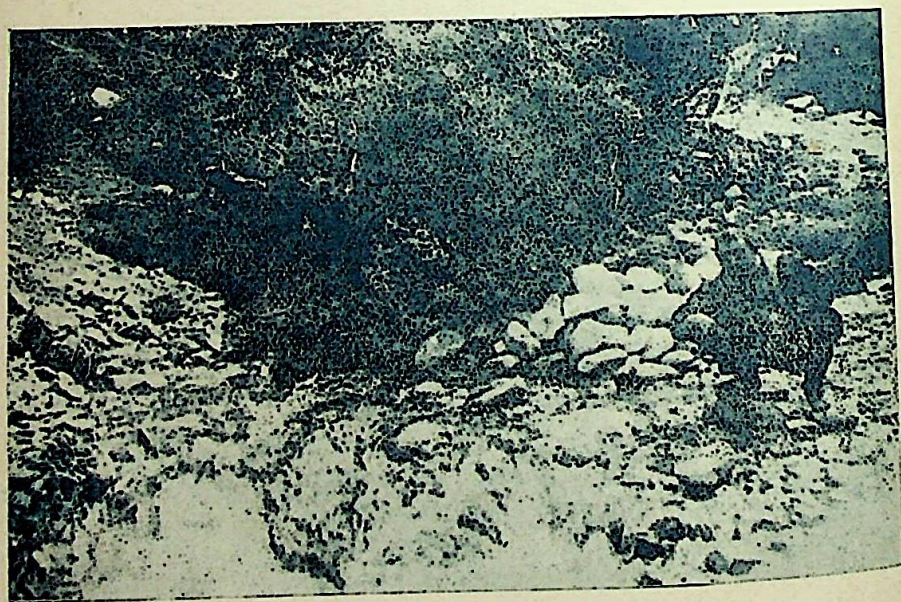
मपचा चुंगो स्रोत—करनाली का उद्गम

[देखो पृ० ५१, ३६६

संस्कृत का एक विद्यार्थी—यह तो मानतलाई है, असली मानसरोवर नहीं है। अतः ये यदि इसके किनारे पर रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सायन्स का विद्यार्थी—धत्! तुम्हारी पढ़ाई पर राख पड़ गई। तलाई का अर्थ क्या है, नहीं जानते? तलाई हिंदी का और सरोवर संस्कृत का शब्द है। इसीलिये संस्कृत के विद्यार्थियों की जंगलियों में गिनती है। बस, बस, चुप रहो।

एक दंडी स्वामी—हमने अपने गुरु जी को ऐसा कहते हुए सुना था कि मानसरोवर के पास एक शिला-नदी है, जिसमें अँगुली डालने पर पत्थर हो जाती है। इस प्रकार पत्थर बनी अँगुलीवाले एक महात्मा को हमने स्वयं देखा भी था। इसके अतिरिक्त हमने पुराणों में यह भी पढ़ा है कि मानसरोवर की लंबाई और गहराई कई योजनों की है। उसमें सोने के कमल, बड़े-बड़े मोती और राजहंस होते हैं। यहाँ इनमें से कुछ भी नहीं हैं। इसलिये यह असली मानसरोवर नहीं है; नकली होगा।

सायन्स का विद्यार्थी—ऐसे एन्टीक्वेटेड (पुराने विचारवाले) संन्यासी-पलटनों को रेफॉर्मेटरी स्कूलों में भेज कर उनकी बुद्धि को रेती से तेज कर देना चाहिये। देखिए न, मानसरोवर को कई योजन गहरा कहता है! वाह!

वकील—इन बहसों को छोड़ हम लोग अपने गाइड की गवाही लें। वह तिब्बती घोड़ेवालों से पूछकर हमें असली बात बतावेगा। (गाइड की ओर मुड़कर) गाइड! इन हूणियों से पूछो कि ये पत्थर के ढेर सरोवर से ऊपर कैसे आए?

पंडित—हाँ, यह तो ठीक है।

गाइड—(घोड़ेवालों से देर तक बातचीत करके) बाबूजी! हूणियों का कहना है कि डाक्टर साहब और स्वामी जी जो कुछ कह रहे हैं, वह सच है। उनमें से कुछ लोगों ने जमे हुए मानसरोवर की परिक्रमा करते हुए और जमे हुए राक्षसताल के द्वीपों के ऊपर जाते हुए स्वामी जी को स्वयं देखा है, क्योंकि ये लोग घोड़े के साथ स्वामी जी की सवारी में थे।

पुरोहित—ऊँह ! वे तो पूरे जंगली हैं। वे क्या जानते हैं ?

डाक्टर—(संभाषण को झगड़े में परिणत होने से रोकने के लिये मीठे स्वर में) पुरोहित जी, अच्छा, आप जो कुछ भी कहें, वही सच है।

पुरोहित—हाँ, बाबूजी, इस प्रकार राह पर आइए।

अध्याय ३

मानसरोवर का पिघलना

१—मानसरोवर के पिघलने से पहले का उपक्रम

मानसरोवर के जमने की सुंदरता की अपेक्षा उसके पिघलने की क्रिया कहीं विशेष मनोरंजक है। सरोवर मानो अपनी श्वेत चादर से संतुष्ट न होकर उसमें आसमानी किनारी लगाकर कहीं राजहंसों के एक जोड़े को, कहीं बादामी रंग के ब्रूसिरचुड के एक जोड़े को, किसी स्थान में दो एक श्वेत चकरमा के जोड़ों को सुसज्जित कर, कहीं-कहीं मध्य में छोटे-छोटे वज्रों को जड़ देता है। कभी-कभी दो-दो तीन-तीन हंसों को अपनी चादर के फटे हुए टुकड़ों पर चढ़ाकर नीली किनारी पर खेलने के लिये छोड़ देता है, और कभी उन को अपनी चादर पर बुला लेता है। कभी चादर की किनारी पर वज्रों को झनझना कर कर्णानंद प्रदान करता है और कभी शांत और निर्वात समय में कैलास को भी अपनी चादर की किनारी के ऊपर सुशोभित कर देता है। इस श्वेत चादर की किनारी चारों ओर नहीं होती। जहाँ होती भी है, कहीं बहुत और कहीं कम चौड़ी होती है। कभी उस नीली किनारी के सिरे पर हंसों को रखकर कोणों से सजाता है।

मानसरोवर के पिघलने के महीने भर पहले उसमें गिरनेवाली नदियों की बर्फ गलकर उसमें गिरती है। सौ गज से लेकर आधे मील की चौड़ाई की बर्फ गलने से किनारों में नीलोदक बन जाता है, जिसमें पहले-पहल आये हुए हंसों और बतख़ों के एक-एक, दो-दो, जोड़े खेलते रहते हैं। किनारे के जल में स्वच्छ पारदर्शी बर्फ के छोटे-बड़े टुकड़े तैरते हुए, एक दूसरे से टकराकर सुंदर झन-झन शब्द करते रहते हैं। जब वायु विशेष रूप से चलने लगती है तो बीच की बर्फ के उजले टुकड़े किनारे के पानी में आकर बहते रहते हैं,

जिससे हंस सुगमता से जल से ऊपर उठकर उनके ऊपर बैठ जाते हैं तथा धूप का सेवन करने लगते हैं। सूर्योदय के समय हंस प्रायः उदरपूर्ति के लिये जल-क्रीड़ा न करके सूर्याभिमुख हो आतप-स्नान करते हैं, और अर्धनिमीलित नेत्रों से नासाग्रदृष्टि हो ध्यानावस्थित भाव से जोड़ों में छोटी-छोटी कागज की नावों की भाँति मंदवेग से बहते हुए दिखलाई पड़ते हैं। उस समय दोनों ओर पानी की लहरें कोणाकृति में उठती हैं। आजकल के मेडीटेशन क्लासों और लेक्चरारों के उपदेशों की अपेक्षा प्रकृति का यह प्रत्यक्ष प्रदर्शन हजारों गुना अधिक हृदयग्राही और प्रभावशाली होता है। इसीलिये हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि प्रकृति के साथ सन्निकट संबंध रखकर उस सर्वशक्तिमान् की झलक देखा करते थे।

एक विशेष अवसर पर मानसराज कुछ दिनों के लिये चादर की नीली किनारी पर सवेरे के समय छोटे-छोटे मेघ-पुंजों को सजाता है, और किसी अन्य अवसर पर उस नीली किनारी के तट के भागों को छोटी लहरियों से सुसज्जित करके चादर की ओर के अंशों को शीशे के समान स्वच्छ रखकर उसमें कैलास और आकाश के तारों को प्रतिबिंबित कर देता है। एक समय (सरोवर फटने से नौ दिन पहले) बँगला साड़ियों की भाँति अपनी चादर के मध्य में चौड़ी-सी शुद्ध नीली किनारियों को छाप देता है।[1] कभी एक रात में उत्तर के भूभाग और पहाड़ सबको श्वेत हिम से पूर्णतः ढककर अपनी चादर के टुकड़े का भ्रम उत्पन्न करा चक्कर में डाल देता है। पुनः उस भ्रम को दूर करने के लिये दिन के दस-ग्यारह बजने तक रात की उस बर्फ को उड़ाकर फिर भूमि और पहाड़ से पृथक् अपनी चादर के रूप को दिखा देता है।

मानस पिघलने से ग्यारह दिन पहले हाथी, सिंह, बाघ, चीता, भालू, घोड़ा, बंदर, लंगूर इत्यादि जानवरों से युक्त चिड़ियाघर के समान चिग्घाड़,

---

[1] सरोवर की मध्यस्थ दरारों और फाड़ों के बीच की बर्फ के टुकड़ों के गलने के कारण पचास से अस्सी फीट तक बना हुआ नीलोदक श्वेत हिम के सामने बहुत ही सुंदर दिखाई पड़ता है।

गर्जन और अन्यान्य बड़ी-बड़ी ध्वनियों को सुनाता है। ठीक मृदंग, रामढोल, इत्यादि वाद्यों के शब्द जैसी ध्वनियों की तो संख्या ही नहीं गिनाई जा सकती। बीच-बीच में तोप जैसी या पहाड़ के टूटने जैसी महाध्वनियों को सुनाता है[1]। इन उच्च ध्वनियों और गर्जनों को सुनकर कोई ऐसा न समझे कि मानससरोवर पागल हो गया है, मानो इसीलिये छः बजे से दस बजे तक शब्दों को सुनाकर पुनः निःशब्द हो जाता है। इन ध्वनियों के कारण की परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि वसंतकालीन वस्त्रों को धारण करने के विचार से मानस अपने शीतकाल में पहने हुए श्वेतांबर को फाड़ रहा है और उसके फटने के शब्द ही छोटे जीवों को शेर, व्याघ्र आदि जंतुओं के गर्जन, तोप और डिनामाइट से पहाड़ों के टूटने के समय के महान् शब्द जैसे प्रतीत होते हैं।

मानसराज अपनी चादर को किस प्रकार बदलता है, इसे देखने की इच्छा से आये हुए दर्शकों को देखकर उसने क्रोधित की भाँति चैत्र पूर्णिमा के दिन (२५-४-१६३७), मध्याह्न में बारह बजे के समय एकाएक समीपस्थ मांधाता से हिम को बुलाकर सारे मानसखंड में रात के बारह बजे तक बर्फ की वर्षा की और अपनी रुचि से श्वेत चादर में लगाई हुइ नीली किनारियों को छोड़कर सभी वस्तुओं को श्वेत बना दिया। फटे हुए और फटते हुए कुछ टुकड़ों को इंद्रजाल की भाँति बारह घंटे में इस्त्री की हुई अति स्वच्छ मलमल की चादर जैसी एक बना कर ऐसा प्रतीत कराया, मानो कहीं भूलकर शीतकाल ही लौटकर आ गया हो। मानस ब्रह्ममानस की सृष्टि होने पर भी 'गुरु गुड़ और चेला चीनी' की उक्ति को चरितार्थ कर रहा है। अतः उसकी अद्भुत और अनंत लीलाओं का वर्णन करना ब्रह्मा से भी असंभव सा हो रहा है। कुछ शांत होने के बाद किसी भले यात्री के सविनय पूछे जाने पर कि "तुम्हें अपनी नीली चादर पहनते हुए देखने की उत्कट इच्छा है, कब पहनते हो?" मुस्कराते हुए

---

[1]इन शब्दों और आंदोलनों का कारण यह है कि गर्मी के आगमन के कारण मानसरोवर बर्फ के ऊपर की बड़ी-बड़ी दरारों, फाड़ों, और छोटी-छोटी लकीरों में फटने लग जाता है।

आश्वासन-भरे शब्दों में उत्तर देता है—"मैं अपनी लीलाओं की थोड़ी-सी छटा दिखा रहा हूँ, क्रोध की कोई बात नहीं। मेरे भोलेभाले तिब्बती बच्चों की धारणा है कि मैं नियमबद्ध होकर दशमी, पूर्णिमा, या अमावस्या के ही दिन अपनी चादर को बदलता हूँ; परंतु मैं नियमबद्ध जैसा प्रतीत होते हुए भी किसी नियम के बंधन में नहीं हूँ। जब चाहूँ स्वतंत्रभाव से कपड़े बदल लेता हूँ।" एक समय (पिघलने के नौ दिन पहले) फटी हुई चादर के तट की ओर के पाँच गज से लेकर आधे मील लंबे छोटे-छोटे टुकड़ों को कुछ भागों में (विशेषकर पश्चिम और दक्षिण तथा पूर्व के किनारों में) छः से लेकर नब्बे फीट दूर तक फेंक देता है, और किनारे से परिक्रमा करनेवाले ध्यानमग्न यात्रियों को डराकर चौंका देता है। ये टुकड़े जल से ऊपर आते समय पीपिलिका-गति से आते हुए दीख पड़ते हैं। वेगपूर्वक सर्पगति से सरसराहट के साथ ऊपर चढ़ते हुए इन्हें देखकर शरीर में सनसनी फैल जाती है।

उपर्युक्त रीति से फेंके हुए टुकड़े वेग और ढंग के अनुसार कुछ स्थानों में दो फीट से छः फीट ऊँचे ढेर के रूप में लग जाते हैं। कुछ स्थानों में जैसे के तैसे बर्फ के बड़े-बड़े एक-एक, दो-दो फीट मोटे टुकड़े बिछ जाते हैं। कुछ अन्य स्थानों में पौन अंगुल के मोटे लालटेन के शीशे जैसे टुकड़ों के छोटे-छोटे ढेर लग जाते हैं। कुछ टुकड़े मैदान में गिर जाते हैं और कुछ खड़े किनारों में। किनारे पर चढ़े हुए टुकड़ों में यह एक विशेषता है कि वे किनारे पर चढ़ते ही कुछ ईंट जैसे टुकड़ों के रूप में फट जाते हैं, जिनके पार्श्व हिंगुल (मेर्क्यूरिक-सल्फाइड) के टुकड़ों के समान होते हैं। सरोवर के पिघलने के दो-तीन सप्ताह पहले उसके ऊपर की बर्फ की बनावट और कड़ेपन में एक विचित्र परिवर्तन हो जाता है। शीतकाल में सरोवर के ऊपर की बर्फ को बिना सब्बल से तोड़े छोटे छेदों से पानी निकलना कठिन था, पर वही बर्फ अब इतनी भुरभुरी हो जाती है कि लाठी मारने से उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। संध्या समय जब मैं टहलने के लिये बाहर निकलता तो भुरभुरी बर्फ के इन ढेरों को लात से ठोकर मार देता और वे छोटे-छोटे शोरे के टुकड़ों के समान बनकर गिर जाते और दो दिनों में पूरे गल जाते थे। शीतकाल में सरोवर से किनारे पर फेंके हुए बर्फ

के बड़े-बड़े चट्टान, जिन्हें पाँच छः आदमी मिलकर भी नहीं हिला सकते, सरोवर के पिघल जाने पर भी वहीं बीस से तीस दिनों तक पड़े रहे। परंतु अब किनारे पर चढ़े हुए इन ढेरों में से नारियल-जितने बड़े और कड़े बर्फ के टुकड़े नहीं मिलते। पिघलने के महीने भर पहले और उसके पहले की बर्फ में इतना अंतर है। सरोवर से किनारे पर आये हुए बर्फ के टुकड़े जिनके कुछ अंश अभी भूमि पर चढ़ गए हैं, जब वायु के द्वारा आपस में टकराते हैं तो छोटे-छोटे टुकड़े एक दिन में गल जाते हैं, पर बड़े टुकड़े जल में कुछ दिनों तक संतरण करके बाद में उसी गति को प्राप्त होते हैं।

२—मानसरोवर का पुनः द्रवीभूत होना

उपर्युक्त रीति से कई प्रकार की मनोभावन-लीलाओं का प्रदर्शन करके एक रात में, अचानक, बिना किसी के देखे अपनी श्वेत चादर को उतार कर ग्रीष्म के नये नीले वस्त्र को धारण करके सूर्योदय होने तक मानसराज अपने नये वस्त्र में दर्शन दे देता है (७-५-३७)[1]

हे मानसराज! ब्रह्ममानसोद्भव! अद्भुत महिमाशालिन्! तुम्हारी जय हो! देखो, नूतन वस्त्र धारण किये हुए तुम्हें देखकर तीर निवासी फूले नहीं समा रहे हैं। आज वे शीतकाल में तुम्हारे श्वेतांबर धारण करते समय जिस प्रकार आनंद और उल्लास में मग्न थे उसी प्रकार उत्साह और आनंद को प्रकट करने के लिये अपने घर, मठ, और तंबुओं के ऊपर रंग-बिरंगे झंडों को लगाकर धूप-दीप के साथ पूजा-पाठ और स्तोत्रों का गान कर रहे हैं। 'सो-सो-सो' कहकर उच्च स्वर से पुकार कर देवताओं को उद्बोधित कर रहे हैं। तुम्हें मैं नमस्कार कर रहा हूँ, तुम्हारी ही असीम कृपा से मैं इस पावन तट पर वर्ष भर निवास कर सका। धन्योऽस्मि।

वह नूतनवसन निर्मल नील-मणि या स्वच्छ पिरोजे की भाँति महासमुद्र

---

[1]उत्तर भारत के पंचांग के अनुसार वैशाख कृष्ण द्वादशी और दाक्षिणात्य पंचांग के अनुसार चैत्र कृष्ण द्वादशी है।

या शरदाकाश के समान अति गंभीर, मनोहर, और मनोमुग्धकारी है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मुक्तिकांता मूर्तिमती होकर आ गई है, या जगन्मोहिनी या निर्वाण का मूर्तरूप सामने खड़ा है। इन दृश्यों को देखने से ऐसा भ्रम होता है कि यह निद्रा है या समाधि, स्वप्न है या सत्य! थोड़ी देर तक तो दर्शकों को समस्त बाह्य जगत् से विस्मृत करा कर तन्मय कर देता है; आनंद-समुद्र में निमज्जित कर देता है।

मांधाता के ऊपर से आई हुई तीव्र वायु चादर के ऊपर की चित्र-विचित्र तहों को बना, लहरों को एक दूसरे से टकरा और फेनों के द्वारा बना-वटी हंसों का निर्माण करके वास्तविक और कृत्रिम हंसों के पहचानने में एक समस्या उत्पन्न कर देती है। देखते-देखते घंटों बीत जाते हैं। कहीं से आकर जलक्रीड़ा करते हुए हंस के झुंडों का मानस गाढ़ालिंगन करता है। कहीं तट पर बच्चों के साथ सूर्यरश्मियों का सेवन करते हुए, परिक्रमा करनेवाले यात्रियों से डरकर, अपनी पाँखों को फड़फड़ाते हुए, पानी के ऊपर कुछ दूर भीतर जाकर, अंत में छोटे-छोटे खिलौने की नौकाओं की भाँति हंस-कुटुंब मानस की गोद में उतर कर एक अपूर्व मानसिक आनंद का अनुभव कराते हैं। रात में नूतन-वस्त्र को शीघ्रता से धारण करने के कारण पुराने वस्त्र के कुछ बड़े श्वेत टुकड़ों को नये वस्त्र के पिछले भागों (उत्तर) में छूट जाने से न देख, या देखने पर भी अनदेखे की भाँति उन वस्त्रखंडों को वायु के तीव्र झोकों से परस्पर टकरा एवं टुकड़े-टुकड़े करके, नये वस्त्र के समान ही उनका भी रूप-रंग बना देता है और फिर अदृश्य कर देता है।

३—उपसंहार

इस प्रकार प्रकृति की भाँति प्रतिक्षण बदलते रहने पर भी मानसराज का महोन्नत, सर्वोत्कृष्ट, अद्भुत, अनुपम, और अवर्णनीय आध्यात्मिक वातावरण परब्रह्म के समान अखंडैकरस-रूप अपनी छत्रछाया में रहनेवालों के मन को—चाहे वे कैसी भी विपरीत परिस्थितियों में क्यों न हों—विक्षेप-रहित बना कर ब्रह्मानंद में अचल और तन्मय बना देता है। किसी मठ से श्रीकैलास-

राज के दिव्य सौंदर्य का निरीक्षण करते समय या पुनीत मानससरोवर के तट पर ध्यानाविष्ट होकर बैठने में अक्लांत और अज्ञात भाव से सारा दिन क्षण की भाँति व्यतीत हो जाता है। जिन कवियों ने श्री कैलास और मानसरोवर का भूलोक की नहीं अपितु स्वर्ग की सृष्टि के रूप में वर्णन किया है, वह अतिशयोक्ति नहीं है। मतों और सिद्धांतों में विभिन्नता होते हुए भी अपनी दिव्याकर्षण शक्ति के कारण ये दोनों तीर्थ सत्तर करोड़ हिंदू और बौद्धों के लिये परम पावन और पूजनीय होकर सारे विश्व को आकर्षणसूत्र में बलात् आकृष्ट कर रहे हैं। पर्वतों के समीप जाकर इनके प्रथम दर्शनमात्र से ही मनुष्य पुलकाकुल हो जाते हैं।

द्वितीय तरङ्ग

कैलास-मानस खण्ड

अध्याय १

मानसखंड

१—तिब्बत

पुराण और इतिहास में अनुसंधान करने से पता लगता है कि तिब्बत का नाम किन्नरखंड, किंपुरुषखंड, त्रिविष्टप, स्वर्गभूमि, या स्वर्णभूमि है। परंतु तिब्बती भाषा में वह पहले कभी बोदयुल्, बोद, बोत्, या पो कहलाता था। उसके बाद विदेशी लोग उसे बोद, टोबोत्, टुब्रोत्, टुबट् और टेवेट के नामों से पुकारते आए, जो अंत में आजकल के टिवेट या तिब्बत के रूप में प्रचलित हो गया। इन सब नामों का आधार बुद्ध या बोधि-धर्म है। साधारणतया तिब्बती अपने देश को पो और चङ-थङ (उत्तरी अधित्यका) के—नाम से पुकारते हैं। भारत की सीमा के—विशेषकर गढ़वाल और अलमोड़े के—निवासी भोटिये तिब्बत को हूणदेश और तिब्बतियों को हूणिया कहते हैं। मैं भी आगे चलकर प्रस्तुत पुस्तक में इन शब्दों का प्रयोग करूँगा। अनेक भारतीय व्यक्ति तिब्बत को भोट और तिब्बतियों को भोटिया के नाम से पुकारते हैं, परंतु मैं इन शब्दों का प्रयोग नहीं करूँगा, क्योंकि ऐसा करने से भारत की सीमा के प्रांतों में रहनेवाले भोटिये और उनकी पट्टियों के नामों से गड़बड़ हो जाती है।

प्राचीन काल में आधुनिक भारत के उत्तर में स्थित तिब्बत, पूर्व में ब्रह्मा[1], श्याम देश, इंडोचायना, आग्नेय कोण में मलाया, सुमात्रा (स्वर्णद्वीप),

---

[1]बर्मा का प्राचीन नाम श्रीक्षेत्र है, श्याम का कंबोज राष्ट्र और इंडोचायना के मालव तथा अमरावती ये दो प्राचीन नाम है।

जावा, बाली आदि द्वीप, दक्षिण में सिंहलद्वीप या लंका और पश्चिम में गांधार, (अफगानिस्तान) भारत के अंतर्गत थे, जिसे अभी हम विशाल-भारत कह सकते हैं। इन सभी प्रांतों का भारत से धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संबंध होता आया है। तिब्बत समुद्र की सतह से १२००० फीट से लेकर १६००० फीट तक की ऊँचाई की संसार भर की सबसे बड़ी और ऊँची अधित्यका है। इसे संसार की छत भी कहते हैं। यहाँ पर बारह मास बर्फ से ढके रहनेवाले पर्वत हैं। १७००० फीट की ऊँचाई पर भी आबादी है। यह प्रदेश भारत की उत्तरी सीमा पर हिमालय की दूसरी ओर ७८·५° और १०८° उत्तरी अक्षांश और ३६.५° और २७.५° पूर्वी देशांतर के मध्य में स्थित है। इसकी लंबाई पूर्व से पश्चिम तक १४०० मील और चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक ८०० मील, तथा क्षेत्रफल ८१४००० वर्गमील है।

तिब्बत देश संसार भर से उच्च अधित्यका है। पर्वतों से युक्त और हिमाच्छादित होने के कारण बहुत ठंढा और ऊसर है, सभी ऋतुओं में यहाँ भयंकर वायु चलती रहती है। खेत के योग्य बहुत कम भूमि है। यहाँ कोकनॉर, तेङरीनॉर (नम छो)[1], लाबनॉर जिल्लिङ छो इत्यादि बड़ी-बड़ी खारी झीलें, और मानसरोवर, राक्षसताल जैसे पेयजल के सरोवर हैं। भूमंडल में सब से अधिक ऊंचाई पर स्थित 'होरा छो' नामक सर यहीं पर है, जो १७३६० फीट की ऊँचाई पर है। ह्वाङ्हो, याङ्छेकियाङ, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, सतलज, करनाली आदि बड़ी-बड़ी नदियों के उद्गम-स्थान यहीं पर हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य कई छोटी-बड़ी नदियाँ हैं। कोकनॉर तिब्बत का सबसे बड़ा सरोवर है। इसका क्षेत्रफल १६३० वर्गमील है।

तिब्बत की जनसंख्या ३०,००,००० और ५०,००,००० के मध्य में अनुमानित की गई है। इसकी राजधानी ल्हासा है[2]। इसकी जनसंख्या लगभग

---

[1] सरोवर को तिब्बती भाषा में 'छो' और मंगोल भाषा में 'नॉर' कहते हैं।

[2] ल्हासा से फरी २१७ मील और फरी से दोर्जेलिङ ९० मील पर है। इस प्रकार ल्हासा से दार्जिलिंग कुल ३०७ मील है; और ग्यांची होकर ३६० मील है।

५०,००० है, जिसमें से प्रायः आधे भिक्षु हैं। यहाँ राज-प्रासाद, 'पोतला', गोम्पा, मठ, मंदिर, डाकघर, तारघर, टेलीफोन, अस्पताल, बारूद-घर, टकसाल, बड़े बड़े भवन और बाज़ार हैं। ल्हासा के अतिरिक्त शिगर्ची और ग्यञ्ची नामक दो बड़े नगर हैं, जिनमें एक-एक की जनसंख्या २५००० तक है।

ब्रह्मपुत्र के दून में आबादी अधिक है। ल्हासा से शिगर्ची १४४ मील और ग्यांची १५० मील पर है। तिब्बत के रहनेवाले प्रायः यहाँ के मूल निवासी हैं और तिब्बती भाषा बोलते हैं। उत्तरी सीमा पर कुछ मंगोल और चीनी भी रहते हैं। यहाँ के लोग विशेषकर पशु-पालक हैं। कताई, बुनाई इनका प्रधान धंधा है। भेड़-बकरी, ऊन, नमक, सोहागा, और कस्तूरी को भारत और चीन भेजते हैं। रेशम और चाय चीन से, सूती कपड़े और अनाज भारत से मंगाते हैं।

२—कैलास-मानसखंड की स्थिति

तिब्बत को चार भागों में बाँट सकते हैं—(१) पश्चमी तिब्बत, जिसे ङरी-कोर-सुम (शक्ति-चक्र-तीन) कहते हैं। इसका विस्तार पूर्व में ब्रह्मपुत्र के उद्‌गम से लेकर पश्चिम में लदाख तक है, (२) मध्य तिब्बत, जिसमें सङ, वुस, और कोङ्पा सम्मिलित हैं, (३) पूर्वी तिब्बत, जिसमें खम, अमदो, और शङ सम्मिलित हैं, और (४) चङ-थङ (उत्तरी अधित्यका), जो पश्चिमी और मध्य तिब्बत के उत्तर में है।

ङरी या पश्चिमी तिब्बत में पहले तीन सूबे थे—लदाख, शङ शुङ या गूगे (मानसरोवर के पश्चिमी भाग), और पुरङ। परंतु १०० वर्ष हुए लदाख काश्मीर के अधीन हो गया। कैलास-मानसखंड पश्चिमी तिब्बत के आग्नेय कोण में है, जिसके अंतर्गत पुरङ है।

तिब्बती और हिंदू पुराणों के वर्णन के अनुसार तथा कई भौगोलिक हेतुओं से श्री कैलास और मानसरोवर के पूर्व ब्रह्मपुत्र के उद्‌गम से आगे ठुकसुम तक, दक्षिण में भारत की सीमा, पश्चिम में छिनकु नदी, और उत्तर में गर्तोक और सिंधु नदी के उद्‌गम के अंतर्गत प्रांतों को कैलास-मानसखंड, कैलासखंड, या

मानसखंड कहते हैं। इस खंड की लंबाई पश्चिम से पूर्व तक २०० मील और चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक ६० से लेकर १०० मील तक है; यद्यपि थुलिङ और छ्वरङ तक का प्रांत विशाल मानसखंड के अंतर्गत हैं।

३—पर्वत

कैलास, मांधाता, सुरङ्गे, और कङ्लुङ मानसखंड की प्रधान पर्वत-मालाएँ हैं। जेस्कार पर्वत-श्रेणी इसकी दक्षिणी सीमा पर है। यहाँ के सबसे बड़े शिखर, मांधाता (ऊँचाई २५३५५, २२६५०, और २२१६० फीट) और कैलास (२२०२८ फीट) हैं। ये सब पर्वत-मालाएँ सभी ऋतुओं में हिमाच्छादित रहती हैं। प्रायः २०,००० फीट से अधिक ऊँचाई वाले शिखर बहुत हैं।

४—नदियाँ

सतलज, सिंधु, ब्रह्मपुत्र और करनाली—इन चार महानदियों के उद्‌गम मानसखंड में ही हैं। सिब्र छू, छिनकु, गुनियाङ्ती, दारमयाङ्ती, ज्ञानिमा छू, छूनक, मिस्सर छू, ट्रोकपोनुप, ट्रोकपोशर, गोयक, चुकटा, छेठी, मुनजन, बोखर, लङपोछे, पार छू, गरतोङ, मयुम, गुरला, बलडक, रिंगुंग, गरु, डङगेचेन, गेजिन, कङ्जे, लालुङ्ग्रा, चोकरो, ठितीफू, यांगसे आदि उपर्युक्त चार नदियों की सहायक नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त कैलास की डम छू, तोपछेन छू, झोङ छू, तरछेन छू, ल्हा छू, करलेप छू, आदि, (ये सब राक्षसताल में गिरती हैं); मानसरोवर में गिरनेवाली टग, नीमापेंडी, रिलजेन, रिलजुङ, नमेरेलडी, सेलुङहुर्दुङ, कुगलुङ, ग्युमा, लुङनक, पलचेन, पलचुङ, समो आदि; राक्षस ताल में गिरनेवाली टककरपो आदि; और कोङ्यू छो में गिरनेवाली छोटी बड़ी कई नदियाँ हैं। मानसखंड में उत्तर दिशा में बहनेवाली नदियाँ बहुत हैं। शीत-काल में इनमें से अनेक नदियाँ सूख जाती हैं शेष सब जम जाती हैं।

५—झीलें

मानसरोवर और राक्षसताल मानसखंड के मीठे जल की प्रधान झीलें हैं। इनके अतिरिक्त कुक्यंल छुंगो, डिङ छो, शम छो, गौरीकुंड, न्यक छो,

तमलुङ छो आदि और कई छोटी-छोटी झीलें हैं। शुशुप छो, छेती छो, ज्ञानिमा और छकरा के पास के ताल के जल कुछ खारे हैं। कोङ्ग्यू (गुनछू) छो, अरगू छो, और अरकोक छो—ये नमकीन जल की झीलें हैं।

६—जलवायु

कैलास-मानसखंड और तिब्बत प्रांत की जलवायु विशेषतया सूखी और ठंढी है। वहाँ बहुधा बड़े वेग से वायु चलती रहती है। वर्षाऋतु देर से प्रारंभ होती है। वर्षा तो कम होती है, पर जब होती है तो मूसलधार होती है। ग्रीष्म की गरमी से बर्फ के पिघल जाने के कारण नदियों में बाढ़ आ जाने से धारा तीव्र हो जाती है, जिसके कारण दोपहर के बाद उनको पार करना बहुत कठिन और कभी-कभी तो असाध्य भी हो जाता है। गरमी के दिनों में धूप असह्य हो जाती है, पर आकाश में बादल आते ही बहुत ठंढक पड़ने लगती है। दिन में बादल घिर आने पर, और रात में सर्वदा, बहुत ठंढक पड़ती है। यात्रा के दिनों (जुलाई और अगस्त के महीनों) में श्री कैलास और मांधाता के शिखर प्रायः बादलों से आवृत होकर यात्रियों के साथ 'लुकाछिपी' का खेल खेलते रहते हैं। नवंबर से लेकर मई के महीने के मध्य तक वायु भयंकर आँधी का रूप धारण कर लेती है। बादनुमा की भाँति क्षण-क्षण में ऋतु बदलती रहती है। धूप में जाने पर शरीर से पसीना चूने लगता है फिर थोड़ी ही देर में शीतल वायु बहने लगती है। अचानक सघन बादलों के समूह आकर बड़े जोर की गड़गड़ाहट और बिजली की कौंध के साथ मूसलधार वृष्टि करने लगते हैं। कभी-कभी सुंदर इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है। थोड़े ही समय में छोटे-छोटे मोती जैसे ओले या श्वेत चूने जैसी बर्फ गिरने लगती है।

एक स्थान पर प्रखर धूप है तो दूसरे स्थान पर बूँदाबूँदी या तुषारपात हो रहा है, और आगे चलकर आकाश से मूसलधार वृष्टि हो रही है। पहले पूर्ण प्रशांति और निस्तब्धता छाई रहती है, फिर थोड़ी ही देर में बड़े ही प्रचंडवेग से हू-हू करती हुई हवा चलने लगती है। कभी तो धूप में पसीने से लथपथ हो पहाड़ पर चढ़ रहे हैं, और नीचे की 'दून' में उठते हुए धुएँ की

भाँति बादलों का समूह दिखलाई पड़ता है, तथा नीचे प्रचंड वृष्टि होती दिखाई देती है। कभी धुएँ के समान अंधड़ की धूल में होकर चलना पड़ता है, और कभी वर्षा के कारण कीचड़ में लथपथ होकर चलना पड़ता है। यहाँ पर एक शुभ्र चाँदी जैसा पहाड़ जगमगा रहा है और वहाँ कैलास के लिंग को सतरंगा इंद्रधनुष आवृत कर रहा है। निकट का मांधाता-शिखर सूर्यास्त के समय आग की लपटों में मग्न है। छोटे बर्फीले मुकुट से सुसज्जित पोनरी शिखर काले-काले मेघों से संलाप कर रहे हैं, और उधर सामने उदयकालीन सूर्य अपने द्रवित स्वर्णिम रश्मियों से मनोविमुग्धकारी सरोवर की नीली सतह को रंजित कर रहा है। वहाँ दूरवर्ती 'दून' में गंधक का सघन धुआँ, ऋतु की विशेष अवस्था में गर्म सोतों के अस्तित्व को बता रहा है। एक ओर से उष्ण वायु स्वागत करती है और दूसरे दून से कठोर ठंढी वायु आक्रमण करके कंपायमान कर देती है। कभी-कभी दिन-रात, सबेरे-शाम, छहों ऋतुएँ एक साथ ही आई हुई-सी प्रतीत होती हैं।

तिब्बत में संध्या-राग बहुत काल तक टिकता है—अर्थात् सूर्योदय से पहले और सूर्यास्त के बाद प्रायः एक या डेढ़ घंटे तक प्रकाश रहता है। अत्यधिक ऊँचाई के कारण यहाँ की वायु बहुत पतली होती है, इसलिये दूर की वस्तुएँ निकट-सी प्रतीत होती हैं। तिब्बत की चाँदनी रात संसार भर में सबसे अधिक प्रकाशयुक्त है; यहाँ का आकाश गाढ़े नीले रंग का और बहुत मनोमोहक होता है।[1]

७—वनस्पति

कैलासखंड में दो-तीन फीट की ऊँचाई के 'डमा' नामक पौधे को छोड़कर और कोई बड़े पेड़ नहीं होते। मोटी लकड़ियों के अभाव से तिब्बत में अधिक लोग याक के ऊन से बने हुए कंबल के तंबुओं में रहते हैं। डायजे, नीमापेंडी आदि स्थानों में 'पेमा' नामक एक पौधा होता है, जो बहुत चीमड़

---

[1] तीसरी तरंग में 'जलवायु' नामक शीर्षक भी देखिये।

होता है। इसलिये इस पौधे को मकानों की छत बनाने के काम में लाते हैं। पुरङ के दून के गाँवों में कुछ-कुछ 'चङमा' (एक प्रकार का वेदमजनूँ नामक पेड़) होते हैं। इनको लोग लकड़ी और बारूद के कोयलों के लिये काम में लाते हैं तथा बागीचों में लगाते हैं। कङजे छू की घाटी में ये वृक्ष अधिकता से पाये जाते हैं। गुरला छू की एक दून में दो या तीन गज की ऊँचाई पर लाल रंग का 'लङमा' 'या उंबो' नामक एक जंगली पेड़ होता है। कुछ भी हो, कैलास-शिखर के ऊपर एक महावृक्ष के नीचे या मानसरोवर के किनारे पर देवदारु के वन में शिव और पार्वती को बिठाना चित्रकार की कुशल तूलिका का प्रसार या कवि-चातुरी और कल्पना-मात्र है। परंतु थुलिङ में जंगली पीपल, पूर्वी तिब्बत में चीड़, देवदारु, सफेदा (पापलर), अखरोट आदि के पेड़ होते हैं।

टग नदी के गर्म सोतों के पास तीर्थपुरी, नाब्रा, दापा, थुलिङऔर कई स्थलों में 'जिंबू' नामक जंगली प्याज प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होती है। इसकी जड़ में गाँठ नहीं के बराबर होती है। देशी प्याज के समान इसमें लाल और उजले दोनों प्रकार के फूल होते हैं। गर्मी के दिनों में इस पौधे को फूलों समेत उखाड़ और सुखाकर सैकड़ों मन के परिमाण में खंपा लोग[1] भारत में लाते हैं। विशेषकर पंजाब और युक्तप्रांत में यह बघार के काम में आता है। छौंकने के समय इसकी गंध कुछ अंश में प्याज और कुछ अंश में हींग जैसी होती है। मानसरोवर के उत्तर में पलचेन और पलचुङ नदियों के पास 'गोकपा' नामक तिब्बती लहसुन मिलती है, जिसकी जड़ गुच्छेदार होकर पतली पेन्सिल जैसी

---

[1]पूर्वी तिब्बत में खम् नामक एक प्रांत है। वहाँ के लोगों को खंपा कहते हैं। परंतु इस पुस्तक में यह शब्द विशेषतया उन तिब्बतियों के लिये प्रयुक्त हुआ है जो हिंदुस्तान में आकर बस गए हैं, और छः महीने के लिये व्यापार के उद्देश्य से तिब्बत जाते हैं। इनकी स्त्रियाँ अब भी तिब्बती पोशाक पहनती हैं। पुरुष भारतीयों की भाँति पाजामा कोट आदि पहनते हैं और तिब्बतियों की भाँति सिर पर बाल रखकर जटा बनाये रहते हैं। घरों में ये लोग तिब्बती भाषा बोलते हैं और बाहर के कार्य के लिये अच्छी हिंदी बोलते हैं।

मोटी होती है। इसकी जड़ की चटनी बनाई जाती है और पत्ते जिंबू जैसे होते हैं। करदुङ के पास और दूसरे स्थानों में एक प्रकार का जंगली जीरा होता है। कई नदियों की दूनों में 'तरुआ' नामक एक काँटेदार पौधा होता है, जिसकी ऊँचाई एक फुट तक होती है। इसके फूल गोल मिर्च से कुछ बड़े और पीले रंग के होते हैं, जो 'तरचेमा' कहलाते हैं। यह खाने में बहुत खट्टा होता है, इसलिये चटनी के काम में आता है। कहीं कहीं विच्छू-बूटी नामक एक शाक होता है, जिसे छूअन या शिशूण भी कहते हैं।

मानसरोवर और राक्षसताल में पानी के नीचे एक प्रकार की घास होती है। सरोवर के किनारे पर जाते समय कभी-कभी 'आयोडीन' की-सी गंध प्रतीत होती है। इससे संभव है कि इन घासों में 'आयोडीन' होगा, जो रसायन-शास्त्रज्ञों के अन्वेषण की सामग्री है। मानसरोवर में तट के पास कम गहराई के जल में एक प्रकार की लता उगती है, जिसपर छोटे-छोटे पीले रंग के फूल खिलते हैं। इन फूलों का व्यास ½ अंगुल होता है। परंतु सरोवर में कमल नहीं हैं। नदियों के ऊपरी भागों की घाटियों में कई प्रकार के रंग-बिरंगे फूल होते हैं। बड़े-बड़े मैदानों में याक या भेड़-बकरियों के खाने योग्य घासें होती हैं। कैलास और मानसरोवर के तटों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की धूप की लताएँ और पौधे हैं, जिनका विवरण 'प्रसादों' में दिया जायगा। मानसरोवर के पूर्व की ओर 'पंगपो' नामक एक पौधा होता है, जिसकी जड़ को धूप के काम में लाते हैं। इसको भोटिया लोग मासी कहते हैं। यह भारत में गर्ब्यांग के ऊपर के पहाड़ों में भी होता है। वत्सनाभ (तेलिया या मीठा) बूटी मानसखंड में १६००० फीट की ऊँचाई पर होती है। इसको कैलास-शिखर की उत्तरी तल-हटी में १७००० फीट की ऊँचाई पर बर्फीले स्थानों में भी मैंने देखा है।

मानसखंड में कई घाटियों के ऊपरी भागों में 'आर्चा' या 'डोलू' नामक एक जड़ी होती है। ये नाम भारत के सीमाप्रांत के हैं। इसको रेवंदचीनी भी कहते हैं। भारत के बर्फीले स्थानों में भी यह बहुत होती है। इसकी जड़, जो पीले रंग की होती है, टिंचर के काम में आती है। दर्द और चोटों में तो यह बहुत लाभकारी होती है। घायल होते ही इसे घिसकर लगाने से पीव नहीं पैदा

होती। इसके पत्तों के डंठल खट्टे होते हैं, जो चटनी बनाने के काम आते हैं। अंग्रेजी में इसे 'रुबर्ब' कहते हैं। विशेष रूप से मानसरोवर के तट पर, गुरला के आस-पास और कई अन्य स्थानों में एक औषधि होती है, जो दो या तीन फीट ऊँची होती है। अक्तूबर के महीने से इसके पत्ते कुछ लाल होने लगते हैं, इसलिये इसे 'लाल बूटी' भी कहते हैं। ज़मीन के ऊपर इसकी जड़ में कीप की आकृति की कई तहों में पतली बर्फ बनी रहती है। धूप निकलने पर आस-पास के पाले और बर्फ के गल जाने पर भी यह बर्फ नहीं गलती। इसकी जड़ जमीन में बहुत गहराई तक जाती है। भोटिये लोग इसका सन्निपात और अन्य ज्वरों में प्रयोग करते हैं, जो बहुत लाभदायक माना जाता है।

मानसखंड और तिब्बत के अन्य प्रांतों में 'निर्विषी' नामक एक जड़ी होती है, जो बिच्छू और सर्प आदि के विषों को दूर करती है। इसको खंपा लोग मंडियों में लाते हैं। ये सब बूटियाँ वैद्यों की गवेषणा की सामग्री हैं।

मैंने मानसरोवर के आस-पास में १५००० फीट की ऊँचाई पर उगने-वाली 'ठुमा' नाम की एक औषधि का पता लगाया है। यह भूमि पर फैलने-वाली एक छोटी लता है। विशेषकर परखा के मैदान जैसे दलदल या गीली भूमि पर यह अच्छी तरह फैलती है। इसकी लता बैंगनी रंग की होती है, जिसकी मोटाई मोटे धागे जितनी होती है। पत्ते झीने और फूल पीले रंग के होते हैं। जब कार्तिक के महीने में यह पक जाती है, तो उस समय चूहे जड़ों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर अपने बिलों में शीतकाल के आहार के लिये ले जाते हैं। यदि कोई इसकी जड़ को खोद कर इकट्ठा करना चाहे तो दिन भर खोदने पर भी कठिनता से पाव भर इकट्ठा कर पावेगा। यहाँ के ग़रीब लोग इन चूहों के बिलों को ढूँढ़कर जड़ के टुकड़ों को इकट्ठा कर लेते हैं। यह औषधि वीर्यरक्षक, वर्द्धक, और स्तंभनकारी है, परंतु उत्तेजक नहीं। इसका उचित रीति से अवलेह बनाकर सेवन करने से उत्तम वाजीकरण हो जाता है। मेरी इस कथन की पुष्टि और विशेष परीक्षा के लिये यह औषधि सरकारी रसायनशाला में और काशी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग की प्रयोगशाला के अधिष्ठाता को दी गई है। जिस प्रकार वैद्य और कविराज लोगों के द्वारा

औषधियों में प्रयुक्त होनेवाले एक-एक बिदारीकंद को जंगली लोग एक ही दो दिन में खा जाते हैं उसी प्रकार इसकी जड़ को यहाँ की निर्धन जनता भोजन के रूप में खाकर समाप्त कर देती है। धनी लोग नये वर्ष के उत्सव में तथा अन्य विशेष अवसरों पर इसे उबाल कर घी और मिश्री के साथ एक-एक कटोरे खा लेते हैं। यहाँ पर यह लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि इस प्रकार के कंद, अवलेह आदि जो थोड़ी मात्र में खाने की वस्तुएँ हैं, यदि अधिक मात्रा में खाई जायँ, तो औषधि का विशिष्ट गुण न होकर केवल भोजन का ही फल होता है। आशा है, आयुर्वेद के अन्वेषणशील वैद्य इस औषधि के संबंध में विशेष छान-बीन करेंगे।

अध्याय २

खनिज

१—सोना

गङ्गा छू के दक्षिण में एक मील की दूरी पर, मानसरोवर के तट से लेकर राक्षसताल के तट तक, सोने की खानों की एक लड़ी फैली हुई है। वहाँ कुछ वर्ष पहले सोना निकाला जाता था। एक बार खानों को खोद कर सोना निकालते समय चेचक की बीमारी बड़े उग्र रूप में फैली। इस बीमारी को खानों के अधिदेवता के क्रोध का कारण मानकर तिब्बती सरकार ने तभी से सोना निकालना बंद कर दिया। खानों को अंतिम बार खोदते समय एक कुत्ते-जितनी बड़ी (कुछ लोगों के मतानुसार कुत्ते के आकार की) सोने की डली (नगेट) निकल पड़ी। उस स्थान में एक छोरतेन बनी है, जिसे 'सेरका-खीरो' (सोने का कुत्ता) के नाम से पुकारते है। यह च्यू गांम्पा से एक मील दक्षिण में है। उस समय की खोदी हुई खानों का ढेर और मिट्टी इस समय भी देखने में आती है। मैं इन खानों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमा हूँ। किसी स्थान में कोई गढ़ा दो गज से अधिक गहरा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यहाँ की खानों में सोना बहुत कम गहराई में मिलता है।

कैलास के उत्तर में पंद्रह दिनों की यात्रा की दूरी पर थोकजलुङ, मुनकथोक, रुङमर, और तिब्बत के कई अन्य प्रदेशों में सोने की बड़ी-बड़ी खानें हैं, जहाँ से अब भी उसी पुराने ढंग से ही सोने को निकालते हैं, जिसे वास्तव में सोने की खुदाई नहीं कहा जा सकता। कहा जाता है कि तिब्बत में पानी से धोकर सोने निकालने वाले (गोल्ड वाशर्स) सहस्रों की संख्या में हैं। एक बार सोने की खान से ५२५ औंस (लगभग १६ सेर) के तौल क

सोने की डली खोदी गई थी। इन सोने की और अन्य अमूल्य खानों के ऊपर आस-पास के देशों की दृष्टि गड़ी हुई है। न जाने ये किनके भाग्य में बदी हैं। सन् १९३७ में तकलाकोट के गवर्नर से मैंने सुना था कि बीस वर्ष पहले ल्हासा में सोने का भाव दस रुपये तोला था।

२—सोहागा

गङ्गा छू के दक्षिण की सोने की खानों के समान ही यहाँ भी सोहागा निकालते समय चेचक की बीमारी फैलने के कारण तिब्बती सरकार ने यह मानकर कि खानों का अधिदेवता क्रुद्ध हो गया है, खानों से सुहागा निकालना स्थगित कर दिया। कहते हैं कि यहाँ का सुहागा बहुत बढ़िया होता था। इस तालाब के आस-पास से एक श्वेत पदार्थ को हाथ और कपड़ों को धोने के लिये लोग ले जाते हैं। मानसरोवर से वायव्य कोण में १४० मील की दूरी पर लड्मर नामक प्रदेश में सोहागे की बड़ी-बड़ी खाने हैं, जहाँ एक रुपये में दस से बीस सेर तक या एक बकरी के ढोने भर का सुहागा मिलता है। सोहागे की खानें तिब्बत के कई स्थानों में हैं। मानसरोवर के उत्तर में सात या आठ दिन के मार्ग में बहुत सी सोहागे की खाने पड़ती हैं।

नमक के तालाब भी हैं, जहाँ से तिब्बती प्रचुर परिमाण में नमक मंडियों में विक्री के लिये लाते हैं। प्रति वर्ष तिब्बत के तालाबों का नमक हजारों मन के परिमाण में भारत में, हिमालय के प्रांतों में, आता है।

३—अन्यान्य खनिज

पूर्वी तिब्बत में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा, पारा, और शिलाजीत भी मिलते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि तिब्बत में मिट्टी के तेल की खानें भी हैं। पश्चिमी तिब्बत की राजधानी गरतोक से तीन दिन के मार्ग की दूरी पर गेमुक नामक स्थान में सीसे की खानें हैं। ज्ञानिमा, छकरा और कई अन्य प्रदेशों में धोनेवाले सोडे के बहुत से-मैदान हैं। कई बर्फीले स्थानों से चरवाहे 'हिमफुली'

नामक पत्थर लाते हैं, जो श्वेतवर्ण स्फटिक के आकार का होता है। लोगों की धारणा है कि सहस्रों वर्षों की पुरानी वर्फ दबाव के कारण ऐसी बन जाती है और इसे पानी में घिसकर लगाने से मोतियाबिंद गल जाता है। परीक्षा करने पर यह 'केलसाइट' सिद्ध हुआ, जो 'केलसियम कार्बोनेट' का स्फटिक रूप है। कुङरीबिङरी धुरा के नीचे छिरचिन के आस-पास में, तकलाकोट से पश्चिम के पर्वतों में, मशङ के पास हरिताल (ट्राइसल्फेट ऑफ आर्सेनिक), और मणिशिला (बाईसल्फेट ऑफ़ आर्सेनिक) मिलती है। ये खनिज तिब्बत के अन्य प्रांतों में भी बहुत मिलते हैं।

कई स्थानों में जहरमोरा नामक पत्थर मिलते हैं, जो हरे, श्वेत, लाल, गुलाबी, भूरे, भस्म के रंग के या इनके मिश्रित वर्णों के होते हैं। यह विशेषकर कैलास की परिक्रमा में जुंठुलफुक् गोम्पा से ३ मील नीचे उतरने के पश्चात् मार्ग से कुछ ऊपर और कुङरीबिङरी घाटे के नीचे छिरचिन के आस-पास, पाये जाते हैं। यह पत्थर स्निग्ध और मृदु है और घिसने से सुगमता से घिस जाता है। यह 'सर्पेन्टाइन' है। इसका कड़ापन २.७ है। आँखों की ललाई आदि बीमारियों में इसको पानी में घिसकर लगाते हैं। इस पत्थर को जल में कुछ देर तक रखकर उस पानी को पीने से उसका प्रभाव ठंढा होता है। पानी में घिसकर पिलाने से बच्चों की उलटी, और पतला दस्त बन्द हो जाता है। अधिकतर यूनानी और सामान्य रूप में आयुर्वेदिक वैद्य लोग इसे काम में लाते हैं। इसका भस्म भी बनाते हैं।

कैलास में जुंठुलफुक् गोम्पा के नीचे, गुरला ला के नीचे, राक्षस-ताल के दक्षिणी तट पर, लाचातो के पहाड़ पर, और कई अन्य प्रदेशों में 'पेरिडोटाइट' के पत्थर धीरे-धीरे ज़हरमोहरा बन रहे हैं। ये पेरीडोटाइट पहाड़ के खंड 'एक्सोटेरिक' (बाहर कहीं से कई मीलों की दूरी से पहाड़ों के दोहराव की क्रिया में फेंके हुए) प्रतीत होते हैं। जुंठुलफुक् गोम्पा के दक्षिण में 'सर्पेन्टाइन' में जड़ी हुई पीली 'डोलोमाइट' भी विद्यमान है। मानसखंड के कई स्थानों में 'स्फटिक' या 'बिल्लौर' पत्थर भी मिलते हैं।

कैलास-शिखर और उसका उत्तरी भाग 'काँग्लोमेरेट' पत्थर का है;

और शिखर का पश्चिमी और दक्षिणी भाग 'ग्रेनाइट' का है, जो आदिम-काल या 'उषा-काल' (इयोसीन) से पूर्व का माना जाता है। आधुनिक युग का यह आदिम-काल २१००००० वर्ष से १५०००० वर्ष पूर्व का माना जाता है।

'थनेरी पत्थर' एक प्रकार का मुलायम पत्थर है, जो ऊँटाधुरा और कुङ्री-बिङ्री घाटों के पास मिलता है। लोगों का विश्वास है कि इसको घिसकर लगाने से स्त्रियों के स्तन पर निकला हुआ व्रण अच्छा हो जाता है। 'बिजली की हड्डी' भी कहीं-कहीं मिलती है, जिसे खंपा लोग मंडी में लाते हैं। लोगों का विश्वास है कि वह बिजली से गिरती है। यह सफेद, स्निग्ध, और कठिन होती है, और औषधि के काम आती है। इसके बारे में अभी मैंने विशेष अध्ययन नहीं किया। इसमें विशेषकर 'सिलिका' है और बाकी 'एल्यूमिना' और 'कैल-शियम आक्साइड्' हैं। तिब्बत के कई स्थानों में गंगा की मिट्टी के या भूरे रंग के ढेले मिलते हैं, जिन्हें सेरुछा (पीला नमक) कहते हैं। इसको आग में जला कर थोड़ा चाय में डालकर उबालते हैं। जली हुई 'सेरुछा' को 'फुली' कहते हैं जो सफेद रंग की होती है। कहते हैं कि इसे डालने से चाय में रंग आ जाता है और उसमें डाला हुआ मक्खन अच्छी तरह मिल जाता है। परीक्षा करने पर यह 'सोडा बाईकार्ब' निकला, लेकिन यह विशुद्ध रूप में नहीं है; कुछ मिट्टी इसमें मिली हुई है।

मानसरोवर के आग्नेय कोण में बर्तन बनाने के योग्य चिकनी मिट्टी मिलती है। सरोवर के पूर्वी किनारे पर पतली-पतली तहों में चेमानेङा नामक पंचरंगी रेत मिलती है। तिब्बतियों का विश्वास है कि इसके खाने से ज्वर छूट जाता है। रासायनिक परिशोधन कराने से इसमें लोहा, इस्पात, 'एमेरी' आदि धातुओं का पता लगा है। इनके अतिरिक्त कई प्रकार के पत्थर और खनिज हैं, जो भूगर्भशास्त्रवेत्ताओं के निरीक्षण की सामग्री हैं। कैलास-शिखर के उत्तरी जड़ में कैलास-विभूति के नाम से एक प्रकार का श्वेत पदार्थ है। इसकी रासा-यनिक परीक्षा करने से ज्ञात हुआ है कि इसमें प्रधानतः 'केलसियम सल्फेट', पर्याप्त रूप में, 'केलसियम कार्बोनेट', और स्वल्प प्रमाण में 'एल्युमिनम' विद्य-मान है।

४—उष्ण जल के स्रोत

च्यू गोम्पा के पास मानसरोवर से दो फर्लांग की दूरी पर गङ्गा छू के दोनों किनारों पर उष्ण जल के दो सोते हैं। बाँये किनारे के झरनों के चारों ओर स्नान के लिये दीवाल से घिरा हुआ कुंड बना हुआ है, जिसके जल का तापक्रम १३.७.१९४१ को १३५° था। दाहिने किनारे के सोतों के जल का तापक्रम ११५° था। गङ्गा छू के बीच में एक बड़ा चट्टान है, जिसमें से उबलता हुआ पानी उछलकर बाहर आता है। इसका तापक्रम १७०° है। गर्म सोतों के कुंड के पास ही एक छोटा सा डोङ्खङ (धर्मशाला) है। गठिया रोग से पीड़ित लोग इस कुंड में स्नान के लिये यहाँ आते हैं। गङ्गा छू से पौन मील भीतर मानसरोवर के तल में बड़े-बड़े गर्म कुंड हैं। इसके लगभग चार मील पूर्व में टग नदी के दाहिने किनारे पर अंबुफुक् और छूफुक् नामक स्थानों में, और बाँये किनारे पर न्योबा छूजेन और टोमोमोपो नामक स्थानों में, कुनकुने से लेकर खौलते हुए पानी के गर्म सोते हैं, जिनमें से गर्म पानी की एक छोटी-सी नहर बहकर नदी में गिरती है। बाँये किनारे के गर्म सोतों से, कुछ में से छः छः आठ-आठ फीट की ऊँचाई के फ़व्वारे जैसे खौलते हुए पानी निकलते हैं। छूफुक् के पास कुछ गुफाएँ हैं, जहाँ शीतकाल में बौद्धभिक्षु रहते हैं। इन गुफाओं के पास कई छोरतेन और मणि-दीवालें हैं, तथा एक पुराने गोम्पा के खँडहर की नींव है, जो गुरु पद्मसंभव की कही जाती है। इसे गोरखों ने तोड़कर नष्ट कर दिया था। नोनोकुर के कुछ गड़रिये वसंत के आरंभ और शरद ऋतु में दो-दो महीने तक यहाँ पर टिकते हैं।

मानसरोवर के वायव्य कोण में ४४ मील की दूरी पर तीर्थपुरी नामक एक स्थान है। वहाँ से बारह मील नीचे सतलज के किनारे पर ख्युङ्लुङ नामक गाँव है। इन दोनों स्थानों में भी गर्म जल के सोते हैं। तीर्थपुरी के पास गर्म सोते कभी कभी स्थान बदलकर सूख भी जाते हैं। यहाँ के सोतों के जल का ताप-प्रमाण १९४१ में १२०° से १५०° तक था। मेरा अनुमान है कि

इन सब गर्म स्रोतों में 'आयोडीन' और 'रेडियो-एक्टिविटी' अवश्य होगी। विशेषकर तीर्थपुरी के और सामान्य रूपसे अन्य गर्म स्रोतों के पास चूने के सदृश एक श्वेत और बहुत हलका पदार्थ होता है। रासायनिक परिशोधन से ज्ञात हुआ कि इसमें प्रधानतया 'केल्सियम कार्बोनेट' और अति स्वल्प परिमाण में 'स्ट्रोन्शियम कार्बोनेट' और 'केल्सियम सल्फेट' विद्यमान हैं।[1] यह एक मनोरंजक बात है कि धागे में पिरोये हुए दाने की भाँति टग छू के किनारे टोमोमोपो, न्योबो छूजेन, छूफुक्, और अंबूफुक् में, मानसरोवर के गर्भ में, गङ्गा छू में, तीर्थपुरी और ख्युङ्लुङ में गर्म जल के स्रोते पाये जाते हैं।

५—प्रस्तरावशेष और शालग्राम

भूगर्भशास्त्र और पुराणों से यह ज्ञात होता है कि कई लाख वर्ष पहले समस्त हिमालय एक महान समुद्र के रूप में था। जब धीरे-धीरे समुद्र सूख गया और हिमालय पहाड़ उठने लगा, तब कई प्रकार के सामुद्रिक जंतुओं के ऊपर मिट्टी पड़ते रहने से, बड़े भारी दवाव और लाखों वर्षों के प्रभाव से, वे पत्थर बन गए; तथापि उनका स्वरूप जैसे का तैसा बना रहता है। कभी बाहर का स्वरूप और कभी भीतर का स्वरूप रहता है। इन्हें प्रस्तरावशेष या जीवाश्म कहते हैं। अंगरेजी में इन्हें 'फॉसिल्स' कहते हैं। इन्हीं को भारतीय लोग शालग्राम मानकर पूजते हैं। ये शालग्राम उग्रनृसिंह, नृसिंह, गोपाल, लक्ष्मीनारायण, दामोदर, हिरण्यगर्भ, आदि कई प्रकार के होते हैं, और विष्णु के अवतार माने जाते हैं। कहा जाता है कि गंडकी नदी के उद्गम-स्थान दामोदरकुंड और कहीं-कहीं गंडकी नदी में भी ये पाये जाते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि शालग्राम के भीतर सोना होता है।

---

[1] मानसखंड से जिन खनिजादि वस्तुओं को मैं लाया था, उनकी रासायनिक परीक्षा काशी विश्वविद्यालय के भूगर्भ-शास्त्र विभाग के अध्यक्ष श्री डा० राजनाथ जी और रसायन-शास्त्र विभाग के श्री सुसर्ल राजू जी एम० एस-सी० ने बड़ी सावधानी से की है। इस उपकृति के लिये ग्रन्थकार उनका आभारी है।

यह सरासर मिथ्या और काल्पनिक है, परंतु इस कल्पना का एक आधार भी है ; वह यह कि कहीं-कहीं ये शालग्राम या 'फॉसिल्स' 'स्वर्णमाक्षिक' के होते हैं। अर्थात् यदि उक्त रीति से कीड़ों आदि पर पड़ी हुई मिट्टी लोहा और गंधक से युक्त हो तो ये कीड़े केवल पत्थर होने के स्थान पर अंशतः या पूर्ण रूप में स्वर्णमाक्षिक के होते हैं। स्वर्णमाक्षिक लोहे और गंधक का एक यौगिक पदार्थ है। इसे अंग्रेजी में 'फेरिक सल्फाइड' या 'आयर्न पाइराइट' कहते हैं, जिसका वर्ण सोने की भाँति हल्का पीला होता है और लोहे का यौगिक होने के कारण पर्याप्त भारी होता है। इसे अंग्रेजी की साधारण भाषा में 'फूल्स गोल्ड' (मूर्खों का सोना) भी कहते हैं। इससे मालूम होता है कि यहाँ की भाँति यूरोप में भी एक समय इसको अज्ञानी लोग सोना समझते थे। कभी-कभी कुछ शाल-ग्रामों के भीतर स्वर्णमाक्षिक के टुकड़े हुआ करते हैं। इनके संबंध में विशेषकर साधुओं और दूसरे लोगों ने भी अज्ञानता के कारण सोने के भ्रम में पड़कर शालग्राम में सोना होने का भ्रम फैला रखा है।

मैंने सन् १९४२ में कैलास की दक्षिणी तलहटी के छो कपाली सरोवर से सामुद्रिक जीवों के प्रस्तरावशेष लाकर भारत के जंतु-शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डाक्टर वेनीप्रसाद जी तथा भूगर्भ-शास्त्र-विभाग के बाबू पी. एन. मुकर्जी को दिए थे। यह फार्म जब प्रेस में था उसी समय उक्त सज्जनों के पत्र उन प्रस्तरावशेषों की गवेषणा के विषय में प्राप्त हुए, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—"ये रेत और चूने के कठोर पत्थरों में स्थित सामुद्रिक प्रस्तरावशेष हैं। इनमें 'ऐस्ट्रेट', 'ओस्ट्रिया' आदि की विद्यमानता के कारण इनके 'माध्यमिक युग' (मेसोजोइक युग) के होने का पता लगता है।" इससे यह स्पष्ट है कि ये प्रस्तरावशेष कम से कम २० लाख वर्ष के हैं। इन प्रस्तरा-वशेषों के संबंध में परिश्रम-पूर्वक परिशीलन करके विवरण भेजने के लिये मैं उक्त सज्जनों का आभारी हूँ।

इसी प्रकार के अनेक शालग्राम मुझे कुटी के ग्राम में मिले थे, जो काशी और कलकत्ते के विश्वविद्यालयों को दे दिये गए हैं और वहाँ वे समुचित रूप से सुरक्षित हैं। ये दामोदरकुंड में ही नहीं, प्रत्युत वृहत् हिमालय में सर्वत्र

पाये जाते हैं। मेरी जानकारी में दामोदरकुंड के अतिरिक्त टिंकर, लीपूघाटा के पास, कुटी के गाँव में, मशङ्धुरा के पास, दारमा घाटा के नीचे, कुँङरी-बिंङरी के नीचे छिरचिन के पास, नीती घाटा के नीचे, पुलिङ मंडी के पास और अन्य कई प्रदेशों में ये पाये जाते हैं।

ठीक इन्हीं शालग्रामों की भाँति सहस्रों वर्ष पहले के जंतु, अस्थि, पक्षी, वृक्ष, पत्ते और कहीं-कहीं जंतुओं के मार्ग-चिह्न भी पत्थरों के रूप में पाये जाते हैं। इन प्रस्तरावशेषों के आधार पर भूगर्भशास्त्रवेत्ता पुराकाल के जीवजंतु, वृक्षादि का पता लगाते है। वनस्पतियों के प्रस्तरावशेषों की गवेषणा करनेवालों में डा० बीरबल साहनी जगत्-प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं।

संस्कृत में शाल का अर्थ एक प्रकार का कीड़ा है और ग्राव या ग्राम पत्थर को कहते हैं। अतः शालग्राम या शालग्राव का अर्थ शिलामय कीड़ा है। इससे ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज यह जानते थे कि शालग्राम प्रस्तरावशेष हैं।

अध्याय ३

निवासी

१—निवासी

श्री कैलास-मानसखंड के निवासी सब के सब तिब्बत के मूल निवासी ही हैं, अन्य जाति कोई नहीं है। यहाँ की जनसंख्या सात आठ हज़ार के बीच की होगी, जिनमें से अधिकांश पुरङ घाटी में ही रहते हैं। यहाँ के लोग पशुओं को साथ लेकर व्यापार के लिये दूर-दूर तक जाते हैं। साधारणतया ये लोग बलवान, परिश्रमी, बहुत पुराने विचारवाले, शांत, और धर्मपरायण तथा अल्पसंतोषी हैं। अतिथि-सत्कार में तो अद्वितीय हैं; पर दैनिक कार्य, रहन-सहन और पोशाक में बहुत ही गंदे रहते हैं। लामा और अफसर लोग बहुत संस्कृति-प्रिय, साफ-सुथरे और शिष्ट होते हैं।

तिब्बत में वर्णव्यवस्था नहीं है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में सब वर्णों के लक्षण और गुण पाये जाते हैं। वे धर्म-जिज्ञासा या धर्म-चर्चा करते समय पूरे तत्ववेत्ता प्रतीत होते हैं; पूजा करते समय देखें तो कट्टर ब्राह्मण जैसे दीख पड़ेंगे; बंदूक लेकर शिकार खेलने निकले, तो पूरे क्षत्रिय मालूम पड़ेंगे; मंडियों में व्यापार करते समय पक्के बनिये प्रतीत होंगे; भाड़े पर ले जाते समय घोड़ों की पूरी सेवा करते हैं; भेड़ों को काटते समय देखें तो निरे कसाई मालूम पड़ेंगे। इनका आतिथ्य, आदर और दया देखिए तो आश्चर्य होता है। जूते सीना, लकड़ी का काम करना, हल जोतना, खेती करना, रसोई बनाना आदि सभी कामों के ये जानकार होते हैं।

पुरङ में करनाली नदी की दून में, जो प्रायः १६ मील लंबा है, अन्य प्रदेशों से गर्म होने के कारण, लोग घर बना कर रहते हैं। बहुधा ये घर

बड़ी-बड़ी कच्ची ईंटों और भारत की सीमा से लाई हुई थोड़ी सी लकड़ियों से बने, दो-दो मंजिल के समतल छतवाले होते हैं। छत के ऊपर हल्की लकड़ी और पेमा या डमा के पौधों के ऊपर मिट्टी को डालकर पोत देते हैं। लकड़ी की कमी के कारण विशेषकर मानसखंड और वैसे सारे तिब्बत में मकान बहुत कम हैं। इसके अतिरिक्त तीन चौथाई भाग के लोग, भेड़-बकरियों के पालने की आजीविका होने के कारण एक दून से दूसरे दून में घूमते रहते हैं। इसलिये बहुत लोग याक के बने काले तंबुओं में रहते हैं। कहीं-कहीं एक, या दो घर का ही गाँव माना जाता है। उनके गोम्पाओं के मकान भी कच्ची ईंटों के बने होते हैं, पर बड़े होते हैं।

पुरङ के कुछ लोग पहाड़ की गुफाओं के मुख में दरवाजा लगाकर रिक्त स्थानों में दीवाल खड़ी करके मकान बना लेते हैं। इस प्रकार की गुफाओं में बने मकान दो दो, तीन-तीन मंजिल के भी होते हैं। तकलाकोट मंडी से आधी मील की दूरी पर करनाली के तट पर, दाहिनी ओर के पहाड़ की गुफाओं में गुकुङ नामक गाँव बसा हुआ है, जिसमें तीन मंजिल का एक गोम्पा है। इस प्रकार की गुफाओं में बने घर गरू, दोह, रिंगुंग, दुङमर, करदुङ, किरोङ, कङजे, पीली इत्यादि स्थानों में हैं। सन् १८४१ में जोरावर सिंह ने जब मानसरोवर प्रांत पर चढ़ाई की थी तो सरोवर के दक्षिण के लोगों ने कठोर शीत में नमरेलडी नदी की दून के ऊपरी भागों की गुफाओं में आश्रय लिया था।

भूत-प्रेत और चुड़ैलों को दूर करने और उनसे सुरक्षित रहने के लिये घरों, मठों और तंबुओं के ऊपर रंग-बिरंग के झंडे और तोरण लगा देते हैं। यहाँ के लोग नित्य सबेरे आंगन में या घर के बाहर एक छोटे-से चबूतरे के ऊपर आग रखकर सुगंधित वनस्पति या घृत मिश्रित सत्तू की धूप देते हैं।

३—खानपान

यहाँ के लोगों का प्रधान भोजन कच्चा, सूखा, सभी प्रकार का मांस, सत्तू (चंपा), पर्याप्त दूध और दही है। ये लोग जौ के सत्तू में चाय डालकर, उसका पिष्ट बनाकर बड़े आनंद से खाते हैं। सबेरे-शाम जौ के सत्तू को मांस के साथ
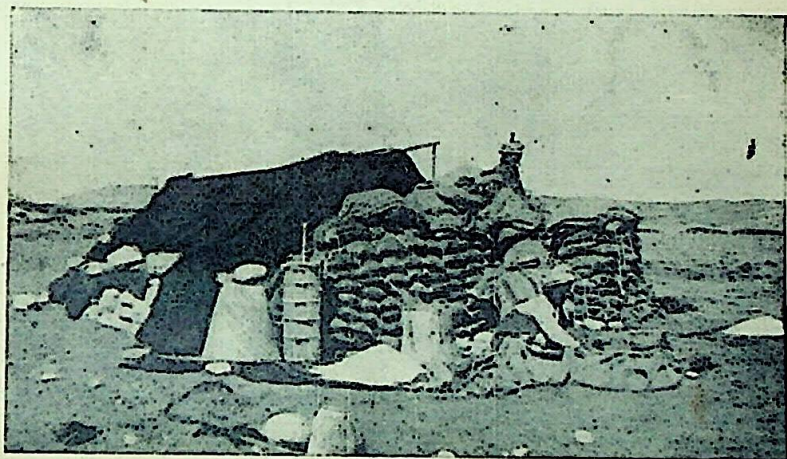
पुरुरव छोङ्रा में एक नेपाली व्यापारी का तंबू

[देखो पृ० ३५८
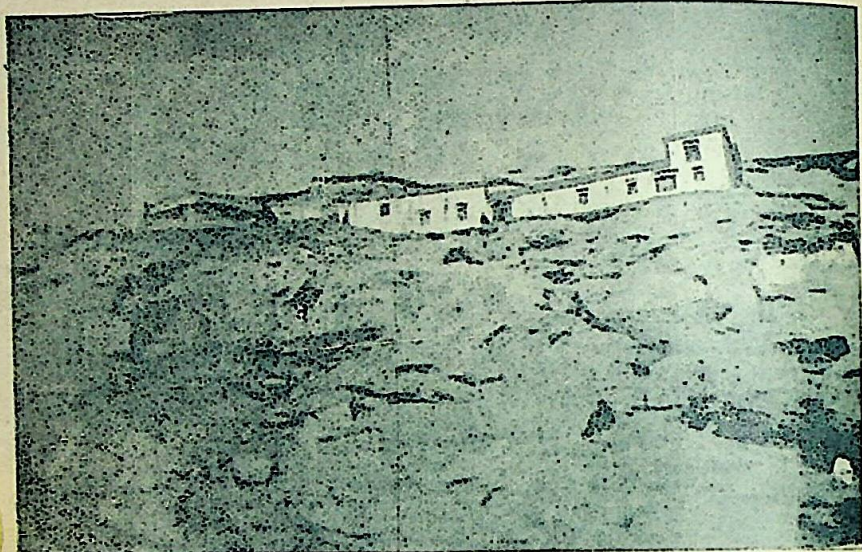
गोछुल गोम्पा—पुनीत मानसरोवर का पहला मठ

[देखो पृ० ३५३
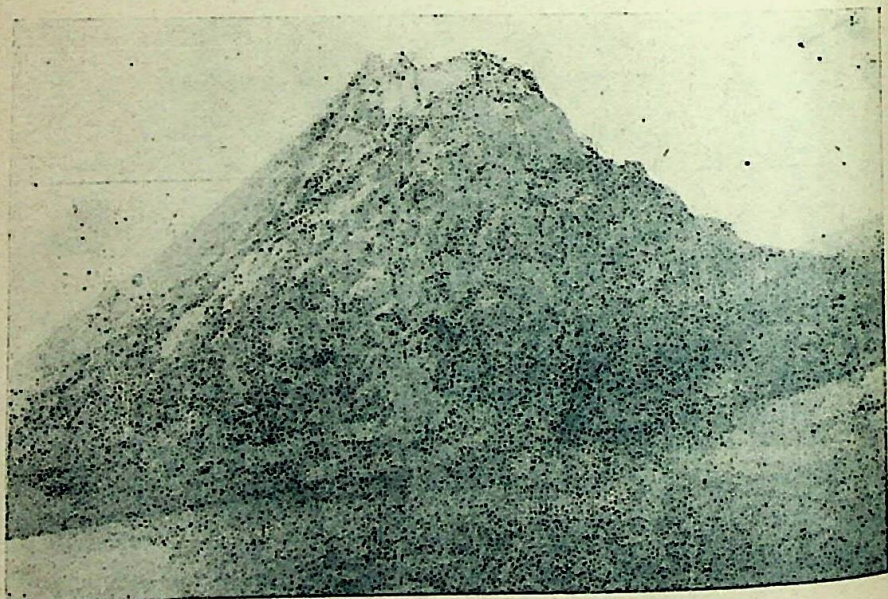
च्यू गोम्पा—मानसरोवर का दूसरा मठ और गङ्गा छू

[देखो पृ० ३५४
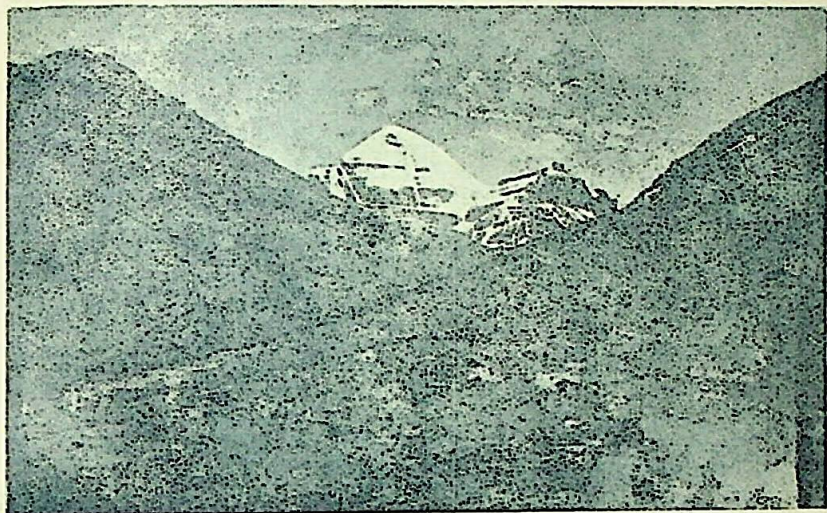
सिलुङ गोम्पा से कैलास का दक्षिणी दृश्य

[देखो पृ० ३५२
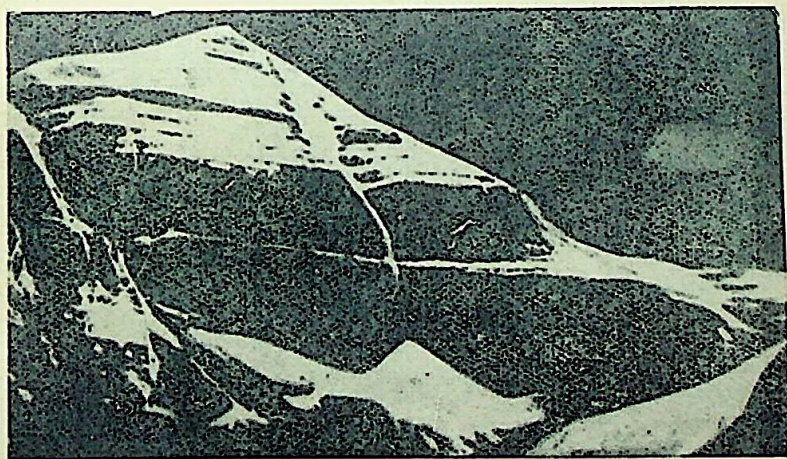
दक्षिणी पादतल से कैलास-शिखर का दृश्य

[देखो पृ० ४७
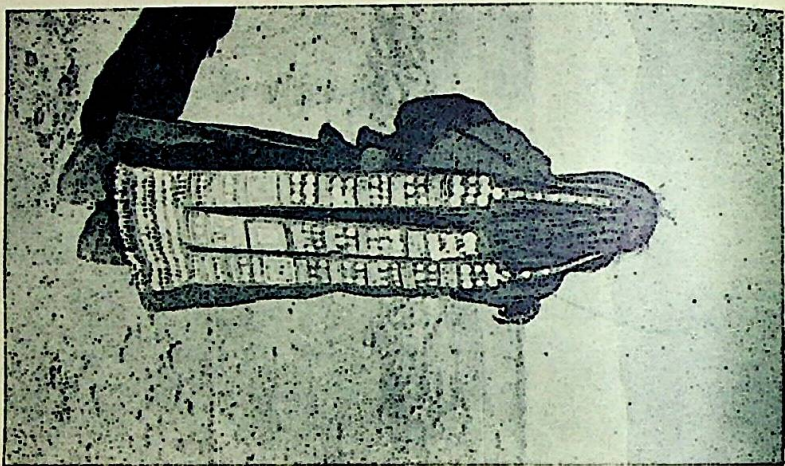
वालों का शृङ्गार

[देखो पृ० १४१

चोंगों में चाय का मंथन
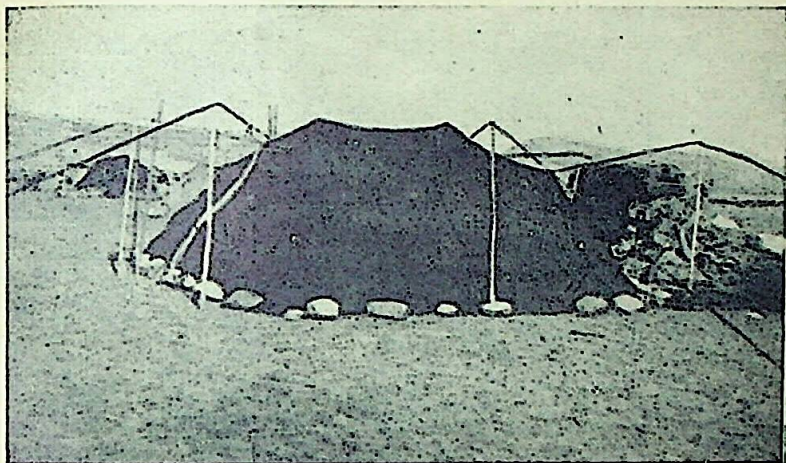
तिब्बती काला तंबू
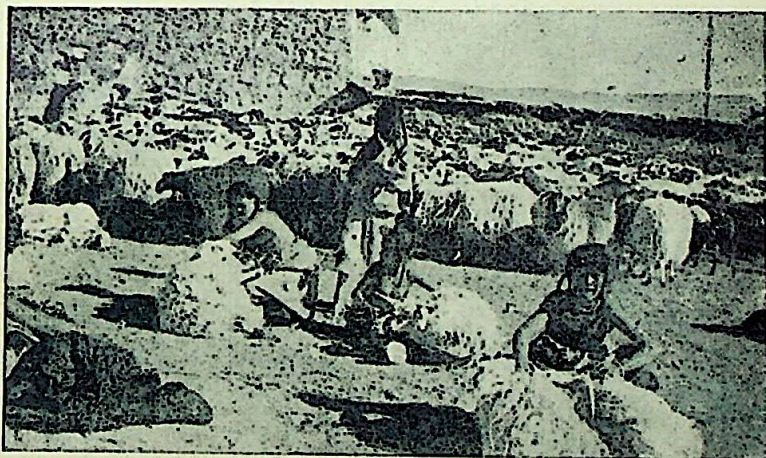
[देखो पृ० १३६

ऊन की कटाई
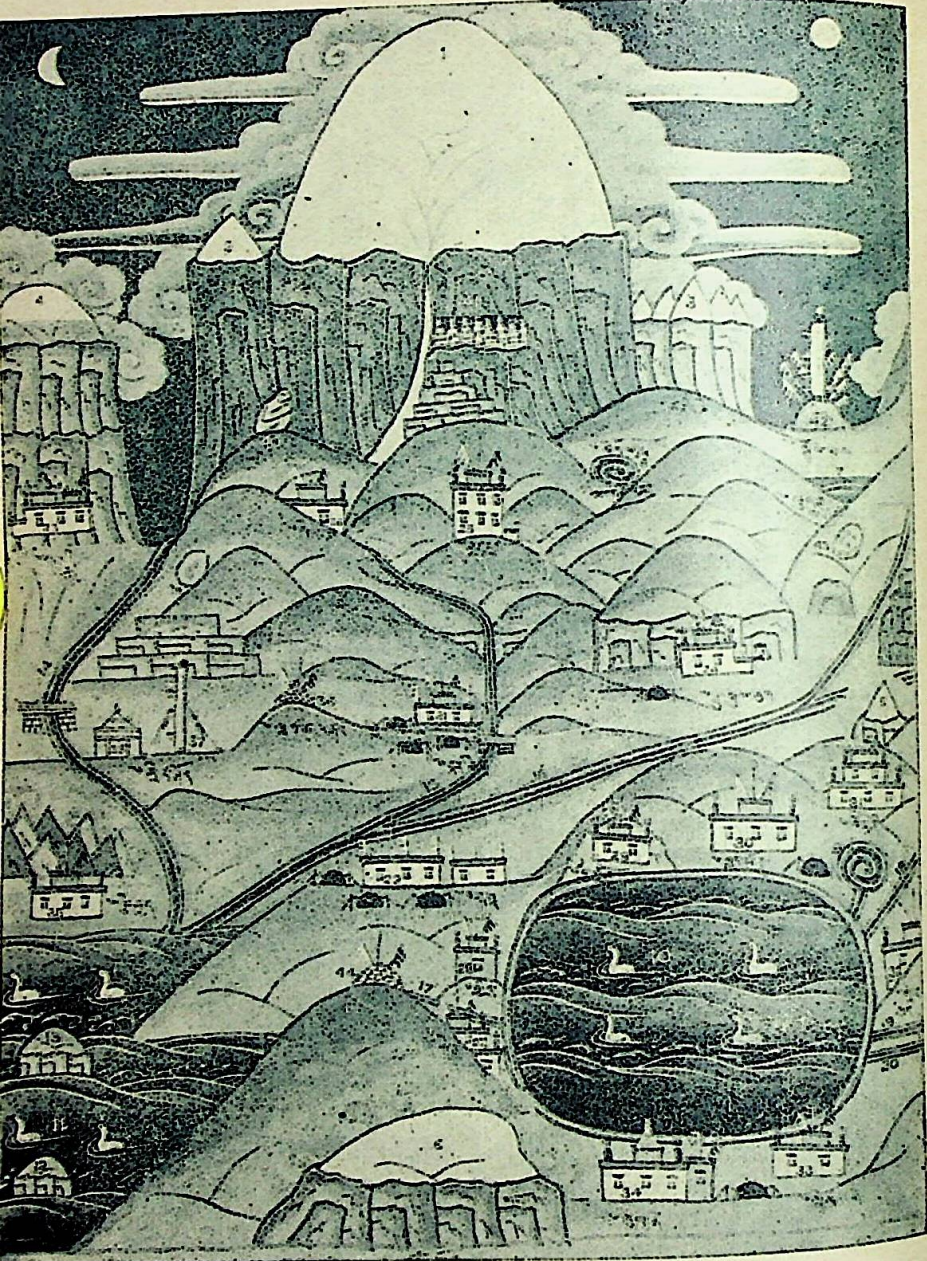
[देखो पृ० १६६

एक तिब्बती थंका (चित्रपट) से कैलास-मानसखंड

(ब्लाक कलकत्ता विश्वविद्यालय के सौजन्य से प्राप्त)

[देखो पृ० ११६
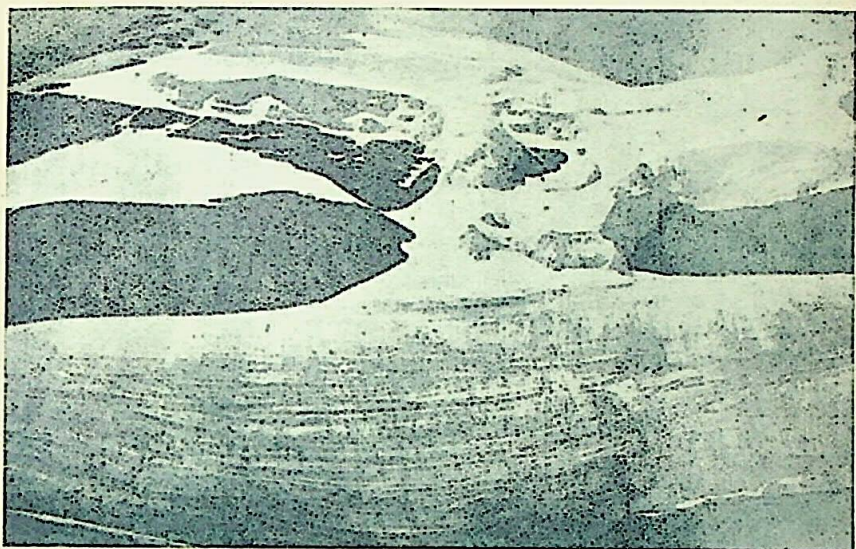
कैलास-शिखर के पूर्वी पार्श्व में गिरता हुआ एक बहुत बड़ा हिम खंड

[देखो पृ० ४७

शीतकाल में मानसरोवर पर सूर्योदय
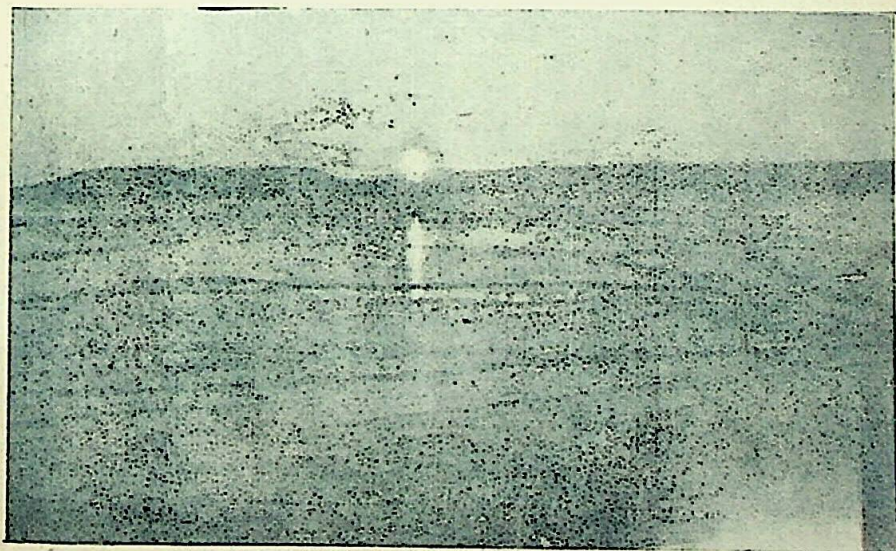
ठुगोल्हो में चाय की केटली बनाना

[देखो पृ० १३७
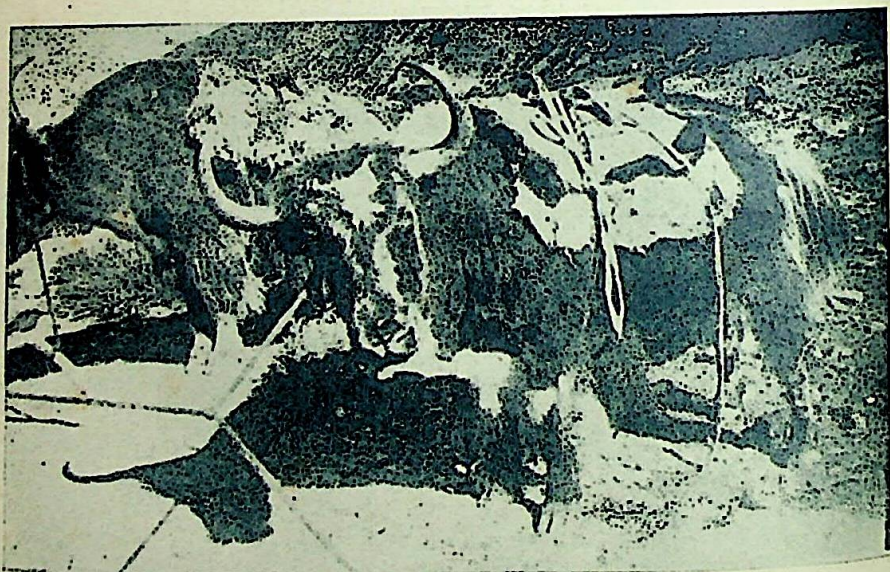
याक—तिब्बती बैल

[देखो पृ० १६४

उबाल कर पतली लेई (थुक्पा) की भाँति बनाकर उसमें थोड़ा सा नमक डाल कर पीते हैं, इसमें छुरा[1] भी डालते हैं। ये लोग भोजन प्रायः तीन बार करते हैं। भारत और नेपाल की सीमा पर होने के कारण पुरङ के लोग दिन में एक बार रोटी या भात खाते हैं। चीन देश से आई हुई बिना पकी चाय का ये बहुत व्यवहार करते हैं। चाय होंकोंग से कलकत्ते तक जहाज पर आकर वहाँ से ल्हासा या अन्य मंडियों में जाती है। यह चाय छोटे-छोटे ईंट और रामफल या हृदय के समान गोल (ऊपर मोटा और नीचे छोटा) आकार में दबकर बनी हुई आती है। सस्ती होने पर भी भारत की चाय को तिब्बत के लोग पसंद नहीं करते।

चाय को पहले पानी में डालकर अच्छी तरह से बहुत समय तक उबाल कर उसमें नमक और थोड़ा सोडा डाल देते हैं। कहते हैं कि फुलदो नामक एक प्रकार का सोडा चाय में डालकर मथने से मक्खन अच्छी तरह मिल जाता है और चाय का रंग आ जाता है। फिर उसे छान कर लंबे-लंबे 'डोङमों' (लकड़ी के बने हुए चार-चार छः-छः अंगुल के व्यासवाले चोंगों) में मक्खन डालकर अच्छी तरह से मथकर मिट्टी या धातु की केटलियों में डाल कर पीने के लिये देते हैं। इस प्रकार की केटलियों[2] को गर्म रखने के लिये अंगीठी के ऊपर रखा जाता है। घरों में चाय सर्वदा प्रस्तुत रहती है। जब कोई मित्र या अतिथि आते हैं तो उनके जाने के समय तक उन्हें चाय पिलाते रहते हैं।

चाय पीते समय कटोरे में थोड़ा रख छोड़ना चाहिये; नहीं तो असभ्य समझा जावेगा या चाय पीना समाप्त किया गया समझा जावेगा। कटोरे में आधी चाय छोड़ दें तो यह समझा जावेगा कि चाय अच्छी नहीं है। सवेरे से लेकर रात में सोने के समय तक अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार ये लोग प्रतिदिन ५० से लेकर १५० प्याले तक चाय पी लेते हैं। पूजा-पाठ के कार्य-क्रम

---

[1] पनीर, जिसे अंग्रेजी में 'चीज़' कहते हैं।

[2] ठुगोल्हो में मिट्टी की चाय की केटली या 'तिबिरी' और दूसरे प्रकार के बर्तन बनते हैं। कहते हैं कि नमकीन चाय मिट्टी की तिबिरियों में विशेष स्वादिष्ट होती है। यहाँ की केटली प्रसिद्ध है और लोग उसे दूर-दूर तक ले जाते हैं।

में भी बीच-बीच में चाय पी जाती है। चाय पीना समाप्त करने के समय अंतिम प्याले के साथ सत्तू मिलाकर खा लेते हैं। और उसके बाद कटोरे को अच्छी तरह से चाटकर, चोंगों में डाल देते हैं। इन कटोरों को वर्ष में एक बार चेनरेसी (जो निरामिष देवता है) के व्रत के दिन धोते हैं। तिब्बतियों के भोजन का व्यय लगभग आधा चाय में ही लगता है। चाय के लकड़ी के कटोरे नेपाल से आते हैं।

जौ को उबाल कर उसे सड़ाकर छङ नामक एक हलके प्रकार की शराब बनाकर स्त्री, पुरुष, बच्चे, और भिक्षु लोग बड़े प्रेम से सेवन करते हैं। चाय या छङ को लकड़ी के एक छोटे कटोरे में पीते हैं, जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपने पास चोगों के भीतर रखता है। वास्तव में चाय के यह प्याले नेपाल की सीमा के लिमी नामक प्रदेश से आते हैं, जो एक प्रकार के वृक्ष की गाँठ से बनते हैं। घटिया बढ़िया मेल के अनुसार एक-एक कटोरे का मूल्य दो आना से लेकर दस रुपये तक होता है। ये मेंहदी के तेल से एक विशेष प्रक्रिया से रँगे जाते हैं। नित्य पचासों बार गर्म चाय या अन्य खाद्य पादर्थ डालने पर भी इनकी पालिश जल्द नहीं उतरती।

कभी-कभी लकड़ी की इन कटोरियों के भीतर चाँदी मढ़ा देते हैं। इस प्रकार के चाँदी-मड़े कटोरे निर्धन से निर्धन के घर में भी एक-दो होते ही हैं। संपन्नों के पास तो अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त चीनी-प्याले, अधिक मूल्य वाले पत्थरों के तथा अपने विभव के अनुसार चाँदी के कटोरों का व्यवहार भी तिब्बत के लोग करते हैं। चीनी और चाँदी के कटोरों को चायदान के ऊपर ढक्कन देकर रखते हैं।

भोजन की सभी सामग्री, सत्तू रखने के लकड़ी के बने सत्तूदान, और चाय के प्यालों को बैठक के सामने एक मुड़नेवाली छोटी एवं नक्काशी की हुई चौकी पर रखते हैं। मुड़नेवाली इस प्रकार की मेज को 'चोकसे'[1] कहते हैं। तिब्बती लोग स्वभावतः कला के उपासक होते हैं। इसलिये दरिद्र से दरिद्र के

---

[1]ये मेजें भी लिमी से आती हैं।

घर में भी कुछ रंगीन चित्रपट, चाँदी के कटोरे, और बूटेदार 'चोकसे' रखे रहते हैं। अफसर और संपन्न लोग चीनियों की भाँति भात और मांस को 'खोलचे' (लकड़ी या दाँत की बनी हुए दस या बारह अंगुल की शलाकाओं) के द्वारा बड़ी पटुता से खाते हैं। तिब्बती लोग मछली और पक्षियों को न मारते हैं, न उनका मांस खाते हैं; परंतु अंडे खाने में वे कोई संकोच नहीं करते। रहन-सहन में गंदे रहने पर भी तिब्बतियों में यह एक अच्छी परिपाटी है कि वे भोजन की सामग्रियों को हाथ से नहीं छूते; वरन् करछुल या चम्मचों का प्रयोग करते हैं।

पूर्वी तिब्बत शिगर्ची और ल्हासा के प्रांतों में मटर के आटे को शोधकर एक विशेष प्रकार की सेमई बनाते हैं, जो लपेटी हुई रस्सी के आकार में बँधी हुई होती है। यह बहुत कड़ी और श्वेत रंग की होती है और अधिक उबालने पर भी नहीं गलती। तिब्बती भाषा में इसे 'फिङ' कहते हैं। धनी लोग इसे मांस में डालकर साग बनाते हैं।

छोटे-छोटे बच्चों को पहले महीने से ही माता के दूध के अतिरिक्त भोजन देने लगते हैं। सत्तू का दूध, घी और चीनी के साथ अधगाढ़ा हलुवा बना कर माता पहले उसे अपने मुंह में चबाकर फिर उसे चम्मच से निकालकर बच्चे को खिलाती है। तिब्बती लोग मांस के लिये भेड़-बकरियों को विचित्र ढंग से मारते हैं। उनके धर्मग्रंथों में लिखा है कि किसी जीव-जंतु का रक्तपात न करे। इसलिये वे पशुओं की नाक और मुंह को रस्सी से बंद कर देते हैं, जिससे उनका दम घुट जाता है और वे मर जाते हैं, तब बोटियों में काट लेते हैं। ये लोग विशेषतया भेड़ों का मांस ही खाते हैं। यदि कोई इनसे कहता है कि बौद्धों के लिये तो जीव-हिंसा पाप है, तो ये चट उसका उत्तर दे देते हैं कि अच्छी योनि में जन्म लेने के लिये ही हम इन्हें मारकर मांस का भक्षण करते हैं।

ये जीवित चँवर गाय को मांसके लिये नहीं मारते; हाँ, मरे हुए का मांस और जंगली चँवरियों का शिकार करके खा लेते हैं। प्रायः साधारण तिब्बती अपने वस्त्र को साल भर में कठिनता से एक बार धोते हैं; इसलिये सबों के कपड़ों में जूँ पड़ जाती हैं। अतः प्रतिदिन जूँ को कपड़ों से निकालते समय

ये लोग कभी कभी उसे मुंह में डाल देते हैं, जिसके स्वाद को खट्टा बतलाते हैं। यह चलन विशेषकर पूर्वी तिब्बत में है।

काँटेदार डमा की झाड़ी हरी भी जलती है, पर यह बहुत धुँएवाली होती है। डमा की झाड़ियाँ, याक के जंगली कंडे, भेड़ और बकरियों की लेंड़ियाँ जलाने के काम में आती हैं। शीतकाल में बर्फ़ गलाने और चाय और दूध गर्म करने के लिये सबेरे से लेकर शाम तक भेड़-बकरियों की लेंड़ियों से चूल्हा जलाया जाता है। आग बनाने के लिये चकमक-पत्थर को काम में लाते है। वह सदा सब के पास रहता है। यहाँ आग सुलगाने के लिये भाथी का प्रयोग करते हैं। यात्रा के समय एक धौंकनी को साथ में रखते हैं। जिससे सुलग कर आग की लपट लकड़ी की आग की लपट के समान निकलती है।

तिब्बतियों के नित्य जीवन में मक्खन विशेष महत्त्व की वस्तु है। खाने-पीने, देव-मूर्तियाँ बनाने के कामों के अतिरिक्त इसे मंदिरों में दिया जलाने के लिये और हवन करने के काम में लाते हैं। पनीर की टिकियों के ऊपर, रोटी के ऊपर, शराब के बर्तनों और कटोरियों पर थोड़ा-सा मक्खन रखा जाता है। यह शुभ सूचक या शुभ शकुन माना जाता है। इसलिये किसी कार्य पर, या दूर यात्रा पर जाने से पहले स्त्रियाँ ऊपर मक्खन लगे हुए छङ की सुराही लेकर द्वार पर खड़ी हो जाती हैं। घोड़े पर बैठने से पहले यात्रा पर जाने वालों को मक्खन लगाए हुए कटोरों में छङ पीने को दिया जाता है। पूर्णकुंभ, जौ, कोरलो, छिन छिन की ध्वनि, दूध, दही, छङ, या बच्चे को लिये स्त्री, अच्छे वस्त्र पहने हुए पुरुष या स्त्री, आदि शुभ शकुन माने जाते हैं। बिखरे हुए बालवाली औरत या खाली बाल्टी आदि को अपशकुन मानते हैं।

४—वेश-भूषा

सारा मानसखंड समुद्र की सतह से १२००० फीट से अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण वहाँ के लोग दोहरी छाती के छुपा (ऊनी चोगों) को पहनते हैं। इसके ऊपर एक बित्ता चौड़ा कमरबंद बाँधते हैं। म्यान में रखा हुआ १०-१२ अंगुल लंबा चाकू, सूईदान, चकमक, और बटुआ, धूम्रपान

तिब्बती पहनावे में ग्रंथकार
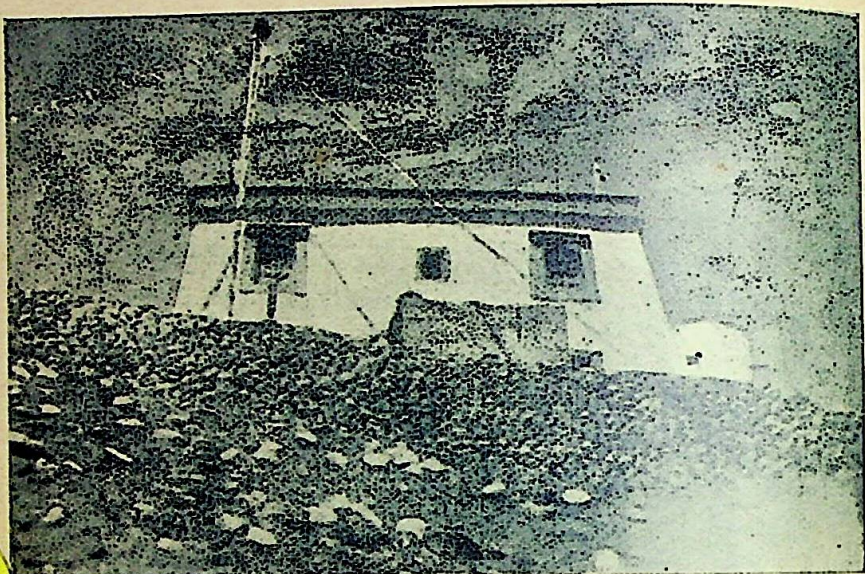
करदुङ गोम्पा
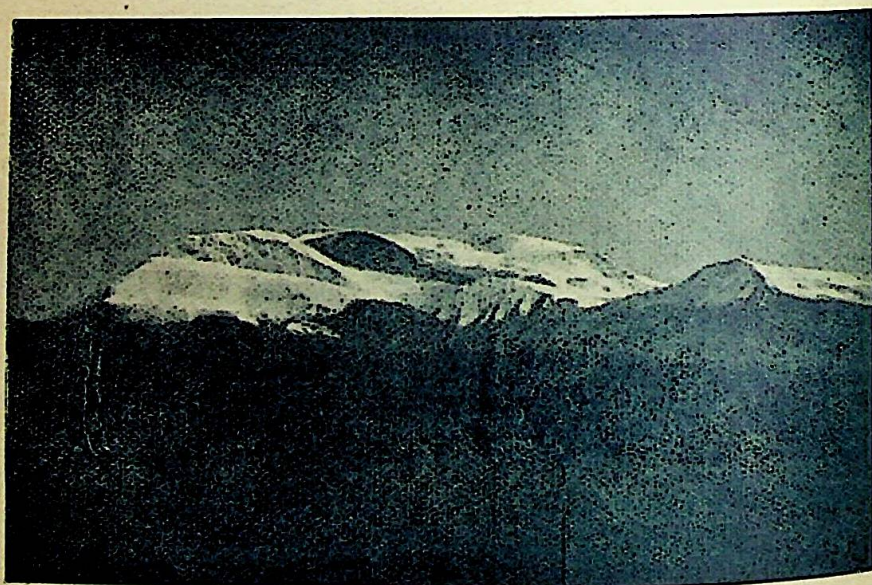
गुरला ला घाटी से मांधाता का दृश्य

[देखो पृ० ३०५

करनेवाला हो तो अंग्रेज़ी ढंग के 'स्मोक-पाइप', और तंबाकू की थैली इत्यादि वस्तुएँ सदा कमरबंद से लटकती रहती हैं। म्यान में रखी हुई दो-ढाई फीट लंबी तलवार सर्वदा कमरबंद में घुसी रहती है। प्रयाण करते समय पीठ पर एक चमड़े की पेटी से बंदूक लगी रहती है और एक बड़ा तावीज भी बँधा रहता है। घुटनों तक आनेवाले ल्हम नामक ऊनी या चमड़े के जूते पहनते हैं। इन ल्हमों को पहनकर मठों के देवालयों में भी जा सकते हैं। शीतकाल में मरे हुए भेड़ के बच्चों के या बड़े भेड़ के चमड़े से बने हुए भक्कू या पोस्तीन (चमड़े का चोगा) पहनते हैं। काम-काज करते समय या गर्मी के दिनों में एक या दोनों हाथों को बाहर निकाल लेते हैं। चमड़े के बने हुए, घुटनों के नीचे तक आनेवाले पायजामे पहनते हैं। धनी लोग इन चोगों और पायजामों के ऊपर बढ़िया कपड़ा या रेशम भी लगा लेते हैं। प्रायः स्त्रियाँ भी इसी पहनावे को पहनती हैं। भद्र और संपन्न घरों की महिलाएं बिना बाँह के चोगों को लंबे बाँहवाले जाकट के ऊपर पहनती हैं। स्त्रियाँ धारीदार, पड़ीरेखा वाले, ऊनी वस्त्रों को आगे की ओर कटि से लेकर टखनों तक पहनती हैं और बालों को बाहर करके पीठ पर बकरी के चमड़े को पहनती हैं।

स्त्रियाँ अपने केशों को कई लटों में गूंथकर फिर उन्हें नीचे की ओर एक में मिलाकर बाँध लेती हैं और उनमें एक पट्टी बाँधकर उसे चाँदी के सिक्के और पिरोजों से सजाती हैं। वह एड़ी तक लटकती रहती है। गले में पिरोजे, मूँगे आदि की कई प्रकार की मालाएँ पहनती हैं। हाथ में मोटे-मोटे शंखों को लगाती हैं तथा दोनों कानों में सोने के साथ पिरोजा, मूँगा, और नकली मोतियों को लगाकर झुमके बना लेती हैं। धनी लोग पिरोजा या मूँगा-जटित अँगूठी की भाँति बालियों को बाँये कान में धारण करते हैं। अफसर लोग बाँये कान में पिरोजा या मूंगा-मोती की नुकीली पेंसिल जैसी बाली को कानों में धारण करते हैं। हाथों के अँगूठों में एक अंगुल मोटे और एक अंगुल चौड़े हरित् या श्वेत पत्थर की अँगूठियाँ पहनते हैं। ल्हासा की भद्र महिलाएँ मूँगे-मोतियों की झालर लगी हुई शृंग, धनुष या त्रिकोण की आकृति का शिरोभूषण पहनती हैं। तिब्बतियों के गले में पहनने के आभूषण विशेषकर पिरोजे, मोती, और मूँगे से

युक्त होते हैं। गले में चाँदी के बने तावीज़ (गौ) लटकते रहते हैं। बाहर जाने के समय ऐसे ही बड़े-बड़े तावीज़ों को पीठ पर बाँध लेते हैं, जिनके मुख पर शीशे के भीतर किसी देवता का चित्र और भीतर में सभी प्रकार के यंत्र-मंत्र और प्रसाद रक्खे होते हैं। पुरुष लोग कलकत्ते से आये हुए अंग्रेजी फेल्ट हैट पहनते हैं। कुछ लोग चीन की बनी हुई रोएँदार टोपियाँ पहनते हैं, जो आवश्यकतानुसार बगलों में मोड़ी या खोली जा सकती हैं। पुरङ की स्त्रियाँ एक प्रकार का कनटोप पहनती हैं। धनी गृहस्थ, अफसर और लामा लोग मूल्यवान् सूती, रेशम और ऊनी कपड़ों को बड़ी शान से पहनते हैं। तिब्बती लोग रात को सोते समय पहने हुए सब वस्त्रों को उतारकर ओढ़ने के काम में लाते हैं। भिक्षु और भिक्षुणियाँ शिरोमुंडन कराके बैंगनी रंग के दुपट्टे के समान एक प्रकार का चोगा पहनती हैं। गृहस्थ स्त्री-पुरुष मध्यकालीन यूरोप की भाँति बालों को रखकर जूड़ा बाँधते हैं।

मानसखंड के निवासी तथा वहाँ यात्रा पर जाने वाले अन्य तिब्बती मानसरोवर में अच्छी तरह नहाते हैं। यद्यपि अन्य प्रदेशों के तिब्बती बहुत कम स्नान करते हैं, तथापि अफसर, उच्च कोटि के भिक्षु, और संपन्न लोग स्नान करने के लिये और नित्य हाथ धोने के लिये साबुन और स्थानीय सोडा को काम में लाते हैं, और कपड़ों को अच्छी तरह से धोते-धुलाते हैं। वैसे तो सभी तिब्बती बाल बाँधने के लिये १५ या २० दिन में एक बार सोडा लगा कर सिर धो लेते हैं।

तिब्बतियों को मूँछें नहीं होतीं, इसलिये प्रायः स्त्री और पुरुषों को पहचानने में कठिनाई होती है। संभव है, इसी कारण इस भूमि का नाम किंपुरुष-खंड पड़ा होगा। जिनकी मूँछें बढ़ी होती हैं वे बड़े प्रेम से, शौक के साथ, रखते हैं। भिक्षु लोग भी केवल सिर मुड़ाते हैं, यदि मूँछ हो तो उसे नहीं काटते। तिब्बती स्त्री-पुरुष दोनो संगीत के प्रेमी होते हैं।

५—अभिवादन

तिब्बत में थोड़ा झुककर, जीभ बाहर निकालते हुए एवं एक हाथ से सिर को खुजलाते हुए या माथे को मलते हुए 'खमजम भो', 'खमजम', या

'जू' कहकर अभिवादन करते हैं। अफसरों को अभिवादन करते समय वैसे ही जीभ निकालकर, टोपी को उतारकर हाथ से पकड़कर उसे दो तीन बार ऊपर नीचे करते हैं। अभिवादन के समय कभी-कभी अपने कान खींचते या मलते है। देवता या लामाओं को अभिवादन करते समय दोनों हाथों को अच्छी तरह से जोड़कर या साष्टांग दंडवत् होकर प्रणाम करते हैं। वैसे ही दिव्य स्थानों में भी साष्टांग दंडवत् प्रदक्षिणा करते हैं।

बड़े-बड़े लामाओं के आशीर्वाद देने की रीति, आशीर्वाद पानेवाले की प्रतिष्ठा, अवस्था, और सामाजिक स्थिति के अनुसार होती है। आशीर्वाद पानेवाला व्यक्ति भी यदि कोई बड़ा लामा हो तो आशीर्वाद देनेवाला अपने सिर से उसके सिर का स्पर्श करा देता है। यदि आशीर्वाद पानेवाला विशेष प्रेमी या अनुग्रह का पात्र हो तो उसके माथे पर दोनों हाथों को रखकर बड़े स्नेह से आशीर्वाद प्रदान करते हैं। अन्य लोगों को एक हाथ से, दो उँगुलियों से या एक उँगली से आशीर्वाद देते हैं। जनसाधारण को आशीर्वाद देते समय रंग-बिरंगे कपड़ों से बँधे हुए एक लकड़ी के अग्रभाग को उसके मस्तक से स्पर्श करा देते हैं। इन सभी प्रकार के आशीर्वादों में इस सिद्धांत की मुख्यता है कि साधारण आशीर्वाद की परिपाटी के निर्वाह के अतिरिक्त आशीर्वाद देनेवाले और आशीर्वाद पानेवाले के बीच स्पर्शगत-संबंध स्थापित हो जाय, ताकि आशीर्वादक की शक्ति का संचार दूसरे में हो जाय। कभी-कभी 'ल्हा-ग्यालो ल्हासोल' (देवता एक सौ वर्ष देवे) कहकर भी आशीर्वाद करते हैं।

झुककर दोनों हाथों के अँगूठों को दिखाना किसी वस्तु या बात के लिये मिन्नत वा प्रार्थना समझी जाती है। भोजन के समय एक या दो अँगूठों को दिखाना अनुमति, तृप्ति, या धन्यवाद देने का सूचक है। बड़े लामा या अफसरों से बातचीत करते समय या दो उच्चश्रेणी के व्यक्ति आपस में बातचीत करते समय 'ल्हा कनारे' (हुजूर), 'ल्हातूछे' (धन्यवाद), या केवल 'तूछेछे' या 'ल्हालस' कहते हैं। उच्च श्रेणी के तिब्बती दूसरों से बहुत सम्मान से बात-चीत करते हैं।

६—विवाह

बहुपति की प्रथा तिब्बत में अधिक रूप में प्रचलित है। संभव है कि यह प्रथा जीविका-निर्वाह की कठिनता और आर्थिक समस्या को दृष्टि में रखकर जन-संख्या कम करने के लिये प्रचलित की गई हो। यदि कुटुंब में बड़ा भाई विवाह करता है तो उसकी स्त्री सभी भाइयों की स्त्री हो जाती है, और वे सभी शांतिपूर्वक दांपत्य-जीवन बिताते हैं। स्त्री के एक होने पर भी सारी संपत्ति का अधिकारी बड़ा भाई ही होता है और छोटे भाई उसके सेवक के रूप में रहते हैं। इसीलिये आज भी तिब्बत में उतने ही घर, कुटुंब और जनसंख्या है जितनी कि शताब्दियों पहले थी। यदि कोई भाई स्वतंत्ररूप से धनोपार्जन करता हो तो वह अलग विवाह भी करता है। कहीं-कहीं पुरुष दो-दो विवाह भी करते हैं। स्त्री-पुरुष सामाजिक स्वतंत्रता का उपभोग समान-रूप से करते हैं। स्त्रियों का घर में पूरा अधिकार होता है। यहाँ पर प्रौढ़ स्त्री-पुरुष की पारस्परिक अनुमति से विवाह होता है। वर एक प्रकार की लकड़ी की बनी सुराही में छङ (शराब) को भरकर 'खतक'[1] के साथ वधू के दरवाजे पर रखता है। घर के लोगों द्वारा छङ की सुराही के उठाये जाने के समय तक वर का कर्त्तव्य होता है कि वधू या उसके घर के आने-जाने वाले लोगों का (चाहे वे कितनी बार आवें-जायँ) वहाँ की रीति के अनुसार अभिवंदन करता ही रहे। वधू के संबंधी जब छङ के पात्र को उठाकर घर में ले जाते हैं तो यह विवाह की स्वीकृति मानी जाती है और फिर विवाह की तैयारी होने लगती है। तब 'छिपा' (ज्योतिषी) बुलाया जाता है। वह पंचांग देखकर यह बतलाया है कि लड़का और लड़की के नक्षत्र आदि परस्पर संबंध के लिये

---

[1]एक बित्ता (१२ अंगुल) चौड़ा और एक गज़ लंबा हल्का श्वेत कपड़ा, जो माले के स्थान में व्यवहृत होता है। यह देवताओं को चढ़ाया जाता है तथा अफसर, लामा या किसी बड़े आदमी के सम्मानार्थ उसके सामने में रक्खा जाता है, या उनको चिट्ठी भेजना हो तो इसमें लपेट कर भेजते हैं।

अनुकूल हैं या नहीं। अनुकूल निकले तो ठीक ही है; यदि साधारण रूप से प्रतिकूल हों तो पूजा-पाठ कराके ग्रहों को शांत किया जाता है। यदि बिलकुल ही प्रतिकूल हों तो विवाह नहीं होता। यह सारा निर्णय करने में एक दो सप्ताह लग जाते हैं। विवाह का शुभ दिन और मुहूर्त भी निश्चय किया जाता है। वर-वधू के विभव के अनुसार निमंत्रणादि उत्सव धूम-धाम से मनाए जाते हैं। चार-पाँच दिनों के बाद वर वधू को अपने घर लिवा ले जाता है। यदि तीन दिन तक वधू के दरवाजे से छङ का बर्तन वधू के संबंधियों द्वारा गृहीत न हो तो इसे विवाह की अस्वीकृति समझकर वर अपनी सुराही को दरवाजे से उठाकर निराश हो अपने घर लौट जाता है।

७—अंत्येष्टि

मानसखंड में धनी भिक्षुओं के शरीर को जलाया जाता है। गरीब भिक्षु और गृहस्थों के शव को किसी निकट की नदी में फेंक देते हैं या टुकड़े-टुकड़े करके किसी पहाड़ पर गृद्धों के खाने के लिये रख देते हैं। तकलाकोट में सिंबिलिङ गोम्पा से चार मील की दूरी पर एक ऐसा स्थान है। यहाँ से कैलास के दर्शन होते हैं। कैलास और मानसरोवर के पास भी ऐसे स्थान हैं। तिब्बत के अन्य प्रांतों के लकड़ी प्राप्त होने वाले स्थानों में शवों की दाह-क्रिया करते हैं और दूसरे स्थानों में उपर्युक्त रीति से ही अंत्येष्टि कर देते हैं। यहाँ पर भी जातकर्म, विवाह, और अंत्येष्टि क्रिया की प्रथा हिंदुओं के आचारों की भाँति कई दिनों तक चलती रहती है। इन संस्कारों को लोग वहाँ पर अपनी संपत्ति के अनुसार करते हैं। अंत्येष्टि के बाद शव के भस्म को मिट्टी में मिलाकर लिंग की भाँति बनाकर उसके ऊपर एक मकान बनवा देते हैं, या एक बंद-घर बनाकर उसमें एक छिद्र रख छोड़ते हैं, जिसके भीतर उक्त राख के लिंग को डाल देते हैं। इसी प्रकार की बनी बंद-कोठरी को 'छोरतेन' कहते हैं, जो भारत के स्तूप या चैत्य के अनुकरण की होती हैं। जो धनी हैं वे मृतकों के लिये छोरतेन बना लेते हैं। साधारण जन अपने मृतकों के शवों के अवशेष के लिंगों को किसी अन्य छोरतेनों में उनके छिद्रों द्वारा भीतर डाल देते हैं। कभी-कभी मरे हुए व्यक्ति

के शव पर या उसकी हड्डियों के ऊपर समाधि या छोरतेन बना देते हैं।

विख्यात लामाओं के शवों को नमक से भरकर घी में पका लेते हैं, जिनको 'मरदोङ' कहते हैं। ये शव चाँदी के बनाये हुए छोरतेन में रखे जाते हैं। इस प्रकार के छोरतेनों के ऊपर पिरोजा, प्रवाल, और अन्यान्य रत्न जड़े जाते हैं। कुछ दलाई लामाओं और टाशी लामाओं के इस प्रकार के छोरतेन हैं। मानसखंड में भी कुछ लामाओं के ऐसे छोरतेन बने हैं।

मानसखंड में शवों के सिर तोड़ दिए जाते हैं, ताकि आत्मा शरीर से बाहर निकल जाय[1]। प्रायः भिक्षु लोग यह कार्य करते हैं, जिसके लिये कुछ पुरस्कार मिलता है। यह धन मठ की आय में जाता है।

---

[1]इसी प्रकार ईसाई और मुसलमान धर्मावलंबी अपने मृतकों के शवों को इस विश्वास से जमीन में गाड़ते हैं (जलाते नहीं) कि प्रलय (कयामत) के दिन मृतात्मा उन शरीरों के साथ बाहर निकल आवेगी।

अध्याय ४

धर्म

१—तिब्बत में बौद्धधर्म का आगमन

सम्राट् स्रोङ्चन गोंपो ने सन् ६३०—६९८ तक तिब्बत में राज्य किया था। कहा जाता है कि इनके मूल पुरुष ईस्वी के पूर्व पाँचवीं या छठी शताब्दी के लगभग तत्कालीन कोशलराज प्रसेनजित् के सुपुत्र थे। स्रोङ्चन गोंपो अपने पिता के मरने के बाद तेरह वर्ष की अवस्था में ही सिंहासन पर बैठे थे। भारतवर्ष के हर्षवर्द्धन के समान गद्दी पर बैठते ही देशों के दिग्विजय करने की उनकी लालसा प्रबल हो उठी। एक बड़ी सेना को एकत्रित कर पश्चिम में गिलगित्, उत्तर में चीनी तुर्किस्तान और चीन के बहुत से भागों, और दक्षिण में नेपाल तक विजय-दुंदुभी बजाकर उन देशों को उन्होंने तिब्बत के अधीन कर लिया। और उइ छू के किनारे ल्हासा (देवभूमि) नगर को अपनी राजधानी बनाया।

फलतः सन् ६४० में नेपाल-नरेश अंशुवर्मा ने अपनी पुत्री भृकुटी को सम्राट् स्रोङ्चन के साथ विवाह के लिये ल्हासा भेज दिया। दूसरे वर्ष चीनके राजा ने भी अपनी प्रिय कन्या केङ्जो को ल्हासा भेज दिया। चीन-राज की कन्या किसी समय भारत से प्राप्त बुद्ध भगवान् की एक प्राचीन मूर्ति अपने साथ लेकर गई थी, जिसके लिये उसने ल्हासा की उत्तर दिशा में रमोछे नामक मंदिर का निर्माण करवाया। नेपाल की राजकुमारी अक्षोभ्य और मैत्रेय की चंदन की प्रतिमाएँ तथा तारादेवी की मूर्ति को अपने साथ ले गई थी, परंतु पास में पर्याप्त धन न होने के कारण सम्राट् ने स्वयं अपने व्यय से ल्हासा नगर के बीच उन मूर्त्तियों के लिये ठुनङ नामक देवालय बनवा दिया था।

वह अब तक जोखङ नाम से प्रसिद्ध है। बौद्ध मतावलंबिनी इन दोनों रानियों से प्रभावित होकर सम्राट् भी तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिये कटिबद्ध हो गया।[1] उनकी ये दोनों रानियाँ नेपाली और चीनी राजकुमारी डोलमा (तारादेवी) के श्वेत (डोलकर) और हरित् (डोलजंग) अवतार मानी जाती हैं। स्वयं स्रोङ्चेन, अवलोकितेश्वर का और उनका मंत्री थोनमी, विद्याधि-देवता मंजुश्री का अवतार माना जाता है।

२—भाषा तथा लिपि

तिब्बत की भाषा तिब्बती है और प्रति पचास मील की दूरी पर बदलती रहती है। ल्हासा की भाषा ही आदर्श या साहित्यिक मानी जाती है। अधिकांश शब्दों के दो रूप होते हैं—साधारण और आदरसूचक। आदर-सूचक शब्द अफसर, लामा, और संभ्रांत लोगों के साथ भाषण करने के लिये प्रयुक्त होते हैं। कई शब्दों के अत्यादर सूचक रूप होते हैं, जो दलाई लामा और उच्चकोटि के अफसरों के साथ बात-चीत करते समय व्यवहार में लाये जाते हैं।

सम्राट् स्रोङ्चेन के पहले तिब्बती भाषा की कोई लिपि नहीं थी। पाली और संस्कृत के बौद्धधर्म-संबंधी ग्रंथों को तिब्बती भाषा में अनुवाद करने का काम अपने मंत्री थोनमी को सम्राट् ने सौंप दिया। थोनमी ने चक्रवर्ती के

---

[1] ईसा से पहले ही बौद्धधर्म, दक्षिण में लंका, सुमात्रा आदि द्वीपों तक, उत्तर में बाइकल सर, पश्चिम में काकेशिया से लेकर जापान तक फैल गया था। एक पाश्चात्य विद्वान् का मत है कि ई० पू० १३७ में कैलास श्रेणी के ढालुओं में एक बौद्ध मठ बना, परंतु कुछ वर्ष बाद ही वह नष्ट हो गया। पुनः सन् ३६१ में चीनी बौद्ध भिक्षु तिब्बत पहुँचे। परंतु तिब्बती परंपरा के अनुसार स्रोङ्चेन के काल में ही तिब्बत में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ। चीनी भिक्षुओं द्वारा स्केन्डिनेविया और पाँचवीं सदी में मेक्सिको तक बौद्धधर्म पहुँच गया। मेक्सिको में १३ वीं सदी तक बौद्धधर्म रहा।

आदेशानुसार चारवर्ष के अध्ययन के बाद तिब्बती भाषा लिखने के लिये उस समय की काश्मीर की शारदा लिपि के आधार पर एक नई लिपि का निर्माण किया। इस भाषा में अ, इ, उ, ए, ओ स्वर हैं। व्यंजनों की संख्या केवल तीस है। वर्गों के चतुर्थ अक्षर तथा मूर्धन्य ष छोड़ दिये गए हैं। विशेष उच्चारण के लिये च, छ, ज, झ, स, ऽ, इन छः अक्षरों का निर्माण किया। तिब्बती भाषा में लिखे हुए सभी अक्षर उच्चरित नहीं होते[1]। क्र, त्र, प्र=ट; ख, फ्र=ठ; ग्र, ट्र, ब्र=ड के समान उच्चरित होते हैं। संस्कृत के शब्दों को लिखने के लिये भी पूरे प्रबंध किये गए हैं। सुलेख और शीघ्रलेख- (त्वरा-लेखन) के लिये 'उचेन' (डाँडी वाली) और 'उमेद' (वेडाँडीवाली) लिपियाँ हैं। उचेन अक्षर पुस्तक छपने के काम के लिये और उमेद अक्षर पत्रादि लिखने के लिये काम में लाये जाते हैं। इस नई लिपि में सचिव थोनमी ने ही पहले-पहल तिब्बती भाषा के व्याकरण का निर्माण किया। और करंडव्यूह सूत्र, रत्नव्यूह सूत्र, और कर्मशतक का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया।

३—विविध संप्रदाय

सम्राट् स्रोङ्चेन के काल से बौद्धधर्म विकसित होकर राजाश्रित होता आया। सम्राट् ठिस्रोङ्देचेन् के निमंत्रण पर आचार्य शांतरक्षित (सन् ७४०-

---

[1]तिब्बती शब्दों का शुद्ध उच्चारण देने का मैंने भरसक यत्न किया है। शब्द जैसे उच्चारण किया जाता है वैसा ही दिया है, न कि तिब्बतो भाषा में जैसा लिखा जाता है। तिब्बती भाषा का विशेष जानकार न होने के कारण, संभव है, कुछ अशुद्धियाँ रह भी गई हों। तिब्बती लोग साधारण बोली में 'क' को 'ग' (जैसे कङरी को गङरी), 'च' और 'य' को 'ज' (जैसे च्यू को ज्यू और योगी को जोगी), 'त' और 'थ' को 'द' (जैसे तरछेन को दरछेन), 'प' और 'व' को 'ब' (जैसे परखा को बरखा और पुरुव को पुरुब) और 'र' को 'ड' या 'द' (जैसे न्यनरी को न्यन्दी और पोनरी को पोनडी) उच्चारण करते हैं।

८४०) बौद्धधर्म के प्रचारार्थ दो बार तिब्बत गए और उन्होंने बारह वर्ष लगाकर समये मठ (तिब्बत के प्रथम मठ) की स्थापना की और पूरे सौ वर्ष की आयु में सन् ८४० में उन्होंने देहत्याग किया। उनका कपाल अब भी एक शीशे की आलमारी के भीतर समये मठ में सुरक्षित है। शांतरक्षित की अनुमति के अनुसार तिब्बत से भूत और प्रेतों को भगाने के लिये भारत से पद्मसंभव नामक एक महान् तांत्रिक को ठिस्रोङदेचेन ने बुलवाया था। तिब्बत जाने पर इन्हें वहाँ के आदिम बोन धर्मावलंबियों का बहुत सामना करना पड़ा। उनका सामना करने के लिये इन्होंने कतिपय सिद्धियों का प्रदर्शन किया तथा उनके कुछ क्रिया-कलापों और प्रथाओं को अपने धर्म में अपना लिया। इनके संप्रदाय के अनुयायियों को तिब्बती भाषा में ञिङमापा कहते हैं। ये लोग लाल-टोपी धारण करते हैं तथा प्रधानतया तांत्रिक हैं। इनका कहना है कि इस संप्रदाय में अब भी बहुत-से चमत्कार दिखानेवाले सिद्ध और मांत्रिक हैं। इनके संबंध में पाश्चात्य देश के लोगों ने कई मनोरंजक और चित्र-विचित्र कथाएँ लिख मारी हैं। पद्मसंभव ने बौद्धधर्म के कई ग्रंथों को तिब्बती भाषा में अनुवादित किया तथा ल्हासा में समयसलिङ मठ को बनवाने में राजा को बहुत सहायता प्रदान की। इसी स्थान में ल्हासा की सरकार का राजकोष है। यद्यपि तिब्बत में ये बहुत समय तक नहीं ठहरे, तथापि वहाँ इनका प्रभाव सब से अधिक है। तिब्बती भाषा में ये पेमा जूने, पेमा गुरू, गुरु रिंपोछे, लोबान रिंपोछे, गुरु पद्मसंभव आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम की व्युत्पत्ति से लोग इन्हें पद्म से उत्पन्न हुआ और अमर मानते हैं। ये शांतरक्षित के बहनोई थे। तिब्बत में बिरला ही कोई घर होगा जिसमें पद्मसंभव का कोई चित्र या मूर्ति न हो।

सन् १०४१ से लेकर १०५४ तक दीपंकर श्रीज्ञान ने तिब्बत में धर्म-प्रचार किया था। ये तीनों (शांतरक्षित, पद्मसंभव और दीपंकर श्रीज्ञान) बौद्धधर्म के प्रचारकों में प्रधान माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त भारत के सैकड़ों पंडितों ने तिब्बत में धर्म प्रचार किया तथा पालि और संस्कृत ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। लगभग ३०० वर्ष पहले तक भारत के पंडित

वहाँ के पंडितों से मिलकर संस्कृत और पालि ग्रंथों का अनुवाद करते आए हैं। भारत से बौद्धधर्म के जाने के पहले भूत-प्रेत की उपासनावाला 'पोन' या 'बोन' धर्म वहाँ पर प्रचलित था। आजकल तिब्बत में वैसे तो बौद्धधर्म है, परंतु यह बौद्ध काल के पहले का पोन या बोन और शाक्त या तंत्रमार्ग का सम्मिलित रूप है। तिब्बत में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में लामाओं का ही हाथ है, जैसे रोमन कैथोलिक धर्म में पोपों का। इसी कारण पाश्चात्य लोग यहाँ के धर्म को भ्रमवश 'लामाधर्म' कहते हैं।

बौद्धधर्म में हीनयान और महायान नाम के दो संप्रदाय हैं। हीनयान संप्रदाय में बौद्धस्तूपों का पूजन, तीर्थों का सेवन, और भिक्षुओं को अन्नदान करने की मुख्यता है। निर्वाण प्राप्ति की इच्छा रखनेवालों को भिक्षु बनकर अपने प्रधान धर्म-ग्रंथ त्रिपिटक (विनय, सूत्र और अभिधर्म) का अध्ययन कर पारंगत होकर अर्हत को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। इसीलिये इस मार्ग को अर्हतयान भी कहते हैं। सम्राट् अशोक इसी मार्ग के अनुयायी थे। यह संप्रदाय लंका (सिंहलद्वीप), बर्मा, तथा श्याम में प्रचलित है।

जनसाधारण में बौद्धधर्म के प्रचार के लिये महायान मार्ग का प्रचार प्रारंभ हुआ। इस मार्ग में संसार, गृह और लौकिक भोगों को त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। बौद्धधर्म के अन्य नियमों का आचरण करते हुए समस्त जीवों पर सदय होकर लोगों की भलाई करनी चाहिये। इन सिद्धांतों का अवलंबन करते हुए निर्वाण प्राप्ति की योग्यता को प्राप्त करने पर भी बुद्धत्व का तिरस्कार करके लोक-कल्याण की भावना से कार्य करनेवाले बोधिसत्त्व हैं। इस मार्ग में बोधिसत्त्वों की सहायता के विना निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सकता। महायान मार्ग बोधिसत्त्वयान के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह संप्रदाय आजकल तिब्बत, मंगोलिया, जापान, चीन आदि देशों में प्रचलित है।

तिब्बत के मंदिरों में निम्नलिखित आठ बोधिसत्त्वों की मूर्तियाँ या चित्र प्रायः पाये जाते हैं (१) मंजुश्री (जंबयङ), (२) वज्रपाणि (छानादोर्जे), (३) अवलोकितेश्वर (चेनरेसी), (४) क्षितिगर्भ (सायी निङपो), (५) सर्व-निवारण विष्कंभी (डिपपा नम्पर सेल), (६) आकाशगर्भ (नमका निङपो),

(७) मैत्रेय (चंपा), (८) समंतभद्र (कुंटुछङ्पो)। इनमें भी मैत्रेय (आनेवाले बुद्ध) अवलोकितेश्वर (परम करुणामय विष्णु के समान), मंजुश्री (ज्ञानमूर्ति ब्रह्मा के समान), वज्रपाणि (शिव के समान) विशेष प्रसिद्ध हैं।

इस समय तिब्बत के प्रचलित धर्म के दस संप्रदाय हैं। (१) आठवीं शताब्दी का प्रारंभिक बौद्ध धर्म 'ञिङमापा'। यह संप्रदाय भूटान, ङरी, और लदाख में प्रचलित है। यह चीनी भिक्षुओं से लाया हुआ बौद्ध संप्रदाय है। इसकी कई पुस्तकें कंजूर और तंजूर में नहीं हैं। (२) नवीं शताब्दी का 'उग्यें-नपा'। यह संप्रदाय तिब्बत के उन प्रांतों में है, जो नैपाल की सीमा के पास हैं। भारत में हिमालय के प्रांतों में इस संप्रदाय के लोग उग्येंन या गुरु पद्मसंभव के अनुयायी हैं। पूर्वी तिब्बत का समये इनका प्रधान मठ है। ये लोग पद्मसंभव की पूजा करते हैं। (३) ग्यारहवीं शताब्दी का 'कदमपा'। इस संप्रदाय के लोग डोतोन के अनुयायी हैं, जो दीपंकर श्रीज्ञान के प्रधान शिष्य थे। ये आध्यात्मिक साधन में उच्च भूमिकाओं के लिये विशेष यत्न नहीं करते। (४) १३वीं शताब्दी का 'साक्यापा'। इस संप्रदाय के और उपर्युक्त तीनों संप्रदायों के भिक्षु लाल टोपी धारण करते हैं। इसलिये इनको लाल-टोपी वाला संप्रदाय भी कहते हैं।

(५) १४वीं शताब्दी का 'गेलुकपा', या 'गंदेनपा'। गंदेन इनका प्रधान विहार है। तिब्बत में इस संप्रदाय के अनुयायी सबसे अधिक हैं। (६) 'करग्युडपा'। इस संप्रदाय के अनुयायी केवल 'दो' (सूत्र ग्रंथ) को ही मानते हैं। विशेष सिद्धियों के लिये यत्न नहीं करते। (७) 'करमापा'। इस संप्रदाय के लोग कर्म के प्रभाव को विशेष महत्त्व देते हैं। (८) 'डेकुङपा'। इस संप्रदाय का प्रधान मठ डेकुङ है। ६, ७, और ८ संप्रदाय 'गेलुकपा' से ही निकले हैं और उसी के अंतर्गत हैं। इन सब संप्रदायों के भिक्षु पीली टोपी पहनते हैं। (९) 'डुकपा'। इस संप्रदाय के लोग दोर्जे (वज्र) की पूजा करते हैं, जिसके विषय में कहा जाता है कि यह स्वर्ग से सेरा गोम्पा के पास धरती पर गिरा था। सेरा इनका प्रधान मठ है। ये विशेषकर तंत्रमार्गावलंबी होते हैं। (१०) 'बोनपा'। यह संप्रदाय तिब्बत में बौद्ध धर्म के आगमन से पहले का है। परंतु

इस संप्रदाय के अनुयायियों ने बौद्ध धर्म के कई नियमों को अपना लिया है। ये बौद्धमठ और देवताओं को तो मानते हैं, परंतु तीर्थों की उलटी प्रदक्षिणा करते हैं। लालटोपी संप्रदाय के भिक्षु लोग खुल्लमखुल्ला विवाह कर सकते हैं या औरतों को रख सकते हैं। सन् १३५७ में अंदो प्रांत के छोङ्‌ख नामक ग्राम में एक बालक का जन्म हुआ, जो बाद में छोङ्‌खपा नाम से प्रसिद्ध हुआ; इनकी मृत्यु १४१६ में हुई। ये एक बहुत बड़े विद्वान् थे। बौद्ध धर्म के मूल ग्रंथों का भली भाँति अध्ययन करने के बाद इन्होंने देखा कि तिब्बत का तत्कालीन धर्म अपने वास्तविक मार्ग से स्खलित हो गया है, तथा उसमें बहुत से दुराचार आ गए हैं। इसलिये धर्म की उस दुरवस्था को सुधारने के लिये वे कटिबद्ध हो गए। उन्होंने यह भी देखा कि भारत के बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्रों का रंग पीला है। परंतु उस समय के भिक्षुओं में लाल रंग के वस्त्रों का इतना प्रचार था कि समस्त वस्त्रों के रंग को बदलने में असमर्थ होने के कारण, सुधरे हुए संप्रदाय को निर्देशित करने के लिये उन्हें भिक्षुओं से पीली टोपी धारण करवाकर ही संतोष करना पड़ा। इसलिये इस संप्रदाय को पीली टोपीवाले कहते हैं। इन्हें गेलुक्‌पा (सुधारक) भी कहते हैं। छोङ्‌खपा ने भारत के भिक्षुओं के आदर्श के अनुसार उस काल के बौद्ध भिक्षुओं के धार्मिक और चारित्रिक सुधार के लिये भरसक प्रयत्न किया था।

तिब्बत में पीली टोपीवाले संप्रदाय का और लदाख में लालटोपी वाले संप्रदाय का विशेष प्रचार है। संप्रति दोनों संप्रदायवाले छङ पीते हैं और औरतें रखते हैं, यद्यपि पीलीटोपी वाले प्रकट रूप से ऐसा नहीं कर सकते। प्रसिद्ध चार विहारों में से गंदेन महाविहार की स्थापना छोङ्‌खपा ने स्वयं की थी और अन्य तीन महाविहारों को उनके शिष्यों ने स्थापित किया था। मानसखंड में दोनों संप्रदाय—लालटोपी और पीलीटोपी—वालों के मठ हैं, पर पीलीटोपी वालों के मठ अधिक संख्या में हैं। तिब्बत में शून्यवाद और चीन और जापान में विज्ञानवाद प्रचलित है।

सन् १३२८ में पहले-पहल फ्रांसीसी मांक ओडोरिको डि पोरडेनो इसाई धर्म-प्रचार के लिये ल्हासा गए। इसके बाद सन् १६६१-६२ में जेसुइट पादरी

जोहन ग्रूइबर गए। इसके बाद सन् १७०७ में रोमन कैथलिक संप्रदाय के कैपूचिन पादरियों ने और सन् १७१७ और १७३८ में कुछ और पादरियों ने ल्हासा में ईसाई धर्म का प्रचार किया। इनसे पहले १६२६ में पुर्तगाल के एक जेसुइट पादरी ने तिब्बत के अन्य स्थानों में ईसाई धर्म का प्रचार किया था, परंतु अब वहाँ उस धर्म का लेश भी नहीं रहा, यद्यपि लदाख़ में तिब्बती भाषा में इंजील का अनुवाद हो रहा है। कालिंपोङ में कुछ ईसाई पादरी तिब्बतियों को ईसाई बनाने का यत्न कर रहे हैं, तथा कभी-कभी धारचूले के इसाई पादरी तकलाकोट मंडी में प्रचार के लिये जाकर कुछ किताबें बाँट आते हैं।

४—भिक्षु

प्रत्येक परिवार से छोटी अवस्था में एक या दो बच्चे को 'डाबा' (भिक्षु) या 'छोमो' या 'आनी' (भिक्षुणी) बनाकर घर में रखते हैं, या मठों में भेज देते हैं। भिक्षु और भिक्षुणियों के सिर के बाल मुड़ाये जाते हैं। भिक्षुओं की पोशाक गृहस्थों से पृथक् होती है। ये लोग भारतीय संन्यासियों की भाँति एक मोटी सी ऊनी धोती पहनकर ऊपर एक कमरबंद से बाँध लेते हैं। बदन पर बिना हाथ वाली जाकेट पहनते हैं। ऊपर दस से बीस फीट तक लंबी और एक गज़ चौड़ी चादर यज्ञोपवीत की भाँति बायें कंधे के ऊपर डालकर, दाँई बग़ल के नीचे से लेकर शेष भाग ओढ़ते हैं। तिब्बत की पूरी जनसंख्या में से तिहाई या चौथाई भाग भिक्षु ही हैं। बचपन में, जब कि उन्हें कठोर भावी-जीवन के कड़े नियमों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, भिक्षु या भिक्षुणी बना देने के कारण अपने नैतिक जीवन के ह्रास के उत्तरदायी वे नहीं कहे जा सकते। भिक्षु और भिक्षुणी स्वेच्छाचार से गृहस्थों की भाँति जीवन बिताते हैं। परंतु मठ के आवरण में किसी स्त्री-पुरुष का संयोग नहीं हो सकता, चाहे बाहर वे जैसे भी रहें। फिर भी वे विशेष बुरी दृष्टि से नहीं देखे जाते। पर प्रकट रूप से विवाह नहीं करते। यदि मठ में रहनेवाला कोई ऐसा करे तो मठ से बहिष्कृत कर दिया जाता है, और कुछ रुपये के रूप में दंड भी उसे दिया जाता है, पर वह विशेष पतित नहीं समझा जाता। जैसा कि पहले कह चुके हैं, लालटोपीवाले भिक्षु (साक्या) खुल्लमखुल्ला

औरतों को रख सकते या विवाह कर सकते हैं, पर पीलीटोपीवाले ऐसा नहीं कर सकते। कहीं-कहीं भिक्षु और भिक्षुणियाँ गोद में बच्चे के साथ देखी जाती हैं। यहाँ के भिक्षुगण गुरु, पुरोहित, प्रोफेसर, विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, शव को काटनेवाले, छोटे-बड़े अफसर, सिपाही, व्यापारी, चरवाहे, नौकर, रसोइये, घोड़े और याकों को चलानेवाले, कुली, मोची, लोहार, किसान—तात्पर्य यह कि दलाई लामा से लेकर छोटे-से-छोटे सेवक तक के सभी काम करते हैं। ये लोग खुले तौर पर मांसभक्षण और मदिरापान करते हैं। थोड़ा भी पढ़ा-लिखा भिक्षु रमल फेंककर ग्रामीणों और गड़रियों को प्रश्न-फल बता देता है, जिससे उसको कुछ पुरस्कार मिल जाता हैं। पहले चाहे कुछ भी रहा हो, पर आजकल सभी श्रेणियों के ९९ प्रतिशत भिक्षु सदा व्यापार में लगे रहते हैं।

लामा (गुरु या आचार्य) आचार्य कोटि के और डाबा साधारण कोटि के भिक्षु हैं। कर्मकांड, धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथों को कई वर्षों तक गंभीरता-पूर्वक अध्ययन करने के बाद लामा की पदवी दी जाती है। लामा और डाबा अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार कई श्रेणियों में विभक्त रहते हैं। लामाओं की उच्चता का अनुमान इससे स्पष्ट हो सकता है कि सिंबिलिङ गोम्पा के २५० भिक्षुओं में से केवल ६ लामा हैं और सभी डाबा हैं।

कोई-कोई बड़े लामा अपनी मृत्यु के पहले किसी निर्दिष्ट स्थान में अपने जन्म लेने की बात बता जाते हैं, और लोग उस निर्दिष्ट स्थान पर जाकर उस बच्चे को लाकर गद्दी पर बिठा देते हैं, जिसे 'टुलकू[1] लामा' (अवतारी लामा) कहा जाता है। जब किसी मठ का लामा मर जाता है, तो उसके कुछ वर्ष के उपरांत कहीं किसी गाँव के (चाहे वह गाँव निकट हो या दूर) किसी बालक को मृत-लामा की किसी वस्तु के पहचानने पर उस गद्दी पर आसीन करा देते हैं, और इसे भी अवतारी लामा कहते हैं। दलाई लामा और टाशी लामी भी

---

[1] विद्वानों का मत है कि 'टुलकू' की प्रथा सन् १६२२ में पाँचवें दलाई लामा के समय से प्रारंभ हुई है।

इसी प्रकार अवलोकितेश्वर और अमिताभ बुद्ध के अवतार माने जाते हैं।

५—गोम्पा

साधारणतया भिक्षु लोग मठों में रहते हैं। मठ या विहार को तिब्बती भाषा में गोम्पा[1] कहते हैं। गोम्पा का शब्दार्थ है एकांत स्थान। ये गोम्पा प्रायः पहाड़ों की चोटियों पर अवस्थित रहते हैं। परंतु मानसखंड में कितने ही गोम्पा समतल भूमि में भी पाये जाते हैं। कितने ही भिक्षु और भिक्षुणियाँ ऐसे भी होते हैं जो अपने घर में या पृथक् घर बना कर रहते हैं, या पर्यटन करते रहते हैं। गोम्पा में देवमंदिर होते हैं, जिनमें बुद्ध भगवान् और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ रहती हैं तथा भिक्षुओं के रहने के लिये कई छोटी-बड़ी कोठरियाँ होती हैं। लामा और उच्च श्रेणी के भिक्षुओं के लिये पृथक् कोठरी होती है, तथा दूसरों के लिये कई लोगों के निर्वाह के योग्य अन्य कोठरियाँ होती हैं। भिक्षुओं के भोजन का प्रबंध कुछ तो मठ की ओर से और कुछ उन्हें अपने घर या निजी प्रबंध से करना पड़ता है।

तिब्बत का प्रथम मठ समये गोम्पा नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य जगद्विख्यात् शांतरक्षित के निरीक्षण में बनवाया गया। यह ल्हासा से आग्नेय कोण में दो-तीन दिन के मार्ग की दूरी पर छुंङ पो[2] (ब्रह्मपुत्र) नदी के किनारे पर अवस्थित है, और पटने के समीपवर्ती उड्यंतपुरी विहार के अनुकरण पर बनाया गया था। कुछ लोग इसे नालंदा विश्वविद्यालय के नमूने पर बनाया गया बतलाते हैं।

साधारणतया मठों में भिक्षुओं को प्रारंभिक शिक्षा दी जाती है। उच्च

---

[1] इसे गोन्पा या गोम्बा भी कहते हैं।

[2] इस शब्द को अंग्रेजी में Tsangpo लिखने के कारण कुछ लोग हिंदी में भी त्साङ्पो या सम्पो लिखने लगे हैं। पर इसका शुद्ध उच्चारण छङ्पो ही है, जो छ और स के बीच के उच्चारण के निकट का है। इस पुस्तक में इसके दोनों रूप, छङ्पो और संपो, प्रयोग में लाये गए हैं।

शिक्षा के लिये ल्हासा के मठस्थित विश्वविद्यालयों में जाना पड़ता है। वास्तव में तिब्बत के चार बड़े-बड़े विश्वविद्यालय ल्हासा के पास के मठ या विहार ही हैं। वे ये हैं—(१) डे पुङ (चावल का ढेर=धान्य कटक) मठ। यह ल्हासा के पश्चिम, दो मील पर है। इस महाविहार को सन् १४१६ में सुप्रसिद्ध सुधारक छोङखपा के शिष्य जम्व्रयङ ने स्थापित किया था। इसमें ७७०० भिक्षु हैं। यह मठ मंगोलिया का विशेष पक्षपाती है और कृष्णा नदी के किनारे पर स्थित अमरावती स्तूप के पास धान्यकटक विश्वविद्यालय के अनुकरण पर बनाया गया है। संसार भर में यह सबसे बड़ा मठ है। (२) सेरा मठ ल्हासा नगर के बाहर उत्तर दिशा में दो-तीन मील की दूरी पर स्थिर है। इस महाविहार को सन् १४१६ में छोङखपा के दूसरे शिष्य शाक्य येशे ने स्थापित किया था। इसमें ५५०० भिक्षु हैं। संसार के बड़े मठों में इसका दूसरा स्थान है। यह चीन का विरोधी मठ है। (३) गंदेन मठ, ल्हासा से ईशान कोण में पैंतीस मील की दूरी पर स्थित है। इस महाविहार को सन् १४०५ में छोङखपा ने स्वयं स्थापित किया था। इसमें ३३०० भिक्षु हैं। ये तीनों विहार तिब्बत राज्य के तीन स्तंभ माने जाते हैं। (४) टाशी ल्हुंपो शिगर्ची (ल्हासा के बाद दूसरा बड़ा नगर है, यहाँ पर टाशी लामा रहते हैं) में है। इस महाविहार को सन् १४४७ में छोङखपा के तीसरे शिष्य तथा प्रथम दलाई लामा गेंदुन ग्यंछो ने बनवाया था। इसमें ३३०० भिक्षु रहते हैं। भिक्षुओं की ये संख्याएँ परंपरागत हैं; पर बहुधा इससे अधिक संख्या में भिक्षुक लोग रहते हैं। इन चार महा-विहारों के अतिरिक्त पूर्वी तिब्बत में देरगे नामक विश्वविद्यालय (सन् १५४८ में स्थापित) तथा चीन की सीमा के समीप कोकोनॉर झील के पूर्व में अंदो प्रांत में कुमबुम नामक विहार (सन् १५७८ में स्थापित), और ल्हासा से ईशान कोण में लगभग १०० मील पर डेकुङ नामक विहार है। इनमें भी एक एक में तीन-तीन सहस्र से अधिक भिक्षु हैं।

प्रायः इन सब विश्वविद्यालयों में धर्म, कर्मकांड, व्याकरण, साहित्य, वैद्यक आदि विषयों के ग्रंथों की, और धात्वादि मूर्तियों का निर्माण, चित्रलेखन तथा मुद्रण-कला की शिक्षा दी जाती है। एक-एक विषय का एक कालेज होता है। इन विहारों

में खनपो ('डीन' या अधिष्ठाता), ल्हरपा (डाक्टर), उमजे, गेशे (डाक्टर ऑफ डिविनिटी), गरगेन (प्रोफ़ेसर या लेकचरर), गेलोङ, गिछूल और कई श्रेणियों के विद्वान् अध्यापन का कार्य करते हैं, तथा इन उपाधियों के विद्यार्थियों को प्रस्तुत करते हैं। इस सब मठों का व्यय बड़ी-बड़ी जागीरों, लोगों के द्वारा प्रदत्त दान, भेंट और मठ के व्यवहार-कुशल कई भिक्षुओं द्वारा किये गए व्यापार की आय से चलता है। अनेक विद्यार्थियों को सहायता दी जाती है। इन मठों के भिक्षुओं में से केवल आधे वास्तविक विद्यार्थी होते हैं; शेष सेवक, रसोइया, संचालक प्रबंधक और व्यापार तथा खेती करने और करानेवाले होते हैं। रामपुर, बशहर स्टेट, लदाख, रूस के दक्षिण भाग, साइबेरिया, चीन इत्यादि दूर-दूर देशों से भिक्षुगण विद्योपार्जन के लिये यहाँ आते हैं। कतिपय गोम्पा पाठशालाओं और विद्या केंद्रों के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। भिक्षुणियों के पृथक् मठ होते हैं; जिनमें कहीं-कहीं-साहित्य और पूजा-पाठ के ग्रंथों की ही पढ़ाई होती है। उन्हें भिक्षुओं के विद्यालयों में पढ़ने की आज्ञा नहीं है। गृहस्थों को इन विहारों में पढ़ाने का कोई प्रबंध नहीं है, इसलिये संपन्न गृहस्थ और अफसर अपने बच्चों की पढ़ाई के लिये अपनी ओर से प्रबंध रखते हैं। तिब्बती लोग इतना कम गणित जानते हैं जो नहीं के बराबर कहा जा सकता है। वे केवल गिनती-मात्र जानते हैं। इसलिये बड़े-से-बड़े अफसर अधिक गिनती या हिसाब के लिये, माला, पत्थर, छोहारे या खुमानी की गुठलियों, और लकड़ी के टुकड़ों का व्यवहार करते हैं। ल्हासा के पास अफसरों की शिक्षा के लिये 'चीखने' नामक एक विद्यालय है, जिसमें गणित और बहीखाते रखने की विधि सिखलाई जाती है। ल्हासा नगर के पश्चिम में एक छोटे से पर्वत की चोटी पर 'छियाकपोरी' नामक एक आयुर्वेदिक विद्यालय है, जहाँ विशेषकर भारत की आयुर्वेदिक और चीनी संप्रदाय की औषधियों की शिक्षा दी जाती है।

प्रत्येक मठ दो-तीन मंजिल का होता है। मठ के बाहर और आँगन में ध्वजा होती है, जिस पर मणि-मंत्र, देवताओं के चित्र और धर्मवाक्य छपे हुए रंग-बिरंगे झंडे लगे रहते हैं। साधारणतया प्रत्येक मठ में एक बड़ा कमरा होता है, जिसमें बुद्ध, बोधिसत्त्व, देवत्व को प्राप्त हुए लामा, देवी, देवता, महाकाल,

हरी-तारा, श्वेत-तारा, (अवलोकितेश्वर की शक्तियाँ) महाकाली, ल्हमो इत्यादि की मूर्तियाँ रहती हैं। इसे 'दुवङ' कहते हैं। प्रायः देवताओं के तीन रूप होते हैं—शांत, रंजक, और उग्र। मूर्तियों के सामने मक्खन की बत्ती, छोटे-छोटे कटोरे और पूजा के अन्य साधन रखे रहते हैं। सभी गोम्पाओं में बारहों महीने जलनेवाला अखंड-दीप जलता रहता है; जिसमें मन भर घी रखा रहता है। खंभों और दीवालों पर लटकते हुए थंके या चित्रपट टँगे रहते हैं। दीवालों पर सुंदर 'पेंटिंग' भी बहुत हैं। पूर्णिमा, अमावस्या, नव वर्ष के दिन पर्व, और त्यौहारों के समय तथा अन्य विशेष अवसरों पर यहाँ पूजा-पाठ होता है। दुवङ को ल्हखङ (देवगृह) भी कहते हैं। बड़े-बड़े मठों में ये देवालय चार-पाँच या उससे भी अधिक की संख्या में होते हैं। पश्चिमी तिब्बत के सुप्रसिद्ध थुलिङ मठ में १०८ देव-मंदिर हैं। वैसे ही ल्हासा के पास के बड़े-बड़े मठों में भी बहुत-से देव-मंदिर हैं। पुस्तकों के लिये बड़े बड़े मठों में पृथक् कमरे होते हैं, पर साधारण मठों में दुवङ में ही पुस्तकें रक्खी जाती हैं। विशेष पूजा के अवसर पर भिक्षु लोग पंक्ति बाँध कर मोटी गद्दियों पर बिछाये हुए आसनों पर बैठते हैं। नित्य पूजा के लिये प्रधान देवता की एक छोटी-सी कोठरी रहती है, जिसे 'चकङ' कहते हैं। नित्य शाम-सवेरे पुजारी वहाँ धूप, दीप, नैवेद्य के साथ पूजापाठ करते हैं। किसी रोगी के रोग निवारण के लिये, किसी कार्य-सिद्धि के लिये, या किसी कार्य-सिद्धि के उपलक्ष में आनंद मनाने के लिये अपनी शक्ति के अनुसार लोग पूजा-पाठ कराते हैं। यदि मानसखंड का कोई यात्री मठों में पूजा-विधान देखना चाहे तो कुछ रुपया देकर पूजा-पाठ कराकर देख सकता है। पाकशाला, भंडार और दूसरे प्रयोजनों के लिये पृथक् कोठरियाँ होती हैं। बड़े मठों में धार्मिक नाटकों के प्रदर्शन के लिये एक बड़ा हॉल या कमरा होता है।

मठों में छोटे-बड़े डमरू, शंख, ताल, सहनाई, तुरही, मनुष्य की हड्डियों के बने धुतहू, करनाल, ढोल और कई प्रकार के वाद्य, वज्र (दोर्जे) घंटी, घंटा (टिलबू), मनुष्य के कपाल, पानी और जौ से भरे हुए छोटे-बड़े कटोरे, मक्खन के दीपक, छंङ, सत्तू, सूखा मांस, मक्खन, रोटी और बहुत

प्रकार के पदार्थों को पूजा के समय व्यवहार में लाते हैं। देवमूर्तियों के पास एक टोंटीदार तंग गर्दन का एक जलपात्र रखा जाता है। इसके ढक्कन में मयूर-पंख रहते हैं। जलपात्र को केसर के सुगंधित जल से भर देते हैं, जो दर्शकों को चरणामृत के रूप में दिया जाता है। मूर्तियों के ऊपर माला चढ़ाने के स्थान में 'खतक' चढ़ाते हैं। कभी-कभी किसी देवता के पूजनार्थ बड़े-बड़े यंत्रों को बना कर सत्तू और कई रंगों के रँगे हुए मक्खन की मूर्तियों को तैयार कर एक से लेकर तीस दिनों तक विस्तारपूर्वक तांत्रिक पद्धति से पूजा-करते रहते हैं। पूजा की समाप्ति के दिन घृत, कई प्रकार के धान्य और समिधाओं से स्वाहा उच्चारण के साथ हवन होता है, जिसे तिब्बती भाषा में 'जिनसेक' या 'चिनसेग' कहते हैं।

तिब्बतियों का विश्वास है कि हवन करने से सुख, आरोग्य, धन और शक्ति मिलती है, पाप से मुक्त होते हैं, और अकाल-मृत्यु से बचते हैं। हवन चार प्रकार के होते हैं। (१) ज़िवेई जिनसेक—यह शांति के लिये, अकाल, युद्ध, और पाप को दूर करने के लिये किया जाता है। इसका कुंड समचतुर्भुज की आकृति का होता है। कुंड का नीचे का भाग लाल और ऊपर का श्वेत होता है। भीतर पृथ्वी-बीज (सा जुङ) 'लं' लिखा जाता है। प्रायः हवन किसी के मरने के बाद उसके पाप निवारण के लिये किया जाता है। (२) वङी जिनसेक—यह युद्ध में विजय के लिये किया जाता है। इसका कुंड गोलाकार होता है, जो पद्म का सांकेतिक है। रंग नीला होता है और भीतर जलबीज (छू जुङ) 'वं' लिखा जाता है। (३) ट्रकपो जिनसेक—यह अकाल मृत्यु से बचने के लिये और अकाल मृत्यु को लानेवाले दुष्ट देवताओं को दंड देने के लिये किया जाता है। कुंड त्रिकोणाकृति और काले रंग का होता है और भीतर अग्नि बीज (मे जुङ) 'रं' लिखा जाता हैं। (४) ग्यस्पाई जिनसेक—यह संपत्ति के लिये और शस्य समृद्धि के लिये किया जाता है। कुंड अर्द्धचंद्राकृति और पीले रंग का होता है। भीतर वायुबीज (लुङ जुङ) 'यं' लिखा जाता है।

कपड़े के ऊपर सफेदी लगाकर उसके ऊपर स्थानीय देशी रंगों से बुद्ध भगवान्, देवी-देवता, लामाओं के, और यंत्र या दृश्यों के कई प्रकार के चित्र

बनाये जाते हैं। थंके के पीछे 'ॐ अः हुं' ये तीन बीजाक्षर एक के नीचे एक लिखे जाते हैं। इनके चारों ओर रंगीन रेशम या सुनहले कपड़ों से किनारी लगाकर पीछे से एक सादा कपड़ा लगा देते हैं। ऊपर और नीचे चपटे और गोलदार डंडे को लगाकर सामने से पतले रेशम या किसी अच्छे कपड़े का आच्छादन (जिससे चित्रपट पर धूल आदि न लगने पावे) लगाकर मानचित्र की भाँति लटकाने के योग्य बना देते हैं। इस प्रकार के चित्रपट को 'थंका' कहते हैं। अंग्रेज़ी में 'बैनर पेंटिंग' (झंडा चित्रपट) कहते हैं। इन थंकाओं को देव-मंदिरों, पुस्तकालयों, तथा अन्यान्य कमरे की दीवालों और स्तंभों पर लगा कर सुसज्जित करते हैं। देव-मंदिरों और दूसरे कमरों की दीवालों और दूसरी छतों पर कई कलापूर्ण चित्र चित्रित रहते हैं। देवताओं की मूर्ति भिक्षु ही बना सकते हैं। बड़ी-बड़ी मूर्तियों को बनाते समय बीच बीच में पूजा-पाठ किये जाते हैं। धातुओं के साँचे बनाकर मिट्टी या लुग्दी (पेपर पल्प) से छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनाते हैं। बड़ी बड़ी मूर्तियों पर सोने के पत्र चढ़ाते हैं और अन्य रंग भी लगाते हैं। धातुओं से बड़ी सुंदर-सुंदर मूर्तियाँ बनाते हैं। तिब्बतियों की कलाप्रियता के कारण गरीब से गरीब के घर में भी एक-दो थंके उनके देव-स्थानों में रक्खे रहते हैं। संपन्न गृहस्थ के घरों में देव-मंदिर होते हैं, जिनमें थंके और दीवालों पर अन्य प्रकार के चित्र होते हैं तथा रंगीन और नक्शेदार चौकियाँ रहती हैं। तिब्बतियों ने धर्म, संस्कृति, विद्या, चित्रलेखन और शिल्प आदि को भारत से ही सीखा था; पर अब वे लोग इस क्षेत्र में इतने बढ़ गए हैं कि वहाँ के जनसाधारण में प्रचलित कलाप्रियता को भारतवासी उनसे सीख सकते हैं।

तिब्बत में प्रत्येक तंबू या डेरे में इष्टदेवता (यिदिम) का एक नियमित स्थान एक वेदी के ऊपर बना रहता है, जिस पर अन्य देवता और घी का प्रदीप, पानी और जौ से भरे हुए कटोरे रक्खे जाते हैं। प्रतिदिन संध्या के समय बत्ती जलाई जाती है। संभ्रांत व्यक्तियों के घरों में घी की एक बत्ती रात-दिन जलती रहती है, और घरों में देवस्थान के लिये एक पृथक् कोठरी होती है। भ्रमण करते समय भी अपने तंबुओं में देवताओं को एक नियमित स्थान पर रखते हैं।

६—पुस्तकालय

प्रत्येक मठ में एक पुस्तकालय अवश्य रहता है। पुस्तकालय के प्रधान ग्रंथ कंजूर और तंजूर हैं। कंजूर (कं-ग्युर=बुद्ध के श्रीमुख वचन का अनुवाद) १०८ खंडों और तंजूर (तं-ग्युर=शास्त्रों के अनुवाद) २३५ खंडों में है। कंजूर पालि त्रिपिटक का अनुवाद है। यद्यपि यह १०८ वेष्टनों में है, पर, अलग-अलग गिने जायँ तो सात सौ से भी अधिक होंगे। तंजूर की पोथियों में विविध दर्शन-ग्रंथ, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, (फलित और गणित), देवता-साधन, तंत्र, मंत्र, कंजूर की कुछ पोथियों की व्याख्या और कतिपय संस्कृत ग्रंथों के चीनी अनुवाद का भाषांतर है। भारत में मुसलमानों की चढ़ाई के समय अमानुषिकतापूर्वक अग्नि में जलाकर नाश कर दिये गए कई अमूल्य संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद अभी तंजूर में विद्यमान हैं। प्रसिद्ध खगोल-शास्त्रज्ञ आर्यदेव, दिङ् नाग, धर्मरक्षित, चंद्रकीर्ति, शांतरक्षित, कमलशील के नष्ट ग्रंथ; विख्यात आचार्य चंद्रगोमी की वादन्याय टीका, चंद्रव्याकरण, सूत्र, धातु ऊणादि-पाठ, वृत्ति, टीका, पंचकादि; लोकानंद नाटक, अश्वघोष, मतिचित्र, हरिभद्र आर्यशूर आदि कवियों की रचनाएँ; कालिदास का मेघदूत; दंडी, हर्षवर्द्धन, क्षेमेंद्र आदि की कितनी ही रचनाएँ तंजूर के खंडों में हैं। नागार्जुन विरचित अष्टांगहृदय, शालिहोत्र, आदि अनेक टीका-उपटीकाओं के सहित वैद्यक ग्रंथ; कुछ हिंदीं पुस्तकों के अनुवाद; महाराज कनिष्क को मतिचित्र का पत्र, महाराज चंद्र को योगीश्वर जगद्रत्न का पत्र, पालवंशी राजा नयपाल को दीपंकर श्रीज्ञान का पत्र—ये सब तंजूर में विद्यमान हैं। यदि कंजूर और तंजूर के सभी खंडों के अनुवाद फिर से तिब्बती भाषा से अनुष्टुपश्लोकों में किये जायँ तो बीस लाख श्लोक हो सकते हैं। इनमें से हुत-से ग्रंथों के थुलिङ में (जो बदरीनाथ से सौ मील उत्तर और मानसरोवर से वायव्य कोण पर लगभग सवा सौ मील की दूरी पर है) सक्या और समये नामक मठों में (जो मध्य तिब्बत में हैं) अनुवाद किये गए हैं।

नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, बसुबंधु, शांतरक्षित, चंद्रकीर्ति, धर्मकीर्ति,

चंद्रगोमी, कमलशील, शील, दीपंकर श्रीज्ञान आदि भारतीय पंडितों के जीवन-चरित्र भी तिब्बती भाषा में लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त धर्म-इतिहास (छो जुङ), जीवन-चरित्र (नम थर) और अन्यान्य कई ग्रंथ स्वतंत्ररूप से तिब्बती भाषा में लिखे गए हैं[1]।

एक लामा ने बताया कि कंजूर सात शीर्षकों में विभक्त है—(१) दुलवा, (इसमें भिक्षुओं के २२५ नियम बताये गए हैं, जिनमें से ब्रह्मचर्य और गरीबी पर सुधारक छोङखपा ने विशेष जोर दिया है।) (२) शेरचिन, (३) पलचेन, (४) कोनछेग, (५) दो (सूत्र), (६) म्यंगड़ा, और (७) ग्युट (तंत्र)। उसी प्रकार तंजूर भी दो शीर्षकों में विभक्त है—(१) ग्युट (तंत्र) और (२) दो (सूत्र)।

चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में बुतोन् या रिन छेन डुब (सन् १२८४-१३७६) नामक एक तिब्बती पंडित और इतिहासवेत्ता ने (१२८८-१३६४) बुद्ध भगवान् के श्रीमुख वचनों के अनुवादों को कंजूर में और सारे शास्त्रों को तंजूर में संकलित किया। ये सत्रहवीं शताब्दी के पाँचवें दलाई लामा के समय (सन् १६१६-१६८१) में अखरोट के पेड़ के तख्तों पर एक-एक पृष्ठ खोद कर छापे गए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि कंजूर और तंजूर पहले-पहल सातवें दलाई लामा के समय में, सन् १७२८—४६ के मध्य में छापे गए थे। इसके कागज लगभग छः-छः अंगुल चौड़े और दो-दो फीट लंबे पन्नों के हैं, जो हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तकों की भाँति ब्रह्मपत्रों में हैं। इन खुले पत्रों के ऊपर और नीचे दोनों ओर नक्काशीदार तख्ते लगाकर उन्हें सुंदर रेशमी कपड़ों से बाँध देते हैं, जिन्हें हम वेष्टन कहते हैं। इनके तीन प्रकार के संस्करण होते हैं—उत्तम, मध्यम और साधारण। उत्तम या राज-संस्करण का कागज मोटा होता है। उनके ऊपर एक प्रकार का काला मसाला लगाकर सुनहले अक्षरों में ग्रंथ छापा जाता है। इन वेष्टनों को आलमारी में रखते हैं। किसी वाक्य या पुस्तक का लाल,

---

[1] इन दोनों पैराओं में दी हुई ज्ञातव्य बातों के लिये ग्रंथकार अपने मित्र महापंडित राहुल सांकृत्यायन त्रिपिटकाचार्य का कृतज्ञ है।

रुपहले, या सोने के रंग में लिखने से महत्त्व बढ़ जाता है। इसलिये कंजूर-तंजूर का राज-संस्करण सुनहले रंग में, और लामा या उच्च पदाधिकारियों का ठप्पा लाल रंग की स्याही में होता है। इन दोनों पोथियों को रूसी बौद्ध तीस-तीस सहस्र रुपये देकर मोल लेते थे। बड़े-बड़े मठों में कंजूर के ही खंड रहते हैं और छोटे-छोटे मठों में तो इनमें से एक भी नहीं रहते, यद्यपि कुछ पुस्तकें अवश्य रहती हैं। लकड़ी के तख़्तों पर खुदे हुए होने पर भी ये अक्षर आधुनिक छापे-खाने के अक्षरों के समान सुंदर होते हैं। भिक्षु लोग पढ़ने के समय लेखनकला में अपना बहुत समय लगाते हैं, इसलिये छापे के समान सुंदर और सुडौल अक्षर लिखनेवाले तिब्बती बहुत मिल जाते हैं। यहाँ वालों ने मुद्रण-पद्धति को चीनियों से सीखा है।

७—पंचांग

सन् १०२७ में काश्मीर के पं० सोमनाथ ने तिब्बत जाकर भारतीय कालचक्र-ज्योतिष का अनुवाद किया, और षष्ठि-संवत्सर के वृहस्पति चक्र के 'प्रभव' आदि का प्रचलन किया। इसे तिब्बती भाषा में 'रब्युङ' कहते हैं। यह षष्ठि-संवत्सर-चक्र चीनियों की भाँति पाँच 'खम्' या उपचक्रों में विभक्त किया गया। (१) अग्नि (मे), (२) पृथ्वी (सा), (३) लोह (चा अथवा चक), (४) जल (छू), और (५) वृक्ष (शिंग)। इनके रंग क्रमशः लाल (मरपो), पीला (सिरपो), सफेद (करपो,) नीला (ङोपो), और हरा (जंकू) बतलाते हैं। एक-एक उपचक्र के बारह वर्ष होते हैं। (१) मूषक (चीवा या सीवा), (२) वृष (लङ), (३) व्याघ्र (टग), (४) शश (यो), (५) नाग (डुक); (६) सर्प (डुल), (७) अश्व (ता), (८) मेष (लुक), (९) वानर (टे या टयू), (१०) पक्षी (च्यू), (११) श्वान (खी), और (१२) शूकर (फक)[1]। परंतु संवत्सरों की

---

[1]अनेक पुरुष और स्त्रियों की कमरबंद में दो अंगुल व्यास का एक पीतल का चक्र लटका रहता है, जिसे 'ल्हो कोर चूडी' (बारह वर्ष का चक्र) कहते हैं। इस पर बारह वर्ष के जंतु वलयाकार चित्रित रहते हैं। मध्य में 'परगा ग्ये' (आठ

गणना सीधी नहीं है। वह इस प्रकार की है। इन बारह वर्ष के आदि वाले दो वर्ष प्रथम खम् के नाम से पुकारे जाते हैं—एक पुरुष (फो) और दूसरा स्त्री (मो)। इसी प्रकार आगे के दो वर्ष द्वितीय खम् के नाम से पुकारे जाते हैं। तिब्बतियों के पंचाग का पहला रब्युंग सन् १०२७ से प्रारंभ होता है। आगे दी हुई तालिका से इसका स्पष्टीकरण हो जायगा। उसमें अधिक मास के वर्ष और नाम भी दिये गये हैं।

चीनियों ने ई० पू० सन् १०६ से ही साठ वर्ष के चक्र को व्यवहार में लाना आरंभ किया था। इस चक्र को उन्होंने बारह वर्ष के पाँच उपचक्रों में विभक्त किया था। तिब्बतियों ने उस प्रथा को कुछ परिवर्तनों के साथ ग्रहण किया। इसी कारण चीनी और तिब्बती वर्ष परस्पर नहीं मिलते।

उपचक्र के बारह वर्षों में एक-एक वर्ष तिब्बत के विभिन्न स्थानों में मेला लगता है। अश्व के वर्ष में, जो तिब्बती भाषा में 'तालो' कहलाता है, कैलास में मेला लगता है। इस मेले में दूर-दूर देशों के बौद्ध यात्री अधिक संख्या में प्रायः वर्ष भर जाते रहते हैं। मेले का प्रधान दिवस वैशाख पूर्णिमा है, उसी दिन बुद्ध भगवान् का जन्म, ज्ञानोदय तथा महानिर्वाण हुआ था। कैलास के पश्चिम में सेरशुङ नामक स्थान में 'तरबोछे' नामक एक विराट् ध्वजा है। जैसा कि 'परिक्रमा' नामक शीर्षक में कह चुका हूँ, वहाँ पर यात्रीगण वैशाख की शुक्ल चतुर्दशी तथा पूर्णिमा के दिन बड़े समारोह से झंडे का उत्सव मनाते हैं। वैसे तो पर्व की यात्रा वर्ष भर चालू रहती है। गत वर्ष, अर्थात् १६ फरवरी १९४२ से ४ फरवरी १९४३ तक, 'तालो' था, जो १६वां रब्युङ का १६वाँ वर्ष था। उस वर्ष के भारतीय संवत्सर का नाम चित्रभानु था। और वर्त्तमान वर्ष का नाम सुभानु है।

दिशाएँ) और 'मेवागू' (नौ अंक) हैं। यह चक्र वर्ष की गणना के काम में आता है। कभी-कभी इस चक्र की दूसरी ओर वज्रपाणि, अवलोकितेश्वर, और मंजुश्री की मूर्तियाँ होती हैं, जिन्हें छला नमसुन कहते हैं।

तिब्बत का षष्टि-संवत्सर-चक्र[1] (रब्युङ)

(स्त्री) शश (यो)	अग्नि (प्रभव) १	पृथ्वी (प्रमाथी) १३	लोह (खर) सुमवा* २५	जल (शोभकृत) ३७	वृक्ष (राक्षस) दुनबा* ४६
(पुरुष) नाग (डुक)	पृथ्वी (विभव) २	लोह (विक्रम) ङावा* १४	जल (नंदन) २६	वृक्ष (क्रोधी) गेवा* ३८	अग्नि (नल) ५०
(स्त्री) सर्प (डुल)	पृथ्वी (शुक्ल) गूवा* ३	लोह (वृष) १५	जल (विजय) थंगचो* २७	वृक्ष (विश्वावसु) ३६	अग्नि (पिंगल) ५१
(पुरुष) अश्व (ता)	लोह (प्रमोद) ४	जल (चित्रभानु) १६	वृक्ष (जय) २८	अग्नि (पराभव) ४०	पृथ्वी (कालयुक्त) शीवा* ५२
(स्त्री) मेष (लुक)	लोह (प्रजापति) ५	जल (सुभानु) थंगबो* १७	वृक्ष (मन्मथ) २६	अग्नि (प्लवंग) डुगवा* ४१	पृथ्वी- (सिद्धाथ) ५३
(पुरुष) वानर (टयू)	जल (अंगिरा) सुमवा* ६	वृक्ष (तारण) १८	अग्नि (दुमुख) गेवा* ३०	पृथ्वी (कीलक) ४२	लोह (रौद्र) ५४

(स्त्री) पक्षी (च्या)	जल (श्रीमुख) ७	वृक्ष (पार्थिव) च्यूवा* १९	अग्नि (हेविलंब) ३१	पृथ्वी (सौम्य) ४३	लोह (दुर्मति) च्यूङीवा* ५५
(पुरुष) श्वान (खी)	वृक्ष (भाव) ८	अग्नि (व्यय) २०	पृथ्वी (विलंब) ३२	लोह (साधारण) ङीवा* ४४	जल (दुंदुभि) ५६
(स्त्री) शूकर (फक)	वृक्ष (युवा) चूङीवा* ९	अग्नि (सर्वजित्) २१	पृथ्वी (विकारी) शीवा* ३३	लोह (विरोधकृत) ४५	जल (रुधिरोद्गारि) टुगवा* ५७
(पुरुष) मूषक (चीवा)	अग्नि (धाता) १०	पृथ्वी (सर्वधारी) च्यूवा* २२	लोह शर्वरी ३४	जल (परीधावी) ४६	वृक्ष (रक्ताक्षि) ५८
(स्त्री) वृषभ (लङ)	अग्नि (ईश्वर) गेवा* ११	पृथ्वी (विरोधी) २३	लोह (प्लव) ३५	जल (प्रमादी) सुमवा* ४७	वृक्ष (क्रोधन) ५९
पुरुष व्याघ्र (टग)	पृथ्वी (बहुधान्य) १२	लोह (विकृत) २४	जल (शुभकृत्) ३६	वृक्ष (आनंद) च्यूचिकवा* ४८	अग्नि (क्षय) च्यूवा* ६०

[1]संवत्सर के नाम के लिये (स्त्री) शश, (पुरुष) नाग, (स्त्री) सर्प आदि बारह नामों को उनके सामने के कोष्ठकों के साथ जोड़ दिया जाता है; जैसे—अग्नि (स्त्री) शश, पृथ्वी (पुरुष) नाग, जल (पुरुष) अश्व, आदि। (स्त्री) और (पुरुष) को कभी-कभी छोड़ भी देते हैं। *अधिक मासवाले संवत्सर और मास।

भारत के हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, और नासिक तीर्थों में १२ वर्ष में एक-एक बार लगनेवाले मेले का तिब्बत के १२ वर्ष के उपचक्र के 'अश्व के वर्ष' में लगनेवाले मेले से सिवा 'वादरायण' संबंध के अन्य कोई संबंध नहीं है। परंतु भारतीय जनता अज्ञानवश कैलास के 'तालो' को कैलास कुंभ समझती है; इसका कारण केवल यही है कि भारत का कुंभ और कैलास का 'तालो', ये दोनों मेले १२ वर्षों में आते हैं; इस अवसर पर भारत से हिंदू यात्री अन्य वर्षों की अपेक्षा अधिक संख्या में जाते हैं। तिब्बती पुराणों के अनुसार इस वर्ष कैलास या मानसरोवर की एक परिक्रमा का फल अन्य वर्षों में की हुई १३ परिक्रमा के समान पुण्यप्रद है।

मानसरोवर के दक्षिणी किनारे पर महाभारत काल के समान मार्गशीर्ष प्रतिपदा को नया वर्ष मनाया जाता है (जो सन् १९३६ में १४वीं दिसंबर को पड़ा था।) यह भारतीय ज्योतिषियों के ध्यान देने का विषय है। वहाँ के लोग यह मानते हैं कि उस दिन से उत्तरायण प्रारंभ होता है। मानसरोवर के पश्चिम के 'होर' प्रांत-वासियों का और अन्य कृषकों का नया वर्ष पौष शुक्ल प्रतिपदा को आरंभ होता है। तिब्बत में सरकारी और जनता के नववर्ष और पंचांग का आरंभ माघ शुक्ल प्रतिपदा से होता है। इसे पोंबो ल्होसर (सरकारी नववर्ष) कहते हैं।

मासगणना प्रतिपदा से प्रारंभ होकर अमावस्या को समाप्त होती है। प्रायः मासगणना पहला मास (थंगबो), दूसरा मास (ञीत्रा), तीसरा मास (सुमवा), इस प्रकार से होती है। मास के दिनों की गणना क्रमशः प्रतिपदा से अमावस्या तक एक, दो, तीन, करके होती है। दो तिथियों के एक ही दिन पड़ने पर तथा एक तिथि के दो दिन बढ़ने पर महीने के दिन तीस से घट या बढ़ भी जाते हैं। वहाँ भी अधिकमास होते हैं। परंतु तिब्बती पंचांग में प्रति तीसरे वर्ष अधिकमास का नियम नहीं है। इसलिये यह आवश्यक नहीं कि भारत में जो अधिक मास होते हैं वही वहाँ भी हों। इसलिये वहाँ और यहाँ के महीने कभी-कभी मिलते हैं। एक प्रथा यह भी है कि बारहों मास बारह वर्षों के नामों से पुकारे जाते हैं। पहले मास से प्रारंभ होकर तीन-तीन मास की चार ऋतुएँ (दुई) होती हैं। (१) काला कुत्ता, (२) महोरग (मनुष्य के

कंजूर के राज-संस्करण का एक पृष्ठ

[देखो पृ० १६३
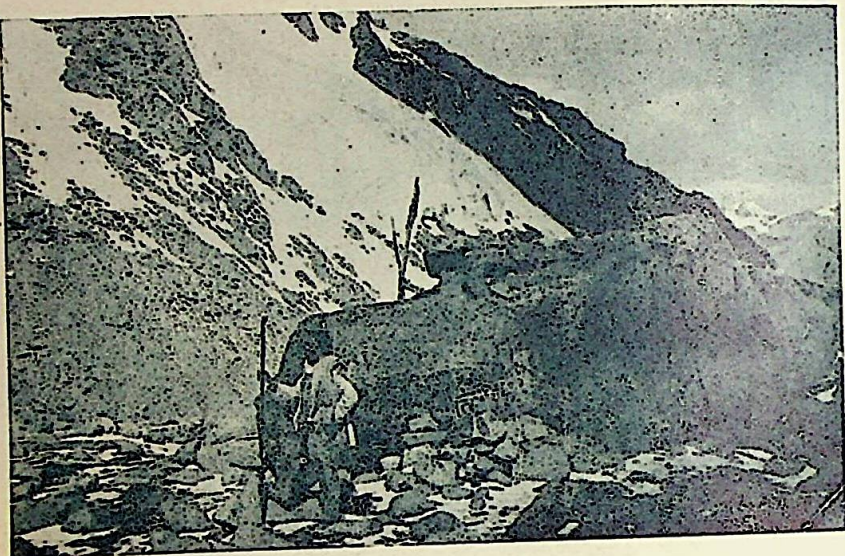
डोलमा ला

[देखो पृ० ३४८
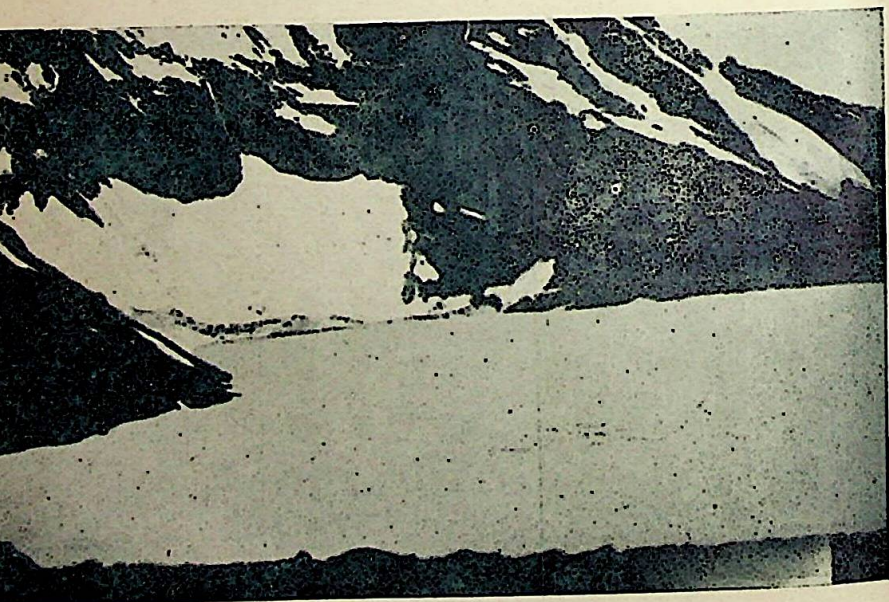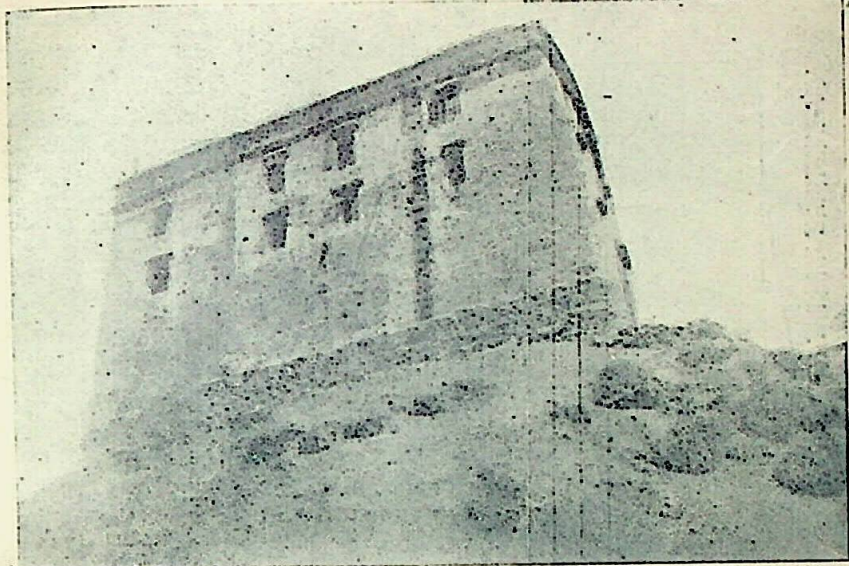
गौरी कुंड

[देखो पृ० ४६

गेङ्टा गोम्पा—कैलास का चौथा मठ

[देखो पृ० ३५१

सिलुङ गोम्पा—कैलास का पाँचवाँ मठ

[देखो पृ० ३५१

पुरङ-तकलाकोट का जोङपोन (गवर्नर)
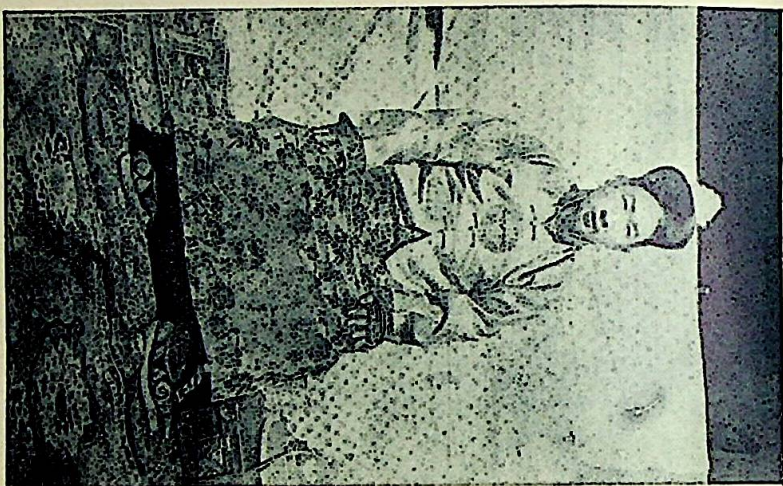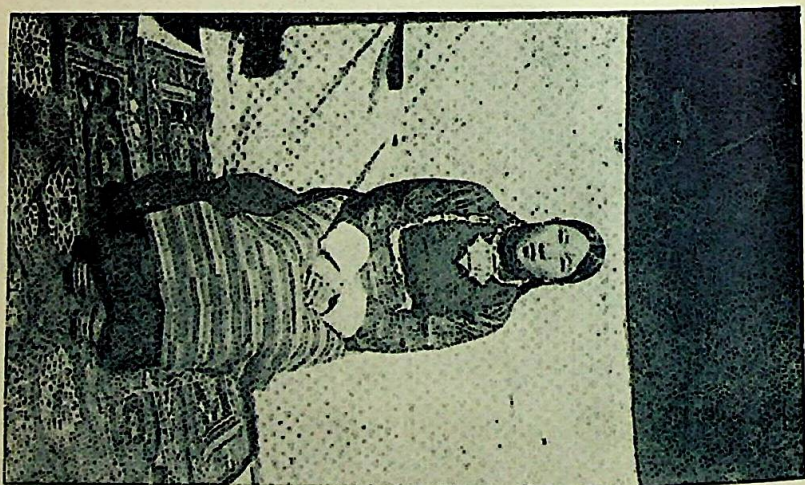
जोङपोन की धर्म-पत्नी
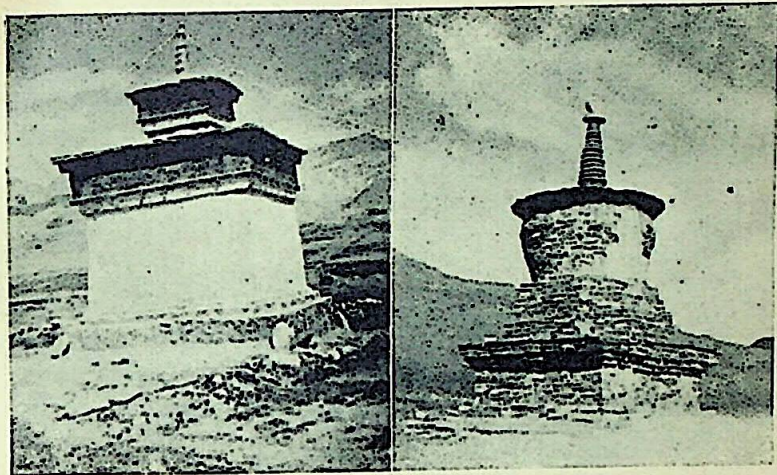
छोरतेन—तिब्बती स्तूप

[देखो पृ० १४५
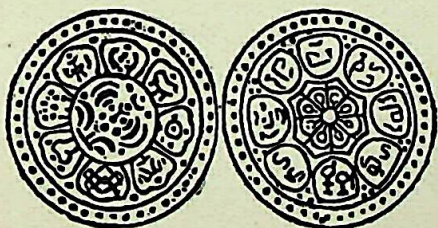
टंका—दोनों ओर से

[देखो पृ० २

गौरी कुंड में गिरनेवाले हिमखड

[देखो पृ० ४६
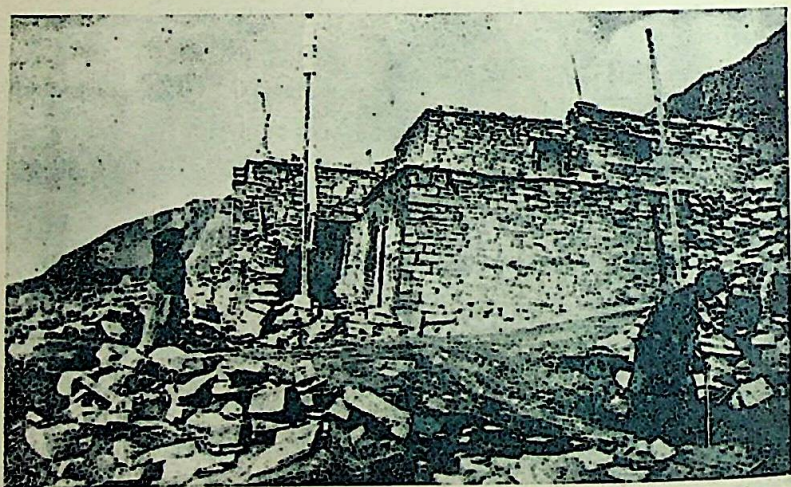
जुंठुलफुक् गोम्पा—कैलास का तीसरा मठ

[देखो पृ० ३५०
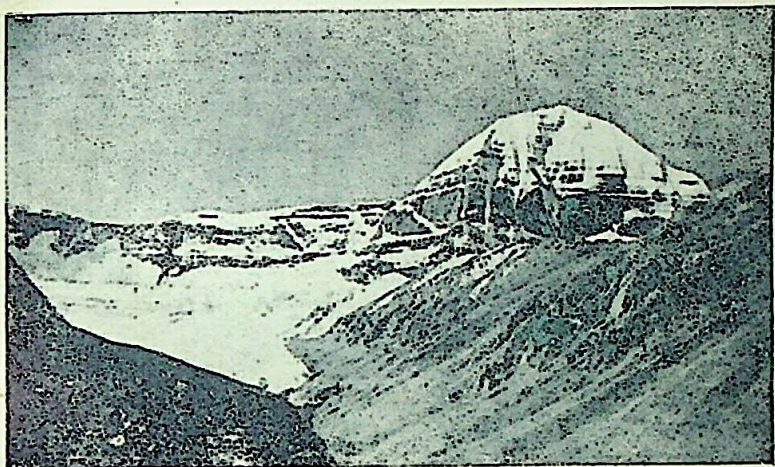
अवलोकितेश्वर और मंजुश्री शिखरों की मध्यवर्ती हिम-पीठिका पर स्थित कैलास का दृश्य

[देखो पृ० ३४७
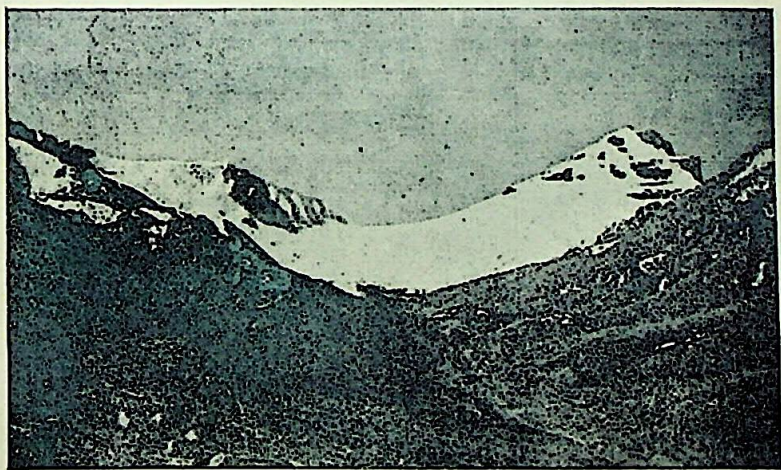
खंडोखङल्लम ला

[देखो पृ० ३४८
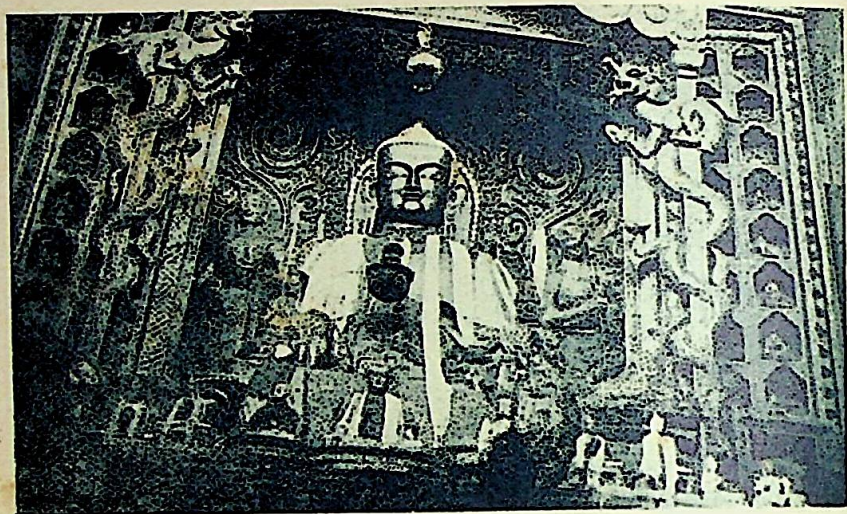
सिंबिलिङ गोम्पा में बुद्ध भगवान् की मूर्ति

[देखो पृ० १७७
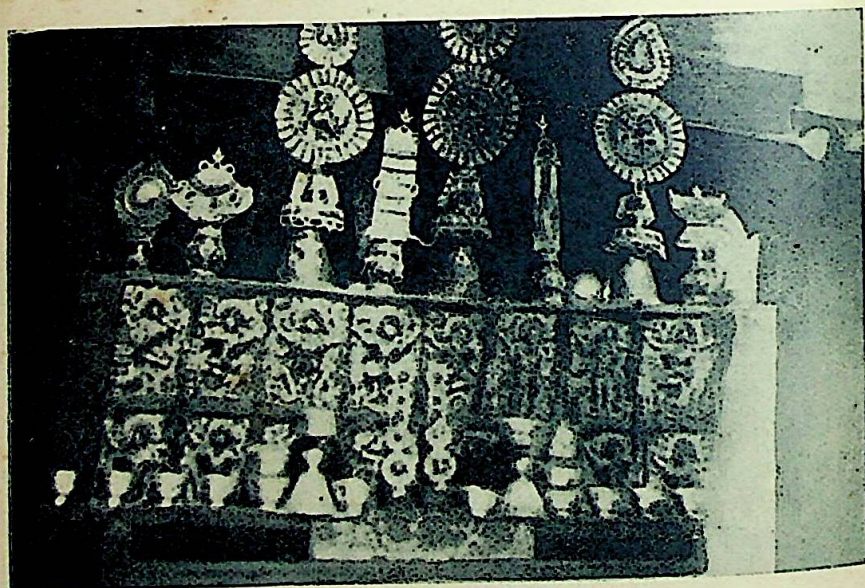
तांत्रिक क्रिया के अवसर पर बनी हुई सत्तू और मक्खन की रंग-बिरंगी मूर्तियाँ, सिंबिलिङ गोम्पा

[देखो पृ० १७७

शरीर और नाग का पूँछवाला), (३) घोड़े पर सवार एक पुरुष, (४) गरुड़, ये चार ऋतुओं के दुष्ट अधिदेवता हैं। आवश्यकता पड़ने पर इनको प्रसन्न करने के लिये पूजा-पाठ करना पड़ता है। सप्ताह में सात दिन होते हैं। वे एक-एक ग्रह के नाम से संबंध रखते हैं। एक-एक वार के नाम का शिर के एक-एक अंग से निर्देश किया जाता है और एक-एक चिह्न से सूचना दी जाती है। आगे दी हुई तालिका से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। दिन २४ घंटे में और घटा ६० मिनट में विभक्त किया जाता है।

तिब्बती मास और ऋतुओं (दुई) के नाम

सं०	मास का नाम		ऋतु का नाम	
	तिब्बती	भारतीय	तिब्बती	भारतीय व अंग्रेजी
१	थंगवो	माघ		
२	ङीवा	फाल्गुण	चीगा	हेमंत (स्प्रिंग)
३	सुमवा	चैत्र		
४	शीवा	वैशाख		
५	ङावा	ज्येष्ठ	यारका	ग्रीष्म (सम्मर)
६	ड्रुगवा	आषाढ़		
७	दुनबा	श्रावण		
८	ग्येवा	भाद्रपद	तांगा	शरद् (आटम)
९	गूवा	आश्विन		
१०	च्यूवा	कार्तिक		
११	च्यूच्किवा	मार्गशीर्ष	गूँगा	शिशिर (विन्टर)
१२	च्यूङीबा	पौष		

तिब्बती वारों के नाम

सं०	तिब्बती	भारतीय	अंग निर्देश	चिह्न निर्देश
१	न्यीमा	रवि	मूर्द्ध	सूर्य
२	दावा	सोम	मस्तक	क्षीणचंद्र
३	मिङमर	मंगल	नेत्र	नेत्र
४	ल्हक्पा	बुध	कर्ण	हाथ
५	फुरबू	बृहस्पति	नासिका	तीन नाखून
६	पसङ	शुक्र	मुख	गेटिस
७	पेन्पा	शनि	चिबुक	गट्ठा

प्रतिवर्ष तिब्बती भाषा में एक पंचांग ल्हासा से और एक रामपुर-बशहर स्टेट से छपता है। पहला पंचांग ल्हासा के पंडितों का बनाया होता है तथा अखरोट के तख्तों पर खुदवा कर छपता है। दूसरा पंचांग रामपुर-बशहर के एक भारतीय बौद्ध-मतावलंबी द्वारा निर्मित होकर दिल्ली में लिथोग्राफी की पद्धति से छापा जाता है। पंचांग को तिब्बती भाषा में 'लोथो' या 'लोदुर' कहते हैं।

तिब्बती पंचांगों में भारतीय पंचांगों की भाँति दिन, तिथि, वार, नक्षत्र, मास, पर्व और ग्रहण[1] आदि कई बातें दी जाती हैं। इसमें ग्रहचक्र, राशि-चक्र, आयुचक्र, ग्रहो के प्रभाव, विवाह संबंधी निर्णय करनेवाली तालिका, दिन-फलचक्र, यात्राचक्र, शुभाशुभ मुहूर्तों को बतानेवाले चक्र, शुभाशुभ शकुन, मृतकों की गति बतानेवाले चक्र आदि कई प्रकार के चक्र तथा तालिकाएँ रहती हैं। फलित और गणित ज्योतिप की कई पुस्तकें हैं। ज्योतिष पढ़ने के लिये

[1] सूर्यग्रहण को निङजन और चंद्रग्रहण को दमजन कहते हैं।

ल्हासा में गरमाख्या (?) नामक एक पृथक् मठ है। वहाँ के ज्योतिषी बड़े प्रसिद्ध माने जाते हैं, क्योंकि छोईछोङ नामक पौराणिक देवराज इस मठ के एक लामा में अवतार धारण करता है।

८—पर्व एवं त्योहार

नव वर्ष के आरंभ के दिन सभी घरों और विशेषकर गोम्पाओं में दस-पंद्रह दिनों तक पूजा-पाठ, निमंत्रण, नृत्य और खेल-कूद आदि होते रहते हैं, जिनमें भिक्षु लोग—लामा और डाबा—गृहस्थ, स्त्री, और पुरुष सभी उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। उस समय सभी लोग अच्छे-अच्छे वस्त्रों को धारण करते हैं तथा ऐसे अवसरों पर अत्यधिक मात्रा में छंग पीते हैं। वर्ष भर की पूजा के लिये सत्तू, घी, और गुड़ को मिलाकर बनाई हुई मूर्ति (लोदुर, जो एक आलमारी में बंद रखी जाती है) और कई 'छोपा' (बलि की मूर्ति, जो रंग-विरंगे मक्खन के वेल-बूटों से सुसज्जित सत्तू की मूर्ति के रूप में होती है), बनाये जाते हैं। प्रतिमास शुक्ल तृतीया (गुरुपद्मसंभव—पेमाजूने—का जन्म-दिन), शुक्ल पक्ष की अष्टमी (भगवती का प्रिय दिन), पूर्णिमा (बुद्ध भगवान् के जन्म, बोध, और निर्वाण का दिन) और अमावस्या (पर्व का दिन) को मठों में विशेष-पूजा होती है।

दसवें मास (कार्तिक की) पूर्णिमा को रात भर जागरण और देवी के २१ नामों का अखंड संकीर्तन-जप होता है, जो सचमुच बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली है। इसी मास की २५वीं तिथि को विख्यात सुधारक चोङखपा और पहले दलाई लामा ङम्छो लुबजङ का मृत्यु-दिवस है। उनके उपलक्ष में इस दिन विशेष पूजाएँ होती हैं। रात को मठ के भीतर बरांडों, और छतों पर सहस्रों घृत-दीपक जलाये जाते हैं। उस समय का दृश्य बिलकुल दीवाली जैसा दिखाई पड़ता है। वास्तव में इससे दो चार दिन पहले और पीछे गोम्पाओं में पूजा-पाठ और भोज आदि अधिकतर होते हैं।

पहले मास की पूर्णिमा को अवलोकितेश्वर का व्रत होता है। वैसे तो कार्यक्रम दशमी से ही प्रारंभ हो जाता है। त्रयोदशी के दिन पशुओं के

कल्याण के लिये पूजा-पाठ होते हैं। चतुर्दशी के दिन हलका उपवास होता है, हाँ चाय के लिये उस दिन भी मनाही नहीं है। शाम को निरामिष 'थुक्पा' पी लेते हैं। पूर्णिमा के दिन उपवास और मौन दोनों का पालन किया जाता है; किंतु पूजा को उच्च स्वर से करने की मनाही नहीं है। अवलोकितेश्वर के निरामिष देवता होने के कारण इस अवसर पर सारे पात्र, चाय के कटोरे आदि रगड़-रगड़ कर धोये जाते हैं। शाम को मंत्र-संकीर्तन होता है। पूर्णिमा के दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने तक पूजा-पाठ समाप्त करके भोजन किया जाता है। इसके उपरांत सायंकाल तक मंत्र-संकीर्तन होता रहता है। विशेषकर चतुर्दशी के दिन और सामान्य रूप से इन तीनों दिन यथाशक्ति अवलोकितेश्वर के प्रति साष्टांग दण्डवत् नमस्कार करते हैं। सातवें महीने की पूर्णिमा को नई खेती काटने के उपलक्ष्य में पूजा होती है। और खेतों में जुलूस निकलते हैं। विविध स्थानों में अन्याय त्योहारों (दुछेन) और पर्वों को मनाते हैं। विशेषकर सारा समारोह मठों में ही होता है।

पश्चिमी तिब्बत की राजधानी गरतोक में आठवें महीने की पूर्णिमा के दिन एक मेला लगता है, जिसे 'छोङ्दू' कहते हैं। उस मेले में चारों गवर्नर या उनके प्रतिनिधि अवश्य सम्मिलित होते हैं। उस अवसर पर खुले मैदान में घुड़दौड़ की प्रतिद्वंद्विता होती है, जिसमें पारितोषिक भी वितरण किया जाता है। प्रायः रुदोक प्रांत के घोड़े सर्वप्रथम होते हैं। इसके अतिरिक्त बंदूक की चाँदमारी और धनुर्विद्या के कई प्रकार के कौशल दिखाये जाते हैं। तिब्बतियों के यहाँ भी पर्व-त्योहार तथा अन्य अवसरों पर दूसरे पहाड़ी प्रांतों के समान नाच-गान होता है। हाथ में हाथ मिलाकर स्त्री और पुरुष अलग-अलग कतारों में नाचते हैं।

९—ॐ मणिपद्मे हुं

बोधिसत्व सर्वकरुणामय अवलोकितेश्वर[1] (चेनरेसी) या पद्मपाणि,

---

[1] अवलोकितेश्वर के ३, ८, ११ और १००० मुखवाले चित्र और

अनंत प्रतिभावान्, अमिताभ बुद्ध के पुत्र हैं। अपने पिता के आशीर्वाद के बल से अवलोकितेश्वर ने ॐ मणिपद्मे हुं नामक षड़ाक्षरी मंत्र की सृष्टि की इसलिये इस मंत्र के अधिष्ठातृ देवता अवलोकितेश्वर हैं। आजकल इस मंत्र के अंत में प्रायः 'ह्री' भी जोड़ा जाता है। इसे संक्षेप में मणि-मंत्र कहते हैं। ग्युट (तंत्रशास्त्र) में जुङ (बीजाक्षर या धारिणी) और चक्रजा (मुद्रा) को बहुत महत्त्व दिया जाता है। तिब्बतियों का विश्वास है कि बीजाक्षरों को कुछ तांत्रिक प्रक्रियाओं के साथ उच्चारण करने से और संयम के साथ रहकर, ध्यानाभ्यास करने से अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। और इष्टदेवता (यिदम) का साक्षात्कार तथा अंत में निर्वाण (न्याङडा) की प्राप्ति होती है। इस अनिर्वचनीय निर्वाण की प्राप्ति बिना भिक्षु हुए नहीं हो सकती। जो मनुष्य केवल विशिष्ट पुण्य कर्म करते हैं, वे सुखवती (देवछेन) नामक स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। वह स्वर्ग ही एक महान सरोवर है, जिसमें अपूर्व सुगंधिवाले कमल खिले रहते हैं, जिन पर पुण्यात्मा आनंदोपभोग करते हैं।

तिब्बती शास्त्रों के अनुसार संसार के समस्त जीव सृष्टि में ६ वर्गों में विभाजित किये गए हैं। (१) सब से उच्चश्रेणी के जीव देवता (ल्हा) हैं। ये छः देवलोकों में रहते हैं, जिनमें से चार अंतरिक्ष में हैं और दो भूमि पर हैं। (२) मनुष्य (मी)। (३) असुर (ल्हा-मा-यिन=जो देवता नहीं हैं)। ये बहुत बलवान दुष्ट जीव हैं। (४) पशु (डुडो या टुढो)। (५) नरक में रहनेवाले कुछ लोग इन्हें प्रेत भी कहते हैं। (यिडगे या यिगडे)। ये बड़े अभागे जीव हैं। इनके मुँह सूई के छेद जैसे होते हैं और पेट १२ मील ऊँचे हैं। इनकी भूख

मूर्तियाँ भी पाई जाती हैं। सहस्र हाथवाले अवलोकितेश्वर की मूर्ति में उतने ही हाथ और पैर भी होते हैं। साधारणतया ग्यारह मुँह के अवलोकितेश्वर (जिग्तेन गोबो या चुचिक छोड़) देखने में आते हैं। ऐसी एक मूर्ति ङुगोल्हो गोम्पा में है। ये शिर एक के ऊपर एक करके चार श्रेणियों में हैं। सब से नीचे के तीन मुख श्वेत हैं। उनके ऊपर के तीन पीले, उनके ऊपर के तीन लाल और सब से ऊपर के दो नीले और लाल रंग के हैं।

और प्यास कभी शांत नहीं होती। (६) रौरव नरक में रहनेवाले (डाल) पूर्व जन्म में किये हुए पापों के लिये इनको निर्दयतापूर्वक अकथनीय दंड दिया जाते हैं।

अपने-अपने कर्मों (लस्) के अनुसार यमराज या धर्मराज (शिङ्डे या चोइग्येल्पो) जीवों को दंड देने के लिये उन-उन लोकों में डाल देते हैं। इन विविध लोकों में जन्म से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय यह है कि बुरी कामनाओं का विरोध करके मंत्र और तंत्र का अभ्यास करे। षडक्षरी मणि-मंत्र का जप करने से उपयुक्त छः लोकों में आवागमन का अंत होकर निर्वाण-प्राप्ति होती है। तंत्रशास्त्र की रीति से मणि-मंत्र के अक्षरों के पृथक्-पृथक् वर्ण का निरूपण किया गया है; वे ये हैं—श्वेत, नील, पीत, हरित, रक्त, और कृष्ण ह्री का वर्ण भी श्वेत कहा जाता है। इस मंत्र के छः अक्षर छः लोकों के सूचक हैं। इस मंत्र के विशुद्ध रूप को बिगाड़कर साधारण जनता अपभ्रंश रूप में 'ॐ मणि पेमे हूँ' उच्चरण करते हैं। इसके अतिरिक्त कम प्रसिद्ध मंत्र और भी हैं जैसे 'ॐ वज्रगुरु पद्मसिद्धिहुं', 'ॐ वज्रपाणिहुं' इत्यादि।

मणि-मंत्र के बीजाक्षरों का विवरण

सं०	१	२	३	४	५	६	७
बीजाक्षर	ॐ	म	णि	प	द्मे	हुं	ह्रीं
वर्ण	श्वेत	नील	पीत	हरित्	रक्त	कृष्ण	श्वेत
लोक	देवता (ल्हा)	मनुष्य (मी)	असुर ल्हामायिन	पशु (डुडो)	नरक (यिडगे)	रौरव (डाल)	निर्वाण (न्यङ्डा)

प्रत्येक मंत्र की भाँति मणि-मंत्र का भी 'ॐ' शिर है; यह संबोधन का वाचक है। 'मणिपद्मे' या पद्म-मणि (पद्म-श्रेष्ठ) अवलोकितेश्वर का नाम है। हुं तांत्रिक बीज है, जो जय का सूचक है। अब ॐ मणिपद्मे हुं का सीधा

अर्थ यह है कि "हे पद्मरत्न अवलोकितेश्वर! जय हो।" कितने ही तिब्बती लामाओं से मैंने पूछा, उन्होंने भी इसका यही अर्थ बतलाया। परंतु कई उत्साही भारतीयों इस मंत्र को खींच-खाँचकर इसके कुछ अन्य अर्थ बतलाए जो इस प्रकार हैं—'नाभिस्थान में मणिपूर नामक जो पद्म है उसमें विराजमान ओंकार रूप भगवान हैं, वह मैं हूँ'; 'षटचक्रों में श्रेष्ठ जो सहस्रार कमल है, उसमें विराजमान ओंकार रूप जो सदाशिव है, वह मैं ही हूँ'; "यह मंत्र अजया गायत्री सोऽहम् का रूपांतर है'; इत्यादि-इत्यादि।

यह मणि-मंत्र तिब्बत भर में बहुत सुविज्ञात और परम पवित्र मंत्र है। स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे, और भिक्षु-गृहस्थ, सब के सब इस मंत्र को सदा जपते रहते हैं। भारत में एक श्रोत्रिय ब्राह्मण गायत्री मंत्र का जितना जप करता है उससे कई गुना अधिक साधारण से साधारण तिब्बती इस मंत्र का जप करता है।

तिब्बत में स्त्री-पुरुष सभी के हाथ में रुद्राक्ष, लकड़ी, पत्थर, हड्डी या किसी अन्य प्रकार के १०८ दाने की माला रहती है। प्रायः सभी लोग चलते-फिरते, बैठते मणि-मंत्र का जप करते रहते हैं। बीच-बीच में चाँदी वा किसी और धातु के बने हुए दस-दस दाने की दो या तीन लड़ियाँ (उपमाला) लटकती रहती हैं, जिससे पहले से हजार की, दूसरे से दस हजार की और तीसरे से एक लाख की गिनती होती है। अधिक श्रद्धालु लोग एक हाथ से माला फेरते हैं और दूसरे से 'कोरलो' को घुमाते हैं। मणि-मंत्र को कागज पर दस सहस्र या एक लाख बार लिखकर दो-तीन अंगुल ऊँचे और उतने ही व्यासवाले चाँदी या किसी और धातु के चोंगे में रखकर उसके मध्य में एक कील रखकर नीचे से पकड़ने के लिये हत्था रख देते हैं। चोंगे पर एक छोटी-सी जंजीर लगी रहती है जिसके अंतिम छोर पर एक घुंडी रहती है, जिसे 'कोरलो' या मणि कहते हैं। इसे सर्वदा दाहिनी ओर से घुमाते हैं। तिब्बतियों की धारणा है कि इस मणि को एक बार घुमाने से उसमें जितनी बार मंत्र लिखे गए हैं, उतनी बार मंत्र के जप करने का फल होता है। इस प्रकार के छोटे-बड़े कई चोंगे (बिना जंजीर के) मठों के द्वारों पर और भीतर लगाये जाते हैं। यात्रीगण मठों में जाते समय इन मणियों को सव्यप्रदक्षिणा करते हुए घुमाते हैं। कितने

ही मठों में दो-दो गज के व्यास और तीन-तीन गज की ऊँचाई के चोंगे होते हैं, जिनमें करोड़ों बार मणि-मंत्र लिखे हुए कागज डाले हुए होते हैं। इस प्रकार के बड़े मणि चोंगों को 'कोरचेन' कहते हैं। मणि-चोंगों को पनचक्की के समान पानी से चलाये जाते हुए मैंने लदाख में देखा। सुनते हैं कि पूर्वी तिब्बत में भी इस प्रकार की पनचक्की के मणि-चोंगे बहुत हैं।

यह मंत्र पत्थरों, दीवालों, पहाड़ों, गुफाओं और गोम्पाओं के ऊपर चित्रित किया जाता है। इसे कपड़े पर छापकर झंडे या तोरणों में लगाते हैं। चपटे और गोल पत्थरों पर इस मंत्र को उभारकर या खोदकर दीवालों पर रखते हैं। इस प्रकार के छोटे-बड़े मणि-दीवाल गाँव में प्रवेश करने के पड़ावों, तीर्थस्थानों, मठों के जाने के मार्गों, पहाड़ के घाटों तथा किसी तीर्थ के प्रथम दर्शन होने के स्थानों में बना देते हैं। इन दीवालों की प्रदक्षिणा करनेवाले पुण्य-भागी समझे जाते हैं तथा इन पर मणि-पत्थरों के रखनेवाले भी पुण्यशील माने जाते हैं। इस प्रकार की एक-एक मील लंबी, दो-दो गज ऊँची औरर चौड़ी दीवालों को मैंने लदाख़ की राजधानी लेह के पास देखा है।

१०—सिंबिलिङ गोम्पा

तकलाकोट की मंडी के पास के पहाड़ की रीढ़ पर जोङ (गवर्नर) का दुर्ग है। मानसखंड के मठों में तकलाकोट का सिंबिलिङ गोम्पा सब से बड़ा है। यह शकपालिङ, शिमिलिङ, और शिब्लिलिङ नामों से भी पुकारा जाता है। वह मठ गवर्नर के दुर्ग से बिल्कुल सटा हुआ है। इसके ऊपर से चारों दिशाओं के हरे-भरे खेत, बीच की छोटी-छोटी नहरें, अपनी सहायक नदियों के साथ कर-नाली, उत्तर में मांधाता और दक्षिण में भारत की सीमा पर स्थित हिमाच्छा-दित पर्वत-मालाओं के दृश्य बहुत ही सुहावने और मनोमोहक दिखाई देते हैं। पुरङ में खिद्दिखर आदि, मानसरोवर के ऊपर ठुगोल्हो आदि, और कुछ अन्य स्थानों को मिलाकर इस गोम्पा की कुल सात आठ शाखाएँ हैं। शाखाओं को मिलाकर इस मठ के अंतर्गत २५० भिक्षु हैं, जिनमें से छः लामा और अव-शिष्ट डाबा है। यह ल्हासा के डेपुङ विहार के अंतर्गत है। सिंबिलिङ का

प्रधान लामा डेपुङ से तीन वर्ष के लिये नियुक्त होकर आता है। यहाँ पर छोटे-छोटे भिक्षुओं की पाठशाला है।

सिंबिलिङ मठ के दुवङ (देवागार) के भीतर की कोठरी से ऊँची वेदी के ऊपर ज्ञानमुद्रा में पद्मासनस्थित शाक्य थुब्बा (शाक्यमुनि) की मूर्ति है, जिसकी ऊँचाई छः फीट है। इस पर सोने का पानी चढ़ाया हुआ है। प्रधान मूर्ति के सामने कई अन्य मूर्तियाँ, मक्खन की बत्ती और पानी से भरी हुई कई कटोरियाँ रक्खी हुई हैं। मूर्ति के ऊपर खतक लगे हुए हैं। एक पार्श्व में कुछ पुस्तकें हैं। दुवङ के बाहर के भाग में भिक्षुओं के बैठने के लिये गद्दियों की कतारें हैं। वर्ष भर में यहाँ पर कम-से-कम एक बार वृहत्-पूजा, भोज, खेल-कूद, आध्यात्मिक या धार्मिक नाटकों का प्रदर्शन होता है। सिंबिलिङ मठ के धार्मिक नाटकों को 'तोर्ग्यक' कहते हैं; खोचार के धर्म-नाटकों को 'नमदोङ', और सिद्दिखर में इसे 'छेगे' कहते हैं। मठ की तीसरी मंजिल पर तंजूर, कंजूर तथा अन्य पुस्तकें भिन्न-भिन्न तीन कमरों में सजाकर रक्खी हुई हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे देवघर हैं। गोम्पा में जब कोई प्रतिष्ठित लामा, अफसर या कोई अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आते हैं, तो भिक्षुगण सब प्रकार के वाद्यों के साथ उनका स्वागत करते हैं। इसमें कई प्रकार के व्यापार, खेत, घोड़े, याक और भेड़-बकरी के रूप में बहुत-सी संपत्ति है। यह मठ इसके पहाड़ के ऊपर स्थित होने के कारण, आस-पास के गाँववालों को बारी-बारी से बेगार में दूर से पानी पहुँचाना पड़ता है। बहुत अंशों में दून के गाँववालों पर इस मठ का शासन रहता है। पश्चिमी तिब्बत में इस मठ का स्थान थुलिङ मठ से दूसरा है। इसके पास ही लालटोपी संप्रदायवालों का साक्या गोम्पा है।

सिंबिलिङ मठ में जनरल जोरावर सिंह का शिर, दायाँ हाथ, एक बड़ी बंदूक, लोहे की कवच, टोपी आदि सुरक्षित रखे गए हैं। हवन और धर्म नाटकों के अवसर पर बाहर निकाल कर शिर और हाथ का प्रदर्शन किया जाता है। कुछ औरों का कहना है कि इसमें ज़ोरावरसिंह का मांस और उनके सरदारों का शिर और हाथ मठ-प्रबंधक के पास रखे हुए हैं, जो तीन वर्ष में एक बार बाहर निकालकर दिखाये जाते हैं।

हिंदुओं की भाँति तिब्बती लोग भी बुद्ध भगवान् और उनके पूर्व जन्मों के कई अवतार, बोधिसत्त्व, महाकाल, महाकाली, हयग्रीव (तमडिन) आदि देवताओं के अतिरिक्त कई देवी देवताओं को, और दुष्टात्माओं (असुर) को मानते हैं। दुष्टात्माओं से रक्षा करनेवाले देवताओं को 'ड्रगशेड' कहते हैं, जिनके हाथ में प्रायः पाँच आयुध पाये जाते हैं, (१) वज्र (दोर्जे), (२) कील (फुरबू), (३) त्रिशूल (खटम्), (४) पाश (थगपा), और (५) मनुष्य-कपाल (कपाला)। इनके अतिरिक्त पांच पौराणिक राजाओं (कू-ङा-ग्येलपो) को मानते हैं—(१) बीहार ग्येलपो (मठों का रक्षक), (२) छोईचोङ ग्येलपो, (३) डोल्हा ग्येलपो, (४) लुवङ ग्येलपो और (५) टोकछोई ग्येलपो। देवासुर-संग्राम और समुद्र-मंथन और उससे हलाहल और अमृत का प्राप्त करना—आदि गाथाएँ इनके धर्म-ग्रंथों में भी वर्णित हैं। बड़े मठों में वर्ष भर में एक बार, नववर्ष के दिन या अन्य अवसरों पर आध्यात्मिक या धार्मिक नाटकों का प्रदर्शन होता है, जिनमें प्रायः भिक्षु ही पात्र होते हैं।

इन नाटकों में देवता और राक्षसों के मुखड़ों को मुख पर लगाते हैं और लंबे-लंबे चोगे पहनते हैं। राक्षसों के पात्र देवताओं से अधिक वस्त्र पहनते हैं, जिससे नाटक में देवताओं और मनुष्यों की मारपीट से बच सकें। नाटक के प्रारंभ में मंच पर देवता लोग बीच में बैठते हैं। उनकी दाहिनी ओर मनुष्य और बायीं ओर राक्षस बैठते हैं। राक्षस मनुष्यों को अनेक प्रलोभन देकर किसी प्रकार बुरे कामों में उलझाने का बहुत प्रयत्न करते हैं। जब मनुष्य विवश होकर पतित होने लगते हैं, तो बचने के लिये देवताओं से प्रार्थना करते हैं। तब देवता तीरों से और मनुष्य लाठियों से राक्षसों को बुरी तरह से मार-मार कर भगाते हैं। देवासुर-संग्राम में इस प्रकार देवताओं की विजय हो जाने पर अंत में पुनः सब (देवता, मनुष्य, और राक्षस) लोग स्टेज पर एकत्रित होकर देवताओं का यशोगान करते हैं। इस प्रकार के सुंदर आध्यात्मिक नाटकों को पाश्चात्य लोगों ने केवल अज्ञानता के कारण 'भूतनृत्य' (डेविल डान्स) नाम रखा है और तिब्बतियों को निरा मूर्ख कहने लगे। इन नाटकों का वास्तविक तात्पर्य बिना समझे ऊपर ही ऊपर देख कर यथा-तथा टीका-टिप्पणी करना

अज्ञता नहीं तो और क्या है ?

जब कोई मंदिर, मठ, छोरतेन या किसी धार्मिक संस्था का भवन निर्माण करना होता है, तो आधार-शिला डालने से पहले भू-शुद्धि और पूजा की जाती है। नींव में धूप, मक्खन, पैसा आदि वस्तुएँ छोड़ी जाती हैं। भवन पूरा होने पर पूजा-पाठ के साथ गृह-प्रवेश का उत्सव होता है। इस अवसर पर बिहार ग्येलपो की पूजा की जाती है।

११—खोचार गोम्पा

तकलाकोट से आग्नेय कोण में बारह मील नीचे करनाली नदी के बाँये तट पर खोचार या खोचारनाथ नामक गाँव में एक बड़ा मठ है, जो खोचार नाम से प्रसिद्ध है। ग्रंथों में इसका नाम खोरचक है। खोचारनाथ के सामने के पर्वतों से रोमा नामक एक वेगपूर्वक बहनेवाली नदी करनाली में आकर गिरती है। उसके धक्के के कारण प्रतिवर्ष करनाली नदी गोम्पा की ओर आकर किनारे को काट रही है, जिससे सदा यह भय बना रहता है कि मठ बह न जाय। इसलिये गोम्पा के पास ही नदी के दो सौ गज ऊपर और नीचे पत्थरों से बाँध बनाये गए हैं। इस मठ में दो विशाल भवन हैं। एक भवन में दुवङ और चकङ हैं। इसके सामने एक बड़ी भारी ध्वजा है। समीप ही फाटक के सामने एक कुँआँ है, जिसमें मठ के देवताओं को चढ़ाया गया जल डाला जाता है। इस भवन के पहले द्वार के भीतर दो बड़े और कई छोटे-छोटे मणि-चोंगे हैं। आँगन के एक ओर की दीवाल पर देवी के इक्कीस अवतारों के चित्र बने हैं और दूसरी ओर खोचार का स्थल-पुराण लिखा हुआ है। दूसरे और तीसरे द्वार के मध्य पर सात-आठ फीट ऊँची की भयंकर दाँतोंवाली दो बड़ी मूर्तियाँ हैं। बाँई ओर की लाल मूर्ति तमडिन की है, जो अवोलोकितेश्वर का उग्ररूप है। दाहिनी ओर की नीली मूर्ति छकदोर की है, जो अमिताभ बुद्ध का उग्ररूप है। दुवङ् में पहुँचते ही दाहिनी ओर बाँई ओर दो-दो मूर्तियाँ छः-छः फीट की ऊँचाई की हैं। ये मूर्तियाँ चार दिग्पालों की हैं, जिनके नाम—शरछोक गेलबो (याकुरसुम-श्वेत), ल्होछोक गेलबो (फाकेफू-हरा), नुप्छोक गेलबो (सेमीजङ-

लाल), और चङ्छोक गेलबो (नमथोसे-पीला) है, जो क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर की दिशाओं के दिग्पाल हैं। दुवङ् में अष्टधातु (जिकिम्) विनिर्मित चार-पाँच फीट ऊँचे सुरम्य सिंहासन के पद्मों पर खड़ी हुईं तीन मूर्तियाँ हैं। मध्य की मूर्ति मंजुश्री (जम्बयङ) की है, जिसकी ऊँचाई आठ फीट और रंग पीला है। इस मूर्ति के दाहिने पार्श्व में अवलोकितेश्वर (चेनरेसी), जो उजले रंग के हैं, और बायें पार्श्व में वज्रपाणि (छानादोर्जे), जो नीले रंग के है, स्थित हैं। ये दोनों मूर्तियाँ सात-सात फीट की हैं। तीनों मूर्तियाँ चाँदी की बनी हैं। सिंहासन तथा मूर्तियों की शिल्प-कला दक्षिण भारत की है। ये बहुत ही सुंदर और सुडौल हैं और बहुत वर्ष पहले लंका से यहाँ लाईं गईं हैं। एक बार १८६६ में और एक और दूसरे समय पर गोम्पा में आग लग जाने के कारण ये मूर्तियाँ कुछ अंशों में जल गईं थीं, जो पीछे ल्हासा के शिल्पकारों से ठीक करवाई गईं। जिनके वंशज अब भी खोचार में विद्यमान है।

तिब्बतियों का कहना है कि जिस पत्थर की चट्टान पर ये अभी स्थित हैं उसी से ये मूर्तियाँ दैवी महिमा से स्वयं उत्पन्न हुई हैं। ये स्वयंभू हैं, किसी मनुष्य ने इन्हें बनाया नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि ये अब तक सात बार बोल चुकी हैं, और इनके अब छः बार और बोलने के बाद संसार में प्रलय हो जायगा। इस प्रकार की आश्चर्यजनक बातों के कारण मूर्तियों के दर्शन के लिये ल्हासा से भी यात्रीगण यहाँ आते रहते हैं। ल्हासा के एक मठ में स्थित स्वर्ण की बुद्धमूर्ति और चाँदी की बनी हुई खोचार की तीनों मूर्तियाँ (खोचारसुम) वास्तव में एक ही स्वरूप, सत्त्व, और माहात्म्य की हैं। चाहे जैसा भी पापी हो, यदि श्रद्धापूर्वक इनकी एक प्रदक्षिणा करता है तो अगले जन्म में अवश्य मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है।

सिंहासनस्थ कमल के तीनों नालों के मध्य में शङशङ नामक दो देवताओं की मूर्तियाँ हैं, जिनके शरीर स्त्री के और पैर गृद्ध के हैं। पार्श्व के दोनों नालों की मोड़ों में नाग-कन्याओं (लू) की दो मूर्तियाँ है, जिनके शिर पर सात शिरवाले फण के सर्प हैं। बायीं ओर के देवता का नाम गाबो और

दाहिनी ओर वाले के जोकपो है। बायीं और दाहिनी ओर एक-एक सिंह और मयूर हैं; मध्य में सप्त रत्न (रिनछेन नादुन) की मूर्तियाँ हैं, जिनके नाम ये हैं— (१) चक्र (कोरलो), (२) मणि (नोरबू), (३) राणी (छुनमो), (४) कुवेर (लोंपो), (५) दिव्याश्व (ताछोक), (६) ऐरावत (लङपो), और (७) उत्तम नेता (मगपोन)। मंजुश्री और वज्रपाणि के मध्य में चाँदी की बनी हुई शेष-शायी विष्णु की मूर्ति है। जिसे तिब्बती लोवेन-चोकरसुम कहते हैं। यह मूर्ति मैसूर के महाराजा से ठाकुर प्रेमसिंह चौंदासी के भाई को मिली थी। उनकी मृत्यु होने पर ठाकुर प्रेमसिंह जी ने अपने भाई की स्मृति में इस मूर्ति को वहाँ चढ़ा दिया। प्रधान मूर्तियों की दाहिनी और बायीं ओर आलमारियों में पाँच-पाँच फिट की छः और पाँच मूर्तियाँ रखी हुई हैं। कहते हैं कि ये भी अव-लोकितेश्वर, मंजुश्री, और वज्रपाणि की मूर्तियाँ हैं। ये 'नीमी सेजे नग्ये' (?) नाम से प्रसिद्ध हैं।

यात्रीगण दर्शन के लिये यहाँ बारहों महीने आते रहते हैं। भारत के भोटिये और हिंदू यात्री इन तीनों मूर्तियों को राम, लक्ष्मण, और सीता की मानते हैं, और बड़ी-बड़ी भेंट और पूजा चढ़ाया करते हैं। अखंड दीपक और भोग के लिये बहुत से द्रव्य, गाय, भेड़ और बकरियों को चढ़ाते हैं। पर बहुत ही मनोरंजक तथा हास्यास्पद बात यह है कि ये तीनों बौद्ध धर्म के बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ हैं और तीनों पुरुष की प्रतिमाएँ हैं! मूर्तियों के सामने सीढ़ीदार चौकी है, जिसकी सबसे ऊपर की सीढ़ी पर सोने और चाँदी के अखंड दीप वर्ष भर निरंतर जलते रहते हैं। नीचे की सीढ़ियों में भली भाँति सजी-सजाई कटोरियों की कतारें सुशोभित हैं। कमरे की दोनों तरफ, दीवालों के पास छत तक लगी हुई आलमारियों में तंजूर की पुस्तकों के कतिपय वेष्टन सुसज्जित हैं। मूर्तियों के दाहिने पार्श्व के कोने में, ऊपर की मंजिल के एक छोटे-से कमरे में नित्य पूजा का देवमंदिर (चकङ) है, जिसमें सुमादोर्जे युदुल नामक एक देवी घोड़े पर बैठी हुई स्थापित की गई है।

कैलास-पुराण में लिखा है कि सन् १०४४ में जब आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान (अतिशा) बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ पुरङ गये थे तो उन्होंने कैलास, अङ

और खोचार तीनों स्थानों में एक ही दिन पूजा की थी, जिससे देवताओं ने उन पर प्रसन्न होकर सोना, चाँदी, फिरोजा और मूँगों को आकाश से बरसाकर आशीर्वाद दिया था। उन्होंने यहाँ चातुर्मास्य किया था। खोचारनाथ के मठ में एक टुलकु (अवतारी) लामा और पचास डाबा हैं।

गोङखङ या गोम्पा के दूसरे भवन में एक बहुत ऊँचा और विशाल हॉल है, जहाँ वर्ष भर में एक बार धार्मिक नाटकों का प्रदर्शन होता है, जिसे यहाँ 'नमदोङ' कहते हैं। भीतर प्रवेश करते ही दाहिनी ओर घास से भरे हुए जंगली याक और बाघ ऊपर छत से लटकाये हुए हैं। एक ओर एक बड़ा भारी मणि-चोंगा है। द्वार के सामने ही भीतर एक कमरे में मैत्रेय (चंबा[1] आने वाले बुद्ध) की बैठी हुई मूर्ति है, जिसकी ऊँचाई बीस-बाईस फीट है। इस मूर्ति की बाँईं बगल में एक छोटे से कमरे में पलदेन कुरकी गेलबो (महाकाल) की जिसके हाथ में मनुष्य-कपाल है और महाकाली (पलदेन ल्हमो) की, जिनके मुँह और हाथ में अंतड़ियाँ रक्खी हुई हैं, मूर्तियाँ हैं जो भयंकरहैं। दोनों मूर्तियाँ काले वर्ण की हैं और उनके मुख ढके हुए हैं। इस कमरे से सटे हुए कमरे में विविध आसन और मुद्राओं में बैठे हुए सप्त बुद्धों की (सांगे-पावो-रप्दुन-ऋषि बुद्ध-बीर-सात) सात मूर्तियाँ हैं। वे ये हैं—(१) नमनङ, (२) शाक्य थुब्बा, (३) चंबा, (४) मेक्यूपा, (५) रिङजुङ, (६) ओपामे और (७) थुँड्डप। हिंदू-यात्री इन्हें अगस्त्य आदि सप्तर्षि मानते हैं; परंतु ये मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न मुद्राओं में बैठे हुए कश्यप बुद्ध, मैत्रेय बुद्ध और गौतम बुद्ध आदि सप्त-बुद्धों की हैं। चंबा की बाईं ओर की एक कोठरी में 'युम छेमो छुजु[2] सांगे' (माता-बड़ा-दिशा-दश-ऋषि) नाम की ग्यारह मूर्तियाँ ये हैं। (१) पूर्व (शर), (२) आग्नेय (शर-ल्हो), (३) दक्षिण (ल्हो), (४) नैऋत (ल्हो-नुप), (५) पश्चिम (नुप), (६) वायव्य (नुप-चङ), (७) उत्तर (चङ), (८) ईशान (चङ-शर);

---

[1]इसका चंपा उच्चारण भी करते हैं। ल्हासा में ८० फीट ऊँचाई की चंपा की मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

[2]छोक च्यू।

(९) ऊर्ध्व या आकाश (तंक), (१०) पाताल (योक)। जो इन दिशाओं के अधि-देवता हैं। इन्हें हिंदूयात्री एकादश रुद्र मानते हैं। परंतु इनमें से बीच की मूर्ति देवी की है अन्य पुरुष-मूर्तियाँ दिग्पालों की हैं। इस भवन के ऊपर के परकोटे में कंजूर और तंजूर की पोथियाँ भिन्न-भिन्न कोठरियों में सजाकर रक्खी हुई हैं। एक और कोठरी में जेचुनडोमा की मूर्ति है। कोठरी की दीवालों पर देवी के इक्कीस अवतारों के चित्र चित्रित हैं। खोचार गोंपा से खोचार का स्थलपुराण (खोचार करछक) छपता है। १८५ वर्ष पहले पूर्वीय तिब्बत के डोर गोम्पा के लामा खेंबो सोनम गेलज़िन ने इसकी रचना की थी।

गोम्पा के समीप ही कई धर्मशालाएँ और घर हैं। गाँव वहाँ से कुछ ऊपर है। गाँव के अंत में एक पर्वत के मूल प्रदेश में गोम्पा के लामा के एकांत वास की कुटी है। खोचारनाथ तकलाकोट से कुछ गर्म स्थान है। यह भूटान राज्य के अधिकार में है। गाँव से थोड़ी दूर पर करनाली नदी में पुल है, जिसके उस पार से नेपाल का राज्य आरंभ हो जाता है। नेपाल से तकलाकोट की मंडी में जानेवाले व्यापारी खोचार होकर ही जाते हैं। खोचारनाथ से एक मील नीचे शर नामक एक गाँव है। पुरङ-दून में वही अंतिम गाँव है।

अध्याय ४

कृषि और आर्थिक स्थिति

१—खेती

करदुङ गाँव से लेकर खोचार तक करनाली की दून को पुरङ या पुरङ-तकलाकोट दून कहते हैं। यह लगभग १२००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। तकलाकोट को मिला कर इस दून में ५० गाँव हैं।[1] कैलास-मानस-खंड में इस स्थान को छोड़कर खेतीबारी और कहीं नहीं होती। यहाँ जौ, मटर, और सरसों की खेती होती है। कहीं-कहीं थोड़ी राई भी उत्पन्न होती है। पहाड़ी नदियों से छोटी-छोटी नहरों द्वारा जल लाकर खेतों की सिंचाई करते हैं। यहाँ वाले इन नहरों से लाये हुए जल को एकत्र कर छोटे-छोटे तालाब बना लेते हैं। यात्रा के दिनों में यहाँ के हरे भरे लहलहाते हुए खेतों, रूखे-सूखे पहाड़ों की मेखलाओं से आई हुई नहरों की दोनों तरफ उगी हुई हरी-हरी घासों, और कहीं-कहीं पेड़ों को देखकर यात्रियों के मन आनंद में मग्न हो जाते हैं।

याक बोझ ढोने के काम में ही आते हैं। हल में नहीं जोते जाते। इसीलिये खेतों को झब्बू या घोड़ों से जोतते हैं। जौ और मटर की फसल को काटकर खलिहान में रखते हैं, फिर एक खंभा गाड़कर याकों को एक रस्से में बाँधकर अंतिम छोर पर घोड़े रखते हैं और घुमाकर दँवरी चलाते हैं। कहा जाता है कि ईस्वी की पहली शताब्दी के प्रारंभ में राजा पुदे गुग्यंल के काल में तिब्बत में खेती-बारी की प्रथा पहले-पहल चालू की गई थी। सम्राट् स्रोङ्चेन ने ६३०—६९८ में मिट्टी के बर्तन, पनचक्की और करघों का प्रचलन

---

[1] गाँवों के नाम परिशिष्ट १. में देखिए।

किया। पुरङ के गाँवों में जहाँ-जहाँ पहाड़ी नदियों से लाई हुई नहरें हैं, वहाँ जौ और मटर पीसने के लिये पनचक्कियाँ बनी हुई हैं।

२—जंगली पशु

जंगली याक (डोङ), बरफानी चीता (यी),[1] जंगली घोड़ा (क्यङ या कियङ[1]), बादामी रंग या लाल रंग का भालू, जंगली बकरी (ङा या ना), जंगली भेड़ या बरड (गोश्रा या गुवा), एक प्रकार का बारहसिंगा (न्यन), हिरण (चो), घुरड़, भेड़िया (चंगू), एक प्रकार की लोमड़ी (हाजे), बंदर के आकार का बड़ा चूहा (प्यू या प्याँ), विना पूँछवाला चूहा (सीवी या छिपी), खरगोश (रिगोङ)—ये. मानसखंड के जंगली पशु हैं।

ब्रह्मपुत्र के उद्गम पर कैलास के वायव्य कोण के डुङ-लुङ घाटी के ऊपरी भागों में समुद्रतल से १६००० फीट से अधिक ऊँचाई पर झुंड के झुंड जंगली याक पाए जाते हैं। ये बहुत भयानक होते हैं। तिब्बती लोग मांस के लिये इनका शिकार करते हैं। किंतु इनका शिकार करना विपत्तियों को आमंत्रण करना है। जहाँ-जहाँ घासों के बड़े-बड़े मैदान हैं, वहाँ पर जंगली घोड़े झुंड के झुंड पाये जाते हैं। ये किसी प्रकार से भी पालतू नहीं बनाये जा सकते। इन्हें मांस के लिये नहीं मारते। सैनिक-शिक्षा प्राप्त घोड़ों की भाँति ये जंगली घोड़े प्रायः एक-एक दो-दो पंक्तियों में बन में विचरते हुए पाये जाते हैं। नर-घोड़ा सब से आगे रहकर दल का नायकत्व करता है। कभी-कभी झुंड में से घोड़ी या बछेड़ी चौकड़ी भरती हुई इधर-उधर चली जाती है, तो नर-घोड़े उन्हें हाँककर पुनः पंक्ति में ले आते हैं। इसीसे नर-घोड़े प्रायः व्यस्त रहते हैं।

मानसखंड में बर्फानी चीते और लाल भालू बहुत कम हैं। परंतु अन्य भागों में अधिक संख्या में पाये जाते हैं। कई स्थानों में जंगली भेड़, बकरी, हिरन, बारहसिंघा, घुरड़, और बरड़ झुंड के झुंड पाये जाते हैं। तिब्बती लोग

---

[1]कुछ लोग 'यी' को बड़ी जंगली बिल्ली और 'क्यङ' को जंगली गधा मानते हैं।

चर्म और मांस के लिये इनका शिकार करते हैं, जो मंडियों में बिकने के लिये आते हैं। भेड़िये तो हर जगह होते हैं, ये भेड़-बकरियों को बहुत हानि पहुँचाते हैं। लोमड़ी का चमड़ा टोपी बनाने के काम में लाया जाता है। बर्फानी चीते के चमड़े को पाश्चात्य नारियाँ गले में पहनती हैं, इसलिये इसका मूल्य १० से लेकर ५० रुपये तक होता है। बड़े और छोटे चूहे शीतकाल में बरफ के नीचे अपने बिलों में चार-पाँच महीनों तक लंबिका निद्रा में पड़े रहते हैं। बड़े चूहों का मेद और चमड़ा गठिया के रोग में औषधि के काम में आता है। छोटे चूहे शीतकाल के लिये ठुमा की जड़ को अपने बिलों में बड़े परिश्रम से संग्रह करते हैं, जिसको गरीब तिब्बती खाने के लिये उठा ले जाते हैं। जहाँ झाड़ियाँ रहती हैं वहाँ खरगोश पाये जाते हैं। मानसरोवर, राक्षसताल, और कुछ नदियों में मछलियाँ होती हैं।

मानस-खंड में हंस, दो-तीन प्रकार की बतखें, सारस, चील्ह, गृद्ध, कौआ, कबूतर, गौरैया, और दो एक अन्य पक्षियों के अतिरिक्त दूसरी जातियों के पक्षी विशेष नहीं पाये जाते। केवल कैलास के दक्षिणी तट में १७००० फीट की ऊँचाई पर तथा अन्यस्थलों में तीतर पाये जाते हैं। वर्षाऋतु में सरोवर के किनारों पर काले मच्छरों के झुंड उड़ते रहते हैं। ये मच्छर न काटते हैं और न मलेरिया ही फैलाते हैं। इनके मारने पर पेट से रक्त न निकल कर एक हरा-सा पदार्थ निकलता है। कहते हैं कि तिब्बत में एक लाल रंग का कौआ होता है जिसे हाथ में रखने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है।

३—कस्तूरी-मृग

कस्तूरी-मृग तिब्बती भाषा में ला और हिमालय प्रांतों में कस्तूरा, रौंस, बीना आदि नामों से प्रसिद्ध है। इसे फारसी में मुश्क और अरबी में मिश्क कहते हैं। यह विशेषकर हिमालय, तिब्बत, आमूर, मध्य एशिया, साइबेरिया, और कोरिया के प्रांतों में ८००० फीट से १२००० फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह लगभग २ फीट ऊँचा और ३ फीट लंबा, हिरन जाति का सब से छोटा पशु है। परंतु इसके सींगें नहीं होतीं। इसकी पूँछ दो अंगुल से अधिक

नहीं होती। कान चार अंगुल के होते हैं। पहाड़ों में भी यह बहुत वेग से दौड़ता है। नर के ऊपरी जबड़े में दो-तीन अंगुल लंबे दो दाँत होते हैं। इसकी श्रवण-शक्ति बड़ी तीव्र होती है। रंग भूरा और पेट तथा नीचे के भाग सफ़ेद होते हैं। किसी-किसी का रंग बादामी-पीला होता है। बच्चों के हिरन जैसे धब्बे होते हैं। बाल हलके, गूदेदार और गद्दी जैसे (पिथ) होते हैं। बालों की जड़ आधी से अधिक सफ़ेद होती है। यह बुरूंस (रोडोडेंड्रन), जूनिपर आदि झाड़ियों में तथा चट्टानों की आड़ में रहता है और अपने वासस्थान को शीतकाल में भी नहीं बदलता। यह फूल पत्ते और घास खाता है। चलते समय छलाँगें मारकर चलता है। कभी-कभी इसकी छलाँग ५०-६० फ़ीट लंबी होती है। खरगोश की भाँति कभी झुंडों में यह नहीं रहता, यहाँ तक कि संभोग की ऋतु में कुछ दिनों को छोड़कर जोड़े भी साथ नहीं रहते।

संस्कृत ग्रंथों में कस्तूरी[1] मृगनाभि, मृगमद, मुष्कजा आदि नामों से प्रसिद्ध है। कस्तूरी-मृग की जिस ग्रंथि में कस्तूरी रहती है, 'उसे कस्तूरी का नाभा' या केवल 'नाभा' कहते हैं। संस्कृत में मद का अर्थ है वीर्य और मुष्क का अर्थ है अंडकोश, इसलिये साधारणतया लोगों का यह विश्वास है कि कस्तूरी नाभि से निकलती है। कुछ औरों का मत है कि कस्तूरी मृग के अंडकोश से निकलती है और वह मृग का वीर्य है। मैं कस्तूरी की उत्पत्ति के बारे में गत दस वर्षों से परिशीलन कर रहा हूँ, जिसकी समाप्ति दो वर्षों में होनेवाली है। कस्तूरी-मृग में लिंग के पास एक विशेष ग्रंथि में कस्तूरी होती है, जो केवल नरों में पायी जाती है। इस ग्रंथि में एक छोटा-सा छेद होता है, जो लिंग के पास ही खुलता है, इसी कारण से नर के मूत्र में कस्तूरी की गंध पाई जाती है। जहाँ कस्तूरी की ग्रंथि होती है वहाँ पेट पर सूजा हुआ सा होता है। कस्तूरी की ग्रंथि का अंडकोश से कोई संबंध नहीं है। मृग के मांस में कस्तूरी की

---

[1] 'कसति गन्धोऽस्याः' जिसकी गंध फैलती है। कस्तूरी-हिरण को संस्कृत में पुष्कलक और योजनगंधी भी कहते हैं, क्योंकि उसकी सुगंध बहुत दूर तक फैलती है।

सुगंधि नहीं होती।

जहाँ तक मेरी गवेषणा है कस्तूरी, मृग की नाभि से नहीं निकलती प्रत्युत यह उसी की समीपवर्ती ग्रंथि का एक प्रकार का स्राव है। नर और मादा—दोनों में नाभि होती है। पहले तो नाभि से कोई स्राव होता ही नहीं, यदि हो भी जाय तो कस्तूरी नर की ही नाभि से क्यों निकलती है? इसलिये मानना पड़ेगा कि कस्तूरी नाभि का स्राव नहीं, प्रत्युत उससे भिन्न उसकी समीपवर्ती ग्रंथि का स्राव है। यही कारण है कि शिकारी लोग तथोक्त ग्रंथि और नाभि को सन्निकट देखकर उनके अंतर को अलग नहीं कर सकते, और साधारणतया ग्रंथि को भी नाभि ही समझ लेते हैं। उनके इस भ्रम से साधारण लोगों में भी कस्तूरी का मृग की नाभि से निकलनेवाली बात फैल गई है। कस्तूरी को तिब्बत में 'ल्हरचे' कहते हैं।

शिकारियों का कहना है कि अन्य जंतुओं के विपरीत, नर कस्तूरी-मृग कभी काम-दशा में मृगी के पीछे नहीं चलता; प्रत्युत मादा ही संभोग की ऋतु में नर मृग के पीछे चलती है। और इस प्रकार कामोद्दीप्ति शांत होने पर एक दूसरे का साथ छोड़ देते हैं। दिसंबर के मध्य से लेकर फरवरी के मध्य तक इनके संभोग की ऋतु है। गर्भवती होने के ५½ महीने पश्चात् जून मास में मृगी बच्चा देती है; कभी-कभी दो बच्चे भी होते हैं। बच्चे प्रायः पहाड़ की दरारों या झाड़ियों के नीचे खड्डों में रखे जाते हैं। दो बच्चे हों तो मृगी उन्हें एक स्थान पर न रखकर अलग-अलग स्थानों में रखती है। जब बच्चा दो महीने का हो जाता है तो मृगी उसे हटा देती है। एक वर्ष की मृगी गर्भ-धारण के योग्य हो जाती है। इतने दिनों से कस्तूरी के लिये प्रति वर्ष सैकड़ों मृगों का वध होने पर भी कस्तूरी-मृग के नाश न होने का कारण यह है, कि कस्तूरी के लिये नर मृग मारा जाता है और मादा एक वर्ष पूरा होते ही गर्भ-धारण के योग्य हो जाती है। हिमालय और तिब्बत के कई भागों में इसे बंदूक से मारते हैं या खड्ड या जालों में फँसाते हैं। प्रायः शरद् ऋतु में जब पेड़ और झाड़ियों के पत्ते झड़ जाते हैं तब शिकारी इनका शिकार करने जाते हैं। हॉग्सन, ऐडम्स् आदि कई पाश्चात्य जंतु-शास्त्रज्ञ लिखते हैं कि भोग की

ऋतु में ही—अर्थात् जनवरी के महीने में—मृग में कस्तूरी रहती है, अन्य ऋतुओं में नहीं। प्रायः भोट आदि हिमालय के पहाड़ों में शिकारी लोग अक्टूबर और नवंबर में मृग का शिकार करने जाते हैं। जहाँ तक मैंने देखा, बारहों महीनों में शिकार किये हुए कस्तूरी-मृगों में कस्तूरी पायी गई।

एक वर्ष के बच्चे में कस्तूरी नहीं पायी जाती। दूसरे वर्ष दूध के समान रहती है। तीसरे वर्ष से अधिक आयुवालों में अच्छी कस्तूरी रहती है। शिकारियों का कहना कि हिरण को मारते ही नाभा को न निकालें तो कस्तूरी खराब हो जाती है। हिरण को मारने के बाद कस्तूरी-ग्रंथि को (जिसका निचला भाग पेट के चमड़े से जुड़ा रहता है) आस-पास के चमड़े के साथ काटकर उसी में ग्रंथि को बाँधकर सी लेते हैं। इसी को 'कस्तूरी का नाभा' या केवल 'नाभा' कहते हैं। प्रायः नाभा के ऊपर के लिंग को काट देते हैं, और दारमा जैसे कुछ प्रांतों वाले रहने देते हैं।

प्रायः एक-एक नाभे में आधे तोले से ढाई तोले तक कस्तूरी रहती है। 'इनडिजेनस ड्रगस ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक में कर्नल चोपड़ा लिखते हैं—"एक पूर्ण आयु के हिरण से दो औंस या पाँच तोला कस्तूरी निकलती है।" गत दस वर्षों में मैंने लगभग ४०० नाभाओं को देखा, परंतु एक में भी इतनी कस्तूरी नहीं मिली। जहाँ तक मैंने पाया, एक नाभा में ३¾ तोला से अधिक कस्तूरी नहीं मिली। बड़ी आयु के हिरण के नाभा में कस्तूरी दानेदार या गुठलीदार होती है। हिरण जितना ही बड़ा हो, कस्तूरी की गुठलियाँ भी उसी अनुपात से बड़ी होती हैं। ये गुठलियाँ रीठे के बीज के समान होती हैं। गुठलीदार कस्तूरी सब से श्रेष्ठ मानी जाती है। इस प्रकार के बड़े गुठलीदार नाभे बहुत कम मिलते हैं।

कस्तूरी का रंग गाढ़ा बैंगनी या बादामी होता है और स्पर्श में यह स्निग्ध होती है। लगाने से कागज़ पर इसका पीला रंग चढ़ जाता है। एक रत्ती कस्तूरी सहस्रों घनगज के वायुमंडल को सुगंधित कर देती है, तथापि वह तौल में बहुत नहीं घटती। कस्तूरी की सुगंधि में एक विशिष्ट प्रकार की स्थायी और अनुपम सुगंधि रहती है। अन्य सुगंधित द्रव्यों में इसकी सुगंधि

बहुत अंतरगामिनी और टिकाऊ होने के कारण 'सेंट' और इत्रों में इसका बहुत प्रयोग होता है। विशेषकर अन्य सुगंधित द्रव्यों की सुगंधि को पक्का करने के लिये इसे काम में लाते हैं।

कस्तूरी के एक तोले का मूल्य शिकारी के यहाँ १५ रुपये से लेकर देशी व्यापारी के यहाँ ८० रुपये तक होता है। ताजी कस्तूरी ६ महीने बाद वजन में आधा तक घट जाती है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि बेचनेवाले शिकारी या व्यापारी, बेचने के लिये लाने से पहले नाभे को कुछ दिनों तक गीली मिट्टी में दबा देते हैं, क्योंकि ऐसा करने से नाभा ताज़ा दिखाई पड़ता है और कस्तूरी की तौल बढ़ जाती है। मैंने कस्तूरी की तौल बढ़ाने के लिये नाभाओं को सचमुच पानी में भिगोते हुए कलकत्ते में देखा है। असली कस्तूरी के नाभे या खुली हुई कस्तूरी मानसखंड के तकलाकोट मंडी में और अल्मोड़े जिले के जौलजीबी और बागेश्वर के मेलों में मिल सकती है। अमृतसर और कलकत्ता में भी कस्तूरी नाभाओं की बिक्री के केंद्र हैं। नेपाल, ग्यांची, शिगर्ची, और ल्हासा प्रांत के नाभे कलकत्ता की दूकानों में और गढ़वाल, कांगड़ा, और शिमले के पहाड़ों के नाभे अमृतसर की दूकानों में जाते हैं।

तिब्बत की कस्तूरी सब से श्रेष्ठ और नेपाल की सब से निकृष्ट मानी जाती है, किंतु भोटिया शिकारियों में इसके बारे में कई मत हैं। जैसे अधिक ऊँचाई पर हिमालय में उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ अधिक गुणकारी होती हैं, वैसे ही ऊँचाई के कारण तिब्बत की कस्तूरी को उत्तम मानने में कुछ तथ्य हो सकता है। भावप्रकाश नामक आयुर्वेदिक ग्रंथ में कस्तूरी तीन प्रकार की वर्णित है—कामरूप, नेपाल और काश्मीर, जो क्रमशः काली, नीली और पीली होती हैं। कामरूप की कस्तूरी उत्तम और काश्मीर की निकृष्ट मानी गई है। कई प्रांतों की कस्तूरी का निरीक्षण और प्रयोग करने के पश्चात् मैं इस निश्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिमालय के सभी प्रांतों की और तिब्बत की कस्तूरी एक ही प्रकार और एक ही मेल की हैं। कस्तूरी की श्रेष्ठता या निकृष्टता मृग के बड़े या छोटे होने पर, अथवा उसमें कम या अधिक मिलावट होने पर निर्भर है, किसी देश विशेष पर नहीं। कस्तूरियों में गुठलीदार सबसे उत्तम होती हैं,

उससे कम गुणकारी दानेदार और उससे कम चूरेदार होती है।

आयुर्वेदिक औषधियों में कस्तूरी का बहुत प्रयोग होता है। यह बहुत मूल्यवान और कठिनता से प्राप्त होनेवाली औषधि है। जो कोई वस्तु इसके संसर्ग में आती है उसे यह एकदम अपनी तीव्र सुगंधि से सुगंधित कर देती है। इन्हीं सब कारणों से प्रायः वास्तविक कस्तूरी में सूखे मांस के टुकड़े और खून मिला लेते हैं। और कभी-कभी नाभा को बिना खोले ही रक्त से भर देते हैं। कुछ काबुली, गढ़वाली, और खंपा लोग खाली नाभाओं को कस्तूरी के व्यापारियों से मोल लेकर उनको खून, मांस के टुकड़े, या किसी रद्दी वस्तु से भर देते हैं और मांस या गोंद से बड़ी चतुरता से बंद कर देते हैं। खाली नाभा की झिल्ली की सुगंधि के कारण उसमें भरी हुई नकली वस्तु से भी कस्तूरी की गंध आ जाती है। ये लोग कभी-कभी थोड़ी-सी कस्तूरी को किसी अन्य पदार्थ में मिलाकर उसको कस्तूरी-मृग के चमड़े में बाँधकर पूरे नकली नाभा को ही तैयार कर लेते हैं। उक्त रीति से बनाये हुए नकली नाभा को शहरों में लाकर कम से कम १ रुपया से लेकर अधिक से अधिक दाम पर बेंच कर लोगों को ठग लेते हैं। इसलिये कस्तूरी को अविश्वसनीय स्थानों से मोल लेने पर लोग धोखा खा जाते हैं। एक साधारण व्यक्ति के लिये कस्तूरी को विश्वसनीय व्यक्ति या स्थानों से या कस्तूरी की परीक्षा में निपुण व्यक्ति द्वारा मोल लेने के अतिरिक्त असली और नकली को पहचानने की दूसरी कोई युक्ति नहीं।

कुछ लोगों का कहना है कि नाभी से निकाली हुई ताज़ी कस्तूरी को सूँघने से नाक से खून बहने लगता है, परंतु इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने कई नाभाओं को काटकर सूँघा, पर नाक से रक्त कभी नहीं निकला। हाँ, यह हो सकता है कि किसी व्यक्ति की नासिका की रक्त-वाहिनी धमनियों के अग्रभाग की दुर्बलता के कारण रक्त के चढ़ाव से खून निकल आया हो। कई धोखेबाज कस्तूरी विक्रेताओं को असली या नकली कस्तूरी में लाल रंग मिलाते हुए मैंने देखा है। इस प्रकार की कस्तूरी का नास लेने से रक्त जैसा लाल पानी निकलता है, जिसको देखकर अनभिज्ञ और साधारण ग्राहक उसे बहुत उत्तम समझते हैं।

कर्नल चोपड़ा लिखते हैं—"कस्तूरी-मृग जब मारा जाता है तो कस्तूरी से निकली हुई गंध से शिकारियों की आँख, कान, और ज्ञानवाहिनी शिराओं (नेर्व्स) पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।"[1] मैंने कई शिकारियों से इस विषय पर बातें कीं और स्वयं भी देखा, परंतु कस्तूरी की गंध का बुरा प्रभाव आँख, नाक, और शिराओं पर कहीं नहीं पाया। जब एक रत्ती कस्तूरी खिलाने पर भी कर्नल साहब ने शरीर पर कुछ प्रभाव नहीं देखा, तो मारते समय आई हुई सुगंधि से आँख, नाक, और शिराओं का प्रभावित होना कैसे लिखा, यह आश्चर्य की बात है।

कस्तूरी जल में उबालने से ५० प्रतिशत, अलकोहल में १० प्रतिशत, और 'ईथर' में बहुत ही कम घुलती है। सन् १८४२ में मारग्रफ ने पहले-पहल कृत्रिम कस्तूरी बनाने का यत्न किया, परंतु सन् १८८६ में जर्मन डाक्टर अलबर्ट बावर ने कृत्रिम कस्तूरी बनाकर पेटेंट कराया। कृत्रिम कस्तूरी में कस्तूरी की सुगंधि तो होती है, किंतु उसमें औषधि-गुण नहीं होता।

कस्तूरी ऊष्ण-वीर्य की औषधि है—अर्थात् शरीर में गर्मी पहुँचाती है। शारीरिक ढीलेपन की अवस्था में प्रयोग करने से वह हृदय को बल प्रदान कर उत्साह को बढ़ाती है। शारीरिक दुर्बलता में, साधारण नपुंसकता में, हलके ज्वर में, पुरानी खाँसी में, फेफड़ों की शिकायत, मूर्छा, और मिरगी आदि रोगों के लिये यह बहुत गुणकारी औषधि है। नवप्रसूता स्त्रियों को भी यह दी जाती है। यह एक उत्तम वाजीकरण और वीर्य-स्तंभक औषधि है। इस उद्देश्य से सेवन करनेवालों को कई अन्य बाजारू औषधियों की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है और अधिक गुण प्रदान करती है। यह मकरध्वज आदि औषधियों के साथ सेवन की जाती है, ताकि उन औषधियों का गुण अधिक हो जाय। रसेंद्रसार-संग्रह, और भावप्रकाश आदि आयुर्वेदिक ग्रंथों में 'स्वल्प कस्तूरी भैरवरस,' 'बृहत् कस्तूरी भैरवरस', 'मृगनाभ्यादिरवलेह' आदि योग दिये गए हैं। इस प्रकार आयुर्वेद में इसका बहुत प्रयोग है।

---

[1]कर्नल चोपड़ा, 'इनडीजेनस् ड्रग्स ऑफ इंडिया'।

कस्तूरी का गुण शरीर में शीघ्र पहुँचाने के लिये ¼ ग्रेन और ½ ग्रेन 'मस्क इन ईथर' के इनजेक्शन तैयार हो रहे हैं। इसका टिंचर भी बन रहा है। बहुतों का मत है कि कस्तूरी की सुगंधि उसके सेवन की भाँति कामोद्दीपक है; परंतु यह कहाँ तक सत्य है मैं नहीं बता सकता। क्योंकि सुगंधित द्रव्य या धूप धर्मसंस्थाओं और विलासगृहों में दोनों स्थानों में प्रयोग किये जाते हैं। वैज्ञानिक लोग इस पर प्रकाश डाल सकते हैं।

कहा जाता है कि पाश्चात्य देशों में कस्तूरी का प्रचार पहले-पहल अरबवालों ने किया था। सन् ११८९ में अरब के बादशाह सलादीन ने ग्रीस के बादशाह को कस्तूरी भेंट की थी। कस्तूरी को फारसी में मुश्क, और अरबी में मिश्क कहते हैं। अंग्रेज़ी का 'मस्क' (कस्तूरी) शब्द उन्हीं शब्दों से बना है। संस्कृत में इसे मुष्कजा कहते हैं, क्योंकि कस्तूरी को मुष्क (अंडकोश) से निकली हुई मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि फारसी और अरब लोगों ने मुश्क और मिश्क शब्दों को संस्कृत से ही लिया है। फारस और अरब में कस्तूरी पहले-पहल भारत और चीन से ही गई। अब भी तिब्बत से कस्तूरी बहुत परिमाण में चीन जाती है और तिब्बत से निर्यात होनेवाली वस्तुओं में यह प्रमुख वस्तु है। पाश्चात्य देशों में जाने वाली कस्तूरी में से लगभग ८० प्रतिशत कस्तूरी तिब्बत की है।

भोटिया औरतें कस्तूरी के दाँत की जड़ पर चाँदी की टोपी लगवाकर गुच्छों में आभूषण की तरह पहनती हैं। कस्तूरी के चमड़े से बाल शीघ्र गिर जाते हैं, इसलिये भोटिये चमड़े से बालों को खुरचकर गद्दियों में भर देते हैं। और इन गद्दियों को हलके होने के कारण प्रयाण करते समय घोड़ों पर डाल देते हैं और ठिकाने पर पहुँच कर उससे आसन का काम लेते हैं। कस्तूरी की घास और कस्तूरी की भिंडी आदि वस्तुओं में वास्तव में कस्तूरी या कस्तूरी की सुगंधि नहीं रहती, अतएव वे नाम व्यर्थ और भ्रमोत्पादक हैं।

मानसखंड में कस्तूरी-मृग[1] बहुत कम हैं, परंतु तिब्बत के अन्य प्रांतों में तथा भोट प्रांत में ये बहुत होते हैं।

---

[1] कस्तूरी मृग तथा कस्तूरी के संबंध में ग्रंथकार कई वर्षों से अन्वेषण

४—पालतू पशु

यहाँ के प्रधान-पालतू पशु याक (बैल), डेमो, (चँवरी गाय), झब्बू, खच्चर, गदहा, भेड़, और बकरी हैं। भोटियों में एक कहावत है कि 'भेड़, बकरी, और याक तिब्बतिओं की संपत्ति और खेती है।' लकड़ी के अभाव के कारण पशुओं के लिये घर न होने से कड़ाके की सर्दी में भी पशुओं को बाहर ही रहना पड़ता है। भेड़ें और बकरियाँ शीतकाल में बच्चे देती हैं। उस समय कड़ी सर्दी पड़ने के कारण एक रात में तीस-तीस बच्चे तक मर जाते हैं। इसलिये बहुधा बच्चों को तंबू के भीतर कंबल ओढ़ाकर रखते हैं। सात आठ वर्ष में एक बार, बर्फ गिरने से मैदानों की घास और डमा की झाड़ियों के कई दिनों तक बर्फ के नीचे दबे रहने के कारण, सहस्रों पशु चारे के अभाव में जहाँ के तहाँ मर जाते है। कुछ लोग घरों में बिल्लियाँ पालते हैं। कुछ वर्षों से तकलाकोट के जोङ्पोन अंडे के लिये कुक्कुट पालने लगे हैं। कई गाँवों में बतख़ें भी पाली जाती हैं।

५—याक

याक तिब्बती बैल, और डेमो तिब्बती गाय है। शीतदेश में रहने के कारण उनके बाल दो-ढाई फीट लंबे और झबरीले होते हैं। वे आकृति में पूर्णतः यहाँ की भैंस जैसे होते हैं। इनमें से कुछ सफेद, काले, और कुछ मिश्रित रंग के होते हैं। हिंदी में याक के लिये चँवर बैल और डेमो के लिये चँवरी-गाय या सुरागाय शब्द का प्रयोग किया जाता है। पर साधारणतया चँवर तथा चँवरी दोनों 'याक' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। चँवर को लादने के काम में लाते हैं, चँवरी को नहीं। चँवरी अधिक से अधिक दो सेर तक दूध देती है। याक की पूँछ झबरीली होती है। उसे चँवर कहते हैं। इसके सिरे पर चाँदी

कर रहा है और कार्य पूरा हो जाने पर एक विशेष लेख प्रकाशित करने का उसका विचार है।

का हत्था लगाकर भारत के मंदिरों में पूजा के समय काम में लाते हैं। याक दो-तीन मन का भार अच्छी तरह से ढो कर ले जाता है। सोलह-सोलह और सत्रह-सत्रह हजार फ़ीट की ऊँचाई पर जहाँ मनुष्य खाली रहकर भी पग-पग पर हाँफने लगते हैं, यह बड़ी सुगमता से पत्थरों के बीच होकर चला जाता है। इसके पैर का निक्षेप बहुत दृढ़ और पक्का होता है। कुछ याक बिना सींग के भी होते हैं।

याक दस हजार फीट से नीचे के प्रदेशों की गर्मी और मोटी हवा को सहन नहीं कर सकते। ढीठे होने के कारण ये जोतने के काम में नहीं आते। भारत के बैल यहाँ के ऊँचे प्रदेशों की ठंढी और पतली वायु को सहन नहीं कर सकते। तिब्बती बैल (याक) और भारत की गाय के संयोग से उत्पन्न हुए मिश्रित जाति के पशु को झब्बू कहते हैं, जो तिब्बत जैसे ऊँचे देश की ठंढी जलवायु और भारत जैसे निम्नभूमि की मोटी वायु और गर्मी को सहन कर लेते हैं। इसे हल चलाने और बोझा ढोने के काम में लाते हैं। इस-लिये तिब्बत जानेवाले भोटिये व्यापारी और पुरङ के हूणिये भी पर्याप्त संख्या में झब्बू रखते हैं। बचपन में ही इनकी नाक छेदकर उसमें लकड़ी का कड़ा पहना देते हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसमें रस्सी लगायी जा सके। इस प्रकार के याक या झब्बू को 'नावा' या 'नाभा' कहते हैं। जो सवारी के काम में लाये जाते हैं।

याक के ऊन से एक-एक फुट चौड़ी पट्टियों को बनाकर रहने के लिये तंबू बनाये जाते हैं। ये तंबू बहुत टिकाऊ होते हैं और दिन-भर भीतर जलती हुई आग के धुँएँ का प्रभाव इन पर शीघ्र नहीं पड़ता। इसके अति-रिक्त इनके ऊन से रस्सी भी बनाई जाती है जो याक या बोझों के बाँधने के काम में आती है।

६—भेड़-बकरियाँ

ऊन उत्पन्न करनेवाले देशों में से तिब्बत भी एक प्रधान देश है। मानसखंड और तिब्बत के अन्य भागों से प्रतिवर्ष सहस्रों मन ऊन भारतवर्ष

आता है। बंबई और उत्तरी भारत की सभी ऊनी मिलों को विशेषकर तिब्बती ऊन ही भेजा जाता है। कभी-कभी यहाँ का ऊन इंगलैंड, अमेरिका, जापान आदि देशों को भी भेजा जाता है। यहाँ के ऊन की उत्पत्ति यदि आधुनिक वैज्ञानिक और पारिश्रमिक पद्धतियों से बढ़ाई जाय तो तिब्बत भी स्विट्जरलैंड के समान संसार के सब से बड़े और उत्तम ऊन उत्पन्न करनेवाले देशों में अग्रणी होगा। यहाँ के लाखों भेड़-बकरे ऊन देने के अतिरिक्त तिब्बत से भारत आने वाले हजारों मन सुहागा और नमक तथा भारत से तिब्बत जानेवाले अनाज, चाय, गुड़ इत्यादि वस्तुओं को रात-दिन हिमालय में ढोते रहते हैं। बकरी का ऊन भेड़ के ऊन से कड़ा होता है। इसलिये उसके ऊन से फाँचे[1] बनाते हैं। भेड़, बकरी तथा उनके बच्चों के चमड़े से शीतकाल में पहनने के लिये भक्कू या पोस्तीन बनाये जाते हैं। भारत आते समय दुर्गम हिमालय की पर्वतमालाओं के हिमाच्छादित घाटों को लाँघकर, भरे हुए फाँचों से लदी हुई रात-दिन टेढ़े-मेढ़े, ऊँचे-नीचे तथा संकीर्ण पहाड़ी मार्गों में सहनशीलता के साथ धीरे-धीरे जानेवाली भेड़-बकरियों की कतारें ठीक मालगाड़ी की भाँति प्रतीत होती हैं। कहीं घास के अंकुरों को खाकर, कहीं मुँह भर चरती हुई, भोटिये व्यापारियों की सीटियों से इधर-उधर दौड़ती हुई, गले में बँधी हुई छोटी-बड़ी घंटियों के शब्दों से जंगलों को प्रतिध्वनित करती हुई, तथा अपनी खुरों से उड़ती हुई धूलि के छोटे छोटे मेघों का निर्माण करती हुई, ये अपने आगमन को दूर से ही सूचित करती हैं। इन भेड़-बकरियों की कतारों का देखना

---

[1]एक फुट चौड़ी ऊन की पट्टी से एक ही में जुड़ी हुई दो थैलियाँ बनाई जाती हैं, जो भेड़ों और बकरियों की पीठों पर लादी जाती हैं। इस प्रकार की थैलियों की जोड़ी को पहाड़ी प्रांतों में 'फाँचा' कहते हैं। पहाड़ की रगड़ से बचाने के लिये इन थैलियों के नीचे चमड़ा लगा देते हैं। ये याक के बाल से भी बनाये जाते हैं, और दस-पंद्रह वर्ष तक काम में आते हैं। इस प्रकार की बड़ी-बड़ी थैलियाँ भी बनाई जाती हैं, जो याक की पीठ पर रखी जाती हैं। इन फाँचों में अनाज, नमक, सुहागा, गुड़, तथा सभी प्रकार की वस्तुएँ भर दी जाती हैं।

आँखों को बहुत प्रिय और सुंदर लगता है। भोटियों में यह कहावत है कि "भेड़-बकरी पहाड़ की मालगाड़ी, और पहाड़ी घोड़े और खच्चर डाकगाड़ी हैं।" कभी-कभी मंडियों में जानेवाले डोक्पाओं (तिब्बती गड़ेरियों) के आठ-आठ, दस-दस हजार सुहागा के फाँचों से लदे भेड़-बकरियों के झुंड मानसरोवर की तलहटियों में मीलों तक फैले हुए चलते-चलते चरते समय ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे भेड़-बकरियों के पहाड़ के पहाड़ चल रहे हों। यहाँ की भेड़-बकरियाँ बहुत डरपोक और चंचल होती हैं। इसलिये इन्हें लादने में बहुत समय लग जाता है। अतः तिब्बती लोग कुछ दिन ठहरने के किसी ठिकाने पर पहुँचने तक बकरियों के फाँचों को रात में नहीं खोलते।

तिब्बती लोग—क्या मर्द और क्या बूढ़े-बच्चे—सभी अवकाश के समय ऊन कातते रहते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक ऊन कात लेते हैं। ये लोग चलते समय और अँधेरे में भी कातते रहते हैं। बुनाई का काम पूर्णरूप से स्त्रियों का है। करघों में बुनी हुई पट्टियाँ बहुत कम चौड़ी होती हैं। उनमें मोटे-पतले कंबल, चुटके, शुलमे, थैलियाँ, और तंबू बनाने योग्य पट्टियाँ बुनी जाती हैं। पुरङ के गाँवों में थैली के समान मोजे और दस्ताने बनते हैं, जो बहुधा चार-चार छः छः आने में मिल जाते हैं। यदि यहाँ के लोगों को कोई सिखानेवाला हो तो ये अच्छी बनियाइन बना सकते हैं। पूर्वी तिब्बत तथा ल्हासे की तरफ से पड़ी धारीदार, सफेद, या रंगीन, बढ़िया और मुलायम पट्टियाँ बनकर मानसखंड की मंडियों में बिकने के लिये आती हैं, जो मूल्यवान और मज़बूत होती हैं। खद्दर-प्रचारक यदि यहाँ आ जायँ तो इन लोगों से सीखने के लिये उन्हें बहुत-सी नयी बातें और साधन प्राप्त हो सकते हैं।

७—कुत्ता

तिब्बत के पालतू जानवरों में कुत्ते का भी प्रमुख स्थान है। वहाँ के कुत्ते प्रायः काले रंग के होते हैं तथा बड़े ही भयंकर और खूँखार होते हैं। ये देखने में भयानक काल के समान प्रतीत होते हैं। प्रत्येक मकान या तंबू में रखवाली के लिये कम-से-कम एक कुत्ता अवश्य रहता है। भेड़-बकरियों

के साथ कुत्ते के रहने से भेड़िया उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर पाता। कुत्तों के बँधे रहने पर भी किसी अपरिचित मनुष्य या चोर को साहस नहीं होता कि वे तंबू के पास जायँ। प्रायः तिब्बती कुत्ते रस्सी या जंजीर से बँधे रहते हैं। इन्हें बहुत कम भोजन दिया जाता है और साँझ-सवेरे दो-दो मुट्ठी सत्तू गरम जल में घोलकर पिलाया जाता है। एक-एक कुत्ता दस रखवालों के बराबर काम करता है। मंडियों में हूणिये और भोटिये लोग अपने-अपने तंबुओं के पास एक कुत्ते को अवश्य बाँधकर रखते हैं। क्योंकि ये आदमी को देखते ही भयंकर और हृदय-विदारक स्वर से 'हौं-हौं' करके भूँकने लगता है।

जब कभी ये कुत्ते किसी अपरिचित व्यक्ति पर आक्रमण करते हैं तो मालिक के बुलाने और डाँटने पर भी नहीं छोड़ते। यहाँ तक कि मालिक को उन्हें छुड़ाने के लिये पीटना पड़ता है। इसलिये तिब्बत में यात्रा करनेवालों को इन कुत्तों से सावधान रहना चाहिये। कुत्तों के देखते ही हाथ में पत्थर लेकर तैयार रहना चाहिये, जिससे अवसर आ पड़ने पर जवाब देकर उनसे अपनी रक्षा कर सकें। इनसे बचने के लिये ही तिब्बती भिखमंगे एक छोटी-सी लाठी में रस्सी बाँधते हैं और उसकी छोर पर लोहे की घुंडी बाँध कर हाथ में रक्खे रहते हैं। जब कुत्ते उनपर आक्रमण करते हैं तो ये घुंडीवाली लाठी को घुमाने लगते हैं जिससे वह कई पत्थरों के समान बनकर कुत्ते को पास नहीं फटकने देती। यों तो कुत्ते की स्वामिभक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध ही है, पर तिब्बती कुत्ते अपने स्वामी के प्रति बहुत ही भक्तिपरायण होते हैं। मंडियों में तिब्बती कुत्ते बारह आने से लेकर १० रुपये तक बिकते हैं। तिब्बत में बिल्ली और उससे भी छोटे आकार के कुत्ते होते हैं। ये देखने में बहुत ही सुंदर होते हैं और 'चीनिया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। विशेषकर संपन्न और अफसर लोग इनको शौक़ के लिये पालते हैं। चीनियों का दाम १० रुपये से ५० रुपये तक होता है, कभी-कभी ल्हासा के व्यापारी (बोदपा) मानसखंड की मंडियों में बेंचने के लिये कुत्तों को लाते हैं।

८—गव्य

तिब्बत गव्यप्रधान देश है। बौद्ध धर्मावलंबी होने पर भी यहाँ के लोगों का आधा भोजन मांस ही है। सिंधु नदी के उद्गम के पास के गव्य पदार्थ (दूध, दही, मक्खन आदि) तिब्बत भर में प्रसिद्ध हैं। मानसखंड के लोग दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, मलाई, दूध, और मट्ठे का फटा हुआ पनीर इत्यादि सभी गव्य-पदार्थों (डेयरी प्रोडक्टस) का प्रयोग अधिक करते हैं। पशुपालन-प्रधान व्यवसाय एवं गव्यपदार्थ-समृद्धि संपन्न देश होने के कारण यहाँ यदि आधुनिक ढंग से स्विट्जरलैंड और हॉलैंड जैसे डेयरी फॉर्म या गोशालाएँ स्थान-स्थान पर, खोली जायँ, तो विशेष लाभकारी होगा। बरसात के चार महीने में, जब कि गव्यपदार्थ प्रचुर परिमाण में होता है, भोजन से बचे हुए दूध या मट्ठे को फाड़ कर ऊनी थैलियों में छान कर उस पनीर को सुखा कर रख लेते हैं। इस प्रकार के पनीर को तिब्बती भाषा में 'छुरा' कहते हैं। छाने हुए पानी को पशुओं को पिलाते हैं। दूध का छुरा विशेषतया सिंधु के उद्गम के स्थानों में बनता है। अन्य स्थलों में यह मट्ठे का ही बनाया जाता है। इस छुरा को थुक्पा में डालते हैं तथा चूर्ण करके सत्तू के साथ खाते हैं। चूर्ण किये हुए छुरे में मक्खन और गुड़ को मिलाकर एक-एक अंगुल मोटी चौकोर रोटी के समान टिकिया बना लेते हैं, जिसे 'थू' कहते हैं। वहाँ यह उत्तम मिठाई मानी जाती है। इसे प्रायः चमड़े में बाँधकर रखते हैं। शीतकाल में दूध में जामन डालेकर मोटे कंबलों से लपेट देते हैं, जिससे दोपहर में बारह बजे के जमाये ए दूध से शाम को पाँच बजे तक अच्छा दही बन जाता है। सबेरे उठकर स्त्रियाँ दही को बरतन से मोटे-मोटे चोंगियों में डालकर ऊपर-नीचे चाय के समान मथती हैं। मक्खन को बहुधा चमड़े में बाँध कर रखते हैं। इसलिये पुराना मक्खन बहुत दुर्गंधपूर्ण होता है। यह रुपये में एक सेर से लेकर डेढ़ सेर तक मिलता है। छुरा दो या चार आने सेर मिल जाता है। दूध समयानुसार दो से आठ आने सेर तक बिकता है।

भेड़-बकरियों को विचित्र प्रकार से दुहते हैं। गले में रस्सी बाँध कर

ये आमने-सामने जोड़े में खड़ी कर दी जाती हैं। एक-एक झुंड में पचास-पचास की कतार बँधी रहती है। पीछे से थनों से एक-एक बकरी को दुहते हुए एक-एक बार में दूध की केवल दो धाराएँ निकालते हैं। इस प्रकार घूम-घूम कर दुहने से पूरे दुहान में कई चक्कर लगाने पड़ते हैं, क्योंकि एक दो धाराएँ दुहने के बाद ये दूध को ऊपर खींच लेती हैं। दुहने के पश्चात् बँधी हुई रस्सी को खींच लेने से सब भेड़-बकरियाँ एक-एक करके सटासट खुल जाती हैं और उछल-उछल कर छलाँग मारते हुए भाग जाती हैं।

६—व्यापार और मंडियाँ

तिब्बतियों का प्रधान व्यवसाय पशुपालन तथा ऊन की कताई बुनाई है। साधारणतया सभी तिब्बती-गृहस्थ तथा भिक्षु, स्त्री तथा पुरुष मंडियों में, घरों में और यात्रा करते समय, बराबर सब प्रकार का छोटा-मोटा व्यापार करते रहते हैं।

अल्मोडा, गढ़वाल, और टिहरी राज्य, इन तीनों की उत्तरी सीमा के प्रांत भोट नाम से प्रसिद्ध हैं। उस प्रांत के निवासी भोटिया कहलाते हैं। पश्चिमी तिब्बत में भोटियों की कई मंडियाँ हैं, जिनमें से अधिकतर मानसखंड में ही हैं। ये मंडियाँ एक सप्ताह से लेकर पाँच महीने तक लगती हैं। जोहार के भोटियों की ज्ञानिमा[1] मंडी, दारमा के भोटियों की छकरा[2] मंडी, चौदाँस और ब्याँस के भोटियों की तकलाकोट मंडी, नीती के भोटियों की नाब्रा मंडी, नेपालियों की गुकुङ मंडी—ये बड़ी-बड़ी मंडियाँ हैं। कैलास के पास की तरछेन मंडी, मानसरोवर के किनारे की ठोकर मंडी (ठुगोल्हो) और गरतोक मंडी—ये दूसरी श्रेणी की मंडियाँ हैं। इनमें से तरछेन और ठोकर मंडियों में बहुत ऊन काटा जाता है। थुलिङ, लामा-छोरतेन, पुरूरव, जक्रपोलुङ आदि छोटी-छोटी मंडियाँ हैं। गरतोक के उत्तर रुदोक नामक मंडी में विशेषकर लदाखी और काश्मीरी आते हैं। यह भी एक बड़ी मंडी है। पश्चिमी तिब्बत की मंडियों

[1]इसे खरको भी कहते हैं।

[2]इसे ज्ञानिमा-छकरा भी कहते हैं।

में सबसे बड़ी ज्ञानिमा मंडी है, जहाँ जुलाई और अगस्त में डेढ़ या दो महीनों के भीतर पचीस लाख रुपये का व्यापार होता है। इन सभी मंडियों में तिब्बत का ऊन, ऊन के मोटे-मोटे कंबल, भेड़, बकरी, घोड़े, खच्चर, याक, झब्बू, चमडा, नमक, सुहागा इत्यादि वस्तुएँ बिकने के लिये आती हैं। भारत के भोटिये व्यापारी सभी प्रकार के कपड़े, पीतल, ताँबे और सिलवर के बर्तन, गुड़, जौ, गेहूँ, चावल, चीनी, मेवा, मसाला, हांगकांग से आई हुई चीनी चाय इत्यादि वस्तुएँ बेचते हैं। मंडियों में हरे शाक के अतिरिक्त भारत के किसी भी बड़े बाजार में मिलनेवाली सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं।

इन मंडियों में भारतीय व्यापारियों से तिब्बत सरकार की ओर से कर बहुत कम या केवल नाम मात्र का लगता है। ज्ञानिमा मंडी में, जहाँ जोहारी व्यापारियों के चार-पाँच सौ तंबू लगते हैं और लगभग २० लाख रुपये का व्यापार चलता है, कर केवल ६० भेली गुड़ है, जिसकी तौल लगभग ५ मन होगी और हल्द्वानी में जिसका दाम केवल ३० रुपया होता है। इसी प्रकार अन्य मंडियों में भी नाममात्र का कर है, जो अनाज के रूप में दिया जाता है। ब्यूँस के व्यापारियों पर अनाज के अतिरिक्त कोयला, घटिया कपड़ा, फाफर या कूट्टू की रोटी, छङ आदि तुच्छ वस्तुएँ भी कर में देनी पड़ती हैं। इन वस्तुओं को वसूल करने के लिये तकलाकोट जोङ के नौकर आते हैं। एक आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्यूँस के भोटियों से मालगुजारी तिब्बत सरकार भी वसूल करती है, यद्यपि वह नाम मात्र की है। तिब्बतियों का कहना है कि ब्यूँस का इलाका तिब्बत के अंतर्गत है।

१०—मानसखंड की संग्रहणीय वस्तुएँ

मानसखंड की यात्रा या भ्रमण करनेवालों के लिये अपनी-अपनी रुचि के अनुसार निम्न वस्तुएँ मंडियों से संग्रह करने योग्य हैं। (१) 'यी' की खाल—यह एक प्रकार के जंगली बर्फानी चीते का सर्वांग चर्म है, जिसका मूल्य दस रुपये से पचास रुपये तक होता है। पाश्चात्य महिलाएँ इसको शीतकाल में गर्दन पर डालती हैं। (२) 'हाजे'—यह जंगली गीदड़ का संपूर्ण चर्म है, जिसका मूल्य

एक रुपया होता है। यह टोपी या गर्दन पर डालने के काम में आता है। (३) 'चरु'—एक वर्ष से छोटी आयुवाली भेड़ और बकरी के बच्चे की खाल है। एक का मूल्य चार आना से बारह आना तक होता है, जो कोट और जाकेट बनाने के काम में आता है। यह बहुत गरम और मुलायम होता है। (४) 'बुञ्चर'—एक-दो वर्ष की आयु की भेड़ या बकरी की खाल है, जिसका मूल्य चार आने से बारह आने तक होता है। यह आसन बनाने के काम में आता है। (५) बड़ी बकरी की खाल, (६) भेड़ की खाल—ये दोनों आसन बनाने के काम में आती हैं। (७) 'गुवा' की खाल—इसका दाम आठ आना से एक रुपया तक होता है। (८) 'चुटका' या 'चुटुक'—यह एक मोटा और भारी कंबल है, जो एक ओर सादा और दूसरी ओर रोयेंदार होता है। इसका दाम चार रुपये से बीस रुपये तक है। (९) 'थुलमा'—यह बहुत लंबा-चौड़ा कंबल है और प्रायः श्वेत रंग का होता है। जोहार के भोटिया इसको तैयार करते हैं। ये विशेषकर जौलजीबी मेला में बिकने के लिये आते हैं। इसका मूल्य आठ से पचीस रुपये तक होता है। (१०) पंखी या ऊनी चादर—इनका दाम ३ रुपया से १५ रुपया तक होता है। (११) कालीन या गलीचा—इसका मूल्य पाँच से तीस रुपये तक होता है। (१२) याक या बकरी के ऊन से बनाई हुई पतली रस्सी—इसका दाम छः आना से एक रुपये तक होता है। याक के ऊन की रस्सी पक्की होती है, जो बिस्तर या बोझ बाँधने के काम में आती है। (१३) चँवर पूँछ—इसका दाम एक रुपया से पाँच रुपये तक होता है।

(१४) ज़हरमोहरा, (१५) हिमपुली, (१६) थनेरी पत्थर, (१७) बिजली की हड्डी, (१८) निर्बिषी—ये पाँच वस्तुएँ किसी खंपा या अपने गाइड के द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। (१९) 'ठुमा'—यह एक वीर्यवर्धक औषधि है, जो परखा के मैदान में या ठुगोल्हो में कभी-कभी किसी तिब्बती के पास मिल जाती है। (२०) 'जिंबू'—इसको मार्ग में अपने आप इकट्ठा कर सकते हैं। यदि बहुत परिमाण में चाहें तो किसी खंपे के पास से मोल ले सकते हैं। रुपये में दो एक सेर मिल जाता है। (२१) चाय के प्याले को रखने के लिये चीनी ढंग के कटोरदान और ढक्कन—इसका दाम, यदि पीतल का हो तो, तीन से

दस रुपये तक, और चाँदी का हो तो १५ से ५० रुपयें तक होता है। (२२) चाय का चीनी प्याला— इसका दाम आठ आने से बारह आना तक होता है। (२३) पत्थर का चीनी प्याला—इसका दाम पाँच से दस रुपये तक होता है। ये तीनों मंडियों में मिल जाते हैं। (२४) तिब्बती चाय। (२५) 'फुरु या फुरुवा'—चाय पीनेवाला तिब्बती कटोरा, इसका मूल्य दो आने से दस रुपये तक होता है। इस कटोरे के भीतर तिब्बती ढंग से चाँदी लगवा सकते हैं। (२६) तिब्बती ढंग का चम्मच—तकलाकोट में यह दो रुपये में बन जाता है। कैलास जाते समय यदि कहकर जायें तो वापस लौटते समय तक कोई भोटिया व्यापारी इन दोनों चीज़ों को बनाकर तैयार रखेगा। (२७) 'चोकसे'—यह बूटेदार और रंगीन, मुड़नेवाली मेज़ है, जिस पर तिब्बती लोग कटोरा रखकर चाय पीते हैं। इसका मूल्य एक से पचीस रुपये तक होता है।

(२८) 'कोरलो'—यह एक छोटा सा चोंगा है, जिसमें हत्था लगा रहता है। इसमें मणि-मंत्र के कई काग़ज के टुकड़े रखे रहते हैं। मंत्र जाप के लिये उसको घुमाया जाता है। पुराना कोरलो कभी-कभी किसी भोटिये व्यापारी से भी मिल जाता है। (२९) 'गौ', तिब्बती तावीज़—आजकल जापान के बने हुए 'गौ' और 'कोरलो' मंडियों में बिक रहे हैं। (३०) मणि-पत्थर—अपनी इच्छानुसार पत्थरों को चुनकर उस पर मणि-मंत्र खुदवाकर ले सकते हैं। तकलाकोट में दो-तीन आने में पूरे मंत्र को खोदकर दे देते हैं। (३१) 'पोवर' —ताँबे या पीतल की एक प्रकार की करछी है, जिसमें धूप जलाई जाती है। (३२) 'पोलङ' या धूप-पात्र—ये दोनों तकलाकोट में बन सकते हैं। इनके लिये ताँबे की चद्दर साथ ले जानी पड़ेगी। (३३) 'लम'—तिब्बती जूता। इसका दाम दो रुपये से दस रुपये तक होता है। (३४) 'थंका' या तिब्बती चित्रपट—यह किसी लामा-चित्रकार से या किसी गाँव में कभी-कभी मिल जाता है। (३५) 'फिंग'—तिब्बती सेंवई। किसी तिब्बती व्यापारी के पास मिल जाती है, जिसके एक-एक बंडल का दाम एक या दो आना होता है। (३६) कस्तूरी—यह मंडी में १५ से २० रुपया तोले के भाव पर मिल जाती है। चाहें तो पूरी कस्तूरी का नाभा भी मिल सकता है। (३७) कस्तूरी के दाँत—यह किसी भोटिये व्या-

पारी के पास मिलते हैं, जिसका दाम एक आना से ऊपर होता है। (३८) 'कङरी-करछक' और 'कङरी-सोलदेप' या तिब्बती कैलास-पुराण—कैलास के डिरफुक् गोंपा या गेंगटा गोंपा से इनके अलग-अलग संस्करण मिल जाते हैं। (३९) 'खोचर-करछक'—यह खोचारनाथ का स्थल-पुराण है, जो खोचार गोंपा से मिल जाता है। इन पुस्तकों का दाम निश्चित नहीं है। करछक का दाम एक रुपया से ऊपर और सोलदेप का दाम छः आना से ऊपर, जितना माँगे दे देना पड़ता है। (४०) कुत्ता। (४१) शिलाजीत का पत्थर।

११—डाकू तथा बटमार

तिब्बत में कहीं-कहीं बटमार घुमक्कड़ चरवाहे अपने कुटुंब और भेड़-बकरियों के साथ घूमते-घूमते यात्रा के दिनों में (मई-अक्टूबर के महीनों में) कैलास और मानसरोवर की ओर आ जाते हैं। ये मंडियों में जाकर व्यापार भी करते हैं; और साथ-साथ तीर्थयात्रा भी करते रहते हैं। यहाँ पर बंदूक और हथियार रखने की कोई मनाही न होने के कारण सबके पास हथियार होते हैं। इनके पास भी पुराने ढंग की पलीतेवाली या आग लगाकर फायर करने वाली बंदूकें, आजकल की जर्मनी और रूस की बंदूकें, पिस्तौल और रिवाल्वर भी होते हैं। जहाँ कहीं निरस्त्र यात्री या व्यापारी इन्हें मार्ग में मिल जाते हैं, उन्हें ये लूटकर पहाड़ों में भाग जाते हैं। ये लोग माल दे देने पर प्राण-हरण नहीं करते। यदि कोई इनका सामना करे तो जान से मार भी डालते हैं। जिन यात्रियों या व्यापारियों के पास हथियार होते हैं, उनके पास ये नहीं जाते और उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। इन डाकुओं को पकड़ने के लिये तिब्बती सरकार की ओर से कोई विशेष प्रबंध नहीं है। तथापि हमारे देश से वहाँ डकैती बहुत कम है। मानसखंड में आनेवाले इस प्रकार के डाकुओं और लूटेरों को 'झाकोरा' कहते हैं। स्थानीय लोग भी इनसे डरते हैं। यहाँ के संबंध में जो यह अफवाह फैलाई गई है कि यहाँ पर मनुष्य-भक्षी और रक्त पीनेवाले लोग रहते हैं, वह सर्वथा निराधार और मिथ्या है।

अध्याय ६

शासन

१—दलाई लामा

सारे तिब्बत देश पर दलाई लामा का शासन है। ये ही तिब्बत के राजा हैं। धर्म-संबंधी सारे कार्यों में टाशी लामा सर्वोच्च माने जाते हैं। ये सांग्ये ओपामे (अमिताभ बुद्ध, जो अवलोकितेश्वर के दैवी-या धर्म-पिता हैं) के अवतार माने जाते हैं। इनका प्रधान स्थान टाशी ल्हुम्पो मठ में है, जो शिगर्ची नगर के अंतर्गत है। इनको पंछेन रिम्पोछे या पंछेन लामा भी कहते हैं। लोबसङ ग्यम्छो नामक एक प्रसिद्ध लामा डेपुङ विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (खनपो या 'डीन') थे। तत्कालीन मंगोलिया के राजा गुश्री खान् ने १६४१ में तिब्बत का राज्य जीत कर उपर्युक्त लामा को प्रदान कर दिया था। इस पाँचवें दलाई लामा के राजगद्दी पर बैठने पर डेपुङ मठ की—जिसके वे अधिष्ठाता रहे—प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये प्रतिवर्ष प्रारंभ में चौबीस दिनों तक ल्हासा में डेपुङ के भिक्षुओं के हाथों में संपूर्ण शासन भार दे देने का नियम बना दिया। यह प्रथा अब तक प्रचलित है। उस समय दुकानों पर नया टैक्स लगाया जाता है। कहा जाता है कि सर्वप्रथम दलाई लामा का जन्म १३६१ में हुआ। और कुछ लोगों का कहना है कि दलाई लामा की प्रथा सन् १२८४ से प्रारंभ हुई।

पाँचवें दलाई लामा (सन् १६१७ से १६८२ तक) ने सर्वप्रथम अपने आपको अवलोकितेश्वर का अवतार घोषित किया। साथ-साथ यह भी घोषित कर दिया कि उस समय का टाशी लामा अमिताभ बुद्ध का अवतार और उनका (दलाई लामा का) गुरु है। तभी से अवतारी लामाओं की प्रथा प्रारंभ हुई। इस प्रथा के प्रचलित होने के पूर्व दलाई लामा को योग्यता के अनुसार नियुक्त किया जाता था।

ऐसा विश्वास है कि एक दलाई लामा के मृत्यु होते ही उसकी आत्मा फिर गर्भस्थ हो जाती है। दलाई लामा के मरने के बाद नये दलाई लामा के पता लगने के समय तक और उसके गद्दी पर बैठने होने तक राज्य-प्रतिनिधि (रीजेन्ट) नियुक्त किया जाता है, जो मंत्रिमंडल की सहायता से राज्यकार्य का भार वहन करता है। मृत्यु के दो तीन वर्ष के उपरांत राज-ज्योतिषी यह बतलाता है कि दलाई लामा ने अमुक दिशा में जन्म लिया है। उसी भविष्यवाणी के अनुसार मंत्रिमंडल से कोई एक राज-ज्योतिषी, और कुछ अफसरों की एक मंडली उस दिशा में बड़े धूमधाम के साथ दलाई लामा के अन्वेषण में चल देती है। लामा की मृत्यु के बाद जितने बच्चे जन्म लेते हैं सबों की परीक्षा होती है। दलाई लामा के माता-पिता और भाई-बंधुओं को भी राज्य में बड़े-बड़े पद मिलते हैं, इसलिये अनेक लोग अपने-अपने बच्चों को उक्त पद के लिये उपस्थित कर देते हैं। उन सबों को देखकर विशेष परीक्षा के लिये उन बच्चों को एकत्रित करते हैं, जिनमें दलाई लामा के शास्त्रोक्त लक्षण अधिक पाये जाते हैं। तब मरे हुए दलाई लामा की कई वस्तुओं को अन्य वस्तुओं के साथ मिला-कर एक-एक बच्चे को दलाई लामा की वस्तुओं के पहचानने के लिये कहते हैं। इनमें से जो दलाई लामा की वस्तु को पहचान लेता है, उसे ही उक्त पद के लिये चुन लिया जाता है। कभी यदि आये हुए बच्चों में से सबके सब दलाई लामा की वस्तुओं को पहचानने में असफल रहे, या एक से अधिक बच्चे वस्तुओं को पहचानने में समर्थ हुए, तो ऐसी स्थिति में उनके नाम कागजों के टुकड़े पर लिखकर एक सोने के कटोरे में डाल देते हैं और किसी अनजान लड़के से एक टुकड़ा निकालने के लिये कहते हैं। उस निकाले हुए टुकड़े पर जिसका नाम निकलता है, वही दलाई लामा के पद के लिये चुन लिया जाता है।

यदि वह लड़का उस समय तक भिक्षु न बना हो तो उसे भिक्षु की दीक्षा दी जाती है और राजकीय ठाटबाट के साथ उसे राजधानी, ल्हासा नगर में ले आते हैं। नगर के पोताला नामक राजप्रासाद[1] में जाने के पहले

---

[1]पोताला राजप्रासाद सन् १६४१ में पाँचवें दलाई लामा द्वारा निर्मित

मंत्रिमंडल और अफसर, बड़े मठों के लामा, जागीरदार, सैनिक—सभी बड़े जलूस में जाकर पहले नम्रतापूर्वक उसका स्वागत करते हैं। तत्पश्चात् दो-तीन महीने तक खूब पूजा-पाठ, तथा यंत्र-तंत्र की आराधना करके अंत में उस बच्चे को राज्याभिषिक्त कर देते हैं। राज्याभिषेक के समय चीन का राज्यप्रतिनिधि भेंट लेकर सामने आता है। सन् १९०४ की संधि के अनुसार इस राज्याभिषेक के अवसर पर अंग्रेजी सरकार ने भी अपना प्रतिनिधि भेजना आरंभ कर दिया है। राजगद्दी पर बैठाने के बाद शिशु दलाई लामा के विद्याभ्यास के लिये बड़े-बड़े विद्वान् लामा और भिक्षु लोग नियुक्त किये जाते हैं। आध्यात्मिक, राजकीय और लौकिक सभी प्रकार की शिक्षा देकर उन्हें पूर्ण बना देते हैं। तब वे सभी राजकार्यों को स्वयं देखने लगते हैं। राज दरबार में मंत्रिवर्ग के साथ चीन का एक प्रतिनिधि भी रहता है। अंतर्राष्ट्रीय मामलों में इनकी सम्मति लेनी पड़ती है। परंतु सन् १९१२ से तिब्बत का संबंध चीन से नाम मात्र का रह गया है।

तेरहवें दलाई लामा की मृत्यु १९३३ के दिसंबर में हुई और वर्तमान चौदहवें दलाई लामा सन् १९३९ के सितंबर में पाये गए हैं। ये सन् १९४० की २२वीं फरवरी को सिंहासनासीन हुए। ये तिब्बत के उत्तर में चीन की सीमा के पास रहनेवाले एक किसान के लड़के हैं।

तीसरे दलाई लामा धर्म प्रचार के लिये मंगोलिया गए थे। चौथे स्वयं मंगोलिया में उत्पन्न हुए थे। दलाई लामा के नाम के अंत में 'ग्यम्छो' प्रयोग किया जाता है। यह तिब्बती शब्द है, जिसका अर्थ है समुद्र। मंगोलियन भाषा में समुद्र को 'तले' कहते हैं। मंगोल लोग लामा शब्द के आदि में 'तले' जोड़कर, 'तले लामा' कहकर पुकारते थे। तिब्बत में आकर 'तले' शब्द अपभ्रंश होकर 'तलाई' हो गया और वही बदलते बदलते दलाई लामा के रूप में परिणत हो गया। ठीक दलाई लामा की नियुक्ति की भाँति टाशी लामा या पंछेन

कराया गया था। इसके भीतर सभी दलाई लामाओं के छोरतेन हैं। उनमें से पाँचवें दलाई लामा तथा एक अन्य दलाई लामा के छोरतेन सोने के बने हैं।

लामा की नियुक्ति होती है। गत पंछेन लामा की मृत्यु सन् १९३७ में हुई थी। २८ अप्रैल १९४३ को चुङकिंग से यह समाचार मिला है कि कुछ ही दिन हुए चीन के सिंकियङ प्रांत में पंछेन लामा पाये गए हैं और अब वे शीघ्र ही टाशी ल्हुन्पो लाकर अभिषिक्त किये जायँगे।

तिब्बत की राजधानी ल्हासा नगर समुद्रतल से ११००० फीट की ऊँचाई पर है। मानसरोवर प्रांत से यह अपेक्षाकृत कम ठंढा स्थान है। पहले-पहल सम्राट् स्रोङ्चेन गोंपो ने सन् ६३० में इसे बसाया था। यहाँ की जनसंख्या लगभग ४०००० होगी, जिसमें से लगभग आधे भिक्षु हैं।

२—शासन-विधान

पश्चिमी तिब्बत (जिसमें मानसखंड स्थित है) दो गरपोनों या उर्को द्वारा शासित है—एक उर्को कोङ (सीनियर वायसराय) और दूसरा उर्को योक् (जूनियर वायसराय)। तिब्बत में उच्च पदाधिकारी बहुधा दो-दो होते हैं। पश्चिमी तिब्बत की राजधानी गरतोक या गरयारसा तकलाकोट से १२५ मील और कैलास (तरछेन) से ८५ मील की दूरी पर है। गर्मी के दिनों में दोनों वायसराय छः महीने यहाँ तथा शीतकाल में छः महीने गरगुनसा में रहते हैं, जो गरतोक से लगभग ३६ मील दूर है। पश्चिमी तिब्बत रुदोक, पुरङ-तकलाकोट, दापा, और छबरङ नामक चार प्रांतों में विभक्त है। एक-एक प्रांत एक-एक जोङपोन[1] (दुर्गाधीश) या जोङ के अधीन है। छकरा मंडी के अतिरिक्त सारा मानसखंड पुरङ-जोङ द्वारा शासित है। ज्ञानिमा मंडी दापा जोङ के और छकरा मंडी परखा तसम के अंतर्गत है।

इनके अतिरिक्त मंडियों में कर एकत्रित करनेवाले छासू (टैक्स कलेक्टर), युङ छोङ (तिब्बत सरकार का व्यापारी), और तसम, तरज़म, या तज़म (ट्रान्सपोर्ट एजेंट या एजेंसी) होते हैं। ल्हासा और गरतोक के बीच में राजपथ पर पचीस तसम हैं, जो ल्हासा और गरतोक के बीच के विविध केंद्रों में सरकारी डाक को भेजने का प्रबंध और ल्हासा से गरतोक तक आने जानेवाले सरकारी

---

[1] सारे तिब्बत में लगभग ४४ जोङ होते हैं।

अफसरों की सवारी और बोझों के लिये याक और घोड़ों का प्रबंध करते हैं। इस काम के लिये आस-पास के गाँववालों और गड़रियों को अपने कुछ याक और आदमियों को सदा तैयार रखना पड़ता है। ये लोग बारी-बारी से काम करते हैं, जिसके लिये उनको भाड़ा आदि कुछ भी नहीं मिलता, वरन् तसम में बेगार देर से पहुँचे तो कड़ा दंड दिया जाता है—अर्थदंड, कोड़ा या दोनों। कैलासखंड के अंतर्गत नोक्यू, मिस्सर, परखा, थोकचेन, ल्होलुङ, और टमसङ नामक छः तसम हैं। यह तसम शब्द ऑफिस और अफसर दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। तसमों का काम निरीक्षण करने के लिये उनके ऊपर सिपचू नामक एक अफसर रहता है।

युङ्छोङ या सरकारी व्यापारी के संबंध में विवरण देना भी आवश्यक है। यह अफसर दलाई लामा की ओर से व्यापार करने के लिये, विशेषकर 'जा' के 'दुम' (चीनी चाय के ईंटों के पैकेज) मंडियों में लाते हैं। यह चाय गरपोन, जोङपोन आदि अफसरों को बाज़ार भाव से दुगने या तिगुने दामों पर बेची जाती हैं, जिसका मूल्य दूसरे वर्ष वसूल किया जाता है और फिर चाय वैसे ही दी जाती है। इस प्रथा को 'पुगेर' कहते हैं। इसके अतिरिक्त युङ्छोङ का अपना निजी व्यापार भी बहुत होता है। जगह-जगह पर इनके प्रतिनिधि होते हैं, जिनके द्वारा दलाई लामा का निजी व्यापार चलता रहता है। ये प्रतिनिधि भी 'युङ्छोड़' कहे जाते हैं। इस प्रकार सर्वसाधारण जनता पर अफसरों का दबाव बहुत होता है; या यों कहिये कि यह प्रथा और बेगारी—ये दोनों तिब्बती प्रजा पर सरकार की ओर से कर हैं।

उपर्युक्त सभी अफसर ल्हासा और आसपास के जागीरदारों और वंशजों[1] में से ही तीन वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते हैं। कभी-कभी उसी अफसर को दुबारा भी नियुक्त करते हैं। गाँवों का प्रबंध गोपा या गोबा

---

[1] (१) सङ्डू, (२) फोटाङ, (३) दुरिङ, (४) सेता, (५) बंडीशिया, (६) राकाशिया, (७) ल्हालू, (८) युटाक, और (९) फोती खाङसा—ये नौ प्रधान उच्च वंशों के नाम हैं।

(सिरवाला=प्रधान) और मकपोन (पटवारी) के द्वारा होता है। गोपा और मकपोन उसी गाँव के निवासी होते हैं और ये वंशपरंपरा से ही नियुक्त किये जाते हैं। तिब्बत में किसी अफसर को ल्हासा की केंद्रीय सरकार की ओर से वेतन नहीं दिया जाता। इसके विपरीत इन सभी अफसरों को प्रति वर्ष कुछ निश्चित रक़म सरकार को देनी पड़ती है। अफसर लोग इस रकम को कर, दीवानी और फौजदारी के मुकद्दमों की फीस, और जुरमाने से एकत्रित कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त निजी व्यापार द्वारा भी वे बहुत-सा धन उपार्जित करते हैं। वास्तव में व्यापार की आय ही अधिकतर है, क्योंकि उनके ऑफिस का काम नहीं के बराबर होता है और वे जहाँ भी जाते हैं, वहाँ सैकड़ों जानवर तसमों द्वारा बेगारी में मिल जाते हैं, जो व्यापार कार्य में अधिक सहायक होते हैं। तिब्बतियों को सरकारी टैक्स बिल्कुल नाम मात्र का देना पड़ता है। सात-आठ बकरियों के ऊन पर केवल एक टंका, इसी प्रकार आठ बकरियों द्वारा लाये गये नमक या सुहागे पर भी एक टंका देना पड़ता है। भूमि-कर तो एक दम नहीं लिया जाता। पर इससे यह न समझना चाहिये कि सरकार बड़ी उदार है। सभी करों के बदले में एक बेगार ही पर्याप्त हो जाती है।

तिब्बत में साधारण अपराधी के दोनों हाथ ऊनी रस्सी से कसकर तब तक बाँधे रहते हैं जब तक कि रक्त नहीं बहने लगता। उसके बाद कपड़ों को उतार कर नग्नावस्था में पट लिटाकर नितंब और पीठ पर अपराध के अनुसार चालीस से लेकर तीन सौ तक कोड़े मारते जाते हैं। डकैती जैसे भारी अपराध के लिये कोड़ों के अतिरिक्त एक या दोनों पहुँचे काटकर खौलते हुए तेल में डुबो दिये जाते हैं, जिससे घाव में पीब न आ जाय। भयंकर, दारुण और राजद्रोह के अपराधों के लिये लाल-लाल दहकते हुए लोहे कनपटियों में घुसा देते हैं, एवं आँखों को निकाल कर अपराधी के प्राण ले लेते हैं, या ऊँचे पहाड़ों की चोटियों से ढकेलकर मार डालते हैं। बहुधा मुकद्दमों में दोनों पक्षों को अधिक जुर्माना कर देते हैं। इन जुर्मानों से अफसरों की प्रधान आय होती है। मुकद्दमा फैसला होने के बाद दोनों पक्षों के लोगों को कोर्ट-फीस के रूप में आठ-आठ टंका (एक-एक रुपया) देना पड़ता है।

सरकारी पदों पर आधे से अधिक भिक्षु नियुक्त होते हैं। स्त्रियों को भी किसी पद की अनधिकारिणी नहीं समझते। किसी अफसर की अनुपस्थिति में उसकी स्त्री, भाई या उसके द्वारा नियुक्त कोई भी व्यक्ति काम कर सकता है। पश्चिमी तिब्बत की राजधानी गरतोक में, जहाँ वायसराय रहते हैं, और गवर्नरों के केंद्रस्थानों में पुलिस या सैनिकदल का सर्वथा अभाव रहता है। हाँ, तिब्बत की राजधानी ल्हासा में आजकल नवीन पद्धतियों के अनुसार थोड़े-से पुलिस के सिपाही और सैनिकों को रखकर उचित शिक्षा दी जाती है। सभी तिब्बतियों के बंदूक और तलवारों के चलाने में जानकर होने के कारण और हथियार रखने में किसी प्रकार का प्रतिबंध न होने के कारण तिब्बती सरकार आवश्यकता पड़ने पर इन्हें सेना में भरती कर लेती है। भरती किये गये ग्रामीण अपने व्यय से काम करते हैं, अर्थात् उन्हें खाने-पीने के सामान, बारूद, बंदूक, तलवार और घोड़े सभी अपनी ओर से ले जाने पड़ते हैं। इनको किसी प्रकार की सैनिक शिक्षा नहीं दी जाती।

तिब्बती अफसर कर वसूल करते हुए रात-दिन निजी व्यापार और कमाई में लगे रहते हैं। अफसर, कुछ बड़े वंशों के व्यक्ति और मठवालों के उपभोग के लिये अधिकांश साधारण प्रजा ने जन्म लिया है—ऐसा प्रतीत होता है। पहले जैसा भी रहा हो, किंतु आजकल ऐसा ही है। मानसिक अवनति के कारण इस परिस्थिति में भी तिब्बती प्रजा संतुष्ट है। उसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आधुनिक जगत् की विषम समस्याएँ वहाँ विद्यमान नहीं हैं।

शोचनीय बात यह है कि पश्चिमी तिब्बत में सरकार की ओर से प्रजा की या देश की भलाई के कोई भी विशेष कार्य नहीं होते। यहाँ एक गज भी कोई पक्की सड़क नहीं बनी हुई है और न किसी प्रकार की ऐसी भी सड़क है, जिस पर बैलगाड़ी का चलना संभव हो। जहाँ कहीं एकाध भेड़ों या बकरियों के झुंड चल पड़े वहाँ सड़क जैसी बन जाती है। प्रयत्न करने पर थोड़े श्रम से भी गाड़ी चलने योग्य अच्छी सड़क बनाई जा सकती है, परंतु ल्हासा और पूर्वी तिब्बत के अन्य नगरों में कुछ सड़कें बनी हुई हैं, जिनपर एकाध मोटर और साइकिल भी चलती हैं। अन्यत्र कहीं कोई भी तैयार की हुई पक्की सड़क नहीं है।

भारत की सीमा लीपूलेख घाटा से दस-ग्यारह मील की दूरी पर स्थित पुरङ-तकलाकोट के जोङपोन का केंद्रस्थान है। 'जोङ' शब्द का अर्थ दुर्ग है; परंतु यह दुर्गाधीश के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। जोङपोन या गवर्नर का कोट तकलाकोट मंडी के पास के पहाड़ के ऊपर सिंचिलिङ मठ से बिलकुल मिला हुआ है। किले में एक कारागृह भी है, जिसके पास बड़ी-बड़ी चाबुकें, चपटियाँ (थप्पड़ मारनेवाले हत्थेदार गोल चमड़े), हथकड़ी, और रस्सियाँ टँगी हुई हैं। दुर्गवाले पहाड़ की तलहटी की पीलीथंगा नामक छोटी उपत्यका के ऊपर जून महीने से लेकर अक्टूबर तक मंडी लगती है। भोटिया व्यापारियों ने यहाँ कच्ची ईंटों से दीवालों के घेरे बना रक्खे हैं, जिनके ऊपर लंबे लट्ठे डालकर तंबू की भाँति दोनों तरफ कपड़ा डाल देते हैं। जब वे मंडी में रहते हैं तो तंबूदार मकानों पर दरवाजे लगाकर लौटते समय उन्हें उखाड़ देते हैं और अपनी-अपनी गुफाओं में रख लेते हैं, जिनकी रखवाली तिब्बती करते हैं। १९०४ में अंगरेज और तिब्बती सरकार के बीच में हुई संधि की एक प्रतिज्ञा के अनुसार कोई भी भारतीय तिब्बत में छतदार मकान नहीं बना सकता।

लेखक ने सन् १९४१ में पश्चिमी तिब्बत के गर्पोनों से मिलकर मानसरोवर के तट पर एक यज्ञ-वेदी और धर्मशाला निर्माण करने की बात की। फलतः उसी वर्ष अगस्त के महीने में श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर पुनीत मानसरोवर के तट पर ठुगोल्हो गोंपा के पास एक यज्ञ-वेदी निर्माण की। धर्मशाला के बारे में १९४२ में तकलाकोट के गवर्नर के साथ परामर्श हुआ। यद्यपि आज्ञा तो अभी तक नहीं मिली, परंतु आशा की जाती है कि इस वर्ष अवश्य मिल जायगी। तिब्बत सरकार की आज्ञा मिलने पर लेखक के एक मित्र ने चार कमरे की धर्मशाला का व्यय देने का वाग्दान किया है। तकलाकोट में यात्रियों के लिये पक्की धर्मशाला बनाने के लिये 'दारमा सेवा-संघ' की ओर से प्रयत्न हो रहा है।

तिब्बतियों में महात्मा गाँधी को 'गाँधी माराजा' कह कर पुकारते हैं, तथा कुछ लोगों के घरों में गाँधी और पंचम जार्ज की भेंट के अवसर के रंगीन

चित्र लटकते हुए देखे जाते हैं। मंडी में बिकनेवाले एक प्रकार के मोटे कपड़े को 'गांदी कद्दर' कहकर पुकारते हैं। कुछ लामाओं की धारणा है, कि महात्मा गाँधी गुरु-पद्मसंभव के अवतार हैं। अखिल भारतीय चर्खा संघ के कुछ प्रतिनिधि पश्चिमी तिब्बत की मंडियों में चार-पाँच वर्षों से ऊन खरीदने के लिये जाने लगे हैं।

३—अंग्रेज़ों का व्यापार-प्रतिनिधि

सन् १६०३ में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न के आदेश से कर्नल यंगहस्बेंड ने तिब्बत पर चढ़ाई की। अंग्रेज़ी सेनाओं ने अपनी तोपों की गोलियों से तिब्बतियों को ध्वस्त कर ल्हासा में प्रवेश किया। दलाई लामा पोताला राजभवन से भाग गए, उनके प्रतिनिधियों से अगस्त सन् १९०४ में संधि पत्र पर हस्ताक्षर कराया गया। उसके अनंतर भी सन् १६०६,०७, और १२ में तिब्बत और अंग्रेज़ सरकार के बीच में संधियाँ हुईं।

उक्त संधियों की एक प्रतिज्ञा के अनुसार पूर्वी तिब्बत में ग्यांची[1] और यातुङ में और पश्चिमी तिब्बत में—गरतोक में—अंग्रेजों के तीन व्यापार-प्रतिनिधि नियुक्त हैं। कहा जाता है कि वे प्रतिनिधि उन-उन प्रांतों में लगने वाली मंडियों में जाकर भारतीय व्यापारियों की देख-भाल करने के लिये नियुक्त किये गए हैं। अंग्रेजी सरकार की ओर से ऐजेन्टों के द्वारा तिब्बती अफसरों को कुछ सौ रुपयों की वस्तुएँ उपहार रूप में दी जाती हैं। किसी संधि की लिखी धारा के अनुसार सरकारी ट्रेड एजेन्ट की कचहरी में भारतीय व्यापारी से तिब्बतियों पर किये हुए मुकद्दमों में सरकारी ट्रेड ऐजेन्ट और तिब्बती अफसर—दोनों की सम्मति से न्याय किया जाता है। पश्चिमी तिब्बत के व्यापार प्रतिनिधि प्रतिवर्ष मई के महीने में शिमले से गरतोक जाते थे, वहाँ से प्रमुख

---

[1] ग्यांची दोर्जेलिङ से २१६ मील पर, यातुङ सिकिम की सीमा से आठ मील की दूरी पर, और गरतोक भारत की सीमा से लगभग १०० मील की दूरी पर है। ग्यांची ल्हासा से १४४ मील है।

मंडियों का निरीक्षण कर पुनः गरतोक लौट आते थे और लीपूलेख की घाटी से अलमोड़ा होकर नवंबर के महीने में शिमला लौट जाते थे। ये शीतकाल में शिमले में ही रहते थे। परंतु सन् १९४२ में गङ्टोक पोलिटिकल आफिसर के पश्चिमी तिब्बत के दौरे के बाद यहाँ के प्रतिनिधि का आफिस शिमला से गङ्टोक बदल दिया गया; इसलिये इस वर्ष एजेंट अलमोड़े होकर ही मंडियों में जावेगा और इसी मार्ग से लौटेगा।

पश्चिमी तिब्बत में १९०४ से अब तक पाँच ट्रेड एजेंट नियुक्त हो चुके। सर्वप्रथम एजेंट रायबहादुर ठाकुर जयचंद, दूसरे रायसाहब लाला देवीदास, तीसरे श्रीपालाराम, चौथे ठाकुर हयातसिंह रावत (सन् १९२८), और पाँचवें रायबहादुर काशीराम (सन् १९२९ से १९४१ तक) हुए। कहते हैं कि इन पाँचों में से श्री पालाराम के समय में भारतीय व्यापारियों को बहुत सहायता मिली, और सचमुच उनके समय में मंडियों की बहुत कुछ देखभाल भी हुई; इसलिये बेचारे पालाराम को व्यापारियों की ओर से प्रेम के साथ दी हुई 'श्री' उपाधि के अतिरिक्त सरकार की ओर से कोई पदवी नहीं मिली। सन् १९४२ में जोहार भोट प्रांत के निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी नये बृटिश ट्रेड एजेंट नियुक्त हुए। इनके समय में सारे भोट व्यापारी आशा कर रहे हैं कि उनकी रामकहानियों पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

गरतोक के व्यापार-प्रतिनिधि भारतीय है और ग्यांची और यातुङ के अंग्रेज़ है। ग्यांची व्यापार एजेंसी में ब्रिटिश सरकार के ५०० सिपाहियों का एक सुशिक्षित दल है। तिब्बती अफ़सरों का कहना है कि ग्यांची में साधारण बंदूकों के अतिरिक्त कुछ मशीनगनें भी हैं। ग्यांची और यातुङ के एजेंट स्थायी हैं और बारहों महीने वहीं रहते हैं। पहले गरतोक के एजेंट केवल आठ महीने के लिये नियुक्त होते थे और उनको उतने ही समय के लिये वेतन भी मिलता था, पर सुनते हैं कि अब वह भी बारह महीने के लिये नियुक्त हो गए हैं। तकलाकोट में बारहों महीना इनके रहने के लिये मकानात बनाने और रक्षा के लिये ५०-१०० सिपाहियों के रहने की व्यवस्था हो रही है, ताकि तिब्बती मंडियों में भारतीय व्यापारियों के अधिकार सुरक्षित रहें।

४—चिकित्सालय

तिब्बती वैद्यक ग्रंथों के अनुसार सभी बीमारियों के तीन प्रधान और चार गौण कारण माने गए हैं। काम, क्रोध, और मोह या अज्ञान—ये प्रधान कारण हैं जो क्रमशः वात, पित्त, और श्लेष से उत्पन्न होते हैं। ऋतु, जो गर्म और शीत को उत्पन्न करती है, दुष्टग्रह, दूषित आहार और विहार—ये गौण कारण माने गए हैं। रोगों के लिये अच्छा निदान दिया गया है और एक सहस्र से अधिक औषधियों के योग दिये गए हैं। इनके अतिरिक्त भयंकर बीमारियों में औषधि-देवता (मेन ल्हा) का पूजा-पाठ भी किया जाता है।

प्रायः पश्चिमी तिब्बत में कुछ भिक्षुओं को छोड़कर, जो थोड़ी-सी नाममात्र की दवा वितरित करते हैं, कहीं भी कोई अस्पताल या चिकित्सा का प्रबंध नहीं है। बहुधा सभी प्रकार के रोगों के निवारणार्थ यंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक, और पूजा-पाठ का ही प्रयोग करते हैं। किसी भी रोग के रोगी को सत्तू, मांस, और मद्य पिला देते हैं। पूर्वी तिब्बत में भारतीय आयुर्वेद या चीनी वैद्यक के अनुसार औषधि देनेवाले कुछ वैद्य हैं, जो प्रायः भिक्षु ही हैं। ल्हासा में सरकार की ओर से एक आयुर्वेदीय औषधालय है। एकाध अपनी ओर से अंगरेजी दवाओं का अभ्यास करनेवाले वैद्य भी हैं। ब्रिटिश सरकारी एजेंटों के साथ एक अस्पताल, डाक्टर और कंपाउंडर भी रहते हैं। यात्री, व्यापारी, और तिब्बतियों को बिना शुल्क दवा वितरित की जाती है। ग्यांची और यातुङ में अंग्रेजी सरकार के बारहों महीने जारी रहनेवाले अंग्रेजी अस्पताल हैं, जो एजेंटों के लिये रक्खे गए हैं। इन अस्तपालों के डाक्टर भी अंग्रेज ही हैं। पश्चिमी तिब्बत के एजेंट का अस्पताल उनके साथ चलता रहता है।

५—डाकघर

पश्चिमी तिब्बत में भ्रमण करते समय एजेंट के साथ एक चलता हुआ पोस्ट ऑफिस (डाकघर) रहता है, जिसके द्वारा सप्ताह में एक बार डाक आया जाया करती है। तकलाकोट से ३० मील की दूरी पर गब्यांग, और

ज्ञानिमा मंडी से ६५ मील की दूरी पर मिलम मानसखंड का सबसे निकट के डाकघर हैं। और ग्यांची और यातुङ में एजेंट बारहों महीने रहते हैं। ग्यांची में ब्रिटिश सरकार का एक स्थायी डाक और तारघर है जहाँ, भारतीय डाक-रेट पर चिट्ठी और पार्सल भेजे जाते हैं। ग्यांची से ल्हासा तक तिब्बती सरकार की तार-लाइन है, जो १९२२ में बनी थी। ल्हासा से कलकत्ते तक टेलीफोन और टेलीग्राफ बराबर चलते हैं। यहाँ पर डाक और तार-घर हैं। गत आठ-नौ वर्षों से ल्हासा से अन्य सरकारी केंद्रों को पत्र और पार्सल भेजने के लिये टिकिट प्रयोग में लाये जा रहे हैं। डाक का यातायात तसमों द्वारा चलता है।

ल्हासा के डाकघर, तारघर, बिजलीघर, बारूद के कारखाने, टकसाल आदि संस्थाओं का प्रबंध विलायत से शिक्षा पाकर आये हुए एक तिब्बती सज्जन कर रहे हैं। उन्हीं का एक भाई सन् १९४२ में तकलाकोट का गवर्नर नियुक्त होकर आया है।

६—जोरावर सिंह

सन १९३५ में जंबू के राजा जनरल गुलाबसिंह के जोरावरसिंह ने पश्चिमी तिब्बत पर चढ़ाई कर लदाख़ को जंबू में मिला लिया और ल्हासा में दलाई लामा के पास यह संदेश भेजा कि रुदोक, गरतोक, पुरङ, और कैलास-मानसरोवर का सारा प्रांत उनको दे दिए जायँ। इस संदेश का उत्तर आने से पहले ही वे सन् १९४१ के जून मास में लेह (लदाख की राजधानी) से कैलास की ओर बढ़े। मार्ग में सब गाँव और गोम्पाओं को लूट लिया और दुर्गों को तोड़ डाला। पहले तीर्थपुरी के पास कुछ दिन के लिये डेरा डाला। वहाँ से आगे बढ़कर कैलास और मानसरोवर के बीच बरखा के विशाल मैदान में अपने सुशिक्षित पंद्रह सौ सिपाहियों के साथ दस सहस्र तिब्बती सेनाओं का सामना किया। बड़ी वीरता के साथ युद्ध करके तिब्बती सेना को तितर-बितर कर नष्ट कर दिया, और वहाँ से सीधे तकलाकोट गए और कोट के भीतर डेरा लगाकर पूर्ण रूप से किलेबंदी कर ली। जोरावरसिंह की बनाई हुई किलेबंदी का खंडहर तकलाकोट में अब भी विद्यमान है।
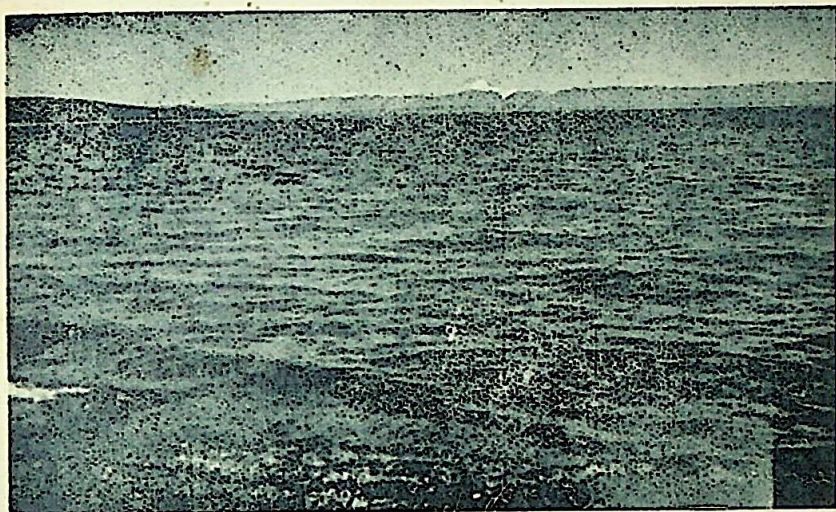
ठुगोल्हो से कैलास तथा मानसरोवर का दृश्य

[देखो पृ० ३६०
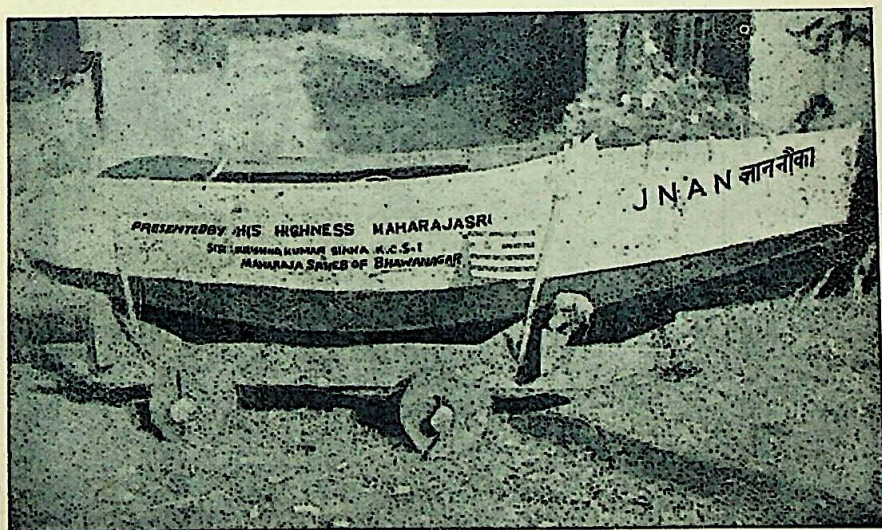
ज्ञान-नौका—'सेलिंग-डिंघी कम-मोटर बोट'

[देखो पृ० २४५
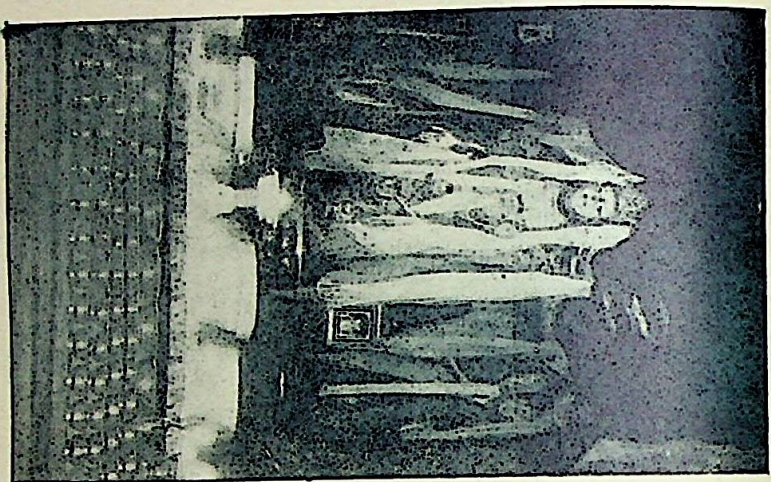
मंजुश्री की मूर्ति, खोचारनाथ

[देखो पृ० १८०
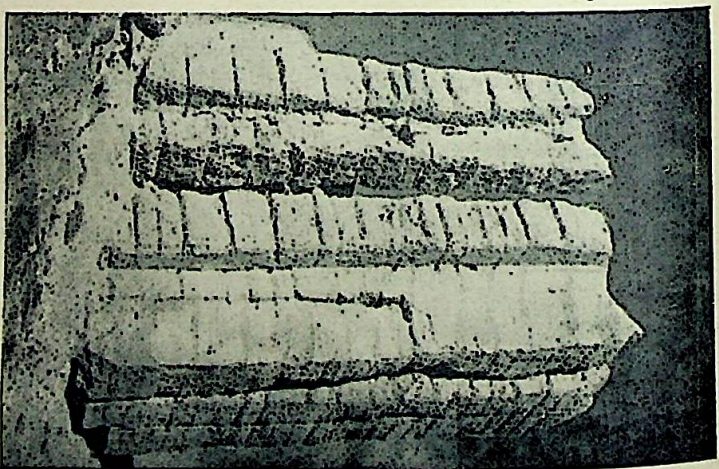
परबू में जोरावरसिंह के तोड़े हुए दुर्ग के खंडहर

[देखो पृ० ३३६
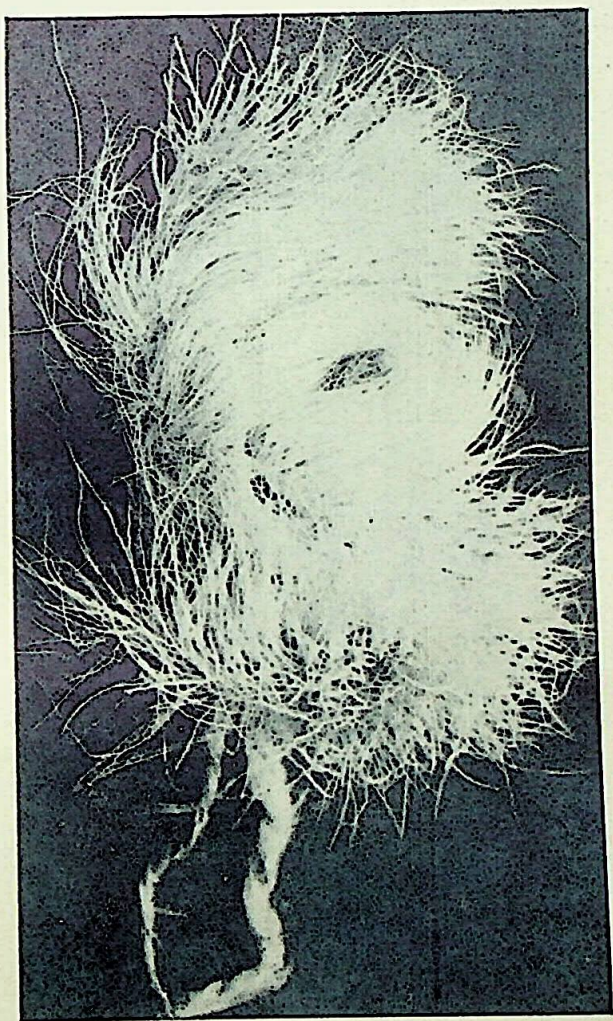
दारमा की कस्तूरी की नाभी

[देखो पृ० १८६
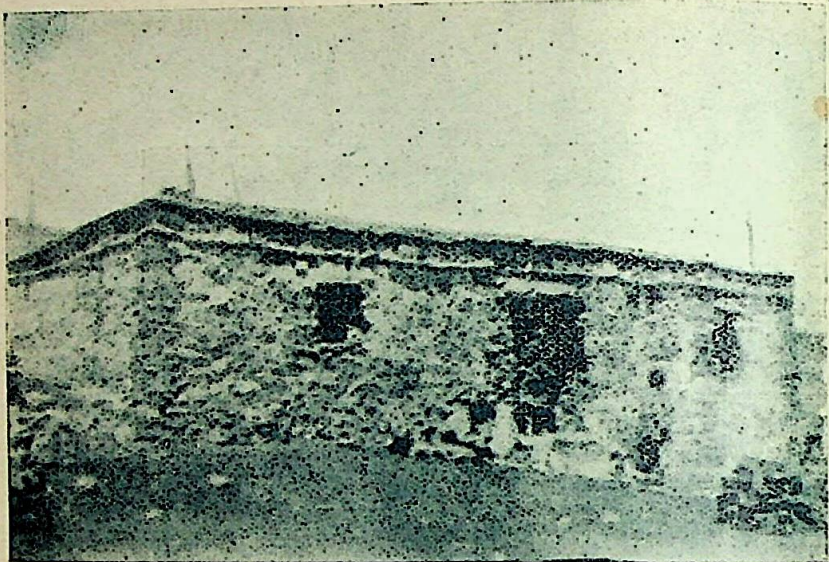
चेरकिप गोम्पा— मानसरोवर का तीसरा मठ

[देखो पृ० ३५५
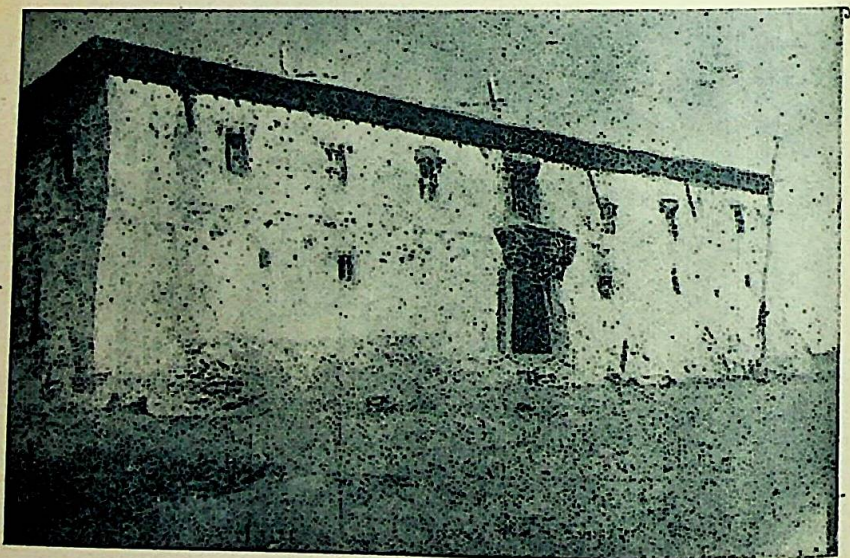
लङ्पोना गोम्पा— मानसरोवर का चौथा मठ
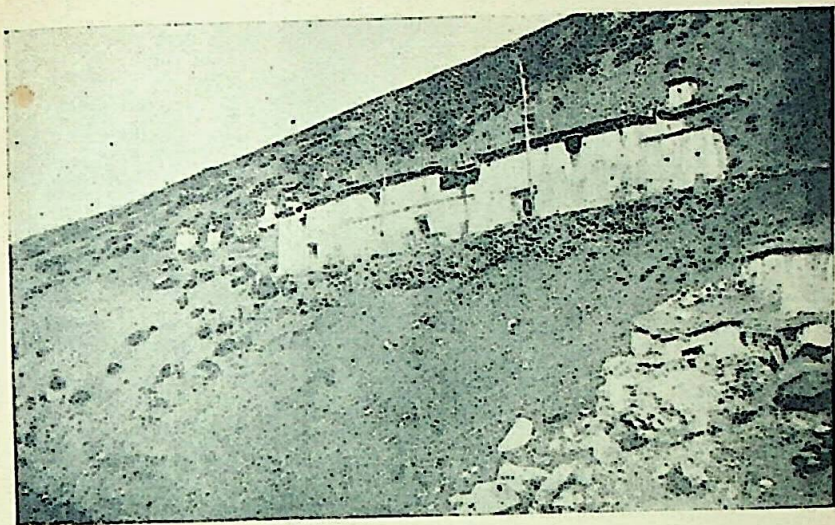
[देखो पृ० ३५५

पोनरी गोम्पा—मानसरोवर का पाँचवाँ मठ

[देखो पृ० ३५६
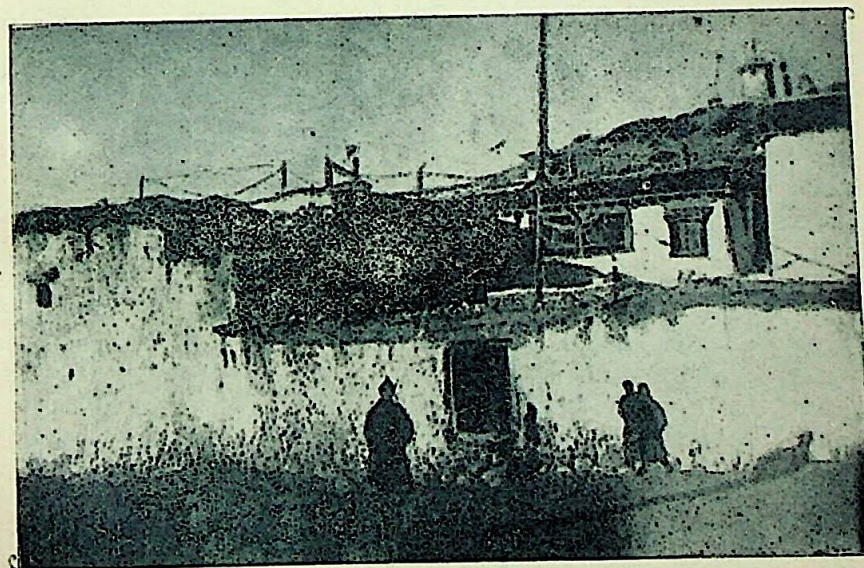
सेरालुङ गोम्पा—मानसरोवर का छठा मठ

[देखो पृ० ३५७
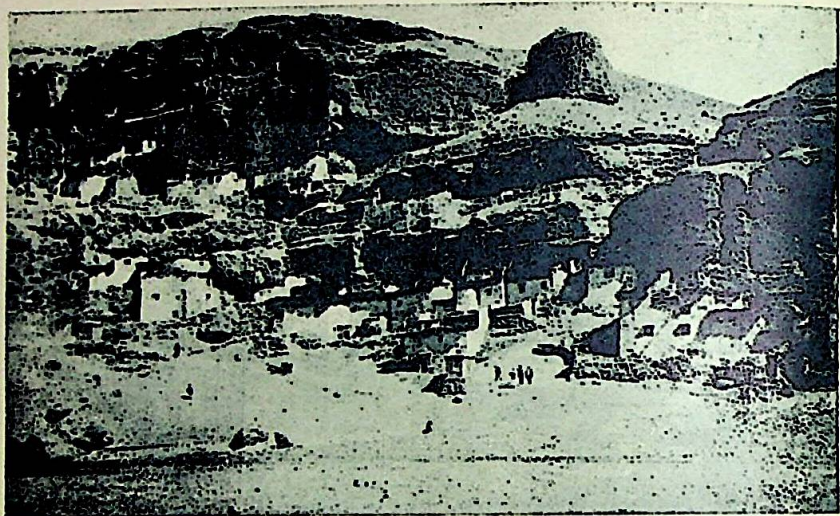
गुकुङ—गुफाओं में स्थित एक गाँव

[देखो पृ० ३०२
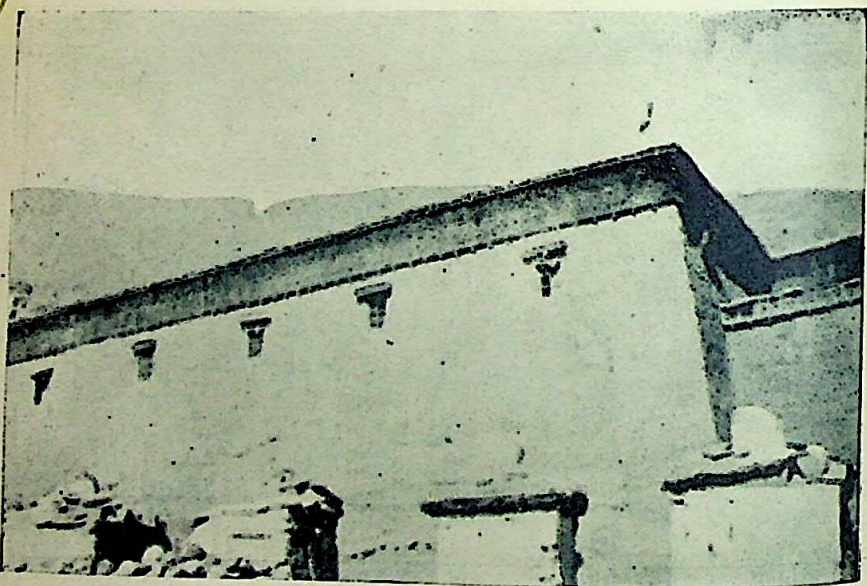
खोचार गोम्पा

[देखो पृ० १७६

अवलोकितेश्वर मंजुश्री वज्रपाणि

शङशङ गाबो ज़ोकरो शङशङ

सिंह सिंह

मयूर मयूर

चक्र, मणि, रानी, कुबेर, दिव्याश्व, ऐरावत, उत्तम नेता
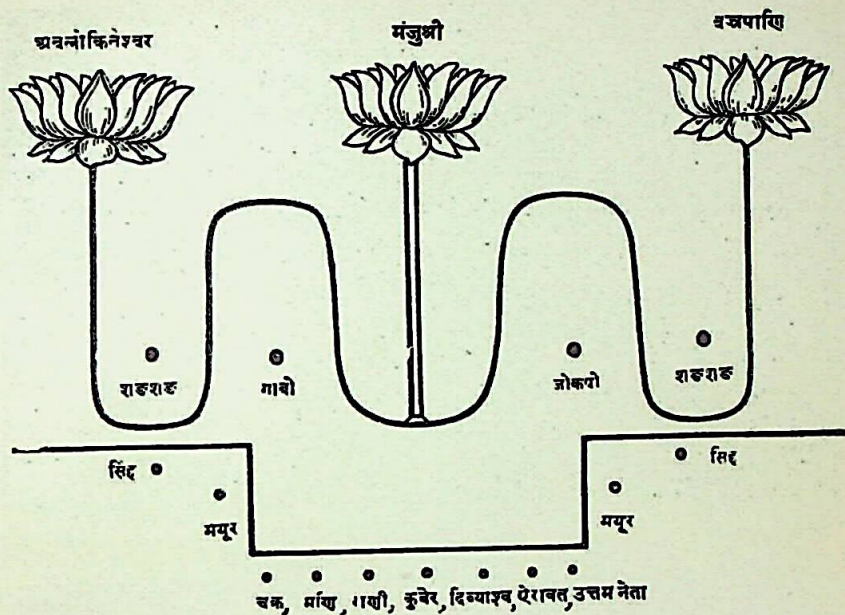
खोचार गोम्पा में सिंहासन

[देखो पृ० १८०

तोयो में जनरल जोरावरसिंह की समाधि

[देखो पृ० २१८
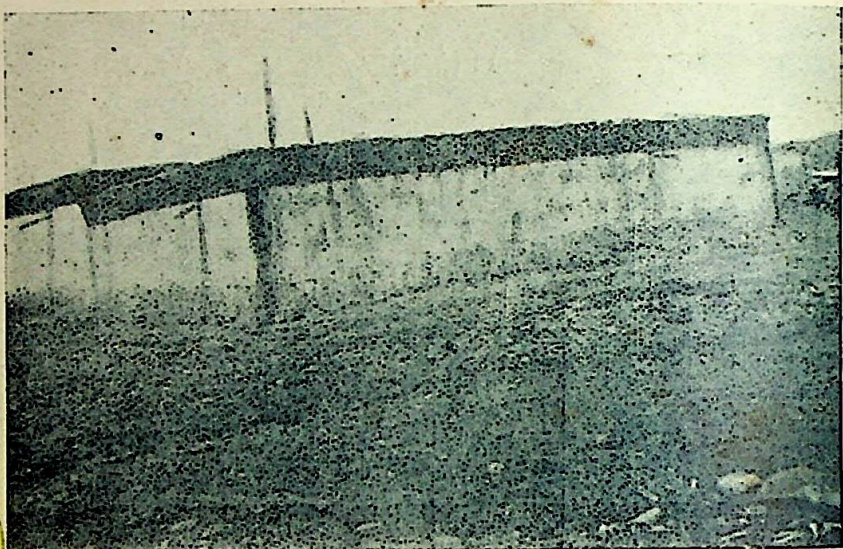
येर्नगो गोम्पा—मानसरोवर का सातवाँ मठ

[देखो पृ० ३५६
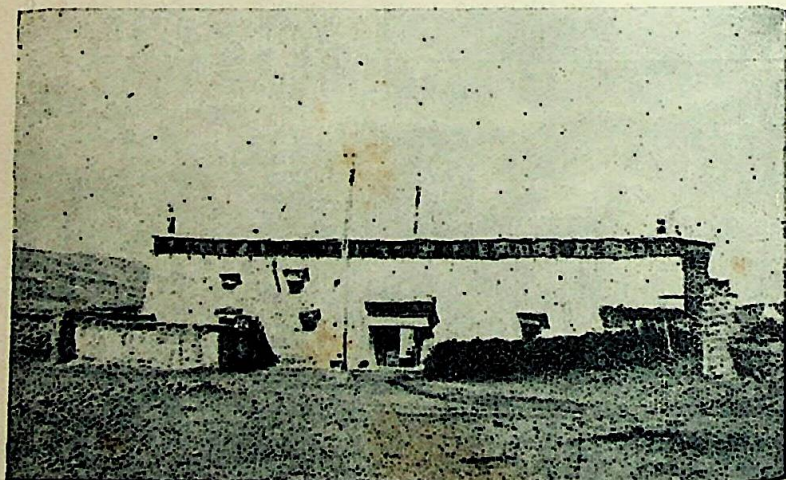
ठुगोल्हो गोम्पा—मानसरोवर का आठवाँ मठ

[देखो पृ० ३५६

जोरावर सिंह के यहाँ आने से गढ़वाल और अलमोड़े के भोटियों के व्यापार में बहुत अड़चन पड़ गई, क्योंकि उन्होंने यह यत्न किया कि पश्चिमी तिब्बत का सारा ऊन का व्यापार काश्मीर की ओर खींच लिया जाय। उस समय नेपाल सरकार ने भी सुअवसर पाकर जंबू नरेश तथा लाहौर के सिक्ख दरबार से मिलकर अपनी सरहद के तिब्बती प्रांतों को लेना चाहा। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेज़ सरकार बहुत चिंतित हुई, क्योंकि हिमालय के पीछे इस प्रकार के मेल से भारत की सीमा पर उपद्रव का कारण खड़ा हो गया था। दूसरा कारण यह भी था कि अंग्रेज सरकार उस समय चीन के साथ युद्ध में लगी हुई थी, अतः लाहौर और जंबू के राजाओं पर दबाव डालने के लिये जे० डी० कन्निंगहम को लाहौर भेजा—यह बात कहने के लिये कि दिसंबर मास तक गरतोक का प्रांत ल्हासा सरकार को वापस लौटा दिया जाय और जोरावर सिंह को जंबू तुरंत बुला लिया जाय। पर संयोग से दिसंबर मास में ही जोरावर सिंह मार डाले गए। युद्ध का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

जोरावर सिंह के तकलाकोट पहुँचने तक शीतकाल तीव्रता से प्रारंभ हो चुका था। और वे शीतकाल की समाप्ति पर पूर्व की ओर बढ़ कर सारे तिब्बत को जीत लेना चाहते थे। अतः पहले अपनी स्त्री को गरतोक पहुँचा देने की इच्छा से अपने सेनापति बस्तीराम को सेना-सहित तकलाकोट में रखकर कुछ सिपाहियों के साथ वहाँ से चल पड़े। और गरतोक में स्त्री को पहुँचा कर लौटते समय तकलाकोट से तीन ही मील की दूरी पर तोयो गाँव के पास चीन और ल्हासा से आई हुई बड़ी सेना का उन्हें सामना करना पड़ा। तिस पर भी ये बड़ी शूरवीरता से लड़े। पर अपने मुट्ठी भर सिपाहियों की सहायता से इतनी बड़ी सेना का कितनी देर तक सामना कर सकते थे! इनकी अनुपम वीरता को देखकर तिब्बतियों ने इन्हें तांत्रिक समझा। उनका विश्वास है कि तांत्रिक शीशे की गोली से नहीं, किंतु सोने की गोली से मरते हैं। अंत में तोयो मकपोन (पटवारी) के मकान की खिड़की से उन लोगों ने एक सोने की गोली से

जोरावरसिंह को मार गिराया[1]। उनका शिर और दाहिना हाथ काट लिया गया, जो सिबिलिङ गोम्पा में रक्खे गए, और उनके मुंड के ऊपर एक छोरतेन निर्मित किया गया। एक अन्य गाथा के अनुसार जोरावर सिंह के शरीर के मांस का एक टुकड़ा और उनके सूबेदार का सिर और हाथ सिबिलिङ गोम्पा में एक बंद पेटी में सुरक्षित रक्खा गया है। प्रति तीसरे वर्ष फाल्गुन के महीने में उनका एक बार प्रदर्शन किया जाता है। जोङ के भवन के पूर्व में स्थित एक मकान में जोरावर सिंह के नौ सिपाहियों का सिर और उँगलियाँ रक्खी गई हैं। भारत के उस वीरपुत्र के स्मारक-रूप में एक समाधि अब तक तोयो गाँव के बीच रास्ते में विद्यमान है। उसकी अवस्था अब बिगड़ती जा रही है। अपने वीर सेनापति की इस समाधि को सुरक्षित करने के लिये काश्मीर सरकार को चाहिये था कि कुछ प्रबंध करे। जोरावर सिंह की वीरता की प्रशंसा और चर्चा अब तक पुरङ में होती है। उनके सम्मानार्थ उस समाधि की कभी-कभी पूजा भी की जाती है। नेपाली और भोटिये भी इनकी बहुत प्रशंसा करते हैं। पुरङ में यह सिंगी गेलबो, सिंगी राजा, या सिंगबा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तोयो में जोरावर सिंह को मारकर तिब्बती सेनाएँ आगे तकलाकोट की ओर बढ़ीं। यह सुनते ही बस्तीराम और उनके साथ के सिक्ख सिपाही भारत की ओर उसी कड़ा ठंढक में ही चल पड़े। अत्यधिक शीत पड़ने के कारण इन लोगों को बंदूकों के कुंदे जलाकर हाथ गर्म करने पड़े। लीपू लेक को पार करते समय ठंढक के कारण कुछ तो बर्फ में ही मर गए और बचे हुए कुछ सिपाही अपनी हृदय-विदारक दुःखवार्ता को सुनाने के लिये भारत पहुँच आए। उस समय उन्होंने अपने पास बची हुई तलवारें, कवच आदि को मार्ग में भोजन के लिये बेच डाला था, जो अब तक कई ब्यांस और चौदांस के लोगों के घरों में और अस्कोट के रजवाड़ों के यहाँ रखे गए हैं,

---

[1]जोरावरसिंह की मृत्यु का कारण पुरङ के कुछ बुड्ढे लोग ऐसा बताते हैं कि जोरावरसिंह के एक सेवक ने, जो उन पर रुष्ट था, तोयो के पास पहुँचने पर उन्हें निशस्त्र देखकर अचानक छुरी से मार डाला।

उन लोगों के सिक्के भी कुछ लोगों के पास अभी तक सुरक्षित हैं।

तिब्बती सेना तकलाकोट पहुँच कर जोरावरसिंह की बची हुई सेना को बंदी बनाकर ल्हासा ले गई। उनमें से बहुत से मुसलमान थे। जिन मुसलमान सिपाहियों ने मठों के जलाने में तथा मूर्तियों को तोड़ने में भाग लिया था, उन्हें बुरी तरह से मार डाला गया, और दूसरे लोगों को वहीं बसा लिया गया। कहा जाता है कि आजकल ल्हासा में जो मुसलमान बसे हुए हैं, वे उन्हीं के वंशज हैं। पराजित जोरावर सिंह और उनके सिपाहियों के कवच, तलवारें, ढाल, भाले, बंदूकें, और फरशे अब तक सिंबिलिङ और कैलास के न्यनरी, गेङटा, और दूसरे मठों में रखे हुए हैं।

तोयो और तकलाकोट के मध्य में छेमो छोरतेन नामक गाँव में दो बड़े-बड़े छोरतेन बने हैं, जो जोरावर सिंह के सूबेदारों के बताये जाते हैं। 'वेस्टेर्न टिबेट' नामक ग्रंथ में शेरिंग लिखते हैं—"जोरावर सिंह के शव पर झपट कर तिब्बतियों ने चील के पर के समान उनके बालों को उखाड़ लिया और अपने घर ले गए—यह विश्वास करके कि वे भविष्य में कल्याणकारक होंगे। उसके बाद जोरावर का मांस छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर पुरङ में प्रत्येक कुटुंब को एक एक टुकड़ा बाँटा गया। ये टुकड़े घरों में छत से लगाकर टाँगे गए, ताकि घर में रहने वाले लोगों में वीरता का संचार हो। यह भी अफवाह थी कि उन मांस के टुकड़ों से कई दिनों तक मेद निकलता रहा। इससे अविश्वासी भी जोरावर की वीरता को मानते थे। बाद में जोरावर की हड्डियों के ऊपर तोयो गाँव में एक समाधि बनी।" शेरिंग की उपर्युक्त बातें कहाँ तक सत्य हैं मैं नहीं बतला सकता, क्योंकि सारे मानसखंड में इन बातों की पुष्टि करनेवाला कोई तिब्बती मुझे नहीं मिला।

आगे चलकर शेरिंग ने इससे भी बढ़कर एक विचित्र बात लिखी है—"एक मुट्ठी भर आदमी साथ लेकर जब जोरावर सिंह तकलाकोट लौट रहा था, तो उसने देखा कि तकलाकोट और उसके बीच में तिब्बती सेनाएँ विद्यमान थीं। निदान तोयो के पास दोनों में युद्ध हुआ और घुटने में चोट आने पर घोड़े से गिर कर जोरावरसिंह मर गए। तिब्बती सेना को अधिक संख्या में देख कर

जोरावर के सिपाहियों ने हथियार डाल दिए और दया-भिक्षा के लिये आत्मसमर्पण कर दिया। तिब्बतियों ने उन सबको भेड़ों की भाँति कत्ल कर डाला।... तिब्बतियों ने अनेक सहस्र सिक्ख सिपाहियों के शिर बड़ी क्रूरता के साथ काट डाले और बस्तीराम कुछ सिपाहियों के साथ पाला भाग गया।" इससे स्पष्ट है कि शेरिंग ने इस कथा के बारे में बढ़ाकर लिखा है, क्योंकि वे एक स्थान पर तो लिखते हैं कि उस समय "जोरावर के पास मुट्ठी भर आदमी थे।... जोरावर सिंह की कुल सेना पंद्रह सौ सिपाहियों की थी जिनमें कुछ तो बस्तीराम के साथ भाग गए।" और साथ ही यह भी लिखते हैं कि कई सहस्र सिक्खों को तिब्बतिओं ने कत्ल कर डाला।

इस युद्ध के बाद सन् १८८२ की वसंत ऋतु में विजयी तिब्बती सेनाओं ने सिंधु नदी के किनारे-किनारे जाकर अपने सूबों को वापस ले लिया और लदाख़ जाकर उसकी राजधानी लेह को घेर लिया, परंतु राजा गुलाब सिंह की सेना ने जाकर लेह और रुदोक़ के बीच में उसको घेर लिया। इसलिये दोनों पक्षों में संधि हो गई और यह निश्चित हुआ कि राजा गुलाब सिंह के लिये लदाख़ का प्रांत छोड़ दिया जाय, और लदाख़ का पूर्वी प्रांत तिब्बत के ही अधीन रहे; और अल्मोड़ा और पश्चिमी तिब्बत के बीच का ऊनी व्यापार पूर्ववत् चलता रहे। इसके बाद १६-३-१८४६ में राजा गुलाबसिंह और ब्रिटिश सरकार के बीच में संधि हुई, जिसके अनुसार ७५ लाख नानकशाही रुपये राजा गुलाब सिंह ने अंग्रेज़ सरकार को देकर काश्मीर मोल ले लिया। तभी से गुलाब सिंह जंबू और काश्मीर के महाराजा हुए। उपर्युक्त संधि की ग्यारहवीं शर्त के अनुसार राजा गुलाब सिंह ने ब्रिटिश सरकार की अधीनता स्वीकार कर ली और प्रतिवर्ष उनको एक घोड़ा, उत्तम ऊन वाले छः बकरे तथा छः बकरियाँ, और तीन जोड़े काश्मीरी शाल देने का वायदा किया।

भारतीय वीर जनरल जोरावर सिंह की मृत्यु शताब्दी ३०-१०-१६४२ को तकलाकोट मंडी में श्री दारमा सेवा संघ की ओर से मनाई गई। उस अवसर पर लेखक ने पुरङ घाटी के तिब्बतियों से जोरावर सिंह के ढाल आदि कई वस्तुओं को लाकर सर्वसाधारण के बीच प्रदर्शन किया था।

७—कज्ज़ाकी घुमक्कड़ों की लूटमार

जोरावर सिंह के युद्ध के ठीक सौ वर्ष बाद सन् १९४१ में रूस के किरघिज-कज्जाकिस्तान के लगभग तीन हजार घुमक्कड़ों ने अप्रैल के महीने में चङथङ नामक तिब्बत के उत्तरी सूबे में प्रवेश किया। ये कज्जाकी लोग घुमक्कड़ थे, जो रूसी सरकार के बहुत प्रयत्न करने पर भी एक जगह नहीं बसाये जा सके। इनका कोई विशेष धर्म नहीं, यद्यपि वे अपने देश में मुसलमानों में गिने जाते हैं। ये लोग अपने बाल बच्चे, तंबू, तथा सारे सामान को ऊँटों पर लादकर तीन वर्ष तक चीन में घूमते-घूमते यहाँ पहुँचे, और उन्होंने पश्चिमी तिब्बत पर चढ़ाई करके मार्ग के सभी गोम्पाओं को तथा मानसरोवर के आठ मठों को लूट लिया। ये ब्रह्मपुत्र के किनारे टमूसङ नामक स्थान पर डेरा कर पंद्रह-पद्रह, बीस बीस घुड़सवारों के जत्थों में निकल कर आस-पास के स्थानों को लूटते थे। नेपाल में प्रवेश करने के लिये एक जत्था उसकी सीमा पर गया। वीर गुरखे सिपाहियों ने कुछ कज्जाकी लुटेरों को बंदूकों से से उड़ा दिया; इस कारण पुनः नेपाल में प्रवेश करने का उनका साहस जाता रहा और वे मानसरोवर की ओर चले गए।

इन कज्जाकी लुटेरों ने मठों और मकानों को तोड़कर जला दिया। तिब्बतियों के धर्म-ग्रंथों को हवा में उड़ा दिया। इस प्रकार के फेंके हुए ग्रंथों में से दो-चार को मैंने भी एकत्र किया। कई स्थानों में मठों के ऊपर लगे हुए झंडों को भी जलाकर भस्म कर दिया। लूटे गये कुछ व्यक्तियों से मैं मिला; उनमें से एक की रामकहानी सुनाता हूँ, जो इस प्रकार है—लदाख़ का एक प्रतिष्ठित लामा ल्हासा से अपने देश जा रहे थे, मयुम ला के पास इनको कज्जाकियों ने लूट कर बिलकुल नंगा छोड़ दिया। इनके साथ अठारह आदमी और एक सौ लद्दू जानवर थे, जिनमें सोने और चाँदी की बहुत-सी मूर्तियाँ तथा सिक्के लदे थे। राज्य-संस्करण के कंजूर और तंजूर के एक सौ आठ और तीन सौ अढ़तीस पोथियों को निर्दयतापूर्वक इधर-उधर फेंक दिया। जब कज्जाकी लोग मानसरोवर के उत्तरी किनारे पर पहुँचे तब उनके पास एक

लाख भेड़ बकरी, चार हजार याक, और दो हजार घोड़े, पचासों बंदूकें और कारतूस, मूर्तियाँ, आभूषण, रत्न और सिक्के के रूप में सहस्रों रुपयों का सोना-चाँदी था। इनके तंबू मानसरोवर के किनारे पंद्रह मील तक फैले हुए थे। इन लोगों के मानसरोवर के उत्तरी किनारे पर पहुँचने तक (जुलाई से सितंबर तक) मैं मानसरोवर के दक्षिणी किनारे पर ठुगोल्हो मठ में था।

तरछेन के भूटानी अफसर ने अपने मकान की किलेबंदी करके बंदूक और कारतूसों के साथ तैयारी की थी, जिसके कारण कैलास के गोंपाओं को ये लोग नहीं लूट सके। कैलास और मानसरोवर के मध्य परखा के मैदान में ये लोग डेरा डाल कर पुरङ-तकलाकोट दून में और वहाँ से लीपूलेख घाटा होकर अल्मोड़े ज़िले में प्रवेश करना चाहते थे। इस उद्देश्य से पहले-पहल सत्तर-अस्सी घुड़-सवारों का एक जत्था तकलाकोट जाने के लिये तैयार होकर, राक्षसताल के छेपगे गोम्पा को लूटने के लिये गए। यद्यपि उस समय छेपगे गोम्पा में तीन ही व्यक्ति थे, तथापि भीतर से उन लोगों ने एक बंदूक से लुटेरों की नेत्री और एक प्रधान को मार डाला। इसलिये तकलाकोट और भारत जाने का इरादा छोड़-कर वहाँ से भाग जाना ही कज्जाकियों को उचित समझ पड़ा। उस मरी हुई नेत्री का हृदय तथा शिर छेपगे गोम्पा में अब तक विजय-चिह्न के रूप में रखा हुआ है। शव का मुंड गोम्पा से थोड़ी दूर पर जमीन में गाड़ दिया गया। दो-तीन दिनों तक ये छकरा मंडी को लूटने के लिये गए, परंतु भोटिया व्यापारियों तथा तिब्बती लोगों ने मिलकर एक पर्वत की चोटी पर किलेबंदी कर ली, जहाँ सशस्त्र रात दिन पहरा करते रहे जिससे वहाँ पर इनकी दाल नहीं गल सकी। आगे चल कर तीर्थपुरी, गुरुगेम, ख्युङलुङ, मिस्सर, गरतोक, और गरगुनसा आदि स्थानों में जोहारी व्यापारियों के लगभग एक लाख रुपये के कपड़े, घोड़े, बकरी, भेड़ आदि को लूट लिया। फिर पश्चिमी तिब्बत की गरतोक और गरगु-नसा राजधानी को पूर्ण रूप से नष्ट करके नवंबर मास में लदाख़ में प्रवेश किया। काश्मीर की सीमा पर काश्मीरी पलटन ने इन कज्जाकी लुटेरों का सामना करके सभी शस्त्र छीन लिये और आगे जाने का मार्ग दे दिया। लगभग सन् १९४१ के अंत में भारत सरकार ने हजारा जिले में इनके बसने का

तात्कालिक प्रबंध कर दिया और मई १९४२ से फरवरी १९४३ तक उनके लिये लगभग २३८००० रुपया व्यय किया। अब निजाम और भूपाल की सरकारें स्थायी रूप से इनके बसाने का यत्न कर रही हैं।

८—नेपाल और तिब्बत

सातवीं शताब्दी में सम्राट् स्रोङ्चेन गोंपो के नेपाल पर विजय करने के समय से इन दोनों देशों का विशेष संबंध प्रारंभ हुआ। इसके पश्चात् नेपाल से कई पंडित बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ तिब्बत गए थे। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये गये हुए प्रायः सभी भारतीय आचार्य और पंडित नेपाल होकर ही गए थे। और उसी प्रकार सारे तिब्बती पंडित नेपाल होकर ही भारत आए। आज भी नेपाल के अंदर तिब्बत की सीमा पर बहुत से बौद्ध धर्मावलम्बी तिब्बती हैं। नेपाल की राजधानी काठमांडू में बौद्धों के तीन महान तीर्थ हैं —(१) काठमांडू के दो मील पश्चिम में स्वयंभू (पगवा शिंगुन), (२) ईशान कोण में तीन मील पर महाबोधि (चरुंग खाशुर), और (३) आग्नेय कोण में तीन मील पर नमोबुद्धाय (तामो लूंजिन) इनके दर्शन के लिये मानसखंड और तिब्बत के अन्य प्रांतों से बहुत-से तिब्बती यात्री जाते हैं।

सन् १७६० में जब नेपालियों ने तिब्बत पर चढ़ाई की तब चीनी सेनाओं ने आकर नेपालियों का काठमांडू तक पीछा किया और हरा दिया। काश्मीर के जनरल जोरावर सिंह के पश्चिमी तिब्बत पर चढ़ाई करने के अनंतर सन् १८५४ या १८५६ में नेपाल और तिब्बत के बीच युद्ध छिड़ा। उस समय नेपालियों ने पुरङ-तकलाकोट पर चढ़ाई करके तिब्बतियों को हरा दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप तिब्बत प्रतिवर्ष नेपाल को १०००० नेपाली मुहर (३७५० रुपया) अब तक देता है। उसी चढ़ाई में शिद्दिखर के कोट को नेपालियों ने तोड़ डाला, जिसके ध्वंसावशेष अब तक विद्यमान हैं। इस युद्ध के परिणाम-स्वरूप ल्हासा में नेपाल का राजदूत नियुक्त हुआ। इसके अतिरिक्त नेपालियों को तिब्बत में व्यापार-संबंधी विशेष सुविधाएँ भी मिलीं। ल्हासा, ग्यांची, शिगर्ची, और नन्यू में एक प्रकार के न्यायाधीश भी नियुक्त हुए,

जो नेपाली प्रजा के मुकदमों का फैसला करते हैं।

पुनः सन् १९२९ में इन दोनो देशों में अशांति मचने की परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी, पर १९३० के प्रारंभ में यह परिस्थिति शांत हो गई। सन् १९४१ में जब रूस के कज्जाकी घुमक्कड़ों ने पश्चिमी तिब्बत पर चढ़ाई की थी तब नेपाल सरकार तिब्बत को सहायता देना चाहती थी और इसी आशय से तकलाकोट के जोङ को ख़बर भी भेजी गई थी, परंतु तिब्बत सरकार ने नेपाल की सहायता को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनको आशंका थी कि पहले की भाँति दंड न देना पड़े। तकलाकोट में गुकुङ के पास और पुरूरव में नेपालियों की मंडी लगती है, जहाँ अनाज और लकड़ी के बर्तन आदि वस्तुएँ अधिकता से बिकती हैं।

६—भूटान के उपनिवेश

आज से लगभग तीन सौ वर्ष पहले (ठीक तिथि का पता नहीं लग सका) ङावा नमूग्यल नामक एक प्रसिद्ध डुकपा (भूटान निवासी) लामा को तिब्बत सरकार से तरछेन नामक गाँव मिला था। विख्यात व्यक्ति होने के कारण उन्होंने न्यनरी, जुंठुलफुक् आदि कई गोम्पाओं का निर्माण किया, और कई स्थानों पर अधिकार भी जमा लिया। तभी से ये स्थान भूटान के भिक्षुओं द्वारा शासित होते आए हैं; अर्थात भूटान के अंतर्गत होकर उसके शासन में आ गए। कैलास के न्यनरी और जुंठुलफुक् मठों में लामा ङावा नमूग्यल की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं।

पश्चिमी तिब्बत में तरछेन ग्राम और कैलास के न्यनरी और जुंठुल-फुक् नामक गोम्पा, मानसरोवर का चेरकिप गोम्पा, पुरङ का दुङमर, रिंगुंग, दोह, और खोचार, गरतोक के पास के गेज़ोन गोम्पा, इछे गोम्पा, गुनफु, गेसुर, समर, और कुछ अन्य स्थान भूटान राज्य के लामाओं के उपनिवेश हैं। तरछेन में भूटान के लामाओं का एक बड़ा भारी भवन है। इसी भवन को केंद्र बना कर भूटान देश के एक भिक्षु-प्रतिनिधि उपर्युक्त सभी स्थानों का शासन करते हैं। इनके कोट के समान भवन को देखकर ही सन् १९४१ में कज्जाकी डाकुओं

ने कैलाश के गोम्पाओं पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

१०—सिक्का

टंका या टंगा तिब्बत में प्रचलित चाँदी का सिक्का है। यह भारत की चाँदी की चवन्नी जैसा मोटा और और अठन्नी जितना बड़ा होता है। टंका को काट कर उसे दो बना देते हैं और उनके चंद्राकार किनारों को छोड़ कर बीच का अंश निकाल लेते हैं। ये आधे टंके हैं, जो 'जव' के नाम से पुकारे जाते हैं। खगंग ($\frac{1}{6}$ टंका), करमाङ्गा ($\frac{1}{3}$ टंका), छेग्ये ($\frac{1}{2}$ टंका), शोगंग ($\frac{2}{3}$ टंका) के तांबे के सिक्के ल्हासा के प्रांत में प्रचलित हैं। नौ-दस वर्ष से कागज के नोट, चाँदी के रुपये (सङ्सुम) और अठन्नी (चुगुर या टमचू) भी बनने लगे हैं। यहाँ के रुपये और अठन्नियों की चाँदी भारतीय सिक्कों की चाँदी से अच्छी होती है; किंतु अंगरेज़ी रुपये का दाम अधिक है। भारत के रुपये तिब्बत भर में बेरोक-टोक व्यवहृत होते हैं, परंतु नोट नहीं। आजकल मानसखंड में भारतीय रुपये के आठ टंके मिलते हैं और पूर्वीय तिब्बत में दस से बारह तक मिलते हैं। भारत के रुपये को गोरमो या कंफनी कहते हैं। तिब्बती रुपये आजकल पांच टंकों में भुनते हैं।[1]

इनके अतिरिक्त नेपाली रुपया और मुहरें तिब्बत की मंडियों और आस-पास के मैदानों में खुले तौर से चलती हैं। तिब्बती भाषा में नेपाली रुपया को 'ढक' और मुहर को 'गुटंग' कहते हैं। ये छः और तीन टंके के समान हैं। मंडियों में चाँदी के चीनी सिक्के भी चलते हैं, जो १, १$\frac{३}{८}$, और २$\frac{३}{४}$ तोले के होते हैं। इनका भाव अनिश्चित है।

११—मानसखंड के प्रसिद्ध यात्री[2]

पुराणों में कहा गया है कि मानसखंड में प्राचीनकाल में परम शिव

---

[1]ये सब सन् १९४२ के अंत तक के भाव हैं। इस वर्ष टंके का भाव बढ़ने की बात सुनने में आ रही है।

[2]यह शीर्षक मेरे मित्र, सरस्वती प्रकाशन-मंदिर के अध्यक्ष श्री शालिग्राम

और ब्रह्मा ने तपश्चर्या की थी। मरीचि, वशिष्ठादि महर्षियों ने यहीं पर बारह वर्षों तक तप किया था। ऋषि दत्तात्रेय ने मानसरोवर में स्नान कर कैलास, शिव, और पार्वती के दर्शन किए था। कृतयुग में मांधाता आदि, त्रेता में रावण भस्मासुर आदि ने यहीं पर सदाशिव की तपस्या की थी।

महाभारत में सभापर्व के १६वें और २८वें अध्याय में अर्जुन की दिग्विजय के संबंध में लिखा गया है कि मानसरोवर के पास पहुँचकर गंधर्वों के देश को जीत कर वे वहाँ के राजा से कई प्रकार के उच्चकोटि के घोड़े, दिव्य वस्त्र, दिव्य अस्त्र, चर्म, स्वर्ण, और रत्न आदि लाये। आगे चलकर ५२वें अध्याय में यज्ञ के वर्णन में लिखा है कि मेरु और मंदर पर्वतों के मध्य के राजा लोग युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ में भेंट करने के लिये निम्न वस्तुएँ ले आए—चंद्रमा की कांति के समान प्रभावशाली मणि, काले और लाल रंग के चँवर, बहुत बलवर्द्धक औषधियाँ आदि। इससे प्रतीत होता है कि ये वस्तुएँ मानस-खंड से ही आई हैं, और अर्जुन अवश्य मानसखंड में गए होंगे। ऐसी गाथा है कि द्वापर और कलि के संधिकाल में व्यास और भीमसेन, और एक बार कृष्ण भगवान् और अर्जुन कैलास के दर्शन के लिये गए थे। अति प्राचीन-काल से अनेक ऋषि और महर्षिगण कैलास और मानसरोवर के दर्शनार्थ तथा वहाँ पर रहकर तपस्या के लिये जाते रहे हैं।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि सम्राट् अशोक द्वारा नियुक्त होकर कुमायूँ के कत्यूरी राजा नंदीदेव ने ऊँटाधुरा के मार्ग से मानसखंड पर चढ़ाई की थी और वहाँ हूणियों (तिब्बतियों) को परास्त कर अपना आधिपत्य स्थापित किया। कैलास के दर्शन कर वे मानसरोवर में स्नानादि करके भारत लौट आए। पुनः दूसरे वर्ष मानसखंड मे गए। पांडुकेश्वर[1] के मदिर में विद्यमान ताम्रपत्रों

जी वर्मा एम० ए० के सुझाव पर लिखा गया है। इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

[1]यह गाँव जोशी मठ और बदरीनाथ के मध्य में है। ताम्रपत्र मंदिर में रखे हुए हैं, जो विक्रम संवत् २५ के हैं।

से विदित होता है कि कत्यूरी राजा ललित सूरदेव और देशट देव ने ई० शताब्दी से पूर्व मानसखंड (हूण देश) पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त की थी। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसांग (युआन-च्वाङ, सन् ६३५) अपनी भारत-यात्रा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि कुमायूँ के कत्यूरी राजवंश छठीं शताब्दी में मानसखंड पर शासन करते थे। सातवीं शताब्दी में इछिङ और कतिपय चीनी यात्री (सन् ६७५—६८५) मानसखंड होकर भारत के नालंदा विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म का अध्ययन और बौद्ध तीर्थों के दर्शन के लिये गए थे।

कङरी-करछक में लिखा है कि गेवा गोजङ्या ने कैलास और मानसरोवर की परिक्रमा के मार्ग का पता सर्व प्रथम लगाया; परंतु उनके समय का ठीक पता अब तक नहीं लगा। एक समय भारत से सात कन्याएँ मानसरोवर गईं, और सरोवर के नैऋत कोण में मोमो दुनगू (सात कन्याओं) के पास पत्थरों का सात ढेर लगाया। कहा जाता है कि ये पत्थर भी भारत से ले जाये गए हैं। वे हलके पिरोजी रंग के हैं। इनकी आकृतियाँ तिब्बती चाय की ईंट, थूँ, और गुड़ की भेली जैसी हैं।

कहा जाता है कि जगत्‌गुरु आदि शंकराचार्य कैलास यात्रा के लिये गए थे और वहीं पर उन्होंने शरीर त्याग किया। भारतीय पंडितों के अनुसार उनका समय ईसा से पहले का है और पाश्चात्य पंडितों के अनुसार वे आठवीं शताब्दी के माने जाते हैं।

तिब्बतियों का कहना है कि नवीं शताब्दी के प्रारंभ में नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य शांतरक्षित[1], जिन्होंने तिब्बत में सर्वप्रथम मठ का निर्माण कराया था, मानसखंड में यात्रा के लिये गए थे। नवीं शताब्दी में कुछ चीनी भूगोल शास्त्री और अफसर लोग मानसखंड में आकर भूगोल से संबंध रखनेवाली सामग्रियों को एकत्रित करके चीन वापस गए और वहाँ जाकर उन्होंने मानसखंड के मानचित्र बनाए। सन् १०२७ में काश्मीर के पंडित सोमनाथ ने

---

[1] इनका जीवनकाल सन् ७४० से ८४० तक है। इनके और इछिङ के मानसखंड जाने का विश्वस्त ऐतिहासिक आधार नहीं मिला।

मानसखंड में जाकर 'कालचक्र ज्योतिष' को तिब्बती भाषा में अनुवाद करके प्रभवादि संवत्सर के बृहस्पति-चक्र का प्रचलन किया। इनके साथ लक्ष्मीकर और दान श्रीचंद्र राहुल भी थे।

ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत का विख्यात तांत्रिक सिद्ध और कवि जिचुन मिलारेपा[1] (जिसका जन्म १०३८ में और मृत्यु १११२ में हुई) और उनके गुरु लामा मरपा ने कैलास के पास रहकर तपस्या की थी तथा बहुत दिनों तक मानसखंड में निवास कर विचरण किया था। मिलारेपा और उनकी सिद्धियों के बारे में कई कथाएँ प्रचलित हैं। उनकी जीवनी और कविताएँ तिब्बती भाषा में छपी हुई हैं और वे बहुत प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि उन्होंने कैलास के पास नग्न रहकर कई वर्षों तक केवल बिच्छू बूटी खाकर ही तपस्या की थी। बिच्छू बूटी के खाने से उनका शरीर भी इतना हरा हो गया था कि हरी झाड़ियों के बीच उन्हें पहचानना कठिन होता था।

एक बार मिलारेपा की बहन उनका दर्शन करने गई, और उन्हें नंगा देखकर कहा—"तुम्हें लज्जा नहीं आती, तुम नंगे रहते हो!" यह

---

[1] सिद्ध मिलारेपा की गुरुपरंपरा इस प्रकार है—

तिलोपा (तिलोवा)
|
नरोपा (नरोवा) (१०४०)
|
लामा मरपा (मरवा)
|
जिचुन मिलारेपा (१०३८—१११२)
|
थकपो लहनजिर

तिलोपा वंगदेश के प्रसिद्ध तांत्रिक थे। नरोपा काश्मीरी पंडित थे। लामा मरपा तिब्बती और गृहस्थ-लामा थे। मिलारेपा और उनके शिष्य भी तिब्बती थे। उनकी शिष्यपरंपरा अब तक करग्युडपा संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है।

कहकर उसने पहनने के लिये एक वस्त्र दे दिया। मिलारेपा ने उस वस्त्र को फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और अंगुलियों को लपेट कर कहा कि 'जो अंग जन्म के साथ उत्पन्न न होकर बाद में उपजता है, उसे ढकने के लिये कपड़े की आवश्यकता पड़ती है। मैं जैसा आया था अब भी वैसा ही हूँ। मुझे लज्जा किस बात की और कपड़ा किस काम का।" कैलास-पुराण में लिखा हुआ है कि जब पहले पहल मिलारेपा मानसखंड आ रहे थे तो कैलास और मानसरोवर के समस्त देवगण उनका स्वागत करने के लिये टग नदी तक गए। वहाँ से आगे जाने पर मानसरोवर के पास पोन धर्मावलंबी विपक्षी नरोपुंजुङ से उनका सामना हुआ। नरोपुंजुग ने अपनी सिद्धि का प्रदर्शन करने के लिये दोनों टाँगों को बढ़ा लिया और मानसरोवर के दोनों किनारों पर दोनों पैरों को रख कर खड़े हो गए। मिलारेपा ने इसका उत्तर देने के लिये समस्त मानसरोवर को अपनी अंजलि में उठा लिया, जिससे सरोवर का जल उनकी गर्दन तक आ गया। वहाँ से दोनों कैलास की परिक्रमा के लिये चले। न्यनरी गोम्पा के पास मिलारेपा ल्हा छू के दाहिने किनारे के पर्वत की एक गुफा में बैठे हुए थे। नरोपुंजुङ नदी के बायीं ओर के पर्वत की गुफा में टिके हुए थे। मिलारेपा ने अपनी टाँगें फैला कर नरोपुंजुंग की गुफा[1] में छाप लगाया, जो अब भी दिखाया जाता है। तब नरोपुंजुङ भी पैर फैलाकर मिलारेपा की गुफा में छाप लगाना ही चाहते थे कि उनके पैर बीच ही में नदी में गिर पड़े, जिससे आकाश हँस पड़ा।

इस प्रकार इन दोनों द्वारा प्रदर्शित अनेक सिद्धियों का विशद वर्णन किया गया है। विस्तार-भय से उन सबों का उल्लेख यहाँ पर नहीं किया जा रहा है। केवल एक घटना मात्र दी जा रही है। नरोपुंजुङ कैलास की उल्टी परिक्रमा करने वाले थे और मिलारेपा सव्य-प्रदक्षिणा करने वाले थे। कैलास पर आधिपत्य जमाने के लिये दोनों में कई प्रकार की सिद्धियों का प्रदर्शन हुआ। अंततः यह निश्चित हुआ कि पूर्णिमा के दिन कैलास के शिखर पर पहले पहुँ-

---

[1] इन दोनों गुफाओं का अंतर सीधी रेखा में पाँच-छः सौ गज़ होगा।

चनेवाले का ही कैलास पर अधिकार समझा जायगा। बस, कहने की ही देर थी। नरोपुंजुङ ने कैलास पर चढ़ना आरंभ कर दिया। और 'ङा'[1] पर चढ़ कर सारी रात पर्वतारोहण करते रहे। पर मिलारेपा उतने समय तक गाढ़ी-निद्रा में निमग्न थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल के समय जब अंशुमाली अपनी कोमल किरणों का विस्तार कर रहे थे, मिलारेपा के शिष्य ने अपने गुरु को उद्बोधित कर के कहा—"महाराज, नरोपुंजुंग तो आधे से अधिक शिखर पर चढ़ चुके और आप अभी तक सो रहे हैं।" बात हो ही रही थी कि मिलारेपा सूर्य की एक रश्मि पर आरोहण करके क्षण भर में शिखर के अग्र भाग पर पहुँच गए और वहाँ आसन बिछाकर पूजापाठ करने लगे। नीचे से आते हुए पोन धर्मावलंबी पर उन्होंने ऐसी धौंस जमाई कि वह अपने डमरू के साथ पहाड़ पर से लुढ़कता हुआ नीचे गिर पड़ा। कहते हैं कि शिखर के दक्षिण भाग में जो ऊर्ध्व-पुण्ड्र की सीढ़ी जैसा हिमरहित काला पहाड़ दिखलाई पड़ता है, वह नरोपुंजुङ की लुढ़कती हुई डमरू की रगड़ से बना हुआ है। अंततः नरोपुंजुङ ने मिलारेपा से अपनी पराजय स्वीकार की। इस प्रकार कैलास पर मिलारेपा का अधिकार हो गया। फिर नरोपुंजुङ ने मिलारेपा से अपने लिये एक स्थान की याचना की। उन्होंने एक मुट्ठी भर बर्फ लेकर फेंक दिया, जो पोनरी की चोटी पर जा गिरी और तभी से कुछ बर्फ पोनरी के शिखर पर सर्वदा विद्यमान रहती है। मरवा, मिलारेपा, और थकपोल्हनजिर—इन तीनों ने मिलकर पुरङ के लुकपू नामक ग्राम में एक शीतकाल तक रह कर तपस्या की थी।

सन् ९८० में विक्रमपुरी (भागलपुर के पास) के एक राजवंश में आचार्य श्री दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म हुआ था। नालन्दा विश्वविद्यालय में इन्होंने उच्च विद्या प्राप्त की। ३१ वर्ष की आयु तक त्रिपिटक, हीनयान, महायान, वैशेषिक, योगाचार, तंत्र और मंत्र शास्त्र में ये पारंगत हो गए। भिक्षुओं

---

[1] 'ङा' एक प्रकार की लकड़ी है, जिससे मठों में ढोल बजायी जाती है, जिसका आकार प्रश्नसूचक चिह्न (?) जैसा होता है।

में उच्च उपाधि बोधिसत्त्व की भी प्राप्ति की। तदुपरांत स्वर्णद्वीप में जाकर बारह वर्ष महापंडित धर्मपाल के पास अध्ययन किया। वहाँ से लौटकर आने के बाद विक्रमशिला विहार में मुख्य अधिष्ठाता नियुक्त किये गए; और वहाँ के अठ महापंडितों में प्रमुख हुए। पश्चिमी तिब्बत में गुगे के सम्राट् चङ्छुपओ के निमंत्रण पर आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान ने आज से ९०० वर्ष पहले (सन् ९८२-१०५४) सन् १०४२ में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ इकसठ वर्ष की आयु में पश्चिमी तिब्बत में जाकर थुलिङ मठ में नौ महीने तक निवास किया था। वहाँ के निवास के समय धर्मोपदेश के अतिरिक्त उन्होंने कई पुस्तकों का तिब्बती भाषा में स्वतंत्ररूप से प्रणयन और अनुवाद किया। यहीं पर उन्होंने अपनी 'बोधिपथ-प्रदीप' नामक प्रसिद्ध पुस्तक का प्रणयन किया था। कहा जाता है कि थुलिङ से बारह मील की दूरी पर स्थित छबरङ के गोम्पा को दीपंकर ने एक सप्ताह में बनवाया था।

सन् १०४४ में ये थुलिङ से कैलास और मानसरोवर गए और कैलास की परिक्रमा की। मानसरोवर के पहले मठ गोछुल गोम्पा में सात दिन ठहरे, फिर पुरङ में खोचारनाथ का दर्शन करने गए। ये तिब्बत में पल्देन[1] अतिशा और मरमेजे नामों से प्रसिद्ध हैं।

खोचारनाथ के मार्ग में जाते हुए गेजिन[2] नामक ग्राम में आचार्य अतिशा भिक्षा के लिये गए; परंतु वहाँ भिक्षा नहीं मिली। एक मील आगे जाने पर उनका सेवक भूख-प्यास से अति पीड़ित होकर भोजन बनाने के लिये रुक गया। सेवक के लकड़ी ढूँढ़कर ले आने तक आचार्य ने मार्ग की बायीं ओर पच्चीस गज़ की दूरी पर एक स्रोत खोद लिया था, जो अब तक डुपछू के नाम से विद्यमान है। यद्यपि उसमें जल बहुत कम रहता है

---

[1] तिब्बती भाषा में 'पल' शब्द देवता या सिद्ध महात्माओं के पूर्व जोड़ा जाता है, जैसे पलदेन अतिशा और पलदेन रहमो। गत वर्ष एक लामा ने मुझे बताया था कि 'पल' का अर्थ श्री है।

[2] यह गाँव तकलाकोट से ३$\frac{1}{4}$ मील की दूरी पर खोचारनाथ के मार्ग में है।

परंतु कहा जाता है कि वह कभी नहीं सूखता और न शीतकाल में जमता ही है। वहाँ पर यह बहुत पवित्र माना जाता है। इसका पता सन् १९४१ में मुझे लगा, इसलिये भारत के उस महान आचार्य का स्मरण करते हुये सोत के जल से मैंने तीन बार आचमन किया। गेजिन गाँव के पास ही दीपंकर का एक पादचिंह्न (शपजे) है, जो एक छोरतेन में रखा गया है। अतिशा का नाम लेते ही तिब्बतियों का हृदय श्रद्धा एवं भक्ति से भर जाता है। इससे पता लगता है कि ९०० वर्ष बाद भी तिब्बतियों पर आचार्य का कितना प्रभाव है। गेजिन से आगे चलकर आचार्य ने खोचारनाथ में चातुर्मास्य व्यतीत किये। वहाँ से लौटते समय करनाली नदी के दायें किनारे पर लोक नामक एक ग्राम में एक दिन ठहरे।

पुरङ में रहते समय डोमतोन नामक एक गृहस्थ इनका अनन्य शिष्य बन गया, जो इनके देहांत के समय तक साथ रहा। इनकी मृत्यु के बाद डोमतोन ने इनका विस्तृत जीवनचरित तिब्बती भाषा में लिखा है। अतिशा धर्म-प्रचार के उद्देश्य से पुरङ से पूर्वी तिब्बत में गए, जहाँ पर तिहत्तर वर्ष की आयु (सन् १०५४) में इनका देहावसान हुआ। इनका अस्थिसमूह और भिक्षा तथा जल का पात्र ञेथङ के तारा-मंदिर में सुरक्षित रूप से रखा गया है।

कैलास पुराण में लिखा है कि डेकुङ गोम्पा के निर्माता और पहले लामा, जिगदेन गोंबो अपने १३०० शिष्यों के साथ बुद्ध संवत् २०५७ (सन् १५१३ ?) में कैलास गए थे। इन सब की भिक्षा का प्रबंध पुरङ के धनी व्यक्ति टाशी देचेन और राजा मयुल ल्हजन मुटुप ने किया था। लामा जिगदेन करदुङ और खोचारनाथ भी गए थे। उस समय पुरङ में बहुतेरे अच्छे-अच्छे विद्वान् और साधक भिक्षु रहते थे।

सन् १५५३ (१५३३ ?) में यारकंद के खान ने अपने जनरल मिरज़ा हैदर को ल्हासा के मंदिरों और मूर्तियों को तोड़कर विध्वंस करने के लिये तिब्बत भेजा। लौटते समय मिरजा मानसरोवर के उत्तरी किनारे से गया और वहाँ किनारे पर एक दिन डेरा डाला।

कहा जाता है कि १६वीं शताब्दी में अकबर बादशाह ने गंगा के उद्गम

का पता लगाने के लिये कुछ दूतों को भेजा था, जिन्होंने मानसरोवर की परिक्रमा करके एक मानचित्र तैयार किया, जिसमें यह दिखाया गया है कि मानसरोवर से सतलज, ब्रह्मपुत्र, और करनाली नदियाँ निकलती हैं।

सन् १६२५—२६ में पोर्तुगाल के पादरी अंड्रेड थुलिङ मठ के समीप छबरङ नामक स्थान में इसाई धर्म के प्रचारार्थ गए थे। इन्होंने सन् १६२६ के अप्रैल महीने में तिब्बत में सर्वप्रथम ईसाइयों के गिरजाघर की नींव डाली थी। सन् १६२७ में चार अन्य पादरी भी गए थे।

चंदवंश के राजा बाजबहादुरचंद ने सन् १६३८—१६७८ तक कुमायूँ पर शासन किया। उनकी राजधानी अल्मोड़ा थी। कैलास और मानसरोवर के यात्रियों पर किये गए अत्याचारों की बातों को सुनकर बाजबहादुरचंद ने मानसखंड पर चढ़ाई करने का विचार किया, और मिलम के मार्ग से तिब्बत में प्रवेश करके कैलास और मानसरोवर के दर्शन किए। वहाँ से लौटकर तक्लाकोट पर आक्रमण करके किले पर छापा मारा। फिर मानसखंड से भारत में आनेवाले सभी घाटों को अपने अधिकार में करके उन करों को बंद करवा दिया, जिन्हें भोटिये व्यापारी तिब्बतियों को दिया करते थे। अंत में जब तिब्बतियों ने यात्रियों और व्यापारियों को किसी प्रकार का कष्ट न देने का आश्वासन दिया, तब उन्होंने तिब्बतियों को पूर्ववत् सुविधा प्रदान कर दी। सन् १६७३ में यात्रा से लौटते समय उन्होंने कैलास और मानसरोवर के यात्रियों के निमित्त कपड़े और भोजन वितरित करने के लिये एक सदावर्त खोला। इस सदावर्त के कोष के लिये एक ताम्रपत्र पर लिखकर पाँच गाँवों की मालगुजारी को राज्यकोष से अलग कर दिया।

कहा जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी में एक टाशी लामा कैलास यात्रा पर आए थे और कैलास तथा मानसरोवर की उन्होंने परिक्रमा की थी। लौटते समय वे उन्होंने मानसरोवर की चेमानेङा नामक रेत ले जाकर उससे टाशील्हुम्पो गोम्पा के कलश को स्वर्णरंजित किया था। परंतु कुछ अन्य लोगों का कहना है कि कैलास-दर्शन करनेवाले उन्नीसवीं शताब्दी के पाँचवें टाशी लामा थे।

रोमन कैथोलिक पादरी डेसीडरी ने सन् १७१५ के अगस्त महीने में

एक तातारी राजकुमारी की मंडली के साथ लेह (लदाख़) से ल्हासा के लिये प्रस्थान किया था। सर्वप्रथम पाश्चात्य व्यक्ति यही हैं, जिन्होंने मानसरोवर का पहले-पहल दर्शन किया। ये लिखते हैं कि गंगा कैलास और मानसरोवर से निकलती है। गंगा और सतलज को एक मानकर उन्होंने अन्य लोगों को भी भ्रम में डाल दिया। चीन के सम्राट् कङ्ही के 'सर्वे' विभाग के लामा लोग सन् १७११ और सन् १७१७ के मध्य में मानसखंड में आकर 'सर्वे' कर गए। लगभग १७५८ में पूर्वी तिब्बत का ङोर (ङुर) गोम्पा के खेंब्रोसोनम गेलजिन नामक लामा कैलास यात्रा पर आए थे; वहाँ से खोचार जाकर उन्होंने खोचार-नाथ के स्थल-पुराण की रचना की।

पूर्णगिरि नामक एक ब्राह्मण लार्ड वारेन हेस्टिंग्स के आदेश से तिब्बत में दुभाषिया और गुप्तचर के स्थान पर नियुक्त किये गए थे। वे सन् १७७० में बोगल[1] और टर्नर के साथ तिब्बत जाकर मानसरोवर गये, और वहाँ ठुगोल्हो मठ में ठहरे थे। इनका कहना है कि गंगा कैलास से निकल कर मानसरोवर में गिरती हुई बाहर निकलती है।

सन् १७६०-८० के मध्य काल में पूर्णपुरि नामक काशी के एक ऊर्ध्वबाहु संन्यासी (जिनके दोनों हाथ ऊपर खड़े रहने से सूख गए थे) चीन और बुखारे का भ्रमण करके मानसरोवर पर (सन् १७६२ में) आए थे और उन्होंने छः दिनों में मानसरोवर की परिक्रमा की थी। उनका कहना है कि गंगा कैलास से, सतलज राक्षसताल से, और ब्रह्मपुत्र मानसरोवर से निकलकर पूर्व की ओर जाती हैं।

सन् १८१२ में वेटेरिनेरी डाक्टर (पशु-चिकित्सक) विलियम अगस्ट, मूर क्रॉफ़्ट और कप्तान हियरसे नीती की घाटी से मानसरोवर और गरतोक गए थे। इन लोगों ने च्यू गोम्पा के पास डेरा डाला था। उस समय गङ्गा छू में पानी नहीं था। यह बात उन्होंने स्वयं नहीं देखी, परंतु पंडित हरि-वल्लभ नामक एक व्यक्ति ने, जो मूर क्रॉफ़्ट के साथ थे, पहले सन् १७९६ में

---

[1] तिब्बत में प्रवेश करनेवाले प्रथम अंग्रेज व्यक्ति बोगल ही हैं।

गङ्गा छू में इतना जल पाया कि उसे पार नहीं कर सके। अंत में बाध्य होकर उन्हें च्यू गोम्पा के निकटवर्ती पुल से पार होना पड़ा। कहा जाता है कि मूर-क्रॉफ्ट सन् १८३८ में मानसरोवर के पास मार डाले गए। ठाकुर देबू बूढ़ा ने जोहार में २४ वर्ष तक पटवारी का काम किया था। उसने मूर क्रॉफ्ट के साथ रह कर पश्चिमी तिब्बत की यात्रा में उनकी बहुत कुछ सहायता की थी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सन् १८४१ में जंबू के राजा गुलाब सिंह के जनरल जोरावर सिंह ने गरतोक और तीर्थपुरी होते हुए बरखा आकर तिब्बतियों की सेना को हरा दिया था। उसके बाद मानसरोवर होते हुए तकलाकोट जीत कर कोट के किले पर अपनी विजयपताका फहराई थी। कहते हैं कि यदि इनका कार्यक्रम पूरा हो पाता तो सारे तिब्बत को जीत लेते और आज तिब्बत भारत के अधीन हुआ होता। परंतु दिसंबर के महीने में तिब्बती सेना ने इनको मार डाला। उनकी समाधि तोयो के पास बनी हुई है।

सन् १८४६ के सितम्बर और अक्टूबर के महीनों में कप्तान हेनरी स्ट्राची दारमा घाटा से दारमा याङ्ती के किनारे होकर राक्षसताल और च्यू गोम्पा के समीप पहुँचे तथा लीपूलेख होकर लौट गए। इन्होंने गङ्गा छू में तीन फीट गहरा पानी बहते हुए देखा और सुझाया कि जल के परिमाण से सतलज का उद्गम दारमा याङ्ती के सिरे पर क्यों न माना जाय? सन् १८४८ में इनके भाई सर रिचार्ड स्ट्राची और जे० ई० विंटर बोटम मिलम और ज्ञानिमा मंडी होकर राक्षसताल के दक्षिण से च्यू गोम्पा गए थे तथा सिब-च्लिम और मिलम होकर वापस आए थे। इन दोनों स्ट्राची बंधुओं ने मानसखंड के भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

श्री १०८ त्रिलिंग स्वामी बनारस के एक विख्यात सिद्ध महात्मा थे, जो आंध्र प्रांत में विजगापट्टम के होतिया गाँव के एक ब्राह्मणवंश से थे। यद्यपि इनका संन्यासी नाम गणेश स्वामी था; परंतु त्रिलिंग देश से आने के कारण त्रिलिंग स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका देहांत १९वीं शताब्दी के अंत में हुआ। कहा जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल में इन्होंने कैलास और मानसरोवर की कई यात्राएँ कीं और वहाँ तपस्या की। कुछ लोग

मृत्यु के समय इनकी आयु को १५० वर्ष और कुछ लोग २८० वर्ष बतलाते हैं। इनकी जीवनी वंगभाषा में लिखी गई है। महावाक्य रत्नावली नामक एक पुस्तक भी इन्होंने लिखी है।

सन् १८५४ में नेपालियों ने पुरङ पर चढ़ाई की थी और सिद्दीखर आदि दुर्गों को तोड़ डाला था। सन् १८५५ के जुलाई महीने में एडोल्फ और राबर्ट श्लागिनट्वैट नामक यूरोपियन यात्री मिलम होकर दापा तक गए थे। पर तिब्बत सरकार से मानसरोवर जाने की आज्ञा न मिलने के कारण भारत लौट आये और सितंबर के महीने में माना घाटी होकर थुलिङ और छबरङ गए। फिर भी ये भौगोलिक अन्वेषण न कर सके। शेरिंग ने 'वेस्टर्न टिबेट' नामक पुस्तक में लिखा है कि सन् १८५५ या १८६० में बरेली के कमिश्नर ड्रमन्ड ने मानसरोवर में नौका-विहार किया। परंतु कोई प्रामाणिक वार्ता नहीं मिली। १८६४ में आनरेबुल राबर्ट ड्रूमन्ड, हेनरी हाँगसन, लेफ्टनेन्ट कर्नल स्मिथ, और वेब्बर गुरला मांधाता के दक्षिणी पार्श्वों में और ब्रह्मपुत्र के उद्‌गम की ओर शिकार करने गए थे। वेबर ने गंगा का उद्‌गम-स्थान मांधाता के दक्षिण में रक्खा है।

सन् १८६५ के जून महीने में कप्तान एच० यू० स्मिथ और ए० एस० हेरिसन लीपूलेख होकर तरछेन गए थे। वहाँ से मानसरोवर और राक्षसताल के उत्तरी किनारे पर घूमते हुए चेरकिप गोम्पा में एक दिन ठहरे और फिर वहाँ से गरतोक गए। उसी वर्ष अगस्त महीने में कप्तान एड्रियन बेनेट चोरहोती घाटा होकर दापा गए और वहाँ महीने भर ठहरे; परंतु मानसरोवर जाने की आज्ञा न मिलने के कारण नीती होकर लौट आए।

सन् १६५६ में भारत के सर्वे ऑफिस से कप्तान टी० जी० मॉन्टगोमेरी के आदेश से जोहार के एक भोटिया ठाकुर नैनसिंह सी. आई. ई. तिब्बत गए, और सन् १८६६ के जून में ल्हासा से लौटते समय मानसरोवर का भी निरीक्षण करने के लिये गए। उनके लेखों और पैमाइशों से मानसरोवर और राक्षसताल का मानचित्र प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि ये ब्रह्मपुत्र के उद्‌गम पर नहीं गये, तथापि उसके संबंध में तिब्बतियों से जो कुछ बातें सुनीं, वे

ठीक ही थीं। वे लिखते हैं—"ब्रह्मपुत्र का उद्गम चेमायुङ्डुङ नदी के सिरे पर तमचोक खम्बब् नाम की हिम नदियों में है।" सर्वे आफ़ इंडिया ऑफिस के कागजात में ये 'पंडित ए' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सन् १८६७ और—६८ में मान्टगोमेरी ने मानसखंड की पैमाईश के लिये अन्य विद्वानों को भेजा था, जिनमें से कुछ लोग सिंधु के उद्गम पर पहुँचते समय डाकुओं द्वारा मार डाले गए। प्रायः नयनसिंह के समय में ही सर्वे ऑफिस वालों ने देवू बूढ़ा के पुत्र मानसिंह जोहारी को कैलास की उत्तर की ओर भौगोलिक अन्वेषण के लिये भेजा था। पर मानसखंड से अति परिचित व्यक्ति होने के कारण तिब्बत सरकार ने इनको कैलास से आगे नहीं जाने दिया।

सन १८७६—१८८२ के मध्य में सर्वे ऑफ इंडिया ऑफिस से जोहार निवासी कृष्ण सिंह रावत भौगोलिक अन्वेषण के लिये नियुक्त होकर गए थे। विशेषकर इनका अन्वेषण पूर्वी तिब्बत और मंगोलिया में हुआ। घर लौटते समय ये मानसखंड में भी आए और थोड़ी-बहुत गवेषणा यहाँ भी की। इनके अन्वेषण और मानचित्र सर्वे ऑफिस से छपे हैं। तिब्बत के अन्वेषण में ये 'ऐ० के० पंडित' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सन् १६००—३ के मध्य में जापान देश के बौद्धभिक्षु एकई कावगूची तिब्बत यात्रा के उद्देश्य से गए थे। इन्होंने सन् १६०० में ब्रह्मपुत्र (चेमा-युङ्डुङ) को पार करके मानसरोवर के पूर्व में, बीस मील की दूरी पर छुमिक-थुङ् टोल नामक सोते के जल को गंगा के उद्गम का जल मानकर पेट भर पिया। वहाँ से मानसरोवर के दक्षिणी किनारे से होते हुए ठुगोल्हो में एक दिन ठहरकर शानिमा से कैलास-परिक्रमा करके ल्हासा पहुँचे। न जाने गङ्गा छू पर गए या नहीं; परंतु लिखते हैं कि "प्रति पंद्रह वर्ष पर राक्षसताल से मानसरोवरमें पानी बहता है, और मानसरोवर की परिधि २०० मील की है।"

सन् १६०४ के नवंबर के अंत में मेजर राईडर और कप्तान् रॉलिंग राक्षसताल के किनारों पर गए, परंतु उन्हें गङ्गा छू में जल नहीं मिला। मानसखंड के भूगोल के ऊपर इन्होंने बहुत प्रकाश डाला है। सन् १६०५ में अल्मोड़े के डिपुटी कमिश्नर चार्लस् ए० शेरिंग और डाक्टर टी०. जी०

लांगस्टाफ कैलास और मानसरोवर होकर गरतोक तक गए। लांगस्टाफ ने गुरला मांधाता की चोटी पर पहुँचने की चढ़ाई आरंभ की थी। यद्यपि वे शिखर पर नहीं पहुँच सके, किंतु उनका यत्न बहुत अंशों में सफल रहा। इन्होंने पश्चिमी तिब्बत नामक एक पुस्तक लिखी है।

सन् १९०७-८ में स्वीडन देश के डाक्टर स्वेन हेडिन नामक विख्यात भूगोलज्ञ एवं अन्वेषक ने लदाख से लेकर शिगर्ची तक पूरे दो वर्षों में यात्रा की और अब तक के अज्ञात प्रदेशों को सारे संसार को ज्ञात करा दिया। इन्होंने अपनी यात्रा और साहसिक कृत्यों को 'ट्रान्स-हिमालया' नामक ग्रंथ में सन् १९०९—१३ में लिखा है, जो तीन भागों में समाप्त हुआ है। इनके विशेष अन्वेषण का उल्लेख 'दक्षिणी तिब्बत' (साउदर्न टिबेट) नामक ग्रंथ (प्रकाशित १९१७-२२) में है जो १२ भागों में समाप्त हुआ है। इनमें दो खंड तो मानचित्रों से भरी हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने भौगोलिक अन्वेषणों पर ९-१० पुस्तकें और लिखीं। सन् १९०७ में वे मानसरोवर के किनारे पर पूरे दो महीने तक रहे। वहाँ रहकर आठों मठों को देखा और सरोवर में केनवेस वा टाट की नाव पर इधर-उधर घूम कर कई स्थानों की गहराई को नापा और मानसरोवर की गहराई के ब्यौरे का मानचित्र प्रस्तुत किया। इन्होने राक्षस-ताल की गहराई को भी कुछ स्थानों में नापा; पर आँधी और झंझावात के कारण पूरा पता नहीं लगा सके। यही सर्वप्रथम पाश्चात्य व्यक्ति हैं जिन्होंने पहले-पहल सीसे डालकर मानसरोवर को नापा है।

भूगोलशास्त्र के अन्वेषण के अतिरिक्त सचमुच इन्होंने ही इन सरोवरों की सुंदरता का पूरा आनंद उठाया है। इनके मानसरोवर के नौकाविहारों का वर्णन बहुत ही रोचक, चित्ताकर्षक और रोमांचित करनेवाला है। इन्होंने कैलास, मानसरोवर और राक्षसताल की पूरी परिक्रमा की तथा मानसखंड के प्रायः सभी नदियों के जल के परिमाण का पता लगाया। अंत में ब्रह्मपुत्र, सिंधु और सतलज नदी के उद्गम-स्थानों का निर्णय किया और इस बात का दावा किया कि वे ही सर्वप्रथम पाश्चात्य और श्वेत व्यक्ति हैं, जिसने इन नदियों के उद्गम का पता लगाया है। सन् १९३७ में इनके निर्णयों को मेरे अपूर्ण

और त्रुटियुक्त सिद्ध करने तक सर्वे वालों ने उन्हें निर्भ्रान्त स्वीकार करके अपने मानचित्रों में ग्राह्य कर लिया था। जो भी हो, अन्य भूगोलज्ञों की अपेक्षा डा० स्वेन हेडिन ने तिब्बत के बारे में बहुत व्यापक रूप से अन्वेषण किया और लिखा है, यह बात निर्विवाद रूप से माननी पड़ेगी।

महाराष्ट्र के श्री हंस स्वामी १९०८ में कैलास गए थे। वे मानसरोवर के किनारे पर बारह दिन रह कर कैलास परिक्रमा करके तीर्थपुरी भी गए थे। महाराष्ट्र भाषा में अपनी यात्रा के बारे में उन्होंने एक पुस्तक लिखी है, जिसको उनके शिष्य श्री पुरोहित स्वामी ने अंग्रेजी भाषा में 'दी होली माउन्टेन' नामक पुस्तक रूप में अनुवाद कराकर प्रकाशित कराया है। उसमें हंस स्वामी ने मानसरोवर में एक अदृष्ट वाणी सुनने, कैलास पर एक सिद्ध महात्मा के मिलने, गौरीकुंड पर दत्तात्रेय के पचभौतिक स्थूल शरीर से मिलकर संन्यास दीक्षा लेने आदि का मनोरंजक वर्णन किया है।

मयूरपंखी बाबा नामक एक साधु ने कैलास और मानसरोवर की यात्रा छः सात बार की है। ये शिर पर मयूर मुकुट, कमर में जंजीर, और लाल कौपीन पहनते थे और हाथ में मुरली लिए रहते थे। सन् १९१२-१३ के बीच एक वर्ष तक खोचारनाथ में इन्होंने निवास किया। १९१३ में कैलास के चौथे मठ गेङटा गोम्पा के पास रहने की इच्छा से एक छोटी-सी कुटी बना कर वहीं पूरा प्रबंध कर चुके थे। पर्याप्त रूप से अन्न और वस्त्र भी पास रख चुके थे; परंतु शीतकाल की ठंढ नहीं सह सके और परिणामतः सन् १९१४ के फरवरी या मार्च[1] के महीने में दिवंगत हो गए।

सन् १९१५ में श्री १०८ स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने मिलम के मार्ग से कैलास की यात्रा की और लीपूलेख के मार्ग से लौटे। अपनी यात्रा के वर्णन में इन्होंने 'मेरी कैलास-यात्रा' नामक एक पुस्तक लिखी है। संभवतः कैलास यात्रा पर हिंदी में यही पहली पुस्तक है।

---

[1] कैलास में फरवरी तथा मार्च के महीनों में अत्यधिक शीत पड़ती है। और अल्पतम तापक्रम हिमांक के नीचे ७०° हो जाता है।

सन् १६२४ में हमारे पूज्य गुरुदेव श्री ११०८ डाक्टर स्वामी ज्ञानानंद गिरि महाराज बदरीनाथ से माना घाटा होकर कैलास और मानसरोवर गए और नीती-होती घाटा होकर वापस लौटे। श्री स्वामी जी ने कौपीन मात्र धारण कर दिगंबर रूप में यात्रा की थी।

सन् १६२२ और १६२६ में बदरीनाथ और नीती घाटा होकर लाहौर के डाक्टर कश्यप जी कैलास गए थे। इस यात्रा पर उन्होंने 'बेंगाल रॉयल एशियाटिक सोसायटी' के सन् १९२९ के जर्नल में भूगोल संबंधी एक लेख लिखा था, पर उसमें किसी नई खोज की बात नहीं थी।

सन् १९२७ में श्री १०८ स्वामी जयेंद्रपुरी जी मंडलेश्वर बीस-पचीस महात्माओं की मंडली के साथ बदरीनाथ से मानाघाटा होकर कैलास और मानसरोवर की यात्रा पर गए थे, और लीपू घाटा होकर वापस आए। मानसखंड की यात्रा पर जानेवाले पहले मंडलेश्वर यही हैं। उक्त मंडली के पंडित धर्मदत्त शर्मा ने '"श्री कैलास मार्ग-प्रदीपिका' नामक एक पुस्तक लिखी है। मानसरोवर का वर्णन करते हुए ये लिखते हैं—"कहीं-कहीं नीलकमल का भी दृश्य देखने में आता है......दूसरी अद्भुत बात यह है कि किसी-किसी दिन को छोड़कर यहाँ पर बिना बादल हिम वर्षा करता है।" ये दोनों एक दम झूठी बातें हैं। सन् १६२६ में या उसके आस पास उत्तर काशी के प्रसिद्ध (केरल देशीय) महात्मा १०८ स्वामी तपोवन जी और गंगोत्तरी के श्री १०८ कृष्णाश्रम जी कैलास यात्रा पर गए थे।

सन् १६२६ में कैप्टेन विलसन और अलमोड़े के डिपुटी कमिश्नर रटलेज लीपू घाटी होकर कैलास गए थे, और परिक्रमा करके नीती घाटा होकर वापस आए। सन् १६३० में गङ्टोक के एसिस्टैंट पोलिटिकल एजेंट, वेकफील्ड, राजनीति संबंधी कार्य से मानसखंड गए थे। सन् १६३१ में लीपू घाटा के मार्ग से मैसूर के महाराजा श्रीकृष्णराज वडयर बहादुर ने बड़ी धूमधाम के साथ कैलास और मानसरोवर की यात्रा की थी। उसी वर्ष हृषीकेश के श्री १०८ स्वामी शिवानंद जी महाराज, श्री १०८ अद्वैतानंद जी महाराज और गुजरात के श्री १०८ स्वामी स्वयंज्योति जी

माहाराज और सिंघाई की राणी साहिबा श्रीमती सूरतकुमारी देवी कैलास-यात्रा पर गए थे। श्री शिवानंद जी ने 'ए ट्रिप टू सेकेंड कैलास-मानसरोवर" नामक पुस्तक लिखी है।

सन् १९३० से पहले ज्ञानसिंह बाबा नामक अलमोड़े के एक साधू दो-तीन वर्ष कैलास-यात्रा पर गया था। इन्होंने सन् १९३०-३१ में एक वर्ष खोचारनाथ में वास किया था। विशेषकर आलू और कूट्टू के आटे की रोटी ही पर निर्वाह करते थे। उसके अनंतर एक वर्ष कैलास में रहने की इच्छा से सन् १९३१ के अंत में ग्यङटा गोम्पा में गए, परंतु शीताधिकता के कारण तरछेन उतरे। वहाँ भी भोजन की कमी और ठंढ के कारण नितांत उन्मत्त हो गए। सन् १९३२ जुलाई के महीने में बंबई के किसी यात्री ने उनको तकलाकोट पहुँचाया। पर अंतिम दिनों में मांस-मदिरादि अखाद्य पदार्थ अमित परिमाण में खाकर अगस्त मास में काल-कवलित हो गए। इन्हीं के बारे में एक स्वामी ने यह गप लिख डाली—"यह साधू केवल जल और पत्ते पर जीते थे, तथापि बहुत मोटे-ताजे थे।" इस प्रकार की गप और झूठी कथाएँ आगे चलकर सिद्धों की बातें बन जाती हैं।

सन् १९३२ में एफ० विलियमसन पोलिटिकल एजेंट और एफ० लडलो लीपूलेख होकर कैलास गए, वहाँ से गरतोक होकर शिमला लौटे। ये लोग राजनैतिक कार्य से गए। सन् १९३३ या ३४ में श्री स्वामी कृष्णमाचार्य नामक एक दक्षिणी महात्मा कैलास यात्रा पर गए, परंतु कैलास पहुँचने से दो दिन पहले ही डाकुओं ने उन्हें घेर लिया और पास का रुपया न देकर प्रतिरोध करने के कारण डाकुओं ने उनका वध कर डाला।

कलकत्ते के डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी के भाई श्री उमाप्रसाद मुखोपाध्याय, एडवोकेट सन् १९३४ में कैलास परिक्रमा पर गए थे। उन्होंने लगभग आध घंटे तक चलनेवाली एक यात्रा-संबंधी सिनेमा फिल्म तैयार की, जिसकी एक प्रति कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी रखी गई है। उसे कोई भी देख सकता है।

सन् १९३५ में इटली देश के एक संस्कृत विद्वान् और बौद्धमतानुयायी डाक्टर जुसेपे तूची ने ल्हासा की सरकार से प्रवेशाज्ञा-पत्र लेकर मानसरोवर और

कैलास की परिक्रमा की थी। ये लीपूलेख होकर गए और थुलिङ होकर वापस आये। इन्होंने अपनी यात्रा का वर्णन इटैलियन भाषा में लिखा तथा एक अमुद्रित संस्कृत ग्रंथ का संपादन करके प्रकाशित कराया। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई उपयोगी तिब्बती ग्रंथों का संग्रह किया था।

सन् १९३६ में स्विटज़रलैंड के आरनोल्ड हैम और ऑगस्ट गेनसर नामक दो भूगर्भ-शास्त्रज्ञों ने हिमालय में अन्वेषण करते-करते बिना प्रवेशाज्ञा-पत्र के छिपकर नेपाल में प्रवेश किया, और टिङ्कर, लीपूघाटा पार करके पुरङ दून में सिद्दिखर मठ में पहुँचे। और वहाँ से लौटकर ब्यांस में अंतिम गाँव, कुटी में डेरा डाला। वहाँ से गेनसर ने बिना आज्ञापत्रके छिपकर राक्षस-ताल के पश्चिमी किनारे से होकर कैलास की परिक्रमा की और वापस लौट आए। इनके वहाँ जाने के दो उद्देश्य थे। प्रथम तो परम पवित्र कैलास का दर्शन और दूसरे मानसखंड के भूगर्भ-शास्त्र का अन्वेषण। उसी वर्ष ऊँटाधुरा होकर गेनसर ने सिब्रचिलिम होकर सतलज तक के भू-भागों का पर्यवेक्षण किया था। इन दोनों ने अपने अन्वेषणों का विवरण जर्मन भाषा में 'थ्रोन ऑफ दी गाड्स' नामक पुस्तक में लिखा है जिसका अंग्रेजी में भी अनुवाद किया गया है। पुस्तक में सुंदर चित्र दिये गए हैं।

सन् १९३६ के मई मास में आस्ट्रिया के हेरबर्ट तिछी नामक एक भूगर्भ-शास्त्रवेत्ता गुप्त रूप से साधु वेश में कैलास परिक्रमा करके वापस लौट आए। इन्होंने गुरला मांधाता पर कुछ ऊँचाई तक आरोहण किया था। 'टू दी होलियेस्ट मौन्टेन' नामक एक पुस्तक इनकी लिखी हुई है।

१९३६-३७ में श्री ओंसत्यम् नामक पच्चीस वर्षीय युवक ब्रह्मचारी ने तीर्थपुरी में वर्ष भर निवास किया था। सन् १९३७ के दिसंबर या १९३८ की जनवरी मास में ये मानसरोवर की परिक्रमा पर गए। सरोवर के तट से होकर ये परिक्रमा करना चाहते थे। पर गुगटा[1] का जल पूर्णतया जमा न था।

---

[1]मानसरोवर से ईशान कोण पर एक जल-प्रवाह, जिसके द्वारा डिङ्को का जल सरोवर में आता है।

बर्फ के ऊपर कुछ दूर तक आगे जाने पर वह फट गई और वे जल में डूब गए।

सन् १९३७ में श्री १०८ नारायण स्वामी जी की भक्त कुछ गुजराती महिलाओं ने कैलास की परिक्रमा के अतिरिक्त मानसरोवर की भी परिक्रमा की थी। भोटियों को छोड़कर मानसरोवर की परिक्रमा करनेवाली भारतीय महिलाओं का यही प्रथम जत्था था। सन् १९३८ में श्रीमती आनंद माई ने अपने पति के साथ कैलास यात्रा की थी। सन् १९३९ में गिरनारी ब्रह्मचारी रामानंद जटाशंकर वाले ने कैलास की यात्रा की थी। गुजराती भाषा में अपनी यात्रा पर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है, जिसमें मेरे बड़े परिश्रम से तैयार किये हुए एक मानचित्र को चोरी से पूरी नकल करके अपने नाम से छपवा दिया था। बाबा रामनाथ नामक एक नैपाली साधु ने तीन बार मानसरोवर की यात्रा की थी। अंतिम बार १९३८ में ये पुनः मानसरोवर गए और वहाँ से लौट रहे थे कि तकलाकोट आने पर अक्टूबर के महीने में शीत के कारण शरीर त्याग कर दिया।

सन् १९४० में श्रीमती उमा दर जी (श्रीमुकुटबिहारी लालजी दर एस० डी० ओ० की धर्मपत्नी) और श्रीमती रुक्मिणी जी (श्रीघनश्याम दीक्षित जी, इंजीनियर की धर्मपत्नी) ने अपने पतियों के साथ नव दिन में कैलास और मानसरोवर की पूरी परिक्रमा की थी। कैलास-मानसरोवर की परिक्रमा करनेवाली महिलाओं का यह दूसरा जत्था था।

इसके अतिरिक्त सभी श्रेणियों के मनुष्य, गृहस्थ, साधु, संन्यासी और रामकृष्ण मिशन के कोई न कोई स्वामी श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर के पावन दर्शन के लिये प्रतिवर्ष जाते हैं।

कैलास के पाचवें मठ सिलुङ के पास एक लदाखी भिक्षु ने, जो 'लदाखी छवा' नाम से प्रसिद्ध थे, बारह वर्ष रहकर पूजा-पाठ किया। सिलुङ गोम्पा के पास इन्होंने एक आश्रम भी बनवाया है। सन् १९४२ में इनका देहांत हो गया।

सन् १९४२ में ग्यांची के ब्रिटिश वाणिज्य प्रतिनिधि केप्टेन आर० के० एम० सकेर स्पेशल ड्यूटी पर मंडियों की देख-रेख के लिये लदाख और गरतोक होकर कैलास गए थे और कैलास की परिक्रमा पूरी कर लीपूलेख घाटा होकर

वापस लौट आए। उनके आने के परिणाम-स्वरूप पश्चिमी तिब्बत की ट्रेड एजेंसी का ऑफिस शिमला से गङ्टोक बदल दिया गया। इनकी इच्छा है कि एजेंसी का ऑफिस तकलाकोट में स्थायी रूप से बने और कुछ सिपाही यहाँ रखे जाँय। उनकी यह भी आयोजना है कि भारत की सीमा से गरतोक तक एक पक्की सड़क बन जाय। सन् १९३१ और १६४२ में धारचूला के इसाई पादरी स्टेनर इसाई धर्म प्रचार करने के लिये मानसखंड गए और वहाँ कुछ पुस्तकों को बाँटकर चले आए। इन्होंने कैलास और मानसरोवर—दोनों की प्रदक्षिणा की थी।

सन् १६३६ से प्रतिवर्ष श्री १०८ नारायण स्वामी जी महाराज कैलास यात्रा पर जाते हैं। प्रायः ये अपनी शिष्य-मंडली को (गृहस्थ और साधु) साथ लेकर बाजा गाजा के साथ मार्ग में भगवन्नाम संकीर्तन करते हुए जाते हैं।

इस पुस्तक का लेखक श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर पर पहले-पहल सन् १६२८ में काश्मीर और लदाख़ होकर गया था और उसके पश्चात् १६३५-३६, ३७, ३८, ३६, ४०, ४१, ४२ में भिन्न-भिन्न मार्गों से गया। आज तक कैलास की पंद्रह और मानसरोवर की सत्रह परिक्रमाएँ कीं तथा ठुगोल्हो मठ में सन् १६३६-३७ तक पूरे वर्षभर निवास किया तथा अन्य अवसरों पर दो से लेकर छः महीनों तक रहता आया है। सन् १६३६-३७ में मानसरोवर पर रहते समय उनके जमने और पिघलने के संबंध में संक्षिप्त ब्यौरा लिखा; शीतकाल में राक्षसताल के टापुओं पर जाकर उनकी संख्या निर्धारित की और मानसखंड की चार महानदियों—ब्रह्मपुत्र, सिंधु, सतलज, और करनाली के उद्‌गम-स्थानों का परंपरा, लंबाई, जल के परिमाण, और हिमनदियों की परीक्षा के दृष्टिकोण से निर्णय किया, जिन्हें लंडन के रायल जॉग्रफिकल सोसाइटी और भारत के सर्वे ऑफिस ने स्वीकृत करके अपने (१६४१ के) मानचित्रों में छापा है। उक्त विषय पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिये हुए दो व्याख्यान, वहीं से 'तिब्बत में अन्वेषण' या 'एक्सप्लोरेशन इन टिबेट' नामक पुस्तक के रूप में सन् १६३६ में प्रकाशित हुए हैं।

लेखक प्रधानतः अपनी आध्यात्मिक साधना के लिये मानसखंड जाता

है। अवकाश के समय यथाशक्ति विज्ञान की विविध शाखाओं में अन्वेषण करने की उसकी चेष्टा गौण है।

१२—मानसरोवर पर 'ज्ञान-नौका'

सन् १९२८ से ही ग्रंथकार का विचार रहा है कि एक पक्की नाव लेकर मानसरोवर में अच्छी तरह से नौका-विहार करे और उसके पश्चात् उसे वहीं छोड़ दे, ताकि अन्य यात्री भी उस नौका का लाभ उठा सकें। कई वर्ष के प्रयत्न के बाद कलकत्ते से मोल लेकर एक 'सेलिंग डिंघी-कम-मोटर बोट' अलमोड़ा ले गया, परंतु कुली न मिलने के कारण गतवर्ष मानसरोवर तक नहीं ले जा सका। अब वह अलमोड़े से कुलियों द्वारा भेजी जा रही है।

यह नाव १८ गेज मोटा 'गेल्वनाइज्ड स्टील' (लोहा) की चादर से आधुनिक वैज्ञानिक माप के अनुसार बनायी गई है। इसकी तौल ५½ मन, लंबाई १० फीट, चौड़ाई ४⅓ फीट, और ऊँचाई २⅓ फीट है। नाव के भीतर दोनों सिरों पर वायु के बंद कमरे, और बीच में डेगर बोर्ड (लोहे की मोटी चादर) लगे हुए हैं, जिनके कारण नाव न पानी भरने से डूब सकेगी और न वायु के झकोरों से उलट ही सकती है। इसमें चार आदमी भली भाँति बैठ सकते हैं; परंतु आठ आदमी तक के लिये स्थान है। इसके पीछे पतवार और 'आउट बोर्ड मोटर' रखने के लिये एक मंच है। मोटर तीन-चार 'हार्स पॉवर' का होगा। हाथ से चलाने के लिये दो चप्पू हैं। वेग से चलाने के लिये एक पाल भी है, जिसके लगाने से मानसरोवर के आर-पार तीन घंटे में जा सकते हैं।

ग्रंथकार के गुरुदेव के नाम पर नाव का 'ज्ञान' या 'ज्ञान-नौका' नाम रखा गया है। इसके साथ ३५० फीट की रस्सी, ७ पौंड का सीसा, और काग का बना हुआ प्राणरक्षक चक्र भी जा रहे हैं। लेखक इस नौका से सरोवर के गर्भ में स्थित गर्म सोतों का स्थान निर्देश करना, मानस, राक्षस, डिङ्छो आदि तालों में एक बार सीसा डालकर गहराई नापना, राक्षस ताल के टापुओं का निरीक्षण करना, और मानसरोवर के मध्य में (जहाँ जाना तिब्बती लोग असंभव मानते हैं और जहाँ अब तक कोई नहीं जा सका है) जाना चाहता है।

मानसरोवर में चलाई जानेवाली पक्की तथा आधुनिक ढंग की यही सर्वप्रथम नाव होगी, यद्यपि सन् १९०७-८ में स्वेन हेडिन ने एक क्रिमिच की नाव चलाई थी। शीतकाल में यह नाव मानसरोवर के पास एक मठ में रखी जायगी, ताकि कई वर्षों तक यात्रीगण या अन्य लोग मानसरोवर में विहार करके उससे लाभ उठा सकें। लेखक की इच्छा है कि देख-रेख के लिये इस नौका को 'दारमा सेवा-संघ' को सौंप दे।

भावनगर (काठियावाड़) के यशस्वी महाराजा हिज हाईनेस महाराजश्री सर कृष्णकुमार सिंह जी, के० सी० एस० आई० ने ग्रंथकार की 'कैलास पथ-प्रदर्शक' नामक पुस्तक पढ़कर उसे निमंत्रित किया और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक इस ज्ञाननौका—सेलिंग डिंघी-कम-मोटर बोट—का न केवल मूल्य अपितु नौका को मानसरोवर तक पहुँचाने का व्यय भी दे दिया, जिसके लिये ग्रंथकार श्री श्री श्री महाराजा साहब को सप्रेम हार्दिक धन्यवाद देता है। श्री महाराजा के इस उदार दान से सहस्रों यात्री मानसरोवर पर नौका-विहार का पूरा आनंद ही नहीं लेंगे अपितु मानसरोवर के इतिहास में श्री महाराजा साहब का घनिष्ठ सबंध स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। उन की उत्कट इच्छा है कि युद्ध परिस्थिति शांत होते ही श्रीमती महारानी साहबा के साथ एक बार कैलास जायँ और मानसरोवर और राक्षसताल में भली-भाँति नौका-विहार करें। इतना ही नहीं, वे यह भी चाहते हैं कि और नौकाओं को सरोवर ले जाकर कैलास-मानसरोवर यात्रा का एक संपूर्ण रंगीन सिनेमा फिल्म तैयार करवाएँ। परमात्मा से प्रार्थना है कि श्री महाराजा साहब को पूरी आयु, आरोग्य, और संपत्ति दे, ताकि वे ऐसे कई अन्य उदार कार्य कर सकें।

'वेस्टर्न टिबेट' नामक पुस्तक में शेरिंग लिखते हैं—"बरेली जिले के डिपुटी कमिश्नर ड्रमंड ने मानसरोवर में सन् १८५५ में नाव चलाई थी और नाव चलाने की आज्ञा देने के अपराध पर तिब्बत सरकार ने मानसरोवर के अफसरों को फाँसी की सजा दे दीं थी। यह समाचार तिब्बतियों ने एक ताजी वार्ता कहकर बतलाया था।" परंतु यह वार्ता निराधार है। सन् १८६५ के जून में कप्तान एच० यू० स्मिथ और ए० एस० हेरिसन लीपूलेख

होकर कैलास गए; वहाँ से मानसरोवर तथा राक्षसताल के उत्तरी तट पर घूमते हुए मानसरोवर के चेरकिप गोम्पा में एक दिन ठहरे। उसी वर्ष अगस्त मास में कप्तान एड्रियन वेनेट चोर-होती घाटा से दापा जाकर वहाँ एक मास रहे। सन् १८६६ में हेनरी हॉगसन कर्नल स्मिथ और वेबर गुरला मांधाता के दक्षिणी पार्श्व में ब्रह्मपुत्र के उद्गम की ओर आखेट के लिये गए। उसी वर्ष पंडित नयनसिंह ने ल्हासा से लौटते हुए मानसरोवर का भौगोलिक निरीक्षण किया। सन् १८६७ में कप्तान मान्टगोमरी ने मानसखंड के सर्वे के लिए कई पंडितों को भेजा। उपर्युक्त सभी भौगोलिक अन्वेषक सन् १८५५ के पश्चात् बारह वर्ष के ही अंदर गए थे; परंतु उनके लेखों में ड्रमंड साहब की नाव का उल्लेख का नाम-निशान तक नहीं है। और उस समय के तिब्बती अफसरों को फाँसी देने की चर्चा भी कहीं नहीं की गई है। आश्चर्य होता है कि जब बारह वर्ष के अंदर गये हुए भौगोलिक अन्वेषकों को इसकी कुछ भी सूचना न मिली, तो पूरे पचास वर्ष बाद १९०५ में गये हुए शेरिंग को तथोक्त वार्ता की सूचना कैसे मिली? ड्रमंड अल्मोड़ा होकर ही मानसरोवर गए थे। परंतु न तो अल्मोड़े के कोई सज्जन न भोट के कोई वृद्ध व्यापारी ही उक्त वार्ता की पुष्टि करते हैं, और न यही पता है कि ड्रमंड वहाँ नाव किस काम के लिये ले गए थे। इससे स्पष्ट है कि डाक्टर स्वेन हेडिन से पहले मानसरोवर में किसी ने भी नाव नहीं चलाई थी।

मानसरोवर के वायव्य कोण में परखा, उत्तर में ज्ञानिमा, छुकरा आदि के मैदानों तथा कई अन्य स्थानों की समतल अधित्यकाओं पर विना किसी विशेष प्रबंध के वायुयान उतर सकते हैं और मानसरोवर या राक्षसताल और तिब्बत के कई अन्य सरोवरों में समुद्री वायुयान अच्छी तरह उतर सकते हैं।

हम चाहते हैं कि प्रशांति और एकांत किसी प्रकार के सांसारिक उद्वेगों से भंग न हो, परंतु यह कोई आश्चर्य की बात न होगी कि कुछ वर्ष के पश्चात् कोई भावुक बदरीनाथ की भाँति वहाँ भी 'कैलास मानस एयर सरविस कंपनी' खोलकर वायुयान ले जाय। सात-आठ वर्ष पहले किसी ने यह स्वप्न में भी न सोचा होगा कि बदरीनाथ में बिजली लग सकती है और वायुयान

जा सकते हैं। ग्रंथकार आशा करता है कि भारत के नवयुवक हिमालय में भ्रमण करके आधिभौतिक और आध्यात्मिक उन्नति करेंगे।

कभी तिब्बत-सरकार की आज्ञा से, या अन्य आधुनिक देश के हाथ में तिब्बत के पड़ जाने से कैलास शिखर पर पूर्व की ओर से आरोहण करने का यत्न किया जा सकता है। अन्य तीनों ओर से शिखर पूरी खड़ी दीवाल की भांति है और वहाँ से सदा हिमखंड गिरते रहते हैं।

तृतीय तरङ्ग

श्री कैलास-मानसरोवर-पथप्रदर्शक

अध्याय १

यात्रा की तैयारी

१—श्री कैलास और मानसरोवर जाने के विविध मार्ग

श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर जाने के लिये कई मार्ग हैं। उनमे से मुख्य-मुख्य नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) अल्मोड़े से अस्कोट, खेला, गर्ब्यांग, लीपूलेख घाटा (समुद्रतल से १६७५० फीट ऊँचा), तकलाकोट, और मानसरोवर होकर कैलास—२३६ मील।

(२) अल्मोड़े से अस्कोट, खेला, दारमा घाटा (१८५१० फीट), और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास—२३० मील।

(३) अल्मोड़े से बागेश्वर, ऊँटाधुरा घाटा (१७५६० फीट), जयंती घाटा (१८५०० फीट), कुङरी-बिङरी घाटा (१८३०० फीट), और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास—२१० मील।

(४) जोशीमठ (ज्योतिर्मठ) से गुनला-नीती घाटा (१३६०० फीट), नाब्रा मंडी, सिबचिलिम मंडी, और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास—२००मील।

(५) जोशीमठ से डमजन-नीती घाटा (१६२०० फीट), तोनजन ला (१६३५० फीट), सिबचिलिम मंडी, और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास—१६० मील।

(६) जोशीमठ से होती-नीती घाटा (१६३६० फीट), सिबचिलिम मंडी, और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास—१२८ मील।

(७) बदरीनाथ से माना घाटा (१८४०० फीट),[१] थुलिङ मठ, दापा, नाब्रा मंडी, सिबचिलिम मंडी, और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास—२३८ मील।

---

[१] पिछली माप के अनुसार इसकी ऊँचाई १७८१० फीट है।

(८) मुखुवा (गंगोत्तरी) से नीलंग जेलूखागा घाटा (१७४९० फीट), पुलिङ मंडी, थुलिङ मठ, दापा, सिर्ब्चिलिम मंडी, और ज्ञनिमा मंडी होकर कैलास—२४३ मील।

(९) सिमला से रामपुर, शिपकी घाटा (१५४०० फीट), शिरिङ ला (१६४०० फीट), लोआचे ला (१८५१० फीट), गरतोक (१५१०० फीट), चरगोत ला (१६२०० फीट), और तीर्थपुरी होकर कैलास—४४५ मील।

(१०) सिमला से रामपुर, शिपकी घाटा, शिरिङ ला, थुलिङ मठ, दापा, और ज्ञनिमा मंडी होकर कैलास—४७३ मील।

(११) श्रीनगर (काश्मीर) से जोज़ीला (११५७८ फीट), नम्मिक (१३००० फीट), फोतू ला (१३४४६ फीट), लेह (लदाख), टगलङ ला (१७५०० फीट) देमछोक, गरगुनसा, गरतोक, चरगोत ला, और तीर्थपुरी होकर कैलास—६०५ मील।

(१२) काठमांडू (नेपाल-पशुपतिनाथ) से मुक्तिनाथ, खोचारनाथ और तकला-कोट होकर कैलास—५२५ मील।

(१३) ल्हासा से टाशी ल्हुम्पो होकर कैलास—८०० मील।

(१४) काँगड़ा जिले में कुल्लू से रामपुर बशहर स्टेट और थुलिङ होते हुए कैलास।

अल्मोड़े से लीपूलेख घाटा होकर जानेवाला जो पहला मार्ग है, वह भारत की समतल भूमि से जानेवालों के लिये सबसे सरल और निरापद है। इसलिये यह मार्ग विस्तृत विवरणों के साथ लिखा गया है। अन्य मार्गों से जानेवालों की सुविधा के लिये उन मार्गों का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

२—इस यात्रा को कौन कर सकते हैं?

हृदय या फेफड़ों के किसी प्रकार के रोग या दुर्बलता से पीड़ित व्यक्तियों को छोड़कर सभी श्री कैलास और मानसरोवर की यात्रा कर सकते हैं। हाँ, इतना तो अवश्य चाहिये कि यात्री अति शीत, मार्ग में भोजनादिकों की असुविधा, और पर्वतों में चलने से होनेवाले अन्य कष्टों को सहन करने के

लिये समर्थ हों। देश की यात्राओं के समान यह यात्रा सुलभ और सुगम नहीं है। प्रतिवर्ष भारत से पचास से दो सौ तक यात्री—जिनमें वृद्ध, युवक, बच्चे, स्त्री-पुरुष सभी आयुवाले सम्मिलित रहते हैं—इन तीर्थों में जाते हैं। इनके अतिरिक्त सहस्रों भोटिये, स्त्रियों और बाल-बच्चों के साथ, मानसखंड में व्यापार के लिये जाते हैं।

३—प्रवेशाज्ञा-पत्र (पासपोर्ट)

कैलास और मानसरोवर या पश्चिमी तिब्बत के अन्य प्रदेशों में जाने के लिये भारतवासियों को—चाहे वे यात्री हों, व्यापारी हों या और कोई भी हों—अंग्रेजी या तिब्बती सरकार से किसी प्रकार का अनुज्ञापत्र (पासपोर्ट) लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। परंतु तिब्बत की राजधानी ल्हासा या पूर्वी तिब्बत के किसी और स्थान में जाने के लिये भारत की केंद्रीय सरकार से प्रत्येक व्यक्ति को अनुज्ञापत्र लेना अनिवार्य है। भारतवासियों के अतिरिक्त किसी भी विदेशी को यदि भारत की सीमा से तिब्बत में प्रवेश करना हो, तो भारत को केंद्रीय सरकार से और तिब्बत सरकार से अनुज्ञापत्र लेना पड़ता है। पासपोर्ट को तिब्बती भाषा में 'लम-यिक' कहते हैं।

अल्मोड़ा जिले में धौली गंगा, मानस्यारी, और फुरकिया, और गढ़वाल जिले में सुरई टोटा से केदारनाथ तक की लकीर को 'इनर लाइन' कहते हैं। इस 'इनर लाईन' को पार कर भारत-तिब्बत-सीमा तक जाने के लिये विदेशियों को जिलाधीश की आज्ञा लेनी पड़ती है।

४—यात्रा के लिये आवश्यक वस्तुएँ

(क) वस्त्र

(१) २-३ ऊन के मोटे कंबल या 'रग्'।

(२) १-२ चुटका, यह मोटा तिब्बती कंबल है, जो गर्ब्यांग से किराये पर लेना पड़ता है, या तकलाकोट में खरीदा जा सकता है।

(३) अपनी आवश्यकता के अनुसार बिछौना।

(४) १-२ ऊनी पैजामा या पतलून।
(५) १-२ ऊनी कमीज।
(६) ४ सूती कुर्ता।
(७) १ ऊनी स्वेटर।
(८) १ बरसाती कोट।
(९) १ बरसाती टोपी, हैट पहननेवाले हैट की बरसाती टोपी ले जावें।
(१०) १ ऊनी ओवरकोट।
(११) १ ऊनी कनटोप।
(१२) २ जोड़े ऊनी मोजे।
(१३) १ ऊनी मफलर।
(१४) १ जोड़ा ऊनी दस्ताना।
(१५) पैरों में बाँधने के लिये १ जोड़ा ऊनी पट्टी।
(१६) २ सूती पैजामे।
(१७) २ धोतियाँ।
(१८) २ तौलिये।
(१९) २-३ टुकड़े मोमजामा या बरसाती। बिस्तरे और सामान बाँधने के लिये बरसाती-बिस्तरबंद (होल्डाल) ले जाय तो और भी अच्छा है।
(२०) २ जोड़ा बूट (१ लंबा और १ सादा, इसमें से १ जोड़ा किरमिच का हो तो अच्छा।)
(२१) १ छाता।
(२२) ३ या चार गज का सफेद कपड़ा।

(ख) औषधि

(१) क्लोरोडाईन या कर्पूरादि अरिष्ट—दस्त बंद करने के लिये।
(२) बिसमत या डोवर्स पाउडर—मरोड़ के लिये।
(३) सोडा बायकार्ब, पाचनचूर्ण, या लवणभास्कर—अजीर्ण के लिये।
(४) फ्रूट साल्ट—मृदुविरेचन या पाचन के लिये।

(५) कुनाईन की गोलियाँ—मलेरिया के लिये।

(६) स्टिकिंग प्लास्टर या मलहम।
(७) पोटाशियम परमेंगेनेट।
(८) टिंचर आइओडिन।
(९) बोरिक पाउडर।
(१०) रूई।
(११) बैन्डेज (पट्टी)।

} फोड़ा, फुंसी, चोट, या घाव के लिये।

(१२) ए. बी. सी. लिनिमेन्ट—जोड़ों में दर्द के लिये।

(१३) केफि-एस्पिरिन या ऐस्प्रिो—सिरदर्द और भारीपन के लिये।

(१४) इन्फ्लुएंजा-मिक्शचर।

(१५) दस्त की गोलियाँ।

(१६) वेसलिन की शीशी—ठंढे स्थानों में ओठ, नाक और हाथों में लगाने के लिये।

(१७) कस्तूरी—शीत संबंधी रोगों के लिये।

(१८) नीबू के रस में भावना किये हुए अदरक के टुकड़े—पित्त विकार के लिये।

(१९) क्लिनिकल थर्मामीटर—ज्वर देखने के लिये।

(२०) अमृतधारा—सभी रोगों के लिये।

(२१) वेपेक्स।
(२२) स्मेलिंग साल्ट।

} सर्दी के लिये।

(२३) कार्बोलिक एसिड या और कोई दाँत की औषधि।

(२४) हॉटवाटर बैग—शरीर को गर्म रखने के लिये।

(२५) टूथ ब्रश और दंत-मंजन।

(२६) एनिमा की पिचकारी—पेट की सफाई के लिये।

(२७) रबर का केथीटर—पेशाब खोलने के लिये।

(ग) विविध सामग्रियाँ

(१) टार्च-लाईट, बैटरी के साथ।
(२) १ हरिकेन लालटेन।
(३) १ कांगड़ी (काश्मीर की अँगीठी)—यह शीत प्रदेशों में हाथ और कपड़े सेंकने के लिये बहुत उपयोगी है।
(४) १ स्टोव स्पिरिट आदि के साथ।
(५) मिट्टी के तेल का कनिस्टर—आगे की यात्रा के लिये, गर्ब्यांग या तकलाकोट में खरीदना होगा।[1]
(६) दियासलाई के डिब्बे।
(७) सफरी रसोई के बर्तन—करछी, थाली, कटोरा, तश्तरी, चम्मच आदि।
(८) प्रेशर कुकर, इकमिक, या अन्नपूर्णा कुकर—विशेषकर भात खाने वाले के लिये बड़े काम का है, क्योंकि १०००० फीट से अधिक ऊँचाई पर साधारण बर्तनों में भात अच्छी तरह नहीं पकता।
(९) १ थरमस-फ्लास्क, गर्म दूध या चाय के लिये।
(१०) २ बाल्टी या मिट्टी के तेल के छोटे-बड़े कनिस्टर—कनिस्टरों को पकड़ने के लिये तार लगे हों तो अच्छा हो। ये मार्ग में पानी भरने के लिये और पानी गर्म करने के काम में आते हैं।
(११) १-२ लकड़ी के हलके बक्स—बर्तन, केटली, प्याले आदि टूटने वाली वस्तुएँ रखने के लिये।
(१२) कुंडीदार एक कनिस्टर, जिसमें गुड़पापड़ी, मिठाई आदि रख कर ताला लगा सकें। प्रायः यात्री शिकायत करते हैं कि सेवक या रसोइयों ने उनके खाने की वस्तुएँ चुरा लीं।

---

[1] युद्ध के दिनों में मिट्टी के तेल के लिये अल्मोड़े से ही प्रबंध करना होगा।

(१३) २ बोरे—पहाड़ की यात्रा में होल्डाल आदि फटने का तथा संदूकों के टूट जाने की सदा संभावना रहती है। ये उन्हें बाँधने के काम में आवेंगे।
(१४) २ किट बैग (थैलियाँ) ताले के साथ।
(१५) ४-५ छोटी-छोटी कपड़े की थैलियाँ—यात्रा की वापसी में धूप आदि वस्तुओं को रखने के लिये।
(१६) २ रस्सियाँ—बीस-बीस फीट की।
(१७) चाकू।
(१८) कैंची।
(१९) १ हथ-कुल्हाड़ी।
(२०) २ ताले।
(२१) साबुन—कपड़े धोने और शरीर में लगाने के लिये।
(२२) १ लाठी बल्लम लगा हुआ—हल्द्वानी या अल्मोड़े से खरीद सकते हैं।
(२३) १ जोड़ा हरा चश्मा—बर्फ़ की चमक और ठंढी वायु से आँखों को बचाने के लिये।
(२४) दूरबीन।
(२५) १ केमरा, फ़िल्मों के साथ।
(२६) कोडक मेगनीशियम रिबन होल्डर या साधारण मेगनिशियम रिबन—अँधेरे स्थानों में फोटो लेने के लिये, और खोचारनाथ की मूर्तियाँ, और डिरफुक् तथा जुँठुलफुक् की गोम्पाओं में गुफाओं को अच्छी तरह देखने के लिये बहुत उपयोगी है।
(२७) मेक्सिमम-मिनिमम थर्मामीटर—तापक्रम नापने के लिये।
(२८) एनीरोआईड बेरोमिटर—ऊँचाई नापने के लिये।
(२९) कुछ छोटी-मोटी वस्तुएँ—साबुन, शीशी, सिगरेट आदि, जो घोड़े-वालों या मठों में पुरस्कार देने के काम में आती हैं।
(३०) सूखी तरकारियाँ।
(३१) मसाले, अचार, चटनी, पापड़, इमली, अमचूर, आमरस, बंद डब्बे में रखे हुए फल (प्रीजर्व्ड फ्रूट्स)।

(३२) सूखे फल—किसमिस, मुनक्का, छुहारा, खजूर, बादाम, पिश्ता इत्यादि।

(३३) चाय, ओवलटिन, जमा हुआ दूध या दूध का चूर्ण, 'लेमन चूस', (लॉजेंजेज़), बिस्कुट, चाकलेट, बंबइया-मिठाई, अल्मोड़े के बाल[1] आदि।

(३४) स्टेशनरी—कागज, पेंसिल, कलम, दावात, कार्ड, लिफाफे, सुई, धागे, सूजा, सुतली आदि-आदि।

(३५) १०० पौंड तौलने वाला स्प्रिंग बैलेंस (काँटा)—स्थान-स्थान पर बोझा, सामान आदि तौलने की आवश्यकता पड़ती है।

(३६) श्रीमद्भगवद्गीता और भजन के लिये कोई अन्य पुस्तक।

(३७) ३-४ हाईड्रोजेन पेरोक्साईड की खाली बोतलें[2] या किसी और प्रकार की मज़बूत बोतलें कार्क के साथ—मानसरोवर, गौरीकुंड, कैलास, और तीर्थपुरी के गर्म स्रोतों के जल लाने के लिये।

(३८) कपूर, धूप, अगरबत्ती, कुंकुम, सुपारी, इलायची आदि पूजा के द्रव्य। यात्रा के लिये प्रायः सभी आवश्यक पदार्थ ऊपर लिख दिये गए हैं। अपनी-अपनी स्थिति, आवश्यकता और रुचि के अनुसार इनमें कुछ घटा-बढ़ा भी सकते हैं।

५—व्यय

हल्द्वानी (जहाँ पर गाड़ी से उतरना होता है) से कैलास और मानसरोवर होकर लौटने के लिये एक यात्री का मार्ग-व्यय अपनी स्थिति, और आवश्यकताओं के अनुसार डेढ़ सौ रुपये से लेकर पाँच सौ तक है। यदि

---

[1] यह अल्मोड़े की विशेष मिठाई है, जो विलायत तक जाती है। यह खोआ से बनती है और छः महीने तक ख़राब नहीं होती।

[2] एक दो बोतल आवश्यकता से अधिक ही ले जाना चाहिये। क्योंकि, प्रायः यह देखा गया है कि असावधानी के कारण मार्ग में बोतलें टूट जाती हैं, इसलिये यात्रियों को चाहिये कि जल के बोतलों को कपड़ों में अच्छी तरह लपेट लें या उनके लिये एक संदूक बना लें।

कोई साधु अपनी पीठ पर सामान लेकर पैदल चल सकें, तो पचास रुपये में भी यात्रा कर सकते हैं। यात्रा में सात-आठ आदमियों का जत्था बनाकर जाने से विशेष सुविधा रहती है। इस कठिन और दीर्घ-यात्रा में टोलियों में जाने से सुख-दुःख में पारस्परिक सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त पथ-प्रदर्शकों के, घोड़ेवालों के, तंबुओं के, तथा अन्याय खर्चें जत्थे में जाने से कम पड़ते हैं। इस यात्रा में अकेले जाना ठीक नहीं।

हल्द्वानी या काठगोदाम से अल्मोड़े तक मोटरबस का भाड़ा	३)
अल्मोड़े के पास एक मोटर-सवारी की चुंगी	॥)
अल्मोड़े से धारचूला तक (६० मील) एक लद्दू घोड़े का (जो प्रायः दो मन बोझा ढोता है) भाड़ा	१०) से १२)
अल्मोड़े से धारचूला तक एक सवारी के घोड़े का भाड़ा	१२) से १५)
धारचूला से गर्ब्यांग (५५ मील) तक एक कुली का (जो एक मन तक बोझा ढोता है) प्रतिदिन एक रुपया के हिसाब से भाड़ा	५)
गर्ब्यांग से तकलाकोट तक (३२ मील) झब्बू, याक, घोड़ा, या खच्चर (सवारी, या बोझा ढोने के लिये) का भाड़ा	२॥) से ३)
तकलाकोट से तीर्थपुरी, कैलास-परिक्रमा, मानसरोवर होकर तकलाकोट से खोचार, और वहाँ से गर्ब्यांग तक	१०) से १७)
इसमें मानसरोवर की भी परिक्रमा करना हो तो और देना होगा	१)
गर्ब्यांग से ही सीधे सारी यात्रा के लिये लिया जाय तो	१६) से २०)
गाईड (पथ-प्रदर्शक) प्रतिदिन[1]	१)
गर्ब्यांग से भोटियों से लिये हुए घोड़े आदि[2] हर चार पशुओं की देख-रेख के लिये एक साईस या आदमी का प्रतिदिन[1]	॥)

---

[1] मार्ग में किसी एक स्थान पर दो चार दिन से अधिक विराम करे तो आधा वेतन दिया जाता है।

[2] तकलाकोट से जब घोड़े लिये जाते हैं, तो साईसों को अलग भाड़ा नहीं दिया जाता।

गर्ब्यांग से सारी यात्रा करके फिर गर्ब्यांग लौटने तक एक छोलदारी (छोटा तंबू) का भाड़ा	३) से ५)
सारी यात्रा के लिये एक 'चुटका' (मोटा तिब्बती कंबल) का किराया	२) से ४)
वस्त्रों के लिये आरंभिक व्यय	५०) से १००)
भोजन का व्यय प्रति दिन	॥) से १)
अल्मोड़े से धारचूले तक डाँडी का भाड़ा, छः कुली, प्रति-दिन प्रति कुली एक रुपये की दर से नौ या दस दिनों के लिये	५४) से ६०)
धारचूले से गर्ब्यांग तक डाँडी का भाड़ा छः कुली प्रति दिन प्रति कुली एक रुपये की दर से पाँच दिनों के लिये	३०)
गर्ब्यांग से सारी कैलास यात्रा के लिये डाँडी का किराया, आठ कुली प्रति दिन, प्रति कुली डेढ़ या दो रुपये की दर से बीस दिनों के लिये	२४०) से ३२०)
खाली डाँडी का भाड़ा अलग देना पड़ता है	
रसोइये का वेतन, अल्मोड़े से, प्रतिदिन ॥) से १) तक, १½ महीने के लिये,(उसकेलिये एक पैजामा और जूता)	२५) से ५०)
धारचूला से गर्ब्यांग तक एक मेट को ५ दिन के लिये	५)
गर्ब्यांग से कैलास होकर वहाँ लौटने तक नौकर का वेतन, प्रतिदिन ॥।), २५ दिन के लिये, बिना भोजन	२०)
घोड़ेवाले सेवकों को पुरस्कार और अन्यान्य व्यय	२५)

६—सवारी

अल्मोड़े के ऊपर पहाड़ों में कुली, घोड़ा, खच्चर, याक, झब्बू और डाँडी— केवल ये ही सवारियाँ मिलती हैं। अल्मोड़ा, अस्कोट, धारचूला, खेला, गर्ब्यांग, और तकलाकोट में इनका प्रबंध कर सकते हैं। जहाँ तक हो सके अल्मोड़े से

धारचूले तक कुलियों को नहीं नियुक्त करना चाहिये, घोड़ों से ही काम लेना चाहिये, क्योंकि कुली मार्ग में धीरे-धीरे चलते हैं, इसलिये उन्हें बहुत दिन भी लग जाते हैं, और शीघ्र थक भी जाते हैं। साथ ही उन्हें भोजन और वापसी किराया भी देना पड़ता है। अल्मोड़े में सरकारी कुली एजेन्सी है, जहाँ पर कुली और घोड़ों का प्रबंध हो सकता है; परंतु एजेन्सी का रेट बाजार दर से कहीं अधिक है। हाँ, कुली एजेन्सी से दो-तीन दिन में प्रबंध हो सकता है और बाजार के प्रबंध में एकाध दिन देर होने की संभावना रहती है। अल्मोड़ा पहुँचने से पहले ही प्रबंध करा लें तो देर नहीं होगी। कुलियों को लेना हो तो डोटियालों (नेपाली) को नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि वे बलिष्ठ और अधिक बोझा ढोनेवाले होते हैं। अल्मोड़े से धारचूले तक कुलियों की दर प्रतिदिन बारह आने से एक रुपया तक होती है।

अल्मोड़े में मेसर्स लक्ष्मीलाल आनंद ब्रदर्स द्वारा प्रबंध करने से घोड़े सस्ते में मिल जाते हैं, क्योंकि वे इसे किसी व्यापार-दृष्टि से नहीं, अपितु धार्मिक तथा यात्रियों की सहायता करने के उद्देश्य से कम दर पर ही व्यवस्था कर देते हैं। स्त्रियों के लिये अल्मोड़े से डाँडी करना हो तो छः कुलियों को नियुक्त करना होगा, जिनमें प्रत्येक कुली को प्रतिदिन एक रुपये की दर से मजदूरी देनी पड़ती है। ये लोग नौ या दस दिन में धारचूला पहुँचाते हैं। इस प्रकार अल्मोड़े से धारचूले तक डाँडी का भाड़ा ५४) से ६०) रुपये तक हो जाता है। पर, यदि घोड़े नियुक्त किये जायँ, तो अधिक से अधिक १५) रुपये में ही काम चल जाता है। इसलिये स्त्रियाँ भी अल्मोड़े से घोड़े ही पर जाती हैं, क्योंकि आगे उन्हें भी गर्ब्यांग से घोड़े या याक पर ही जाना पड़ता है। यदि वे बहुत धनी हों तो दूसरी बात है।

धारचूले से गर्ब्यांग तक मार्ग दुर्गम है। वर्षा ऋतु में कई स्थानों में ऊपर के पहाड़ों के टूटने से बड़े-बड़े पत्थर मार्ग पर गिरते रहते हैं। कहीं-कहीं मार्ग भी टूटा हुआ और संकुचित रहता है। इसलिये सवारी और लद्दू घोड़ों का जाना भयावह है। अतः यात्रियों को पैदल या डाँडी में जाना पड़ता है। सोसा में किसी को चिट्ठी लिखकर उसके द्वारा जिपती तक घोड़े का प्रबंध कर सकते

है, इसी प्रकार गर्ब्यांग में भी किसी व्यक्ति को लिखकर लामारी से गर्ब्यांग तक घोड़े का प्रबंध किया जा सकता है। परंतु इस प्रबंध पर पूर्ण भरोसा नहीं रख सकते। साथ ही भाड़ा भी बहुत देना पड़ता है। सामान या डाँडी के लिये तो कुलियों को रखना ही पड़ता है। एक कुली प्रतिदिन एक रुपया लेता है और धारचूला से गर्ब्यांग तक पाँच दिन में पहुँचाता है। यदि कभी धारचूले से गर्ब्यांग तक सीधे कुली न मिलें तो खेला (जो धारचूले से दस मील आगे है) से आगे के लिये नये कुली मिल जाते हैं।

गर्ब्यांग से आगे के मार्ग में सभी स्थानों पर घोड़े, याक, या झब्बू अच्छी तरह से चले जाते हैं। इसलिये वहाँ से तकलाकोट तक ही घोड़े आदि का प्रबंध करना चाहिये।

जहाँ तक हो सके गर्ब्यांग से आगे सवारी में घोड़ों को ही रखना चाहिये, क्योंकि याक या झब्बू बड़े ढीठ पशु होते हैं, वे घोड़ों के समान आज्ञाकारी नहीं होते। अपनी इच्छा से चलते हैं। कभी-कभी गिरा भी देते हैं। गर्ब्यांग से तकलाकोट तक ही घोड़ों को रखना चाहिये; क्योंकि तकलाकोट से तिब्बती घोड़े या याक बहुत सस्ते मिल जाते हैं। गर्ब्यांग से सारी यात्रा के लिये घोड़े को ही रक्खा जाय तो प्रति घोड़े के लिये १८) से २०) रुपये तक देने पड़ते हैं। यदि तकलाकोट से लिये जायँ तो प्रति घोड़े के लिये लगभग १०) रुपयों में ही काम बन जाता है। मानसरोवर की परिक्रमा करना चाहें तो उपर्युक्त संख्या से एक दो रुपया अधिक देना पड़ेगा। यहाँ पर घोड़े या याक के किराये में अंतर नहीं है। गर्ब्यांग से आगे अकेला घोड़ा या झब्बू कदाचित् ही मिलेगा। इन्हें एक साथ तीन से अधिक नियुक्त करना पड़ता है। यहाँ पर यात्रियों की जानकारी के लिये साधारणतया किरायों की दर दी गई है। यात्रियों की संख्या अधिक होने पर या बीमारियों के कारण बहुत से पशुओं के मरने पर, या अकाल में जाने पर ऊपर दी हुई दर कुछ बढ़ भी जाती है। उसी प्रकार किसी अवसर पर कम भी हो सकती है।

गर्ब्यांग से आगे प्रायः घोड़े या याकों पर काठ के जीन होते हैं। इसलिये मोटे-मोटे कंबल, चुटका, दन, आदि घोड़े के काठ के ऊपर और नीचे

डाल दिये जाते हैं, जिससे बोझे का भार कम हो जाता है और बैठने में भी सुविधा मिलती है। इसके अतिरिक्त सवारी के घोड़ों के ऊपर खाने-पीने और दूसरे सामानों को दो छोटी-छोटी गठरियों में बाँध कर काठ पर रखने में बोझे का तौल कम हो जाता है, तथा मार्ग में अत्यावश्यक वस्तु निकालने में सुविधा भी हो जाती है। घोड़े या याकों के काठ के ऊपर या नीचे डाले जानेवाले कंबल आदि नहीं तौले जाते।

जहाँ तक हो सके बिस्तर बहुत मोटा नहीं रखना चाहिये, क्योंकि मार्ग में तीन पुल (बाड़ेछीना) पहुँचने से पहले का, थल का, और गरजिया का पुल) बहुत संकुचित हैं। घोड़ों के पुलों पर जाते समय पथरीली दीवालों की रगड़ खाने से संदूकें या बिस्तर या उनके भीतर रखी हुई वस्तुओं के टूटने का डर लगा रहता है। कैलास की परिक्रमा में गौरीकुंड से उतरने का मार्ग भी बहुत संकुचित है और दोनों ओर बड़े-बड़े बेढंगे पत्थर पड़े रहते हैं। याक और घोड़ों पर सामान लादने के पहले जो टूटनेवाले सामान हों, उन्हें अच्छी तरह से बाँधकर या संदूकों में रखकर लादना चाहिये, क्योंकि याक ढीठ पशु होते हैं और कड़ी चढ़ाई और उतराई में बहुधा उन्हें गिराकर हानि पहुँचा देते हैं।

यदि कोई श्रीमंत गर्ब्यांग से आगे भी अपनी स्त्री को डाँडी पर ले जाना चाहें तो उन्हें आठ कुलियों को प्रतिदिन लगाना होगा और प्रति कुली को प्रतिदिन डेढ़ रुपया देना होगा। वे छोटे-छोटे पड़ावों पर ठहरते हैं, जिससे ड्योढ़ा या दुगुना समय लग जाता है। तिस पर भी संभव है किसी कुली के बीमार पड़ने पर किसी दूसरे को भी नियुक्त करना होगा, जो बड़ी कठिनता से मिलते हैं। इस प्रकार एक डाँडी में ढाई सौ से साढ़े तीन सौ तक रुपये लगेंगे। इसलिये प्रायः सभी स्त्री-पुरुष घोड़े और याक पर ही जाते हैं। घोड़े की सवारी से यहाँ डरने की कोई बात नहीं। अनजान से अनजान स्त्री भी एक दिन में घोड़े पर बैठना सीख जाती है। प्रायः कुली एक मन और घोड़े या याक दो मन का सामान ढोते हैं।

भोजन बनाने के लिये अल्मोड़े से ही एक रसोइया ले जाना चाहिये। यात्री थकावट के कारण मार्ग में भोजन बनाने का काम अपने आप नहीं कर

सकते। यात्रियों को चाहिये कि जहाँ तक हो सके क्षत्रिय रसोइये को ले जाय, क्योंकि ब्राह्मण को ले जाने में चौके का झगड़ा बहुत रहता है। मार्ग में यह कष्ट कारण बन जाता है। दूसरी बात यह है कि पानी भरने के लिये एक दूसरे ब्राह्मण या क्षत्रिय को रखना पड़ता है। क्षत्रिय को ले जाने से गर्ब्यांग तक पानी के लिये कोई कष्ट नहीं रहता, क्योंकि वह स्वयं लाता है। भाँडा-बर्तन धोने का काम किसी घोड़ेवाले या दूकानदार के नौकर से कुछ पैसे देकर करा सकते हैं। गर्ब्यांग से भोटिया नौकर पानी भरना, बर्तन साफ करना, कपड़ा धोना, आदि सब काम बहुत फुर्ती से कर लेता है।

भोजन बनाने के काम के अतिरिक्त सब काम करने के लिये सेवक को गर्ब्यांग से नियुक्त करना उत्तम है, क्योंकि शीत प्रांत का होने से वह मानसखंड में अच्छी प्रकार सेवा कर सकता है। अल्मोड़े से लिये हुए नौकर ऊपर जाकर देश के लोगों की तरह ही ठंढ से सिकुड़ जाते हैं और बाबू बनकर काम नहीं करते, उनको वेतन के अतिरिक्त खाना भी देना पड़ता है, इसलिये व्यय भी दुगुना पड़ जाता है। गर्ब्यांग में ठा० अंतेराम नामक एक शिक्षित युवक है, जो इस काम के लिये बहुत उपयुक्त है। पकाने का काम भली भाँति जानता है, अथक सेवक है, और खूब भजन गाता है। छेरिङ नामक एक खंपा युवक है। ऐसे ही दो चार और युवक हैं, जिनको सेवा में ले सकते हैं। गर्ब्यांग के ये सेवक बिस्तर लगाना, पानी लाना, बर्तन धोना, यात्री के उठने से पहले ही गर्म पानी तैयार कर रखना, लकड़ी लाना, तंबू लगाना, कहानियाँ सुनाना आदि सब काम करते हैं। जहाँ तक हो सके यात्रियों को चाहिये कि वे अपने घर के सेवक या रसोइये को इस यात्रा पर न ले जावें, क्योंकि उनके लिये भी उतना ही प्रबंध करना पड़ता है जितना अपने लिये; अंत में सेवा बहुत कम होती है और वह बीमार पड़े तो मार्ग में कष्ट के कारण हो जाते हैं। हाँ, अधिक धनवान जो अपने निजी सेवकों को सवारी के लिये घोड़ा आदि का प्रबंध करके ले जाना चाहें तो ले जा सकते हैं। चार पाँच यात्रियों के पीछे अल्मोड़े से एक रसोइया और गर्ब्यांग से चलकर वहीं लौटने तक, गर्ब्यांग के ही एक सेवक को नियुक्त करना चाहिये।

जत्थों में जाते समय धारचूले से गर्ब्यांग तक कुलियों के ऊपर एक मेट रखना आवश्यक है। इसकी मज़दूरी अन्य कुलियों की भाँति प्रतिदिन एक रुपया के हिसाब से होती है। बिस्तर बाँधना, बोझा तैयार कराकर कुलियों को समय पर चलाना, पड़ाव पर पानी लाना, और बर्तन धोना इत्यादि सब प्रबंध करना इसका काम है। इसलिये इसको बोझा नहीं दिया जाता; परंतु यह यात्री के साथ-साथ चलकर मार्ग का भोजन, थर्मास फ़्लास्क (चाय गर्म रखने के लिये), छाता, बरसाती आदि सामान और केवल दस-बारह सेर तक का बोझा वह उठावेगा, जिससे यात्री के साथ-साथ सुगमता से चल सके। अधिक बोझा देने पर यह कुलियों के साथ पीछे रह जावेगा और समुचित रूप में काम नहीं कर सकेगा।

यात्रा में एक-दो दिन तक थोड़ी थकावट ज्ञात होगी; पर कुछ दिनों बाद अभ्यास हो जाने पर बिना कष्ट के चल सकेंगे। तिब्बती भाषा में एक कहावत है कि 'खेनला माशुन ना ता मेन, थुरला माफम ना मी मेन' चढ़ाई पर न चढ़ा तो घोड़ा घोड़ा नहीं, उतार पर न उतरे तो आदमी आदमी नहीं। इसलिये यात्रियों को उचित है कि जहाँ कहीं कठिन उतार पड़े तो घोड़े से उतर जायँ—ऐसा करने से दोनों के लिये आराम हो जाता है। चाहे जितनी भी ऊँचाई पर क्यों न हो, उतरते समय दम नहीं घुटता और न कष्ट ही होता है। इस प्रकार घोड़े से गिरने का डर भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त बरखा के समान दलदल भूमि पर चलते समय यात्री को सावधान रहना चाहिये, क्योंकि घोड़े के कीचड़ में धँस जाने और यात्री के गिर जाने का भय बना रहता है। यथासंभव यात्रियों को चाहिये कि ऐसे स्थानों में चलते समय घोड़े से उतर जायँ।

बेरीनाग से अस्कोट तक मार्ग में स्थान-स्थान पर बाँज या बलूत (ओक) के बहुत-से वृक्ष हैं। मार्ग में गिरे हुए उनके पत्ते वर्षा ऋतु में सड़ कर बहुत जोंक उत्पन्न कर देते हैं। उनसे बचने के लिये लंबे बूट और मोजे पहनकर जाना चाहिये। यदि असावधानी से कोई जोंक पैर पर लग गई हो तो तंबाकू का पानी या चूर्ण ऊपर डालने से वह तुरंत छोड़ देगी।

७—साहाय्य और ख्यातनामा व्यक्ति

अल्मोड़े में श्यामनिवास वाले मेसर्स लक्ष्मीलाल आनंद ब्रदर्स बहुत धार्मिक और श्रद्धालु व्यक्ति हैं। इनके दो भाई कैलास-यात्रा कर चुके हैं। इसलिये वहाँ जानेवाले यात्रियों की सहायता करने से उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। ये घोड़े और कुलियों का प्रबंध बड़ी सुगमता से कर देते हैं, क्योंकि घोड़े वाले पहाड़ों में धारचूला तक सामान ले जाने के लिये इनके पास आया करते हैं। इसके अतिरिक्त आगे की यात्रा के लिये परामर्श एवं आवश्यक वस्तुओं के संग्रह करने में भी ये बड़े उत्साह से सहायता करते हैं। किसी प्रकार का विशेष परामर्श यहाँ के डिपटी कलेक्टर, डिस्ट्रिक बोर्ड के चेयरमैन या तहसीलदार के साथ कर सकते हैं।

गणाई में दुकानदार पं० जीवानंद जी और पं० नरोत्तम जी ठहरने का और घोड़ों का प्रबंध तुरंत करते हैं, क्योंकि उनके पास अपने निजी घोड़े हैं। कुछ दिन पहले ही पत्र लिखकर इनको सूचित कर देने से अल्मोड़े से धारचूला या धारचूले से अल्मोड़ा तक घोड़ों का प्रबंध वे कर देते हैं।

टनकपुर से आनेवाला मार्ग अस्कोट में मिलता है। आवश्यकता पड़ने पर अस्कोट के रजवाड़े के कोई सज्जन यहाँ से घोड़े या कुली का प्रबंध कर देते हैं। धारचूले में रायसाहब पं० प्रेमवल्लभ जी भक्त आदमी हैं और कैलास-यात्रियों के सहायक तथा साधु-महात्माओं के सेवक हैं। यहीं के पं० हरिदत्त जी और उमापतिजी दुकानदार यात्रियों को टिकाने और आगे कुलियों, डाँडियों और लौटते समय घोड़ों का प्रबंध करने में विशेष सहायता प्रदान करते हैं। धारचूला पहुँचते ही या पहुँचने के एक दो दिन पहले ही खेला के (जो यहाँ से दस मील पर है) ठाकुर प्रतापसिंह जी मानसिंह जी दुकानदार को लिखने से धारचूले से सीधे गर्ब्यांग तक के लिये वे कुली या डाँडी का सुप्रबंध कर देते हैं। या धारचूले से खेले तक जाते ही कुली मिल गया हो तो खेले से आगे का प्रबंध प्रतापसिंह जी द्वारा हो सकता है, क्योंकि धारचूले से गर्ब्यांग तक जाने वाले कुली प्रायः खेला और उसके आसपास के गाँवों के ही होते हैं।

खेले में आवश्यकता पड़ने पर डाकमुंशी भी कुलियों का प्रबंध कर सकते हैं।

ठाकुर मोहनसिंह जी गर्ब्याल को अल्मोड़े से चलते समय पत्र लिखने से वे सारी कैलास-यात्रा के लिये तकलाकोट से गर्ब्यांग लौटने तक हूणिया घोड़ों का सस्ते भाड़े पर सुप्रबंध कर सकते हैं। पहले ही गाइड कीचखंपा या ठाकुर रुकुमसिंह जी को चिट्ठी लिखने से यात्री के गर्ब्यांग पहुँचने तक तंबू, भोजन सामग्री तथा तकलाकोट तक घोड़े, सेवक आदि का प्रबंध वे स्वयं कर देते हैं। इनकी अनुपस्थिति में आवश्यकता पड़ने पर गर्ब्यांग में पटवारी, डाकमुंशी, या स्कूल के पंडित घोड़े, याक, और भोजन सामग्रियों का प्रबंध करने में सहायता पहुँचाते हैं। तकलाकोट में ठा० मोहनसिंह कुंदनसिंह जी गर्ब्याल, ठा० प्रेमसिंह जी चौदाँसी, ठा० नंदराम जमनसिंह जी गर्ब्याल, ठा० कल्याणसिंह कृष्णसिंहजी और अन्य भोटिया व्यापारी यात्रियों के लिये आवश्यक घोड़ों और याकों के तय करने, भोजन-सामग्रियों के खरीदने, और गर्ब्यांग से उन की चिट्ठी-पत्रियों को मँगवाने या भेजने में अमूल्य सहायता प्रदान करते हैं, तथा यात्रियों को श्रद्धापूर्वक सहायता पहुँचाने में अपना विशेष भाग्य मानते हैं। परखा के मैदान गपूडासा में ठा० मंगलसिंह जी पांगती, तरछेन में ठा० शेरसिंह जी पांगती; ज्ञानिमा मंडी में ठा० भगतसिंह पांगती; ठा० रतनसिंह जी पांगती, ठा० कुंदनसिंह जी जंगपांगी या अन्य जोहारी व्यापारी; ठोकर मंडी में ठा० प्रेमसिंह जी, ठा० रतनसिंह जी अर्या चौदाँसी और ठा० जमनसिंह जी गर्ब्याल, नाब्रा मंडी में ठा० हयातसिंह जी, ठा० उदयसिंह जी या नीति के अन्य भोटिये सज्जन यात्रियों की आवश्यक सहायता करने में अपना अहोभाग्य मानते हैं। इस प्रकार उक्त सभी सज्जन यात्रियों की कृतज्ञता के पात्र हैं।

८—बटमार, बंदूक, पथप्रदर्शक, और दुभाषिये

तकलाकोट से सोलह मील दूर आगे तक किसी प्रकार के डाकू या लूटेरों का भय नहीं रहता। गुरला घाटा के पास मानसरोवर और राक्षसरोवर के किनारों पर, परखा के मैदान में, कैलास की परिक्रमा में,

कैलास और ज्ञानिमा के बीच में, ज्ञानिमा और तीर्थपुरी के बीच में, तीर्थपुरी और कैलास के मध्य में, तीर्थपुरी से गरतोक के मार्ग में, ज्ञानिमा और सिबचिलिम मंडी के बीच में, ब्रह्मपुत्र और सिंधुनदी के उद्गम तक जाने के मार्ग में विशेषकर डाकुओं का भय बना रहता है। मई और अक्टूबर के मध्य में 'आकोरा' (तीर्थयात्री) या खम्पा (खम् प्रांत के लोग) डाकुओं के झुंड अपने बाल-बच्चों के साथ मानसखंड की मंडियों में आने-जाने लगते हैं। इनके पास बड़ी-बड़ी तलवारें और बंदूकें रहती हैं। मार्ग में किसी निरस्त्र यात्री या व्यापारी के मिलने पर ये उनके घोड़ों सहित सभी सामानों को लूटकर पहाड़ों में शीघ्र ही अदृश्य हो जाते हैं। इसलिये यात्रियों को चाहिये कि जत्थों में चलें और अपने पास बंदूक रखें[1]। यदि यात्रियों में किसी के पास अपनी बंदूक न हो तो यात्रा के प्रारंभ में ही तकलाकोट में घोड़ेवालों से मँगवा लें। यदि घोड़ेवालों के पास से भी न मिले तो किसी भोटिया व्यापारी के द्वारा दो चार रुपये किराये पर ले लें। प्रायः डाकुओं की संभावनावाले स्थानों में जब ठहरना हो तो सूर्यास्त के बाद एकाध झूठा फायर कर देना चाहिये, जिससे यदि आस-पास में कोई डाकू छिपा हो, तो यह समझकर कि इनके हाथ बंदूकें हैं, पास नहीं आते। इस प्रकार बंदूक का प्रबंध कर लेने से डाकुओं से किसी प्रकार डरने की कोई बात नहीं रहती।

एक-एक जत्थे में एक गाइड या पथ-प्रदर्शक को नियुक्त करना पड़ता है। उन्हें प्रतिदिन एक रुपया देना पड़ता है। पथप्रदर्शक का कर्त्तव्य यह होता है कि पड़ाव पर पहुँचते ही घोड़ेवालों से तंबू गड़वाएँ, यात्रियों के सामान को उसमें यथास्थान रखवाएँ, रात में वर्षा की आशंका हो तो डेरों के चारों तरफ खड्डा खुदवावें, मार्ग में जहाँ-कहीं दूध या मक्खन या किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता पड़ने पर उन्हें किसी तिब्बती गड़रियों से मंगवावें, और सवेरे आगे चलने के लिये सामान को बंधवाकर घोड़े पर लदवाकार उन्हें उचित समय पर रवाना करें। इन सभी प्रबंधों का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है।

---

[1]देखिये 'डाकू तथा बटमार', पृ० २०४

गाइड (पथप्रदर्शक) दुभाषिये का कार्य भी करता है। भोटिये और कुछ हूणिये हिंदी और तिब्बती दोनों भाषाओं के जानकार होते हैं। गर्ब्यांग में श्री कीचखंपा नामक एक पथप्रदर्शक हैं, जिन्होंने अब तक अनेक जत्थों के साथ जाकर कैलास की ४५ परिक्रमाएँ की हैं। ये बड़े सुशील, शांत, सहनशील, और सेवातत्पर हैं। किसी बड़े जत्थे में जानेवाले को चाहिये कि वे इन कुशल पथप्रदर्शक को पहले गर्ब्यांग में चिट्ठी लिखकर गाइड के लिये अपने साथ ले लें।

ठाकुर रुकुमसिंह जी गर्ब्याल एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं और गाइड का काम करते हैं। ये भी कई बार यात्रियों के साथ कैलास और मानसरोवर आ चुके हैं। गाइड के कार्य के अतिरिक्त भोजन बनाने का काम भी अच्छी तरह जानते हैं और खूब भजन भी सुनाते हैं। इनके अतिरिक्त चौदांस में सोसा गाँव के ठा० मानसिंह जी अच्छे गाइड हैं, जो शांत और सुशील हैं। गर्ब्यांग में रिङ्जेन नामक एक और खंपा हैं, जो गाइड का काम करते हैं; परंतु वे कुछ गरम प्रकृति के व्यक्ति हैं। पहले ही अल्मोड़े से श्री कीचखंपा, ठाकुर रुकुम-सिंह जी, या ठा० मानसिंह जी को चिट्ठी लिखकर गाइड के लिये नियुक्त करनें से सब प्रकार का प्रबंध ये लोग यात्री की रुचि के अनुकूल करेंगे। गाइड सेवक और रसोइया का बिस्तर और भोजन का सामान—लगभग २५ सेर तक का भार—यात्री को अपने घोड़े से ढुलाना पड़ेगा। साधारण वित्त के लोग गाइड के स्थान पर घोड़े वालों में से किसी एक को थोड़ा पुरस्कार देकर उनसे ही पथप्रदर्शक का कार्य लेते हैं। सभी घोड़ेवाले भी मार्ग की जानकारी रखते हैं।

६—कैलास से बदरीनाथ

कैलास-मानस-यात्रा पूरी करने के पश्चात् कोई यात्री यदि बहुत न थका हो और बदरीनाथ जाना चाहे तो उसे पहले लौटकर तकलाकोट आना चाहिये। तकलाकोट से कैलास जाते समय बदरीनाथ जाने के निश्चय को पहले ही घोड़ेवालों से कह देने से घोड़े के भाड़े में एक-दो रुपये की कमी हो जाती है। यहाँ से बदरीनाथ जाने के लिये नीती घाटा होकर जाना पड़ता है।

नीती गाँव तक का मार्ग बहुत पथरीला होने के कारण उस यात्रा के लिये घोड़े भाड़े पर नहीं मिलते, केवल याक मिलेंगे। याकों में कुछ सवारी के काम में भी आते हैं, जो नाभा कहलाते हैं। अच्छा नाभा मिले तो उस पर बैठना घोड़े से अधिक सुखदाई है। हाँ अपनी इच्छानुसार इसको इधर-उधर नहीं चला सकते; क्योंकि यह अपने मन से चलता है।

तकलाकोट से नीती तक एक याक का भाड़ा दस रुपया तक होता है, क्योंकि याक को लौटते समय खाली आना पड़ता है। तकलाकोट से नीती १४७½ मील है, वहाँ से जोशी मठ ४३½ मील है, और जोशी मठ से बदरीनाथ १९ मील है, अर्थात् तकलाकोट से नीती होकर बदरीनाथ २१० मील है। तकलाकोट से नीती दस दिन का और वहाँ से बदरीनाथ ४ दिन का मार्ग है। तकलाकोट से नीती तक गाइड आने-जाने के लिये बीस-पच्चीस रुपया लेता है। भोजन दें तो वही रसोइये का भी काम कर लेता है। यदि यात्रियों की संख्या अधिक हो, तो रसोइया को अलग से नियुक्त करना पड़ता है। यात्री ऐसा भी कर सकते हैं कि कैलास की परिक्रमा पूरी करके वहाँ से सीधे ज्ञानिमा मंडी जाँय, वहाँ से बदरी-यात्रा पर न जा सकनेवाले तकलाकोट होकर गर्ब्यांग लौटें और बदरीनाथ जाने के इच्छुक नीती तक का नया प्रबंध वहीं से करें। ऐसा करने में व्यय और समय का कोई निश्चय नहीं है, कभी कम और कभी अधिक हो सकता है।

१०—ठहरने के स्थान और डेरे

अल्मोड़े से लेकर गर्ब्यांग तक रात में ठहरने के लिये छोटी-छोटी धर्मशालाएँ, दुकान, और प्राइमरी स्कूलों के मकान हैं। विशेष स्थानों में जंगलात या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के बँगले हैं। जंगलात के बँगलों में ठहरने के लिये पंद्रह या बीस दिन पहले अल्मोड़े के जंगलात ऑफिस को लिखकर आज्ञा लेनी होगी और उनमें निश्चित तिथि को ठहरना होगा, जो यात्रियों के लिये सुविधा-जनक नहीं होता। डाकबँगले खाली हों तो निर्धारित शुल्क देकर जिस किसी समय भी ठहर सकते हैं।

मालपा में गाँव नहीं है, केवल दारमा-सेवा-संघ की दो कमरे की एक धर्मशाला है। यात्रियों का जत्था बड़ा हो तो इसमें स्थान की कमी होगी, इसलिये जिपती से पहले ही आदमी भेजकर धर्मशाला की सफ़ाई करके तैयार करा लेना चाहिये। इस वर्ष दारमा-सेवा-संघ ने धर्मशाला को दोमंजिला बनाने का निश्चय किया है; यदि वह बन गई होगी तो किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। कालापानी और उसके आगे चार मील तक छोटी-छोटी गुफा के समान कई धर्मशालाएँ हैं। लीपूलेख की दूसरी ओर पाला नामक स्थान में इसी प्रकार की धर्मशालाएँ हैं, जिनमें छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं। पाला पहुँचने के एक मील पहले ही एक छोटी-सी धर्मशाला है। इन धर्मशालाओं में किवाड़ और खिड़कियाँ नहीं हैं, जिससे देश के यात्रियों को ठहरने में अच्छी सुविधा नहीं मिलती। हाँ अकेले-दुकेले यात्री या कोई साधु-संत ठहर सकते हैं।

गर्ब्यांग से आगे के मार्ग में तंबुओं में ही रहना पड़ता है। कैलास और मानसरोवर की परिक्रमा में यात्री कम हों तो वे चाहने पर मठों में ठहर सकते हैं। रहने या रसोई के लिये गर्ब्यांग से जितनी छोलदारी (छोटा तंबू) की आवश्यकता हो, भाड़े पर मिल जाती हैं। अल्मोड़े से कोई भी व्यक्ति (अति धनवानों को छोड़ कर) तंबुओं को साथ नहीं ले जाते, क्योंकि वहाँ से गर्ब्यांग तक आने-जाने का भाड़ा लगभग तंबू के मूल्य के बराबर हो जाता है।

गर्ब्यांग में मिलनेवाली एक-एक छोलदारी में अधिक से अधिक चार व्यक्ति रह सकते हैं। यहाँ की छोलदारियाँ देश के तंबू जैसी, पूरी तरह-से हवा-बंद ('एयर टाइट') नहीं होती। छोलदारी के बगलों से थोड़ी बहुत वायु भीतर घुस कर आता है। एक या दो मोटे चुटके भाड़े पर लेने से अच्छे प्रकार काम चल जाता है। यदि कोई संपन्न व्यक्ति सुविधा चाहे तो अल्मोड़ा या अपने स्थान से बड़ा तंबू या 'डबुल फ़्लाई टेन्ट' ले जाय।

११—जलवायु

अल्मोड़ा, धौलछीना, बेरीनाग, और खेला—ये ठंढे स्थान हैं। यहाँ रात में ओढ़ने के लिये कंबल की आवश्यकता होती है। सेराघाट,

गणाई, थल, बलुवाकोट, और धारचूला—गर्म स्थान हैं। इन स्थानों में गर्मी असह्य होती है। खेला से गर्ब्यांग तक स्थान ठंढे हैं। कालापानी के बाद प्रायः भयानक और तीव्र शीतल वायु चलने लगती है, जो तिब्बत की अपनी विशेषता है। इसके दुष्परिणाम से बचने के लिये खेला से आगे प्रातःकाल में निकलने के पहले नाक, मुँह, ओठ, हाथ, और पैरों में वेसलिन लगा लेना चाहिये, नहीं तो वे सभी स्थान काले हो जाते हैं; और फटकर रक्त भी उनसे निकलने लगता है। विशेषकर घाटा पार करते समय मुँह पर अच्छी तरह से वेसलिन न लगाया जाय तो मुँह पूरा काला हो जाता है, और तीसरे दिन से साँप की केंचुली के समान चमड़ा निकलने लगता है। मानसखंड में तकलाकोट और खोचारनाथ की जलवायु अन्य स्थानों से अपेक्षाकृत उष्ण है।

अल्मोड़े में जून के अंत से वर्षा आरंभ हो जाती है। कैलास की यात्रा आरंभ होने के समय वर्षा के बढ़ जाने के कारण चढ़ाई और उतराई में यात्रा दिल उबानेवाली और कष्टप्रद हो जाती है। मानसखंड में वर्षा ऋतु विलंब से आरंभ होती है और अल्प होती है। किंतु जब कभी वर्षा होती है तो मूसलाधार होती है। ज्ञानिमा मंडी में बहुत सर्दी पड़ती है। यहाँ तक कि मंडी के दिनों (जुलाई और अगस्त) में रात को डेरे से बाहर पड़ी हुई बालटी का जल पूरा बर्फ बन जाता है। यात्रा के दिनों में मानसखंड का माध्यमिक तापक्रम दिन के समय ५०° से ६०° तक रहता है। यदि दिन में बादल न हों तो धूप प्रखर रहती है। मई के अंत से कुछ दिन पहले यदि लीपूलेख का घाटा पार करनी हो तो भारत की सीमा पर दो-तीन फर्लांग की दूरी को बर्फ पर चलकर पार करना पड़ता है। जून के अंत में एक फर्लांग की दूरी का भी बर्फ नहीं होता। प्रायः लीपूलेख और डोलमा के घाटों के ऊपर प्रतिदिन किसी-न-किसी समय, कुछ-न-कुछ बर्फ या पानी पड़ता ही है। डोलमा ला के घाटा पर बर्फ गिरने का कोई निश्चित समय नहीं होता। परंतु सितंबर के महीने से बारह बजे के बाद लीपूलेख घाटा के ऊपर प्रतिदिन तीव्र वायु के साथ वर्षा होती रहती है या बर्फ गिरती रहती है, जिससे घाटा को बारह बजे से पहले ही पार करना उचित और निरापद है।

जैसा कि पहले कह चुके हैं, समुद्रतल से जितनी अधिक ऊँचाई पर जाते हैं उतनी ही वायु पतली होती जाती है। फलतः वायु में आक्सीजन (प्राणवायु) का अंश कम हो जाता है। इस प्रकार वायु पतली होने और प्राणवायु के कम होने से प्रायः समुद्रतल से १०००० फीट से अधिक ऊँचाई में पहाड़ों पर यात्रा करते समय मन पर एक विशेष प्रभाव पड़ने लगता है, जिससे सारी मानसिक क्रियायों की गति अति द्रुत या अति मंद हो जाती हैं, अर्थात् मन की गति विकृत हो जाती है। परंतु समस्त कार्य मानसिक भावों के परिणामस्वरूप होते हैं, इसलिये विशेषकर क्रोध, ईर्ष्या, और हर्ष आदि भावों की गति तीव्र हो जाती हैं। अतः अधिक ऊँचाई पर जाते समय स्वभाव चिड़-चिड़ा और झगड़ालू हो जाता है।

प्रायः यात्रियों के जत्थों में यह देखा गया है कि छोटी-छोटी बातों पर आपस में झगड़ा हो जाता है और क्रोधावेशपूर्ण बातें होने लगती हैं। पुनः नीचे उतरने पर उन बातों को भूलकर सब मित्र बन जाते हैं। इसलिये यात्री दल और पर्वतों पर भ्रमण करने जानेवाले जत्थे इस प्राकृतिक विचित्रता को ध्यान में रखकर यदि कोई आपस में क्रोधित हो जाय तो शेष लोगों को शांत रहना चाहिये न कि वे भी झगड़े में कूद पड़ें। थोड़ी देर में वे भी शांत हो जावेंगे। ऐसा करने से किसी दूसरे अवसर पर कोई अन्य व्यक्ति यदि क्रोधित हो जाय तो यह स्वयं शांत रहेगा।

वैसे तो यह देखा जाता है कि पित्त प्रकृतिवाले का पहाड़ पर चढ़ते समय पित्त बढ़ जाने से स्वभाव में अंतर आ जाता है। यही कारण अन्य व्यक्तियों के बारे में भी हो सकता है। अभिप्राय यह है कि अधिक ऊँचाई पर पतली वायु के कारण प्राणवायु की कमी से यकृत या जिगर (लीवर) कुपित होने से पित्त-रस साधारण समय से अधिक मात्रा में निकलता है, जिससे रक्त में विकार उत्पन्न होकर मन विकृत हो जाता है। संभवतः इसी कारण से पहाड़ों पर चढ़ते समय कुछ खट्टी या चरपरी वस्तुओं के लिये जी चाहता है, जो पित्त प्रकोप के उपचारक हैं। पित्त-प्रकोप के लिये भावित अदरक का ले जाना बहुत लाभकारी है। पहाड़ में यात्रा करते समय कुछ लोगों की भोजन की मात्रा

बढ़ जाती है और कुछ लोगों की कम होती भी देखी गई है। यात्रा में प्रायः प्रातःकाल कुछ जलपान करने की आवश्यकता पड़ती है।

पर्वती-यात्रा पर जाने से मोटे व्यक्तियों का अनावश्यक मेदा गलकर शरीर सुडौल और स्वस्थ हो जाता है; छोटी-मोटी शारीरिक रुग्णता दूर हो जाती है, शरीर में नया और शुद्ध रक्त संचारित हो जाता है; नाड़ियाँ और नाल-विहीन ग्रंथियाँ (एन्डोक्राइन ग्लैंड्स) सबल होती जाती हैं। हृदय पुष्ट और फेफड़े सुदृढ़ हो जाते हैं। मस्तिष्क में ताजापन आ जाता है, और मन निर्मल हो जाता है। संक्षेप में सारे शरीर में नवजीवन का संचार होकर किसी भी कार्य के करने में शक्ति और उत्साह दुगुने हो जाते हैं।

१२—यात्रा का उचित समय

मई से नवंबर के अंत तक लीपूलेख के ऊपर बर्फ पिघल जाती है, जिससे देश के लोगों के लिये मार्ग सुगम हो जाता है, यद्यपि तिब्बती लोग वर्ष में दस महीने तक आते-जाते रहते हैं। जून के आरंभ या मध्य में कैलास जानेवाले यात्री अल्मोड़े से सुविधापूर्वक यात्रा कर सकते हैं, जिससे कम-से-कम जाते समय वर्षा से बच सकें। परंतु शीत के भय से प्रायः यात्रीगण जुलाई के आरंभ से चलते हैं, जिससे जाने और आने दोनों समय वर्षा का कष्ट उठाना पड़ता है। लीपूलेख की घाटी के ऊपर की बर्फ से डरने की कोई बात नहीं। कुछ साहसी नवयुवक अल्मोड़े से मई के अंत में ही निकलकर जाते हैं, यद्यपि घोड़े आदि का खर्च कुछ अधिक पड़ जाता है। अन्य घाटों के मार्ग के खुलने का समय उन-उन मार्गों की तालिका में दिया गया है।

१३—यात्रा में कितना समय लगता है?

अल्मोड़े से मानसरोवर होकर कैलास की परिक्रमा और खोचारनाथ का दर्शन करके अल्मोड़े लौटने तक (धारचूला, गर्ब्यांग और तकलाकोट में कुली, घोड़े आदि के प्रबंध और मुकाम के दिनों को मिलाकर) पचास दिन लग जाते हैं। ज्ञानिमा मंडी और तीर्थपुरी भी जाना हो तो एक सप्ताह और

लग जाता है; मानसरोवर की प्रदक्षिणा भी करे तो दो-तीन दिन और भी लग जाते हैं। अर्थात् सारी यात्रा पूरे दो महीने में समाप्त होती है। अल्मोड़ा, धारचूला, गर्ब्यांग, और तकलाकोट में घोड़े आदि के लिये पहले ही चिट्ठी लिखने या किसी व्यक्ति के द्वारा प्रबंध करने से पचास दिन में ही संपूर्ण यात्रा हो सकती है, पर इस प्रकार कुछ हड़बड़ी में होगी।

१४—डाक[1]

अल्मोड़े से लीपूलेख घाटा होकर कैलास जानेवाले मार्ग में गर्ब्यांग ही अंतिम डाक-घर है। इसलिये यात्रियों को उचित है कि अपनी चिट्ठी-पत्रियों को लौटने के समय तक डाकघर में ही रखने के लिये पोस्टमास्टर से कह दें, या तकलाकोट में ठा० नंदराम जी गर्ब्याल के द्वारा उनके पते पर मँगवा लें। यात्रियों की डाक के प्रबंध करने में ये बड़ी सहायता पहुँचाते हैं।

१५—खाद्यपदार्थ

अल्मोड़े से गर्ब्यांग तक (मालपा में एक दिन छोड़कर, जो जिपती और गर्ब्यांग के बीच में है) सारे मार्ग में खाने-पीने के सभी प्रकार के सामान दूकानों में मिल जाते हैं। बेसन, सूजी, अचार, सागूदाना और सेवँई आदि वस्तुओं को विशेषरूप से चाहनेवाले लोग अल्मोड़े से ही ले जायँ। जिपती से मालपा के पड़ाव के लिये भोजन का सामान साथ ले जाना चाहिये। यात्रियों को चाहिये कि आगे की यात्रा के लिये पुनः गर्ब्यांग लौटने तक की पर्याप्त भोजन सामग्री और आलू गर्ब्यांग से ही ले जायँ। बेरीनाग से धारचूले तक मोटे केले प्रचुर परिमाण में सस्ते मूल्य पर मिलते है। बाड़ेछीना, सेराघाट, थल, और धारचूले में कैलास आते-जाते समय आम की ऋतु में पर्याप्त आम मिलते हैं। लौटते समय गर्ब्यांग में बंद गोभी, राई का साग, और मूली, सिरखा में सेव और नाशपाती, और धारचूला में अमरूद अधिक मिलते हैं।

---

[1] देखिये 'डाकघर' पृ०—२१८

खेला और धारचूले में बहुत बढ़िया दानेदार घी रुपये में एक सेर से डेढ़ सेर तक मिलता है। अल्मोड़े से सिरखा तक ककड़ी मिल जाती है। अक्टूबर से नवंबर के अंत तक बलुवाकोट, जौलजीवी, गर्जिया, अस्कोट, डीडीहाट, और थल में संतरा या नारंगी मिलती है।

तकलाकोट मंडी में कभी-कभी (नेपाल की सीमा लिमी से) हरा मिर्चा, मूली, चुल्लू (एक प्रकार की खुमानी), और आलू बिकने के लिये आते हैं। कद्दूकश पर घिसी हुई सूखी मूली भी यहाँ पर किसी-किसी व्यापारी के पास मिल जाती है। तकलाकोट से करदुङ तक हरा मटर बहुत मिलता है। तकलाकोट मंडी में मिलनेवाली खाने-पीने की वस्तुओं के भाव नीचे दिये गए हैं।[1] ये सभी पदार्थ देश से ही आते हैं, इसलिये इनके भाव भी देश के भाव के अनुसार घटते-बढ़ते रहते हैं।

गेहूँ का आटा	प्रति रु०	३ से ५	सेर
चावल	”	३ से ५	सेर
मसूर की दाल	”	३ से ४	सेर
उड़द की दाल	”	४ से ५	सेर
चीनी या मिसरी	”	१। से १॥	सेर
जौ का सत्तू	”	३ से ५	सेर
मटर का सत्तू	”	३ से ५	सेर
किसमिस या मुनक्का	”	१। से १॥	सेर
मक्खन	”	१ से १॥	सेर
मसाले	”	१	सेर

गुड़ की भेली जो दो से ढाई सेर तक की होती है ॥) से ।।।=) आने

मिट्टी का तेल छोटा कनिस्टर २।) से ३) रुपये

इनके अतिरिक्त बिस्कुट, मोमबत्ती, दियासलाई, सिगरेट, बर्तन, स्टेशनरी, सभी प्रकार के कपड़े, जूते आदि वस्तुएँ यहाँ मिलती हैं।

तरछेन में जोहार और दारमा परगने वालों की मंडी लगती है। यहाँ

---

१ चूँकि युद्ध के कारण सभी वस्तुओं के दाम बढ़ गए हैं, इसलिये जो दरें इस पुस्तक में दी गई हैं उनमें स्वभावतः आदि परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी; उसी प्रकार वर्तमान समय के भाड़े के संबंध में भी कोई निश्चित दर नहीं बताई जा सकती।

पर भी सभी प्रकार के खाने-पीने के सामान तथा अन्य वस्तुएँ कुछ कम अंशों में मिल जाती हैं; पर भाव तकलाकोट से अधिक होता है। तकलाकोट से ज्ञानिमा मंडी होकर तीर्थपुरी जानेवालों के लिये सभी वस्तुएँ ज्ञानिमा मंडी में मिल जाती हैं। घर से आते समय यात्रियों को बड़ी, पापड़, अचार, चटनी, सूखे साग तथा बहुत दिनों तक ठहरनेवाली मिठाई आदि वस्तुओं को अपने साथ ले जाना चाहिए, क्योंकि गर्ब्यांग में कोई शाक या भाजी नहीं मिलती। तकलाकोट से आगे कहीं-कहीं गड़रियों के काले तंबुओं में चँवर गाय तथा भेड़ और बकरियों का दूध, दही, 'छुरा', मक्खन, मट्ठा आदि खरीदने पर मिल जाते हैं। तकलाकोट, तरछेन और ज्ञानिमा की मंडियों तथा गड़रियों के डेरों में मक्खन रुपये का एक से डेढ़ सेर के भाव तक मिल जाता है।

प्रातःकाल मध्य मार्ग में, या जिस समय भी भोजन की आवश्यकता पड़े, खाने के लिये पहाड़ में गुड़पापड़ी नामक एक मिठाई बना लेते हैं, जिसे घी में आटा भून कर और गुड़ मिलाकर बना लेते हैं। उसे देश में पँजीरी कहते हैं। पँजीरी में गुड़ के स्थान पर चीनी मिलाते हैं। गुड़पापड़ी तैयार करके बादाम, किशमिश और नारियल की गरी आदि मेवे मिलाते हैं। उसे इस प्रकार तैयार करके एक कनिस्टर में रखा जाता है। पड़ाव से निकलते समय मार्ग में खाने या किसी सेवक को देने के लिये थोड़ी पँजीरी एक छोटी-सी थैली में बाहर निकालकर साथ रख लेनी चाहिये। विशेषकर लीपूलेख घाटा, गरला ला, गौरीकुंड आदि स्थानों पर साथी यात्रियों तथा सेवकादिकों में इसका वितरण करना पड़ता है। इसे प्रायः खेला या गर्ब्यांगं में बनवाकर ले जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर जहाँ कहीं भी बना सकते हैं।

१६—ईंधन

अल्मोड़े से लेकर गर्ब्यांग तक सभी स्थानों में, दुकानों में जलाने के लिये लकड़ियाँ मिल जाती हैं। गर्ब्यांग से कालापानी तक जंगलों से चीड़ की लकड़ी मिल जाती है। कालापानी से चार-पाँच मील आगे तक पदम (एक प्रकार का छोटा देवदारु) की झाड़ी मिलती है। आगे तिब्बत में चलकर कैलास

की यात्रा में 'डमा' की झाड़ियों (जो हरी जलती है) को छोड़कर अन्य किसी प्रकार की लकड़ी नहीं मिलती। प्रायः तिब्बती लोग याक के कंडे और भेड़-बकरियों की लेंड़ियों को जलाने के काम में लाते हैं। आग सुलगाने के लिये साथ में भाथी रखते हैं। चकमक पत्थर से आग बनाकर घोड़े की लीद में लगाकर अग्नि प्रज्वलित कर लेते हैं। यात्रियों को अपनी आवश्यकता के अनुसार स्टोव, मिट्टी का तेल, स्पिरिट, और दियासलाई आदि साथ ले जाना चाहिये।

१७—सिक्का[1]

तकलाकोट तक भारत के सभी सिक्के और नोट[2] चलते हैं, परंतु तिब्बत में भारत के नोट बिल्कुल नहीं चलते। उससे आगे तिब्बती टंका या टंगा व्यवहार में लाते हैं। भोटिये व्यापारी भारत के सभी सिक्कों को ले लेते हैं। हूणियों (तिब्बती) के साथ नित्य व्यवहार के लिये तीन चार रुपये का 'टांगा' भुना लेना चाहिये—अधिक लेने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तिब्बती लोग टंकाओं से भारत के रुपये को अधिक पसंद करते हैं। आजकल मानसखंड में रुपये में आठ टंके मिलते हैं। ल्हासा की दर के अनुसार कभी-कभी एक टंका का भाव यहाँ बढ़ या घट जाता है। आधा टंका भी वहाँ प्रचलित है जो 'जव' कहलाता है। नौ-दस वर्षों से ल्हासा में रुपये, अठन्नी और नोट भी प्रचार में आने लगे हैं।

१८—यात्रा में होनेवाली व्याधियाँ

हल्द्वानी या काठगोदाम स्टेशन से अल्मोड़े तक मोटर में चलते समय उतार और चढ़ाई के कारण पित्त प्रकोप वालों को उल्टी हुआ करती है।

---

[1]देखिये, 'सिक्का' पृ० २२५।

[2]युद्ध के कारण गत वर्ष से अल्मोड़े से भारत की सीमा तक दुकानदार और व्यापारी लोग नोट बहुत कम ले रहे हैं। इसलिये यात्रियों को चाहिये कि चाँदी के रुपये ही साथ ले जायँ।

उन्हें चाहिये कि बारह आने या एक रुपया अधिक देकर आगे की सीट पर बैठें। यदि चल सकें तो पैदल चलकर हल्द्वानी से दो दिन में अल्मोड़ा पहुँचे। यात्रा में साधारणतया होनेवाली बीमारियाँ ये हैं—मरोड़ या पेचिश, दस्त, सर्दी (जुकाम), खाँसी, थकावट, मार्ग में चढ़ाव-उतार की थकावट के कारण ज्वर, शरीर में भारीपन, घाटों पर चढ़ते समय चक्कर आना और सिर-दर्द। कठिन चढ़ाइयों पर चढ़ते समय किसी दुर्बल या स्थूल शरीरवालों को छाती में धड़धड़ाहट होने लगती है या दम घुट जाता है। पित्त प्रकोपवालों को कभी-कभी घाटों पर चढ़ते समय विकार या उल्टी होने लगती है। उन लोगों को चाहिये कि चढ़ाई के पहले अपनी जेब में अनारदाना, अमचूर, नींबू का सत, इमली या किसी और प्रकार की खटाई को लेकर उक्त समय पर उनका प्रयोग करें। ऐसा करने से ये रोग निवृत्त हो जाते हैं। सिर चक्कर, हल्का बुखार, या शरीर के भारीपन के लिये 'एस्पिरिन' या 'एस्प्रो' खाकर लाभ उठा सकते हैं। किसी-किसी को १५,००० फीट से अधिक ऊँचाई के स्थानों में रक्त संचार की गति (ब्लड प्रेशर) के बढ़ जाने से कभी-कभी नाक या मुँह से रक्त निकलने लगता है। इससे घबराना नहीं चाहिये। शीतल जल छिड़कने से यह शिकायत दूर हो जाती है।

कुछ लोगों की धारणा है कि घाटों को लाँघते समय विषैली जड़ी बूटियों के फूलों के ऊपर से आई हुई वायु को सूँघने के कारण विष चढ़ जाता है और उससे शिर में पीड़ा, शिर-चक्कर, उलटी आदि होने लगते हैं। परंतु इनके कारण विषैली बूटियों की गंध नहीं है, अपितु यह है कि समुद्रतल से जितनी अधिक ऊँचाई पर हम जाते हैं वायु उतना ही पतला होता रहता है। श्वसोच्छ्वास के लिये आवश्यक परिमाण में प्राणवायु न मिलने के कारण दम घुटता है और लोग हाँफने लगते हैं। मैदानों में एक बार श्वास लेने से जितना प्राणवायु मिलता है, उतना के लिये अधिक ऊँचाई पर चढ़ते समय चार-पाँच बार श्वास लेना पड़ता है; इसलिये दम घुटने लगता है। विषैले फूलों की गंध से 'ज़हर चढ़ने' की कथा में केवल भ्रम और अज्ञान है।

पैर की पीड़ा के लिये रात में सोने के पहले प्र्यास गरम किये हुए

पानी में नमक डालकर पैर को उसमें थोड़ी देर रखे और फिर उसीसे पैरों को धो देने से कष्ट दूर हो जाता है और सवेरे तक पैर स्वस्थ हो जाते हैं। यात्रा में सवेरे-शाम गर्म चाय पीने से शरीर में गर्मी उत्पन्न होकर थकावट दूर होती है।

बर्फ़ पर चलते समय, धूप में और बर्फ़ीली चोटियों के सामने जाते समय, आँखों पर हरा या रंगीन चश्मा न हो तो सूर्यरश्मियों के बर्फ़ पर पड़ने की चमक से आँख लाल हो जाती है और आँख-उठने के समान असह्य दुःख होता है; ऐसा प्रतीत होता है मानो आँख बालू से भरी हो और हज़ारों सुईयाँ उस में चुभाई जा रही हों। उस समय आँखों में बोरिक का पानी (एक चुटकी बोरिक पाउडर एक आउन्स पानी में मिलाकर) या फिटकिरी को आग पर रखके फुलाकर, उसे पानी में डाल दे और उस पानी को आँख में डालने से दुःख दूर हो जाता है।

यदि पैर की उँगलियाँ ठंढक से सूज जायँ तो कभी भी आग पर नहीं सेंकना चाहिये। रबड़ की थैली में गरम पानी डालकर उसे पैर के नीचे रखना चाहिये तथा दिन में ऊनी मोजे पहनने चाहिये। यदि पैर या हाथ की उँगलियाँ ठंढक के कारण अत्यंत सुन्न हो जायँ या सूज जायँ, तों उन्हें भी आग के ऊपर कभी नहीं सेंकना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से नखों के भीतर सुईयों के चुभाने के दर्द के समान असह्य पीड़ा होने लगती है। उस समय अंगुलियों को काँख और घुटनों के घोंचों में रखकर दबाना चाहिये। थोड़ी ही देर में अपूर्व लाभ होता है। मार्ग में भोजन के संबंध में थोड़ा सावधान रहना चाहिये।

अध्याय २

लीपूलेख घाटा होकर कैलास जाने का मार्ग

१—अल्मोड़ा कैसे पहुँचें ?

कलकत्ते से बरेली जंक्शन (ई० आई० आर०) ७६२ मील की दूरी पर है। बरेली से काठगोदाम (ओ० टी० आर० छोटी लाइन) ६६ मील है। तीसरे दर्जे का कुल किराया १२) है। बनारस से काठगोदाम ३६६ मील है। तीसरे दर्जे का किराया ७) है। प्रयाग से काठगोदाम २६१ मील है, तीसरे दर्जे का किराया ६) है। दिल्ली से काठगोदाम २२२ मील की दूरी पर है। तीसरे दर्जे का किराया ४) है। भारत से अल्मोड़े जाने के मार्ग में काठगोदाम अंतिम रेलवे स्टेशन है। प्रायः लोग हल्द्वानी स्टेशन में ही, जो काठगोदाम से ५ मील पीछे का स्टेशन है, उतर जाते हैं, क्योंकि यहाँ पर मोटर आदि का सुभीता रहता है। हल्द्वानी एक बड़ी भारी मंडी है। पहाड़ और देश के मध्य में यह व्यापार का केंद्र है। यहाँ पर डाक और तारघर, अस्पताल, डाकबँगला, मोटर एजेन्सी, होटल, और अन्य प्रकार की सुविधाएँ हैं। अल्मोड़े जानेवाले सभी मोटरबस यहाँ से ही छूटते हैं। स्टेशन से पचास गज की दूरी पर 'मोटर ट्रेन्सपोर्ट एजेन्सी' का ऑफिस है। सबेरे की गाड़ी से उतरते ही 'बस' मिल जाते हैं, हल्द्वानी में रुकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दिन में ठीक समय पर पाँच छः मोटरें छूटती हैं। सिर में चक्कर आनेवालों को चाहिये कि मोटर में सदा आगे की सीट पर ही बैठें। यहाँ से अल्मोड़े तक का किराया ३) रुपया है। मेल-बस का किराया इससे अधिक होता है; परंतु वह ठीक समय पर चलता है।

काठगोदाम रेलवे का अंतिम स्टेशन है। यहाँ पर भी डाक और तारघर, डाकबँगला, मोटर एजेन्सी, और होटल हैं। हल्द्वानी से अल्मोड़ा

८८ मील की दूरी पर है। मोटर सात घंटे में पहुँचती है। काठगोदाम से[1] १२ मील के बाद नैनीताल के लिये मोटर की सड़क फूटती है। यहाँ से नैनीताल १५ मील दूर है। १५ मील के पास डाक्टर कक्कड़ का 'हिलक्रेस्ट' नामक क्षय रोगियों का प्रसिद्ध सेनटेरियम है। १७ वें मील पर, गेठिया से नैनीताल को एक पगडंडी जाती है। यहाँ से नैनीताल ३ मील है। २२ वें मील पर भवाली में क्षय रोगियों का सरकारी सेनटोरियम है। यहाँ सुंदर सजे हुए बाजार, डाक और तारघर हैं। सेब, नासपाती, खुमानिया, और विलायती साग यहाँ मिलते हैं। ३५ वें मील बाद गर्मपानी नामक स्थान में एक छोटा-सा बाजार है, जहाँ दुकानें और होटल हैं। यहाँ पर भोजन या जलपान के लिये मोटर आधे घंटे तक ठहरती है। स्नान करने के लिये एक जल-धारा है। ४६ वें और ५३ वें मील के बीच में रानीखेत की छावनी और शहर है। यह काफी बड़ा बाजार है। यहाँ पर डाक और तारघर तथा होटल हैं। यह एक ठंढा स्थान है। यहाँ से एक मार्ग कर्णप्रयाग होकर बदरीनाथ जाता है। यदि बदली न हो तो यहाँ से पंचचूल्ही, नंदाकोट, नंदादेवी, त्रिशूल, नंदाकना, द्रोणगिरि, कॉमेट, और बद्रीनाथ की बर्फीली चोटियों के सुंदर दृश्य देखने में आते हैं। अल्मोड़ा पहुँचने से २॥ मील पहले ही एक चुंगीघर है, जहाँ पर सभी सवारियों को आठ-आठ आने चुंगी देनी पड़ती है। पगडंडी के मार्ग से हल्द्वानी से नैनीताल १६ मील और अल्मोड़ा ४१ मील है।

हल्द्वानी से भीमताल	...	१२ मील	मार्ग तो चढ़ाई-उतार के हैं, पर दृश्य बड़े ही सुहावने और मनोरम हैं।
भीमताल से रामगढ़	...	६॥ मील	
रामगढ़ से प्यूड़ा	...	१० मील	
प्यूड़ा से अल्मोड़ा	...	६॥ मील	

२—अल्मोड़ा

अल्मोड़ा, नैनीताल, और गढ़वाल के जिले मिलकर कुमायूँ या कूर्मा-

---

[1] मील पत्थर काठगोदाम से लगे हुए हैं, इसलिये मील की गणना काठगोदाम से ही समझनी चाहिये।

चल के नाम से प्रसिद्ध हैं। अल्मोड़ा जिले का प्रधान स्थान अल्मोड़ा है। यह समुद्रतल से ५२१०—५४६४ फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। यहाँ की जनसंख्या लगभग २०००० है। भारत के प्रसिद्ध और आरोग्यप्रद पहाड़ी स्थानों में (हिल स्टेशन) यह एक है। अन्य 'हिल-स्टेशनों' से यहाँ का जीवन सस्ता है। यह स्थान शांत है। जलवायु सुंदर है। यहाँ पर गवर्नमेंट इंटर-मिडियेट कॉलेज, लड़कियों और लड़कों के लिये अलग-अलग हाईस्कूल, ऊन की कताई बुनाई तथा बढ़ईगिरी का स्कूल, और अन्यान्य संस्थाएँ, डाक और तारघर, अस्पताल, बैंक, जिलाकोर्ट, जेल, जंगलात के ऑफिस, डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्ड, छावनी, सुंदर सजे हुए बाजार, होटल, सिनेमाघर, और आरोग्यप्रद स्थान (सेनटोरियम) हैं। इनके अतिरिक्त नंदादेवी, कसारदेवी, पातालदेवी, स्याहीदेवी, बदरीश्वर, नृसिंहवाड़ी, बालेश्वर इत्यादि देव-मंदिर हैं, और रामकृष्ण कुटीर तथा दो-तीन ईसाईयों के मिशन और गिरजाघर हैं।

श्रीमान् और श्रीमती ब्रूस्टर्स (अमेरिका निवासी), आलफ्रेड सोरेनसेन (डेनमार्क निवासी) और एक स्वीडेन देशवासी हिंदू धर्मावलंबी पाश्चात्य साधक स्वतंत्र रूप से यहाँ रहते है। श्रीमान् और श्रीमती ब्रूस्टर्स उच्चकोटि के साधक और चित्रकला विशारद हैं।

अल्मोड़े से चार मील पश्चिम कसारदेवी नामक एक पहाड़ की चोटी पर काषायेश्वर महादेव तथा देवी का मंदिर है। मंदिर के समीप २५ एकड़ के एक जंगल में अमेरिका के डाक्टर एवेन्सवेन्स ने एक सुंदर आश्रम बनवाया है। यहाँ से चारों तरफ का पर्वतीय दृश्य अति रमणीक है। भारत के सुप्रसिद्ध, जगत्‌विख्यात, और नाट्य-शास्त्र प्रवीण श्री उदयशंकर जी का नृत्यकला भवन यहीं पर है, जिसके लिये एक उत्तम स्थान पर विशाल भवन बननेवाला है। एक सुंदर नगर बनने के सभी साधनों के रहते हुए भी यहाँ एक धर्मशाला का नितांत अभाव बहुत खटकता है। अल्मोड़े के लक्ष्मी के लाड़लों का कर्तव्य है कि इस ओर अपना ध्यान देकर अवश्य ही इस अभाव को शीघ्र दूर करें।

जब आकाश निर्मल रहता है तो उत्तर में स्थित गगनचुंबी हिमाच्छादित पर्वत-मालाएँ नेत्रों को आनंद प्रदान करती हैं। इन मालाओं में नेपाल की सीमा

की चोटियाँ, पंचचूल्ही, नंदाकोट, बनखंडी, नंदाकना, त्रिशूल, द्रोणगिरि, कॉमेट, बदरीनाथ के चौखंभे, और केदारनाथ के शिखर तक देखने में आते हैं। प्रायः वर्षाऋतु में जलद-पटलों से आवृत होकर ये दर्शकों को अपने दर्शनों से वंचित कर देते हैं। परंतु नवंबर के प्रारंभ से ही इन श्वेत हिमाच्छादित शुभ्र शिखरों के दृश्य गोस्वामी जी के 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' को पूर्ण चरितार्थ करते हैं। दिसंबर के महीने में ताज़ी बर्फ चारों तरफ के समस्त ऊँचे पहाड़ों पर तथा चीड़ और देवदारु के जंगलों के मध्य में पड़कर उपर्युक्त दृश्य को और भी प्रोज्ज्वल और मनोरम बना देती है।

अल्मोड़े के दक्षिण में १४ मील पर मुक्तेश्वर या मोतेश्वर नामक स्थान ७७०२ फीट ऊँचे पर्वत की चोटी पर स्थित है। यहाँ संसार प्रसिद्ध 'वेटेरेनरी रीसर्च इन्स्टीट्यूट' है। इसकी स्थापना सन् १८९५ में हुई थी। यहाँ एक बड़ी भारी प्रयोगशाला है, जहाँ पशु संबंधी सभी रोगों की गवेषणा होती है और कई प्रकार के टीके के 'सीरम' बनते हैं। यह एक सुंदर और देखने योग्य स्थान है; यहाँ से नैनीताल २४ मील पर है। रामकृष्ण मिशन का मायावती नामक वेदांत आश्रम यहाँ से आग्नेय कोण में ५० मील की दूरी पर चंफावत और लोहाघाट के पास स्थित है।

अल्मोड़े से ईशान कोण में १३ मील की दूरी पर बिनसर नामक एक स्वास्थ्यप्रद स्थान है। यहाँ सेब और नाशपाती के बगीचे और कुछ बँगले हैं। यहाँ के झंडे नामक पहाड़ से बदरीनाथ से लेकर नेपाल तक का रमणीक दृश्य दिखाई पड़ता है।

अल्मोड़े के पश्चिम में दस मील दूर एक पहाड़ की चोटी पर स्याही-देवी का मंदिर है। इसी के पास एक तालाब बना है, जिसका जल नल के द्वारा अल्मोड़ा ले जाया जाता है। स्याहीदेवी से एक मील नीचे शीतलाखेत का एस्टेट और गाँव हैं, जहाँ सेब, नासपाती, और विलायती फलों के बगीचे हैं। यह एक सुंदर और एकांत स्थान है। अल्मोड़े ज़िले के कई जंगलों में चीड़ के पेड़ों से 'लीसा' (एक प्रकार का चिपचिपा, लसदार द्रव-पदार्थ) निकाला जाता है, जिससे तारपीन बनता है। अल्मोड़े से कैलास जाने के तीन मार्ग हैं।

३—कठिन चढ़ाइयाँ

पर्वतों के कारण कैलास और मानसरोवर जाने के मार्ग में बहुत चढ़ाइयाँ और उतार पड़ते हैं, परंतु मानसरोवर की परिक्रमा का मार्ग सीधा है।

(१) सुपाई से	१	मील।
(२) धौल छीना जाने में	२	,,
(३) सेराघाट से नरुवा का घोल	२¾	,,
(४) बेरीनाग जाने में	२	,,
(५) थल से	३	,,
(६) छोलिओखी धार जाने में	१	,,
(७) रौंती गाड से खेला	२	,,
(८) धौली गंगा से ठानीधार	३	,,
(९) जुंगती गाड़ से सोसा	१¾	,,
(१०) रुंगलिंग (सुमरिया) धार जाने में	३	,,
(११) निजंग से बोला	¾	,,
(१२) मालपा से	½	,,
(१३) पेलसिपी से कोथला	४½	,,
(१४) बुदी से	२½	,,
(१५) किरोङ कोङ जाने में	१	,,
(१६) ङा चिदङ से लीपूलेख	५	,,
(१७) गरू से	¾	,,
(१८) गोरी उड्यार से गुरला ला	४	,,
(१९) डिरफुक् से डोलमा ला	४	,,

४—कठिन उतार

(१) चिताई से चौखुटिया	१¼	मील
(२) धौल छीना से भौरा गधेरा	४½	,,

(३) डुंगरलेख छीना से	१	,,
(४) नरुवा का घोल से	½	,,
(५) बेरीनाग से गुरघटिया का पुल (बीच-बीच में कुछ विराम)	६	,,
(६) अस्कोट जाने में	३½	,,
(७) अस्कोट से गरजिया	३	,,
(८) कालिका जाने में	१	,,
(९) खेला से धौली गंगा	१½	,,
(१०) तिथलाकोट से सिरखा	¼	,,
(११) रुंगलिंगधार से सिंखोला गाड़	३¼	,,
(१२) बिंदाकोट से जुमली उड्यार	२½	,,
(१३) बोला से	१¼	,,
(१४) कोथला से	¾	,,
(१५) खेतो (बुदी की चढ़ाई के अंत) से	१	,,
(१६) लीपूलेख से पाला	६	,,
(१७) गुरला ला से मानसरोवर	५	,,
(१८) डोलमा ला से	३	,,

लौटते समय पहली १८ चढ़ाइयाँ उतार बन जाती हैं और १७ उतार चढ़ाइयाँ हो जाते हैं। यहाँ केवल कैलास के सीधे मार्ग में आनेवाली चढ़ाइयाँ और उतार दिए गए हैं। तीर्थपुरी के मार्ग में पड़नेवाली चढ़ाइयों और उतारों के विवरण के लिये तालिकाएँ देखिए।

यह मार्ग छः खंडों में विभक्त किया जा सकता

५—पहला खंड

अल्मोड़े से धारचूला ३० मील है, जो सात या आठ दिनों की यात्रा है। यहाँ के लिए घोड़े, खच्चर, और कुली जाते हैं।

जागेश्वर—अल्मोड़े से १८ मील की दूरी पर है। यह पहाड़ों के बीच में एक संकीर्ण स्थान पर देवदारु के वन के मध्य में स्थित है। बाड़ेछीना से यात्रा के मार्ग को छोड़कर दाहिनी ओर जाना पड़ता है। यहाँ जागेश्वर महादेव का प्रधान मंदिर है। कुछ लोगों का विश्वास है कि जागेश्वर द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है। इसके अतिरिक्त मृत्युंजय, पुष्टिदेवी, नवग्रह, और सूर्य के मंदिर तथा अन्य देवताओं के कई छोटे-छोटे मंदिर तथा मुसलमानों के समय की खंडित मूर्तियाँ भी यहाँ विद्यामन हैं। मंदिर के पास ही एक छोटा-सा नाला बहता है। यहाँ पर कई धर्मशालाएँ और कुछ घर हैं। शिवरात्रि और वैशाख पूर्णिमा के दिन मेला लगता है। यह एक प्राचीन क्षेत्र तथा अच्छे आध्यात्मिक वातावरण से युक्त सुंदर स्थान है। यहाँ से सवा मील की चढाई पर वृद्ध जागेश्वर का मंदिर एक पहाड़ की रीढ़ पर स्थित है।

गंगोली हाट—जागेश्वर से १८ मील की दूरी पर यह एक बड़ा गाँव है। बाज़ार में छोटे-छोटे पुराने मंदिर हैं। यहाँ से दो-तीन फर्लांग की दूरी पर देवदारु के वनों में महाकाली का मंदिर है, जहाँ नवरात्र में दुर्गाष्टमी के दिन बड़ा भारी मेला लगता है तथा उक्त अवसर पर बड़े समारोह के साथ रामलीला होती है।

पाताल भुवनेश्वर—यह स्थान गंगोली हाट से ६½ मील पर है। यहाँ तीन प्राचीन मंदिर हैं। मंदिर से एक फर्लांग की दूरी पर एक गुफा है, जिसका द्वार कठिनता से एक मनुष्य के जाने योग्य है। इस गुफा के मध्य में कहीं झुककर, कहीं रेंगकर और कहीं बैठकर एक फर्लांग तक भीतर उतरना पड़ता है। गुफा के भीतरी भाग ठंढे, अंधकारपूर्ण और चिपचिपे हैं। भीतर चल कर गुफा की दीवालों में कई प्रकार की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं, जो महाभारत संबंधी व्यक्तियों और अन्यान्य देवी-देवताओं की कही जाती हैं। गुफा में एक गज की ऊँचाई के स्थान पर से गाय के थनों के आकार की बनी हुई टोटियों से श्वेत जल की बूँदें टपकती रहती हैं, जिसे वहाँ के लोग कामधेनु कहते हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं को चाहिये कि इन गुफा की दीवालों के पत्थरों पर की मूर्तियों के वास्तविक रूप का पता लगावें। गुफा में भीतर जाने के लिये चीड़ की

लकड़ियों की मशाल या बिजली के 'टॉर्च' लेकर जाना पड़ता है। यहाँ के पुजारी, जो क्षत्रिय हैं, साथ आकर सभी मूर्तियों का परिचय बताते हैं। यहाँ शिवरात्रि के अवसर पर मेला लगता है।

बेरीनाग—यह अल्मोड़े से ४२ मील की दूरी पर यात्रा के मार्ग में है और पाताल भुवनेश्वर से ११ मील की दूरी पर है। वेणी नागों का यह वासस्थान कहा जाता है। इसलिये इसको वेणीनाग, वेरीनाग, और बेरीनाग भी कहते हैं। नाग का मंदिर गाँव से पौन मील की दूरी पर एक पहाड़ के ऊपर है। आस पास के पहाड़ और गाँवों में पिंगल, मूल, फणि, धौल, वासुकि, काल, और अन्य नागों के भी स्थान हैं। यहाँ पर जो कालनाग का पहाड़ है, वह रमणीक द्वीप के नाम से भी प्रसिद्ध है। बेरीनाग के डाकबँगले से बर्फीली चोटियों के दृश्य अल्मोड़े के समान बड़े सुदर दिखाई पड़ते हैं। जागेश्वर, गंगोली हाट और पाताल भुवनेश्वर के दर्शनाभिलाषी बाड़े छीने से यात्रा का मुख्य मार्ग छोड़कर, इनका दर्शन करके, बेरीनाग के समीप से पहले मार्ग पर लौट सकते हैं। बागेश्वर जाने के इच्छुक कैलास से लौटते समय बेरीनाग से जाकर वहीं से सीधे अल्मोड़ा पहुँच सकते हैं।

बागेश्वर के मार्ग में बेरीनाग से पाँच मील की दूरी पर नरगोली ग्राम है, वहाँ से मार्ग से हटकर एक मील की दूरी पर पर्वत के ऊपर भद्रकाली का मंदिर है। समीप ही भद्रकाली या भद्रवती नदी पहाड़ के भीतर सुरंग में होकर बहती है, जिसका दृश्य अतीव सुंदर है। बेरीनाग से दस मील पर बागेश्वर के मार्ग में सानीउड्यार' नामक एक गुफा है, जहाँ शांडिल्य ऋषि ने तपस्या की थी।

बागेश्वर—बागेश्वर या वागीश्वर नामक गाँव गोमती और सरयू नदी के संगम पर एक पहाड़ के नीचे स्थित है। संगम के पास बाघनाथ, दत्तात्रेय, भैरवनाथ, तथा गंगा जी का मंदिर, और श्मशानभूमि हैं। यहाँ एक बड़ा बाजार, डाकघर, और अस्पताल हैं। संगम के सामने सरयू के बाँयें तट पर त्रियुगीनारायण और वेणीमाधव के मंदिर हैं। इनके पार्श्ववर्ती पहाड़ पर चंडीदेवी का एक मंदिर है। बाघनाथ के मंदिर के सामने गोमती के बाँये किनारे के पहाड़ के ऊपर मिडिलस्कूल और डाकबँगले हैं, जहाँ से बागेश्वर,

सरयू-गोमती के संगम, और उनके ऊपर के दोनों लोहों के झूले के पुलों का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। गाँव के उत्तर की ओर प्रकटेश्वर महादेव का एक मंदिर है। सरयू के बाँये किनारे पर भी एक बाजार है। यहाँ के सरयू के पुल के नीचे नदी के मध्य में एक बड़ा भारी चट्टान है। इसके संबंध में एक पुराण-गाथा है कि यहीं पर मार्कंडेय ऋषि ने तपस्या, तथा दुर्गासप्तशती का निर्माण किया था और शिव ने हिमवत्-पुत्री पार्वती का पाणिग्रहण यहीं किया था।

मकरसंक्राति के अवसर पर यहाँ तीन चार दिनों तक बड़ा भारी मेला लगता है। उस समय भोटिया लोग तीन चार लाख रुपये तक का व्यापार करते हैं। बागेश्वर समुद्रतल से ३२०० फीट की ऊँचाई पर स्थित बहुत गर्म स्थान है। यहाँ से चारों तरफ बीस मील दूर तक धान की खेती अधिक होती है। इसलिये चावल रुपये में सात से दस सेर तक मिल जाता है। यहाँ से अल्मोड़ा २७ मील, बेरीनाग २३ मील, और पिंडारी ग्लैसियर ४७ मील पर है। १६२० में कुमायूँ में सरकारी बेगार प्रथा को उठाने के लिये यहीं से आंदोलन आरंभ हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप वह प्रथा उठ भी गई। २०-२५ वर्ष पहले कैलास के यात्री यहीं से मिलम जाकर लीपूलेख के मार्ग से लौटते थे।

बागेश्वर के आस-पास खरही आदि स्थानों में लोहा, ताँबा, और खड़िया मिट्टी (सोप स्टोन) की खानें हैं। कई स्थानों में बिल्लौर या स्फटिक भी मिलता है।

गोरी उड्यार—बागेश्वर, से उत्तर में ६ मील पर गोरी उड्यार नामक एक बड़ी गुफा है। गुफा की छत पर गौ के थन जैसे चार-चार, छः-छः अंगुल की टोंटियाँ बनी हुई हैं, जिनकी नोकों से दूध जैसे सफेद पानी की बूँदें नीचे छः-छः अंगुल से लेकर दो-दो गज की ऊँचाईवाले श्वेत शिवलिंगों पर टपकती रहती हैं। इस प्रकार के शिवलिंग सदा बनकर बढ़ते रहते हैं। इनमें से कुछ तो गिर भी जाते हैं और कई ऐसे भी हैं जिनके ऊपर के थन और लिंग मिल कर एक हो गए हैं। नीचे के लिंग की भाँति ऊपर के थन भी कितने नये-नये निकलते हैं और कितने बढ़ जाते हैं। यह गुफा देखने में बड़ी सुंदर लगती

है। गुफा के बीच में एक घंटा लगा हुआ है तथा निकट के गाँववालों के प्रबंध से एक शिवलिंग की पूजा भी होती है।

गुफा के नीचे एक सुंदर नाला बहता है, जिसमें छोटे-छोटे जलप्रपात और कुंड हैं। ऊपर का पहाड़ चूने का है और छत से चूने के श्वेत जल नीचे टपकता रहता है। कुछ पानी के नीचे गिरने के पहले ही भाप बन जाने के कारण उसका चूना जम जाता है, जिससे छत में थनका-सा आकार बन कर नीचे टोंटी-सी बन जाती है। थने के ठीक नीचे गिरे हुए पानी के वाष्पीकरण से उड़-उड़ कर चूना जम जाता है, जो प्रतिदिन तहों में बढ़कर लिंग का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार श्रद्धालु दर्शकों को ऊपर छत पर गौथनों से गिरती हुई दूध की बूँदें नीचे के शिवलिंगों पर अभिषेक करती हुई-सी प्रतीत होती हैं। अंग्रेजी में नीचे वाले शिवलिंगों को 'स्टेलग्माइट्स' और छत पर लटकनेवाली टोटियों को 'स्टेलक्टाइट्स' कहते हैं।

बैजनाथ—यह गाँव बागेश्वर से वायव्य कोण में १३ मील की दूरी पर गोमती नदी के बायें किनारे पर स्थित है। इसे वैद्यनाथ भी कहते हैं। नवीं या दसवीं शताब्दी में कत्यूरी राजा लोग जोशीमठ से आकर यहाँ बस गए थे। यहाँ के मंदिर बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी के हैं—जो अब जीर्णावशेष हैं, जिनमें से बामनी देवल, बैजनाथ के मंदिर और केदारनाथ के मंदिर प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कई छोटे-छोटे मंदिर, और मूर्तियाँ हैं। बैजनाथ के प्रधान मंदिर के द्वार पर रखी हुई पार्वती की मूर्ति की शिल्पकला बहुत सुंदर और देखने योग्य है। यहाँ से दो फर्लांग की दूरी पर तलीहाट नामक गाँव में भी उसी समय के बने हुए कई मंदिर हैं। गाँव के मध्य में कत्यूरी राजाओं के बैठने के चबूतरे, लक्ष्मीनारायण का मंदिर, राक्षस देवल, और सत्यनारायण के मंदिर हैं। सत्यनारायण और उनके आस पास की मूर्तियों की शिल्पकला बहुत ही सुंदर है। गाँव से १½ मील पर एक पहाड़ के ऊपर रणचूलकोट है, जिस पर भ्रामरीदेवी का मंदिर है। यहाँ से आधा मील की दूरी पर नागनाथ का मंदिर है। रणचूलकोट से सारी कत्यूरी घाटी का दृश्य काश्मीर के समान रमणीक दिखाई पड़ता है। अल्मोड़े ज़िले की यह सब से सुंदर घाटी

है। यहाँ से त्रिशूल की तीनों चोटियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।

बैजनाथ से एक मील की दूरी पर गरुड़ गंगा के किनारे गरुड़ नामक एक छोटा-सा बाज़ार है। हल्द्वानी से यहाँ तक ११४ मील मोटर का मार्ग है, बैजनाथ देखने के इच्छुक यात्री अल्मोड़े से भी मोटर पर जा सकते, हैं जो ४२ मील की दूरी पर है। बैजनाथ से पैदल ५ मील की दूरी पर कौसानी नामक एक रमणीक स्थान है। यहाँ से हिमालय की बर्फानी चोटियों का दृश्य बिनसर से भी अधिक सुहावना दिखाई पड़ता है। यहीं पर महात्मा गांधी ने कुछ दिन रह कर 'अनासक्तियोग' नामक पुस्तक लिखी है। कौसानी से नीचे सोमेश्वर और द्वाराहाट में भी पुराना मंदिर है। द्वाराहाट और बैजनाथ के मंदिर सरकारी पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में हैं।

६—दूसरा खंड

धारचूले से गर्ब्यांग ५५ मील है, जो कि पाँच दिनों की यात्रा है। यहाँ कुली और डांडी जा सकते हैं।

छिपला कोट—धारचूले से ५ मील आगे, यात्रा मार्ग से जुम्मा गाँव होकर, २१ मील की दूरी पर, छिप्लाकोट या छिप्लाकेदार नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। यह स्थान १४४०० फीट ऊँचे पहाड़ की चोटी पर स्थित है। सड़क से लेकर यहाँ तक एक लंबी और दुर्गम चढ़ाई है। छिप्लाकोट या नाजुरी मुंड (१४००० फीट) के शिखर की दोनों ओर दो तालाब हैं। धारचूले की ओर के छोटे सर का नाम छिप्लाकेदार है, और उसकी परिधि ८४० फीट है। दूसरी ओर का तालाब ककरोलकीद है, जिसकी परिधि १०२० फीट है। आठ-दस गाँवों के लोग इस तरफ और उतने ही गाँवों के लोग उस तरफ के सरोवर पर प्रति दूसरे वर्ष यात्रा में जाते हैं। यहाँ की यात्रा बहुत ही कठिन है। इन गाँववालों को छोड़कर बाहर के विरले ही यात्री इन स्थानों पर जाते हैं। यहाँ से पंचचूल्ही आदि हिमाच्छादित पर्वतमालाओं का दृश्य बहुत ही गंभीर और मनोमोहक है। चातुर्मास में यहाँ पर ब्रह्मकमल अधिक खिलते हैं। गाँवों के लोग इन सरोवरों के अधिदेवताओं को कई प्रकार के रुपये-पैसे चढ़ाते हैं।

उन पैसों को कोई भी नहीं उठाते, क्योंकि उन लोगों की धारणा है कि यदि कोई उस चढ़ावे को वहाँ से उठा ले जाय, तो वह घर पहुँचते-पहुँचते मर जायगा। मैं इन दोनों तालाबों पर १९३७ के २२-२३ अक्टूबर को गया था। यद्यपि छिप्लाकोट की यात्रा बहुत ही कठिन है, तथापि साहसी युवक कैलास से लौटते समय यहाँ जा सकते हैं।

मृत्यु गुफा (खरउड्यार)—खेला से गर्ब्यांग जानेवाले मार्ग को छोड़कर दारमा के मार्ग में ९½ मील की दूरी पर न्यों नामक एक गाँव है, जहाँ पर तीन घर हैं। मकानों के पीछे ६० या ८० गज की दूरी पर 'खर उड्यार' नामक एक मृत्यु-गुफा है। यह गुफा एक पहाड़ की तलहटी में है। गुफा का मुख दक्षिण की ओर है। भीतर अँधेरा नहीं; पर्याप्त प्रकाश है। इसकी लंबाई २४ फीट है और चौड़ाई सामने ९ फीट और भीतर ६ फीट है, ऊँचाई मुँह के पास १२ फीट और भीतर ६ फीट है। इस गुफा में जो कोई प्राणी जाता है वह तत्क्षण मृत्यु के मुख में चला जाता है। इसी कारण इसका नाम खर उड्यार या मृत्यु गुफा पड़ा। जब मैं पहले यहाँ १९३७ में ५ अक्टूबर को गया था तो भीतर नीले रंग के ४० कलचूणा नामक पक्षी, कई कौवे, चूहे, मेढ़क, बड़ी-बड़ी जंगली मकड़ियाँ, और कुछ अन्य पक्षियों के मृत शरीर दिखाई दिए। इनके अतिरिक्त दो अजगरों के पुराने अस्थिपंजर पड़े हुए थे। गुफा चिपचिपी है और मृत शरीर ताजे थे। गुफा से कुछ दूर पर गंधक के सोते हैं।

गाँववालों का कहना है कि चौमासे में गुफा का विष बाहर तक फैलता है। कई अंग्रेज और कमिश्नर यहाँ आए, पर भीतर जाने का साहस किसी को नहीं हुआ। भोट की दो पट्टियों के पटवारियों ने बकरियों को रस्सी से बाँध कर गुफा में प्रविष्ट कर दिया। उनमें से एक तो तत्काल मर गई और दूसरी मरणासन्न हो गई, और बाहर खींचकर पानी का छींटा देने पर सचेत हुई। इसलिये भीतर जाकर इसकी परीक्षा करने की मुझे इच्छा हुई।

अतः गाँव के तीन आदमियों को साथ लेकर मैं अपनी कमर में रस्सी बँधवाकर साँस रोक कर भीतर गया। वहाँ जाकर धीरे धीरे साँस खोलने

पर मुझे कुछ हानि नहीं हुई,[1] जिससे लोग कहने लगे कि में जादू कर रहा हूँ। अस्तु, जो भी हो, उस वर्ष मैं वहाँ से चल दिया। दूसरी बार १९२९ में १६-१८ अक्टूबर को फिर रस्सी बँधवाकर मैं भीतर गया। इस बार जलती हुई चीड़ की लकड़ियों को भीतर ले गया था। धीरे-धीरे उसे नीचे करने पर ज़मीन से एक गज की ऊँचाई पर वे बुझ गईं। तब मैंने धीरे-धीरे झुककर उस ऊँचाई पर की वायु को सूँघा। वायु के नाक में जाते ही मेरा दम घुटने लगा। फिर तो झट सिर को उठाकर बाहर निकल आया। 'एमोनिया' या गंधक की गंध न होने तथा मशाल बुझ जाने के कारण और विषैली वायु के निचले ही भागों में होने के कारण मैंने अनुमान किया कि वहाँ का वायु 'कार्बन डायक्साईड' ही होगा। पर उस समय किसी विशेष रासायनिक परिशोधन करने का साधन मेरे पास नहीं था। १९४० में १२ नवंबर को फिर गुफा में जाकर मैंने 'बेरियम पेरोक्साईड' के जल को लेकर परीक्षा की। मेरा अनुमान सही निकला। उस गुफा में सचमुच 'कार्बन डायक्साईड' ही है। गुफा में पानी पड़ने पर गैस निकलती है। उस समय चार फीट की ऊँचाई तक गैस उसके भीतर थी। यह कोयले की गैस भारी होती है, जिससे भूमि से बहुत ऊपर नहीं उठती। इसीलिये नीचे जानेवाले जंतु दम घुटकर मर जाते हैं। चौमासे में पानी के कारण यह गैस बहुत उत्पन्न हो जाती है। वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य है कि इसके संबंध में विशेष अन्वेषण करें। कैलास से लौटते समय यात्रीगण इस गुफा का निरीक्षण कर सकते हैं।

भोट की बातें—धौलीगंगा से लेकर भोट प्रांत प्रारंभ होता है। हिमालय में भारत की उत्तरी सीमा के निवासियों को भोटिया नाम से पुकारते हैं। अल्मोड़े जिले में सोबला (खेला से १२ मील आगे) से भारत की सीमा तक की दारमा पट्टी; धौलीगंगा से बिंदाकोट तक की चौदाँस पट्टी; बिंदाकोट से भारत की सीमा तक की ब्याँस पट्टी; और नेपाल की सीमा के छुंगरू

---

[1] मुझे कुछ न हानि होने का कारण यह भी हो सकता है कि उस वर्ष मैं बरसात के बहुत दिनों बाद गया था और उस वर्ष वर्षा भी अल्प ही हुई थी।

और टिंकर गाँव; तेजम के ऊपर भारत की सीमा तक का जोहार परगना; गढ़वाल जिले में भविष्य बदरी से भारत की सीमा तक के प्रदेश; टिहरी रियासत से सीमांत के नीलंग गाँव—ये सब स्थान मिलकर भोट नाम से प्रसिद्ध हैं; यहाँ के निवासी भोटिया कहलाते हैं। भोट और भोटियों का, भूटान या भूटान के लोगों से कोई संबंध नहीं है और न तिब्बत और तिब्बतियों से ही। ये लोग तिब्बत को 'हूण देश' और तिब्बतियों को 'हूणियाँ' कहते हैं[1]। माना के भोटिया मारछा, नीती के तोलिया, और जोहार के शौका या रावत कहलाते हैं।

अल्मोड़े के दारमा, चौदाँस, और ब्याँस तीनों भोट-पट्टियों को मिलाकर दारमा परगना के नाम से पुकारते हैं। भोटिये हिंदूमतावलंबी हैं और क्षत्रिय जाति के हैं। इनके नामों के अंत में सिंह लगा रहता है। इनमें से बहुत से लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं और नियमित रूप से गायत्री मंत्र का जप करते हैं। हिंदी और तिब्बत की मिश्रित-भाषा बोलते हैं। चट्ठी-पत्री, लिखा-पढ़ी, और बही-खाता नागरी में लिखते हैं। गर्मी के दिनों में ये भारत की सीमा के अलग-अलग घाटों से होकर तिब्बत जाकर व्यापार करते हैं। वहाँ से ऊन, सुहागा, नमक इत्यादि तिब्बती वस्तुओं को लेकर शीतकाल में देश की मंडियों में नीचे उतरते हैं। वहाँ उनको बेंचकर देश से कपड़े, बर्तन आदि सामानों को लेकर फिर गर्मी के दिनों में तिब्बत चले जाते हैं। इन लोगों में हजारों रुपये का व्यापार करनेवाले व्यक्ति हैं।

---

[1] भूटान, सिक्किम, और नेपाल के राज्यों में, विशेषकर उत्तरी सीमाओं पर, तिब्बती प्रजाएँ अधिक बसी हुई हैं। बौद्ध-धर्मावलंबी होने से या किसी अन्य कारण से लोग उन्हें भोटिया कहने लगे। यह कहाँ तक ठीक है, इसका निर्णय मैं यहाँ नहीं कर रहा हूँ। नेपाल की सीमा पर कितने ही ऐसे तिब्बती हैं, जो नेपालियों और तिब्बतियों की मिश्रित संतान हैं। इनके अतिरिक्त रामपुर-बशहर तथा मंडी रियासतें और कांगड़ा जिले के सीमा-प्रांत के भारतीय बौद्धों को भी कुछ लोग भोटिया कहते हैं। परंतु इस पुस्तक में वर्णन किये हुए भोटिये और उन राज्यों के भोटिया नामधारी लोगों से कोई संबंध नहीं है।

पुरुष पायजामा, ऊन का सफेद अंगरखा, और पगड़ी पहनते हैं; और अंगरखा के ऊपर एक लंबी सी धोती कमरबंद के रूप में बाँध लेते हैं। यह उनका जातीय पहनावा है। परंतु वे प्रायः पायजामा,वेस्टकोट, कोट, और टोपी पहनते हैं। स्त्रियाँ घर में अपने हाथ से बुने हुए लकीरदार और बूटेदार ऊनी कपड़े की लुंगी, कुरता और चोगा पहनती हैं। चोगे के ऊपर कमरबंद बाँधती हैं। शिर के ऊपर कपड़े की 'घांघी' पहनी जाती है। छोटी लड़कियाँ और युवतियाँ कपड़े के लहँगे और रंगबिरंगे कुरते पहनती हैं। रुपये अठन्नी, चवन्नी, आदि चाँदी के सिक्के के हार और अन्य प्रकार के वज़नदार चाँदी के आभूषण पहनती हैं। इन आभूषणों की तौल कभी-कभी आठ सेर तक होती है।

भोटिया लोग बड़े ही हृष्ट-पुष्ट, परिश्रमी और पुरुषार्थी होते हैं। यहाँ स्त्रियों में परदा नहीं है, तथा वर-वधू की सम्मति से प्रौढ़ावस्था में विवाह होता है। स्त्री-पुरुष त्यौहार और विवाहादि अवसरों पर अलग-अलग कतारों में गाते हुए आमने-सामने होकर नाचते हैं। इस प्रकार के नृत्य हिमालय भर में काश्मीर से लेकर आसाम तक, बौद्ध और हिंदुओं में प्रचलित हैं। इस प्रकार का नाच को मैंने गंगोत्तरी के पंडों (ब्राह्मण) में और अल्मोड़े के खश जाति के कृषकों और क्षत्रियों में भी देखा। पुरुष मंडियों में जाकर व्यापार करते हैं। स्त्रियाँ घरों में रहकर हल जोतने के अतिरिक्त खेती के सारे काम तथा ऊन के कपड़े या कंबल बुनने का काम बड़ी फुरती और कुशलता के साथ करती हैं। जब कोई काम नहीं रहता तो उस समय स्त्री और पुरुष ऊन की कताई का काम करते हैं। यहाँ तक कि पीठ पर एक-एक मन का बोझा ढोते समय भी ऊन कातते रहते हैं। इनके ऊनी कारोबार से देश को लाभ पहुँचाने एवं इन्हें प्रोत्साहित करने के लिये अखिल भारतीय चर्खा संघ ने अपना एक केंद्र अल्मोड़े जिले के सोमेश्वर नामक स्थान में खोलकर जोहार और चौदाँस में उसकी शाखाएँ खोली हैं। चार-पाँच वर्षों से यह कार्य चल रहा है। ये लोग प्रतिवर्ष तिब्बत जाकर तिब्बतियों के साथ व्यापार करने के कारण उनके साथ हिलमिल गए हैं और उनके साथ खाने-पीने में संकोच नहीं करते, जैसे विलायत जानेवाले हमारे ही भाई-बंधु। जब वे नीचे, देश में, लौटते हैं तो

देश के लोग उन लोगों के साथ खान पान का व्यवहार नहीं रखते। जो हो, हमारे यहाँ भी कितने ही ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं जो आपस में खान-पान का व्यवहार नहीं रखते।

भोटियों की उत्पत्ति के संबंध में बहुत मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि ये मुसलमानों के शासनकाल में मुसलमान होने से इनकार करके राजपुताने को छोड़ पहाड़ों में आ बसे हैं। कुछ लोगों का मत है कि धारानगर से जो क्षत्रिय गढ़वाल गए, वे रावत नाम से प्रसिद्ध हैं; और रावत-क्षत्रिय लोग इन प्रांतों में आकर बस गए। इसके प्रमाण-स्वरूप जोहार भोटियों में कई रावतवंशीय हैं। कुछ औरों का मत है कि एक समय भारत के क्षत्रिय राजा पश्चिम तिब्बत में, गरतोक में राज्य करते थे। कुछ वर्ष के बाद तिब्बतियों से परास्त होकर भारत की सीमा पर आकर बस गए। मुझे ये तीनों प्रमाण युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं।

इनकी भाषा, इनके मंगोल-स्वरूप, और रीतिरिवाजों को देखकर कुछ मानव-शास्त्रज्ञों (एन्थ्रोपोलाजिस्टों) का कहना है कि ये तिब्बत से आकर भारत की सीमा पर बसे हुए मंगोल जाति के तिब्बती हैं। मैं उनके मत से सहमत नहीं हूँ। हाँ, संशोधन का मैं सदा स्वागत करता हूँ। तिब्बत की सीमा के पास के निवासी होने तथा छः छः महीने व्यापार के लिये तिब्बतियों के साथ रहने के कारण इनकी भाषा में तिब्बती शब्दों के समावेश होने एवं इनकी वेश-भूषा में कुछ समानता होने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बिहार की मैथिली भाषा में आधे वंग भाषा के शब्द होने मात्र से बिहारी बंगाली नहीं हो सकते, और न बंगाली बिहारी हो सकते हैं। ऐसे ही स्वरूप के विषय में भी। नेपाल के गोरखे तिब्बतियों से स्वरूप में एकदम मिलते-जुलते हैं। इनमें से कुछ तो नेपाल के बौद्ध मंदिरों में भी दर्शन के लिये जाते हैं। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि नेपाली तिब्बती हैं। अंतर्जातीय विवाहों के कारण इनमें स्वरूप-साम्य या भाषा-मिश्रण हो सकता है। अब यह रहा कि इनका भोटिया नाम कैसे पड़ा? इनके पूर्वज कभी बौद्ध मतावलंबी रहे होंगे। अब तो ये नहीं हैं। क्या भारतवर्ष में एक समय सब के सब बौद्ध

मतावलंबी नहीं थे ! ऐसा ही इनके संबंध में भी समझ लेना चाहिये। सौ वर्ष पहले सुमात्रा, जावा, अफ्रीका आदि देशों में जो हिंदू गए हैं, उनकी वेश-भूषा में कितना अंतर आ गया है ! इन उपर्युक्त कारणों से भोटियों के क्षत्रिय होने में कोई संशय नहीं है।

हाँ, आजकल ये लोग, विशेषकर जोहार के भोटिये, अपने-आपको भोटिया कहने में हिचकते तथा अस्वीकार भी करते हैं। संभवतः वे समझते हों कि भोटवासी या भोटिया कहने से तिब्बती या बौद्धमतावलंबियों का भाव आता है, पर अपने-आपको भोटवासी या भोटिया कहलाने में उन्हें गर्व होना चाहिये, क्योंकि इस प्रकार से उनका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, तथा उनका अलग प्रांत है, जहाँ उन्हें विशेष सुविधाएँ हैं। भोट के निवासियों की आय पर इनकम टैक्स नहीं लगाया जाता, और वहाँ भट्टी पर शराब बनाने में भी कोई प्रतिबंध नहीं है। तिब्बत से लाये हुए लाखों रुपयों के ऊन, भेड़, बकरी, सोहागा, और नमक आदि वस्तुओं पर, या तिब्बत को जाने वाले कपड़े के सहस्रों गट्ठरों पर इन्हें एक पैसा भी चुंगी नहीं देनी पड़ती। इनमें से रायबहादुर किशनसिंह और रायबहादुर पं० नयनसिंह तिब्बत देश के प्रख्यात अन्वेषक हुए, जिन्होंने अज्ञात तिब्बत में सर्वप्रथम सर्वे का काम किया। अब भी इनमें से कैप्टेन हयातसिंह जी और बाबू लक्ष्मणसिंह जी, ब्रिटिश ट्रेड एजेंट आदि उच्चपदों पर नियुक्त हैं। जोहारियों में अन्य कई नवयुवक उच्च शिक्षा पा रहे हैं। रायसाहब शोभन सिंह जैसे उपाधिधारी हैं। दारमा परगना में भी पं० गोबरिया गर्ब्याल एक विख्यात व्यक्ति हो गए हैं।

आजकल यहाँ कोई उपाधिधारी नहीं है, यद्यपि ठा० मोहनसिंह जी गर्ब्याल, ठा० नंदराम जी गर्ब्याल, और ठा० खुशहालसिंह जी ह्यांकी जैसे नामी व्यक्ति उक्त पदवी के लिये उम्मेदवार हैं। आशा है, ब्रिटिश सरकार इनको शीघ्र ही उपाधि से सुशोभित करेगी।

अल्मोड़ा जिले के भोटियों में जोहारी लोग विशेष पढ़े-लिखे हैं। इनके बाद चौदांस और ब्यांस वाले हैं। पर दारमा के भोटिये बहुत पिछड़े हुए हैं। इन्हें चाहिये कि अपने भाइयों के समान उन्नति करें।

भोट प्रांत में मदिरापान, रंगबंग, और डुडुम, ये तीन प्रथाएँ प्रचलित हैं। अति शीत प्रदेश होने और सर्वदा पर्वतों में भ्रमण करने के कारण ठंढ और थकावट दूर करने के लिये भोटिया लोग एक प्रकार की मदिरा पीते हैं। यह जौ से निकाली जाती है, जिसे दारू या अरक के नाम से पुकारते हैं। यह प्रथा बुरी तो अवश्य है, पर अन्य प्रांतवासियों की अपेक्षा बहुत कम है। इस मदिरा में व्यय भी कम है और मादकता भी अधिक नहीं है। जोहार भोट में मदिरापान अधिकांश में बंद हो गया है। दारमा में अभी चालू है, यद्यपि चौदांस और ब्यांस में पढ़े लिखे बहुत व्यक्ति इस व्यसन को छोड़ रहे हैं।

दारमा परगना में कई गाँवों में ऐसे घर हैं जहाँ गाँव के अविवाहित युवक और युवतियाँ कभी-कभी एकत्र होकर प्रेम-गीत के साथ नाचते हैं। किसी युवक और युवती में यदि प्रेम हो जाय तो पीछे से विवाह हो जाता है। इसको रंगबंग कहते हैं। यह प्रथा आजकल जोहार में बिलकुल नहीं है। दारमा में भूतपूर्व समाज-सुधारक ठाकुर मोतीसिंह जी के उद्योग से बहुत कुछ बंद हो गई है। शिक्षित युवकगण इस प्रथा का पूर्णरूप से उन्मूलन करने का उद्योग कर रहे हैं।

मृतक श्राद्ध को यहाँ डुडुम कहते हैं। मृतात्मा पुरुष हो तो चँवर बैल, और स्त्री हो तो चँवर गाय को लेकर उसे प्रेतात्मा के प्रतिनिधि के रूप में मृतक के कपड़े आदि से सजाकर खूब खिलाते हैं। आखिरी दिन उस गाय या बैल को गाँव के बाहर किसी पहाड़ के ऊपर छोड़ आते हैं। कुछ हूणिये ऐसे पशुओं की ताक में रहते हैं और पाते ही उनको पकड़ ले जाते हैं, और मारकर खा लेते हैं। इस प्रथा को बंद करने के लिये कई वर्षों से यत्न हो रहा है और श्राद्ध के अवसर पर छोड़ी हुई चँवर गायों और बैलों के जंगलों में पाले जाने का प्रबंध हो रहा है। इस संबंध में दारमा सेवा-संघ का प्रयत्न सराहनीय है।

भोट की चौदांस पट्टी में बारह वर्ष में एक बार 'कंग्डाली की लड़ाई' नामक त्योहार मनाते हैं। इस प्रांत में सात-आठ हजार फीट की ऊँचाई पर एक पौधा उगता है। इसकी ऊँचाई लगभग चार फीट तक होती है और इसमें बारह गाँठें होती हैं। यह बारह वर्ष में एक बार फूलता है। वहाँ के लोगों की

धारणा है कि उस वर्ष इन फूलों को बिना काटे छोड़ने से स्त्रियों को कुछ अशुभ होगा। इस त्योहार की कोई निश्चित तिथि नहीं होती। भाद्रपद, आश्विन, या कार्तिक के महीने में भिन्न-भिन्न गाँववाले अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अलग-अलग समय में मनाते हैं, ताकि दूसरे गाँव के लोग भी त्योहार में सम्मिलित हो सकें।

यह लगभग एक सप्ताह तक मनाया जाता है। त्योहार के पहले दिन मकानों की सफाई, लिपाई-पुताई आदि होती है। दूसरे दिन तेल में एक प्रकार का मालपूवा बनाते हैं और प्रचुर मात्रा में जौ की शराब भी तैयार करते हैं। तीसरे दिन ग्राम देवता की पूजा करने के बाद मालपूवा को अपने भाई-बंधुओं में बाँटते हैं। चौथे दिन कंग्डाली की लड़ाई होती है। पुरुष अपनी देशी पोशाक—लंबे-लंबे चोगे और पगड़ी पहनते हैं। स्त्रियाँ भी अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्र और अनेक प्रकार के चाँदी के आभूषणों को तथा तिब्बत जूते पहनती हैं, जो ऊन के बने हुए और घुटने तक के होते हैं। दिन में बारह बजे तक गाँव के लोग सब के सब एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं, जिसे वे सभा कहते हैं। त्योहार के दिनों में कोई भी गाँव का व्यक्ति निजी व्यापार नहीं कर सकता; यदि करे तो पंचायत द्वारा उसे दंड दिया जाता है। हर एक घर से एक-एक लोटा शराब लाकर सभा में उपस्थित करते हैं। लोटे में फूल रक्खे जाते हैं, तब 'परमेश्वरा' कहकर उद्बोधन करते हुए सभी लोग चावल हवा में फेंकते हैं। उसके बाद छोटे-छोटे कटोरे में सभी को शराब बाँटी जाती है।

लगभग एक बजे बाजे-गाजे के साथ जुलूस निकलता है। सबसे पहले-ढोल, झाँझ आदि बजाने वाले चलते हैं, उनके पीछे पुरुष लोग एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल लेकर चलते हैं। यदि ढाल तलवार नहीं होती, तो एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में पत्तियों का गुच्छा लेकर निकलते हैं। उनके पीछे स्त्रियाँ एक हाथ में 'रेल'[1] और दूसरे हाथ में रेशमी कपड़ा लेकर चलती हैं। जुलूस में एक के पीछे एक, कतार बनाकर निकलते हैं। चलते समय दाहिने से बाईं, और बाईं से दाहिनी तरफ घूम-घूम कर नाचते

---

[1] बुनाई के काम में आने वाली एक विशेष प्रकार की चपटी लकड़ी।

हुए गाँव से एक दो मील बाहर एक पहाड़ के छोर पर पहुँच जाते हैं और वहाँ सभी एकत्र हो जाते हैं। वहाँ सारे पुरुष तो रुक जाते हैं, किंतु स्त्रियाँ पहाड़ की ढालुओं में, जहाँ कंग्डाली के पौधे उगते हैं, दौड़-दौड़ कर जाती हैं। जंगल से फूलों सहित कंग्डाली की डालें काट-काट कर अपने साथ विजय-चिह्न के रूप में लाती हैं। इसी को कंग्डाली की लड़ाई कहते हैं। सभा में एकत्रित सभी स्त्री-पुरुष एक-एक करके थोड़ी देर तक नाचते हैं। इसके अनंतर कतार बाँध कर पूर्ववत् नाचते हुए शाम तक गाँव लौट जाते हैं। वहाँ किसी एक बड़े आदमी के घर के आँगन में गोल बाँध कर नाचना प्रारंभ करते हैं; और नाच के साथ गाना भी होता है। एक प्रकार का प्रेम-गीत रात बारह बजे तक पहाड़ी रागों में गाते हुए नाचते रहते हैं। नाचते समय बाएँ पैर को दाहिनी तरफ तथा दाहिने को बाईं तरफ करते हुए बाईं तरफ का चक्कर लगाते हैं। दूर-दूर के गाँवों के लोग भी इस मेले को देखने के लिये एकत्रित हो जाते हैं। कंग्डाली की लड़ाई के पश्चात् तीन दिन तक गाँव में दावत, खेल-कूद और नाच-गाना होता रहता है। बारह वर्ष में मनाये जानेवाले इस कंग्डाली के त्योहार की भाँति आश्विन के महीने में चौदाँस के ये भोटिया लोग त्योहार मनाते हैं, केवल भेद इतना है कि प्रति वर्ष के त्योहार में कंग्डाली नहीं कटती।

दारमा सेवा-संघ—चौदाँस भोट में ठाकुर मोतीसिंह नामक एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे, जिनका स्वर्गवास १९४० में हुआ। ये आजीवन भोट समाज के सुधार में लगे रहे। डुडुम, रंगबंग और मदिरापान आदि कुप्रथाओं को दूर करने के लिये और शुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये इन्होंने बहुत काम किया। सन् १९३५ में 'दारमा सेवा-संघ' के नाम से इन्होंने एक संस्था की स्थापना की, जिसके मुख्य उद्देश्य ये हैं—(१) श्री कैलास और मानसरोवर की यात्रियों की सेवा, (२) दारमा भोट वासियों के धार्मिक तथा सामाजिक सुधार, (३) शिक्षा प्रचार, (४) कलाकौशल तथा ग्राम-उद्योग-धंधों की उन्नति, और (५) धर्मशाला, पुस्तकालय, तथा औषधालय आदि की स्थापना करना।

इस संघ के पहले अध्यक्ष श्री मोतीसिंह ही थे। यद्यपि संघ अभी

शैशवावस्था में है, परंतु इससे बहुत कार्य होने की आशा है। इस संघ की धर्मशालाएँ कैलास के मार्ग में धारचूला, खेला, पंगू, जुंगती गाड़, सोसा, सिरदंग, मालपा, गर्ब्यांग, और तकलाकोट में हैं। बलुवाकोट, धारचूला, बुदी, मानसरोवर आदि स्थानों में भी धर्मशालाएँ बनवाने का यत्न हो रहा है। यात्रियों को चाहिये कि वे भी धर्मशाला बनाने में इस संघ की यथाशक्ति सहायता करें। इस संघ के सभापतियों से पत्र-व्यवहार करने से वे गर्ब्यांग से आगे का सारा प्रबंध कर देते हैं। आजकल ठाकुर मोहनसिंह जी गर्ब्याल, ठाकुर कल्याणसिंह जी गर्ब्याल, और ठाकुर खुशालसिंह जी या ठा० प्रेमसिंह जी ह्यांकी सभापति हैं तथा ठाकुर जमनसिंह जी गर्ब्याल, ठाकुर परमसिंह जी ह्यांकी और शोभनसिंह जी इसके मंत्री हैं।

श्री नारायण आश्रम—सोसा के पूर्व तीन मील की दूरी पर एक सुंदर पर्वत की रीढ़ पर श्री १०८ नारायण स्वामी जी महाराज ने 'श्रीनारायण आश्रम' नामक एक आश्रम स्थापित किया है। यह ८००० फीट से अधिक ऊँचाई पर एक रमणीक और एकांत स्थान है। वृक्ष-समन्वित, सोपान-सदृश, शस्य-श्यामल खेतों से सुशोभित चारों दिशाओं के दृश्य अति मनोमोहक हैं। पूर्व की ओर नेपाल की हिमाच्छन्न पर्वतमालाएँ और कई सहस्र फीट नीचे सर्प की भाँति बहती हुई काली नदी का दृश्य, उस स्थान की शोभा को और भी बढ़ा रहा है। आश्रम में एक विशाल संकीर्तन हाल, पुस्तकालय, श्रीकृष्ण मंदिर, एक छोटा-सा शिवालय, एकांतवासी महात्माओं के लिये पाँच-छः कुटियाँ, अतिथिगृह, पाकशाला, दो बड़े-बड़े मैदान, शाक तथा पुष्पोपवन, और एक जलधारा बन रही है। इन सबों के निर्माण का कार्य शीघ्र ही समाप्त होनेवाला है। सुनते हैं कि आश्रम के निर्माण में अब तक २०००० रुपया लग चुका है। यह आश्रम यात्रियों के लिये दर्शनीय है, तथा भजनानंदियों के लिये निवास करने योग्य है। श्री स्वामी जी महाराज दो-तीन साधकों के साथ यहाँ निवास करते हैं और अपने संकीर्तन और भजनों द्वारा भोट वासियों में धर्म की जागृति कर रहे हैं। इस प्रकार धर्म और समाज-सुधार में पिछड़े हुए भोट वासियों में नागरिकता, सभ्यता, नारायण-संकीर्तन का अभ्यास, और शुद्ध

सनातन-धर्म के भावों का प्रचार कर कृतकृत्य हो रहे हैं।

याक और झब्बू—देखिए 'याक' पृष्ठ १६४।

७—तीसरा खंड

गर्ब्यांग से तकलाकोट की दूरी ३१½ मील है। शीघ्रता से दो दिन, धीरे-धीरे जाय तो तीन दिन की यात्रा है। यहाँ से घोड़े, याक, झब्बू, खच्चर तकलाकोट तक ही लेने चाहिये, क्योंकि आगे के लिये हूणियों के घोड़े-खच्चर सस्ते में मिल जाते हैं। गर्ब्यांग से ही सारी यात्रा के लिये तंबू, चुटका आदि किराये पर लेने पड़ते हैं। सारी यात्रा के लिये यहीं से प्रबंध करना चाहिये। गर्ब्यांग आदि भोट के प्रांतों के पर्वतों पर आर्चा या डोलू (रेवदचीनी), गंधराणी (सुगंधित द्रव्य और पाचक), लोएंट, सोमा, गुगुल, मासी, कुट्ट, वत्सनाभि आदि औषधियाँ, और कस्तूरी-मृग, चीता, भालू आदि जंगली पशु अधिक पाये जाते हैं।

लीपूलेख घाटा—यात्रा के इस खंड में लीपूलेख घाटा (१६७५० फीट) को पार करना पड़ता है, जो गर्ब्यांग से २०½ मील की दूरी पर है। यह घाटा भारत और तिब्बत की सीमा पर अवस्थित है। यदि तीव्र वायु न हो तो यहाँ दस-पंद्रह मिनट तक विश्राम करके घाटा के दोनों ओर भारत और हूणदेश के सुंदर दृश्यों का अवलोकन कर आनंद लूटना चाहिये। घाटे पर चढ़ते समय अपने साथ किसी प्रकार की खटाई अवश्य रक्खें, जिससे सिरचक्कर, पित्त विकार, या कंठ सूखते समय इनका प्रयोग कर सकें। साथ-साथ 'गुड़पापड़ी' (पँजीरी) या किसी और प्रकार के खाद्यपदार्थ को साथ में रखना चाहिये, क्योंकि लीपूलेख पर चढ़कर आनंद मनाने के लिये अपने साथियों और घोड़े वालों में कुछ बाँटने की परिपाटी सी बन गई है। लोगों की धारणा है कि इस प्रकार कुछ खाद्यपदार्थों को बाँट देने से घाटा का अधिदेवता आगे के लिये सुगमता से मार्ग दे देता है।

जैसा कि पहले भी कह चुके हैं, समुद्रतल से १०००० फीट से अधिक ऊँचाई पर पहुँचने पर बहुधा लोगों को क्रोध चढ़ आता है। इसलिये

उचित है कि इस बात को ध्यान में रखकर इसके अनुचित प्रभाव से अपने को प्रभावित न होने दें।

तकलाकोट—यह ली लेख से १० मील की दूरी पर है। मार्ग में यही पहला तिब्बती गाँव है। यहाँ एक पहाड़ के ऊपर सिंबिलिङ मठ और जोङ-पोन का दुर्ग है। पहाड़ के नीचे जून से अक्टूबर के अंत तक प्रतिवर्ष दारमा परगना (दारमा, चौदांस, और ब्यांस पट्टियों) के भोटों की बड़ी भारी मंडी लगती है। मंडी में भोटिये व्यापारी कपड़े, गुड़ आदि सभी देशी वस्तुओं का व्यापार करते हैं और तिब्बतियों से ऊन, नमक, सुहागा आदि वस्तुओं को खरीदते हैं। व्यापार नकद रुपयों द्वारा या वस्तु विनिमय से होता है। इस मंडी में लगभग ५०० डेरे रहते हैं। तकलाकोट से जाकर फिर तकलाकोट लौटने के समय तक के लिये आवश्यक आटा, चावल, सत्तू, दाल, गुड़, चीनी, मेवे, मिट्टी का तेल आदि सामग्रियों को यहीं से ले जाना चाहिये। गर्ब्यांग में लिये गए कंबलों और डेरों में कुछ कमी अनुभव हो तो उसकी पूर्ति यहाँ पर कर सकते हैं। बंदूक का भी प्रबंध यहीं पर कर लेना पड़ता है। अपने लिये आवश्यकता न पड़ने पर भी भिखमंगों में बाँटने के लिये दो-चार सेर सत्तू साथ में अवश्य रख लेना चाहिये। तिब्बत में पहुँचते ही कुत्तों से सावधान रहना चाहिये। डेरे के स्थानों में अपनी वस्तुओं को असावधानतापूर्वक बाहर नहीं रहने देना चाहिये, क्योंकि कौतूहलार्थ देखने के लिये आये हुए तिब्बती बच्चे उन्हें उठा ले जाते हैं।

सिंबिलिंग मठ—देखिए पृष्ठ १७६।

गुकुङ—तकलाकोट मंडी से ½ मील पर करनाली के दाहिने किनारे पर, एक पहाड़ की दीवाल से लगा हुआ गुकुङ नामक गाँव है। तकलाकोट और गुकुङ गाँव के पहाड़, मकान की नींव में डाले हुए सिमेन्ट और कंकड़ के चट्टान जैसे (सेंड स्टोन) होते हैं। यहाँ प्राकृतिक गुफाओं के सामने दरवाजा लगाकर घर बनाये गए हैं। इस प्रकार कई घर तो दुमंजिले भी हैं। एक तिमंजिली गुफा में एक गोम्पा बना हुआ है। यहाँ करनाली के ऊपर एक तिब्बती पुल है। प्रायः तिब्बत में नदियों के पुलों के ऊपर रंगबिरंगे कपड़ों के

झंडे और तोरण लगे रहते हैं, जिससे देवता लोग प्रसन्न होकर पुल की रक्षा करते रहें। पुल के उस पार नेपालियों की बड़ी भारी मंडी लगती है, जहाँ नेपाल से आये हुए व्यापारी चावल, गेहूँ, जौ, आटा आदि बेचकर ऊन, नमक, सुहागा, और बकरियों तथा भोटियों की मंडी की अन्य वस्तुओं को मोल ले जाते हैं।

खोचारनाथ—तकलाकोट के आग्नेय कोण में १२ मील पर करनाली नदी के बाँयें किनारे पर ही खोचार का गोम्पा है। भारतवासी इसे खोचारनाथ कहते हैं और कुछ लोग भ्रम से इसे खेचरी तीर्थ कहकर पुकारते हैं। इस गोम्पा को कैलास जाने से पहले या वहाँ से लौटते समय देख सकते हैं। यह देखने योग्य है। तकलाकोट से शीघ्रता में जावें तो एक ही दिन में या धीरे-धीरे जावें तो दो दिन में लौटकर आ सकते हैं। विशेष विवरण के लिये देखिए 'खोचार गोम्पा', पृष्ठ १७६।

८—चौथा खंड

तकलाकोट से मानसरोवर होकर तरछेन ६२ मील है, शीघ्रता से जाने से चार दिन और धीरे-धीरे जाने से पाँच दिन की यात्रा है। यहाँ घोड़े, याक, और झब्बू जा सकते हैं। तीर्थपुरी जानेवाले यात्री ज्ञानिमा मंडी होकर जाते हैं, जिससे पश्चिमी तिब्बत भर की सबसे बड़ी मंडी ज्ञानिमा को भी देख सकें। तकलाकोट से ज्ञानिमा ४६ मील, वहाँ से तीर्थपुरी २७ मील और तीर्थपुरी से तरछेन २८ मील है। कुल योग ११४ मील होता है, जो सात आठ दिनों का मार्ग है। जो लोग ज्ञानिमा मंडी नहीं जाना चाहते वे सीधे तकलाकोट से करदुरू और दुलचू गोम्पा होकर तीर्थपुरी का दर्शन करके तरछेन जा सकते हैं। ज्ञानिमा और इस मार्ग में अधिक से अधिक एक दिन का अंतर पड़ता है। चाहे जिस मार्ग से भी जायँ, तकलाकोट से गर्ब्यांग लौटने तक का सारा प्रबंध तकलाकोट में ही करना चाहिये।

तकलाकोट या गर्ब्यांग से घोड़ों को तय करते समय घोड़ेवालों से ये

बातें पहले ही तय कर लेनी चाहिये—(१) यदि सीधे कैलास जाना हो तो मानसरोवर होकर ही जायँगे, राक्षसताल होकर नहीं।[1] (२) यदि तीर्थपुरी होकर कैलास जाना हो तो तीर्थपुरी से सीधे तरछेन ले जाना होगा, सीधे न्यनरी गोम्पा नहीं, क्योंकि सीधे तरछेन न ले जाकर इस प्रकार सीधे न्यानरी जाने से बीच के दृश्य, ध्वजा तथा लाल दरवाजा देखने से यात्रीगण वंचित रह जाते हैं। (३) कैलास की परिक्रमा तरछेन से आरंभ होकर तरछेन में ही पूरी कराई जाय, क्योंकि घोड़ेवाले प्रायः दो तीन मील की दूरी से बचने के लिये जुंठुलफुक से ही विना तरछेन हुए परखा आ जाते हैं। (४) मार्ग में जितनी गोम्पाएँ हैं सबों का दर्शन कराते हुए ही ले जायँ।

तोयो—यह तकलाकोट से ३ मील पर है। इसी गाँव में काश्मीर के वीर जोरावरसिंह की समाधि है। देखिए पृष्ठ २१६।

गुरला ला—यह तकलाकोट से २४¾ मील की दूरी पर है। समुद्रतल से १६२०० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। घाटे के ऊपर बड़े-बड़े लप्चे या पत्थरों के बड़े-बड़े ढेर, रंगबिरंगे कपड़ों के झंडे और तोरण हैं। यह मांधाता-माला का एक घाटा है। यहाँ से चारों ओर के अद्भुत और विशाल दृश्य शरीर की सुधबुध भुला देते हैं। मानसरोवर की दिव्य और रमणीक छटा इस संपूर्ण दृश्य को स्वर्गीय बनाकर आनंद सागर में निमग्न करा देती है। इन झंडों के पास थोड़ी देर ठहरकर तथा कुछ काल विश्राम कर चारों तरफ विस्तृत और विराट् प्रकृति का सौंदर्यावलोकन करना चाहिये। पीछे दाहिनी तरफ मांधाता की गगनचुंबी चोटियाँ हैं। इन्हीं के चरणप्रांत में सरोवर के किनारे मांधाता ने तपस्या की थी। पीछे की ओर नेपाल और भारत की सीमा की बर्फीली चोटियों से गुथी हुई पर्वतमालाएँ विराजमान हैं। सामने दाहिनी ओर राजहंसों से युक्त, स्वच्छ नीलोदक परिपूर्ण मानसरोवर और बाईं ओर

---

[1] राक्षसताल का मार्ग तीन-चार मील कम होने के कारण घोड़ेवाले प्रायः अनजान यात्रियों को उसी मार्ग से ले जाकर मानसरोवर के किनारे पर तीन दिन तक रहने के सुअवसर से वंचित कर देते हैं।

रावणहृद दर्शकों को आनंद-समुद्र में निमग्न करके रसाप्लावित कर देते हैं। रावणहृद के सामने ही, दूर पर, नीलाकाश का भेदन करते हुए महान् रजत-लिंग के समान सम्मोहक श्री कैलास शिखर अपने महावैभव से युक्त होकर विराजमान हो रहा है, वहीं पर पार्वती-परमेश्वर का निवास स्थान है।

पुनीत मानसरोवर—देखिए प्रथम तरंग।

राक्षसताल—देखिए ,, ,, ।

गङ्गा छू—यह मानसरोवर से राक्षसताल में जानेवाला एकमात्र नाला या निकास है। देखिए पृष्ठ ६३।

राजहंस—देखिए पृष्ठ ७७।

परखा या बरखा—यह गाँव कैलास और मानसरोवर के मार्ग के मध्य में अवस्थित है। तसम या तजम नामक तिब्बती डाक ऐजेन्सी के अफसर यहाँ रहते हैं। यहाँ दो मकान हैं, जिनमें से एक में तसम के अफसर रहते हैं, दूसरा मकान सरकारी विश्रामशाला (डाक बँगला) है। इसके अतिरिक्त गड़रियों के सात-आठ तंबू भी हैं। परखा के उत्तर में कैलास और दक्षिण में मानसरोवर व राक्षसताल के मध्य में, पूर्व से पश्चिम की ओर कई मीलों तक फैला हुआ एक बड़ा भारी मैदान है। यहाँ की भूमि विशेषकर दलदल और चरागाह है। ग्रीष्मऋतु में इस मैदान में यत्र-तत्र चरवाहों के काले तंबू लगे रहते हैं। सहस्रों भेड़ें, बकरियाँ, याक और घोड़े चरते हुए देखे जाते हैं। इस मैदान में ज़ंगली घोड़े झुंडों में स्वेच्छा से विचरते रहते हैं। यहाँ जहाँ-कहीं भी बिना पूर्व प्रबंध के वायुयान उतर सकते हैं या उतरने के स्थान यहाँ सुगमता से बनाये जा सकते हैं।

तीर्थपुरी—तकलाकोट से ज्ञानिमा मंडी होकर तीर्थपुरी ७६ मील है, जो पाँच छः दिनों की यात्रा है। बीच का मार्ग दुलचू गोम्पा होकर हो तो ६५ मील की दूरी पर है, और चार दिनों का मार्ग है। तीर्थपुरी से तरछेन २८ मील है, जो दो दिनों की यात्रा है। पश्चिमी तिब्बत की राजधानी गरतोक यहाँ से ४६ मील पर है। तीर्थपुरी को तिब्बती भाषा में टेटापुरी भी कहते हैं। यह सतलज नदी या लङ्चेन खम्बब् के दाहिने किनारे पर है। यह मठ तीन

मकानों में है, जिनमें एक प्रधान मठ है। शक्य थुब्बा (शाक्य मुनि) की इसमें प्रधान मूर्ति है। गोम्पा के बाहर ध्वजा है। दूसरा एक गुफा में है, जिसमें दोरजे-फगमो नामक प्रधान देवी की मूर्ति है; तथा तीसरा सिंदूरी पहाड़ पर है। वास्तव में ये तीनों एक ही हैं। यह मठ और मानसरोवर का लङ्पोना मठ लदाख के सुप्रसिद्ध हेमिस गोम्पा की शाखाएँ हैं। इसमें पाँच भिक्षु रहते हैं। गोम्पा के ऊपर, परिक्रमा के मार्ग में, देवी का डोलमा नामक एक प्रतीक बना है। गोम्पा के निकट और उससे कुछ पूर्व में बड़ी-बड़ी मणि दीवालें हैं। गोम्पा से आधे मील नीचे उबलते हुए पानी के गर्म सोते हैं। ये सोते कभी-कभी अपने स्थानों को बदलते रहते हैं और किसी-किसी समय एकदम बंद भी हो जाते हैं। गुफा-वाले मठ के आसपास भी कुछ गर्म सोते हैं। इन गर्म स्रोतों के आसपास चुगान नामक चूने जैसे एक श्वेत पदार्थ के बड़े-बड़े टीले या ढेर बने हुए हैं, जिन्हें हिंदू लोग भस्मासुर के टीले कहते हैं, और उस श्वेत पदार्थ को भस्मासुर का भस्म मानकर प्रसाद के रूप में घर ले जाते हैं। कहते हैं कि इस विभूति को लगाने से भूतप्रेत की बाधा दूर होती है। इसी स्थान पर भस्मासुर ने शिव की तपस्या की थी जो पुराणों में बड़े रोचक ढंग से वर्णित है।

भस्मासुर की कथा—एक बार भस्मासुर नामक एक राक्षस ने श्री महादेव जी की कठिन तपस्या की। तपस्या से तुष्ट होकर शिव ने उससे वर माँगने को कहा। इस पर भस्मासुर ने कहा—"मैं जिसके माथे पर अपने हाथ रख दूँ, वह तत्काल भस्म हो जाय।" "तथास्तु"—कहकर शिव ने वरदान दे दिया। फिर क्या था, भस्मासुर अपने वर की सत्यता की परीक्षा के लिये सर्वप्रथम शिव के ही मस्तक पर हाथ रखने को उद्यत हो गया। आत्मरक्षा के लिये शिव वहाँ से भागे, पर भस्मासुर उनका पीछा ही करता गया। अंत में शिव को इस संकटापन्न स्थिति में देखकर विष्णु भगवान् वैकुंठ को छोड़ मोहिनी नामक एक सौंदर्य-संपन्न रमणी के रूप में भस्मासुर के सामने प्रकट हो गए। भस्मासुर ने भगवान के उस विश्वविमोहन-रूपराशि पर मुग्ध होकर उसके साथ संभोग करने की इच्छा प्रकट की। इस पर मोहिनी ने भस्मासुर से कहा—"हे राक्षसराज, तुम्हारे साथ संभोग करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर बहुत

दिनों से कष्ट-तपस्या में निरत रहने एवं स्नानादि नहीं करने के कारण तुम्हारे शरीर से दुर्गंध आ रही, इसलिये प्रथम तुम स्नान कर आओ।" यह सुनकर वह असुर स्नान करने की इच्छा से जलाशय की खोज करने लगा। इधर विष्णु भगवान् ने अपनी माया के बल से एक छोटे से झरने को छोड़कर, जिससे बड़ी ही कठिनता से थोड़ा-सा जल निकल रहा था, आसपास के समस्त जलाशयों के जल को सुखा डाला। अंत में अल्पजल के कारण स्वभावतः अंजलि में जल लेकर स्नान करते समय भस्मासुर के दोनों हाथों का उसके मस्तक से स्पर्श हो गया और शिव के वरदान के प्रभाव से वह तत्क्षण भस्म होकर ढेर हो गया।

यही कथा एक दूसरे रूप में भी प्रचलित है। जिस समय भस्मासुर वरदान पाकर श्री महादेव जी के मस्तक पर हाथ रखने के विचार से उनका पीछा कर रहा था, वे भाग गए। पार्वती को अकेली पाकर उस असुर ने अपनी कामलिप्सा को तृप्त करने का प्रस्ताव किया। इस पर पार्वती ने भस्मासुर से कहा—"कैलासपति श्री शंकर जी हमें तांडव नृत्य दिखाकर तुष्ट किया करते थे, अतः तू भी हमें पहले तांडव-नृत्य दिखाकर संतुष्ट कर, फिर तेरे प्रस्ताव को मैं स्वीकार कर लूँगी।" इस पर वह असुर पार्वती के सामने तांडव नृत्य करने लगा। नृत्यकाल में, अनेक प्रकार की भाव-भंगियों का प्रदर्शन करते हुए अपनी हथेलियों से उसके माथे का स्पर्श हो गया, जिससे वह दैत्य शिव के वरदान के अनुसार, वहीं भस्म बनकर ढेर हो गया। कहते हैं, जो तीर्थपुरी में पहाड़ दिखलाई पड़ता है वह इसी विकराल दानव के भस्म का ढेर है।

उपर्युक्त गोम्पा के नीचे सिंदूर पहाड़ से सिंदूर जैसी मिट्टी (येल्लो ओकार) को यात्रीगण प्रसाद के रूप में ले जाते हैं। गोम्पा से एक-दो फलांग पर, नदी के किनारे बथुआ का साग बहुत मिलता है। तीर्थपुरी के आसपास 'जिंबू' अधिकांश मिलता है। दारमा के खंपा इसे बहुत ले जाते हैं। हिंदुओं तथा तिब्बतियों का विश्वास है कि 'तीर्थपुरी' का विना दर्शन किए कैलास की यात्रा पूर्ण नहीं होती।

गुरुगेम—तीर्थपुरी से पाँच मील नीचे सतलज के किनारे पर गुरुगेम नामक स्थान है। यहाँ आठ-नौ वर्ष पहले ल्हासा की ओर से एक लामा आए थे, उन्होंने भारत की सीमा के छुंगरू ग्राम से लकड़ी ले आकर यहाँ एक गोम्पा का निर्माण करना प्रारंभ किया। उस पर कई सहस्र रुपये व्यय हुए और तीन-चार वर्ष हुआ एक सुंदर मठ बन गया। लामा की अविवेकता के कारण और अपने मंत्र-तंत्र के गर्व के कारण यह गोम्पा सन् १९४१ में कज़्ज़ाकियों के हाथ में पड़ गया, जिन्होंने गोम्पा के दो भिक्षुओं को गोली से उड़ाकर सारी संपत्ति लूट ली। उस समय ये कज़्ज़ाकी डाकू लोग जोहारियों के सहस्रों रुपये के कपड़ों का गट्ठर लूट ले गए, और अंत में लामा को नंगा छोड़ गए।

गुरुगेम से दो तीन मील नीचे सतलज के दाहिने किनारे पर पल्क्या या पल्क्ये नामक स्थान में एक जीर्ण मठ तथा करदुङ जोङ के दुर्ग और भवनों के खंडहर हैं। सन् १८४१ में जनरल जोरावर सिंह ने इस गाँव का विनाश कर दिया। उससे पहले यह एक प्रसिद्ध स्थान था। अब भी दस या ग्यारह कुटुंब वाले यहाँ रहते हैं। सन् १९३५ में इटली के चुसेप्पे तूछे ने यहाँ से कई तिब्बती ग्रंथों का संग्रह किया था।

यहाँ से १० मील और नीचे, सतलज के बाएँ तट पर ख्युङलुङ नामक एक गाँव है। यहाँ भी कुछ गर्म जल के सोते और एक मठ है। जिसमें ८ भिक्षु हैं। स्थान गर्म होने के कारण थोड़ी खेती भी होती है। मकान गुफाओं में बने हुए हैं। शीतकाल में आस-पास के गड़रिये अपनी भेड़-बकरियों, और याकों को यहाँ चराने के लिये लाते हैं। यहाँ सतलज के ऊपर एक पुल बना हुआ है।

दुलचू गोम्पा—यह तीर्थपुरी से १४ मील है। यहाँ से तरछेन २१ मील की दूरी पर है। यहाँ से एक मार्ग करदुङ और एक मार्ग ज्ञानिमा मंडी को जाता है। तिब्बतियों का कहना है कि दुलचू मठ जिस पहाड़ पर है, वह हाथी के स्वरूप जैसा है और सतलज का उद्‌गम मठ से थोड़ी ही दूर पर दल-दल भूमि में स्थित स्रोतों में है। इसलिये सतलज को तिब्बती भाषा में लङ्चेन खम्बब् या हस्तिमुख से निकलनेवाली नदी कहते हैं। राक्षसताल से

दुलचू गोम्पा तक सतलज को छोलुङबा कहते हैं। गोम्पा के भिक्षुओं का कहना है कि राक्षसताल से यहाँ तक नदी में जल निरंतर बहता है। गोम्पा के चकङ और दुवङ एक ही हैं। इसमें शाक्य थुब्बा (शाक्य मुनि) की प्रधान मूर्ति है। यहाँ कंजूर की पोथियाँ और मठ के निर्माणकर्ता लोचसङ् देनछिङ का छोरतेन है। इसकी स्थापना आज से लगभग २७५ वर्ष पूर्व हुई थी। कुछ अन्य लोगों का कहना है कि इसका निर्माण हुए अभी १०० ही वर्ष हुए। गोम्पा के सामने ध्वजा तथा कई मणि-दीवालें हैं। दो-चार घर और कुछ काले तंबू भी हैं।

६—पाँचवाँ खंड

कैलास पर्वत की परिक्रमा ३२ मील की है, जो सुगमता से तीन दिन में और शीघ्रता से दो दिन में समाप्त की जा सकती है। कुछ तिब्बती कैलास की परिक्रमा एक ही दिन में करते हैं, जिसे तिब्बती भाषा में 'निङकोर' कहते हैं। देखिए, पहला तरंग।

तरछेन या दरछेन—यह कैलास पर्वत की दक्षिणी तलहटी में है। कैलास की परिक्रमा यहीं से आरंभ की जाती है। यह गाँव भूटान राज्य के अंतर्गत है। यहाँ भूटान के लामा का एक बड़ा मकान है, जिसमें भूटान के एक भिक्षु अफसर रहते हैं, जो तिब्बत के अन्य भूटानी उपनिवेशों की देख-भाल करते हैं। इनको तरछेन लब्रङ या तरछेन का राजा कहते हैं। इस भवन के अतिरिक्त चार-पाँच घर और कुछ काले तंबू है। जुलाई और अगस्त के महीनों में यहाँ एक मंडी लगती है, जिसमें जोहार और दारमा के भोटिया व्यापारी दुकान लगाते हैं। उस समय ६०-८० तंबू लग जाते हैं। ऊन यहाँ पर बहुत कटता है और खाने-पीने का सामान भी मंडी में मिल जाता है। तरछेन से कैलास की परिक्रमा करते समय परिक्रमा में अनावश्यक सामान को तरछेन में किसी व्यापारी के पास रखकर कुछ घोड़े थके हुए नौकरों को सवारी के लिये दे देने चाहिये।

सेरशुङ—यह तरछेन से ३½ मील है। यहाँ तरबोछे नामक एक बड़ी

ध्वजा है। इसके पास ही २०० गज की दूरी पर छोरतेन कङनी नामक एक लाल छोरतेन या दरवाजा है। देखिए पृष्ठ ४५।

डोलमा ला—(देवी का घाटा) कैलास और मानसरोवर की यात्रा के मार्ग की चढ़ाई में यह सबसे ऊँचा है। यह समुद्रतल से १८६०० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है।

गौरीकुंड—यह डोलमा ला घाटा से दो सौ गज नीचे उतरने पर पड़ता है। यहाँ पर और डोलमा ला पर प्रायः प्रतिदिन बर्फ गिरती है। देखिए पृष्ठ ४६।

सेरदुङ-चुकसुम् और छो कपाली—ये दोनों तीर्थ कैलास शिखर की दक्षिणी तलहटी पर हैं। देखिए पृष्ठ ४८।

१०—छठा खंड

मानसरोवर की परिधि ५४ मील है, जो शीघ्रता से तीन दिन और सुगमता से पाँच दिन की यात्रा है। मानसरोवर की परिक्रमा करनेवाले कैलास की परिक्रमा को पूरा करके तरछेन से सीधे निकलकर गुरला ला या तकलाकोट में परिक्रमा पूरी कर देते हैं। जिन्हें अधिक समय हो, वे गोछुल गोम्पा (मानसरोवर का पहला मठ) से प्रारंभ करके फिर गोछुल में ही उसका अंत कर सकते हैं। देखिए प्रथम तरंग।

११—प्रसाद

कैलास—(१) श्री कैलास शिखर के नीचे १६००० फीट की ऊँचाई पर पत्थरों के बीच में कङरी पो (कैलास धूप) नामक एक छोटी-सी सुगंधित लता उगती है। इस लता को सुखाकर लोग धूप के काम में लाते हैं। लोगों की धारणा है कि यह सुगंधित लता कैलास के समीपवर्ती प्रांत के अतिरिक्त उतनी ऊँचाई के अन्य प्रांतों में नहीं पायी जाती है। परंतु मैंने इस लता को गतवर्ष नमरेलडी छू की घाटी के ऊपरी भागों में १७००० फीट की ऊँचाई पर पाया। संभव है, यह कुछ अन्य स्थानों में भी उगती हो। (२) कैलास शिखर से सेरदुङ चुकसुम के

पास गिरनेवाला जल या कैलास-शिखर से आया हुआ जल जहाँ कहीं सुगमता से प्राप्त हो। (३) डिरफुक् गोम्पा के पास के लोग कैलास शिखर की उत्तरी तलहटी में जाकर वहाँ की एक प्रकार की सफेद मिट्टी लाते हैं और उससे पेड़े के समान चिपटी टिकड़ियाँ या संदेश की आकृति का पिंड बनाते हैं, और 'कैलास की विभूति' कह कर व्यवहार करते हैं। (४) गौरीकुंड का जल। (५) कपाली सर का जल। (६) कपाली सर के पत्थरों के बीच में स्थित कोमल मृत्तिका, जिसे प्रसाद के रूप में ले जाते हैं। (७) तीर्थपुरी के गर्म सोतों के पास के श्वेत भस्म को भस्मासुर की विभूति कहकर धारण करते हैं। कहते हैं कि इसके खाने से ज्वर हट जाता है और शरीर पर लगाने से छोटे-छोटे बच्चों की रुलाई और प्रेत-बाधा दूर हो जाती है। (८) तीर्थपुरी के सिंदूरी पहाड़ की पीली मिट्टी को प्रसाद के रूप में ले जाते हैं।

मानसरोवर—(१) मानसरोवर के जल को बोतलों या बरतनों में भरकर तीर्थजल के रूप में ले जाते हैं। निर्धन तिब्बती, जिनके पास जल ले जाने का कोई बोतल नहीं रहता, उसी जल में सत्तू भिंगोकर गोलियाँ बना लेते हैं और बड़ी श्रद्धा से ले जाते हैं। (२) यात्री सरोवर के किनारों से रंगबिरंगे स्निग्ध और छोटे-बड़े सभी प्रकार के पत्थरों को अपनी रुचि के अनुसार चुनकर ले जाते हैं। इनको पूजा के काम की तावीज़ों और अँगूठियों में रखते हैं।

(३) पूर्वी किनारे पर ३ मील तक किनारे-किनारे चेमानेङा नामक पंचरंग की रेत पतली सी तहों में पाई जाती है। ये तहें लहरों से बनती हैं। इसे कागज से उठा लेने पर नीचे साधारण सफेद रेत रह जाती है। फिर दूसरे दिन सरोवर की लहरों से दूसरी तह बन जाती है। यह देखने में सुनारों के जेवरों को पॉलिश करनेवाले मानिक रेत के समान बैंगनी रंग की होती है। परंतु इसमें श्वेत, लाल, काले, पीले, और हरे रंग के कण होते हैं। तिब्बतियों का विश्वास है कि इसमें सोने, चाँदी, फिरोजे, मूँगे, और लोहे के कण होते हैं, और इसके खाने से ज्वर दूर हो जाता है। किसी के दृष्टिदोष से गाय का दूध देना बंद हो गया हो तो इसे दूध में डाल कर कैलास की धूप देने से गाय पूर्ववत् दूध देने लग जाती है। इस बालू के संबंध में तिब्बती

गङ्गा छू के मुखद्वार से कैलास का दृश्य

[देखो पृ० ६३

तरछेन

[देखो पृ० ३१०
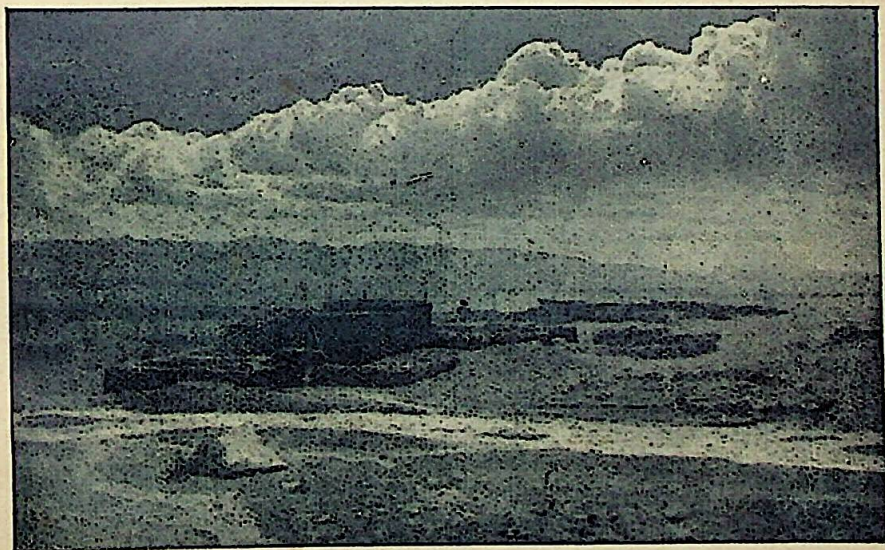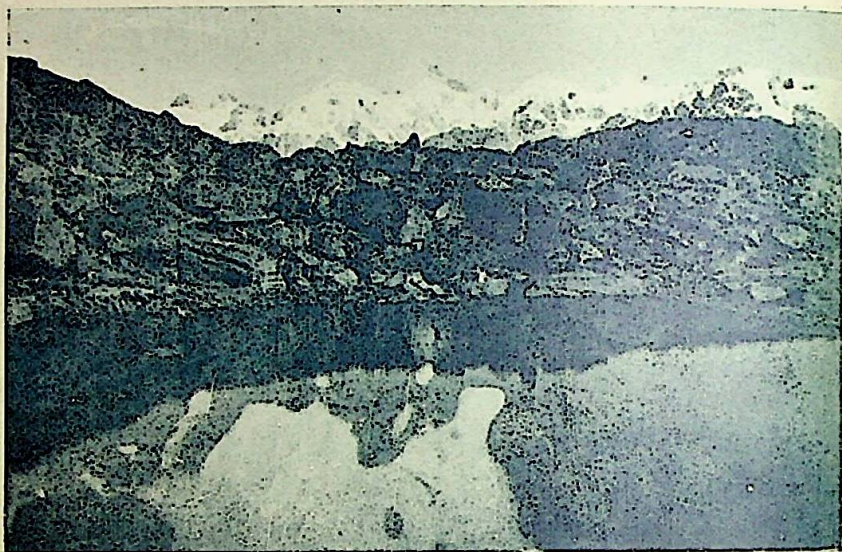
छिसाकोट—ककरोलाकीद का तालाव, पीछे पंचचूल्ही के हिमाच्छादित शिखर

[देखो पृ० २६१

उछलती-कूदती हुई धौलगंगा

[देखो पृ० ३२८
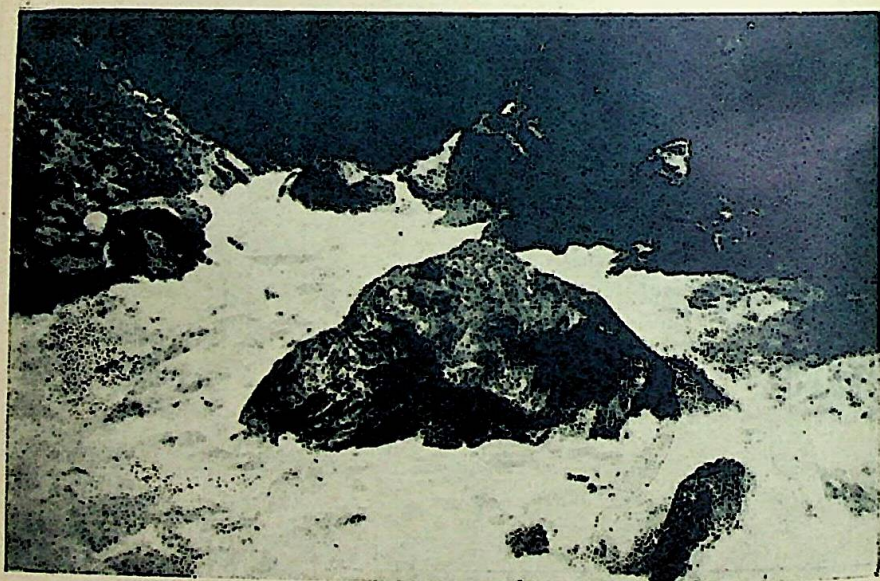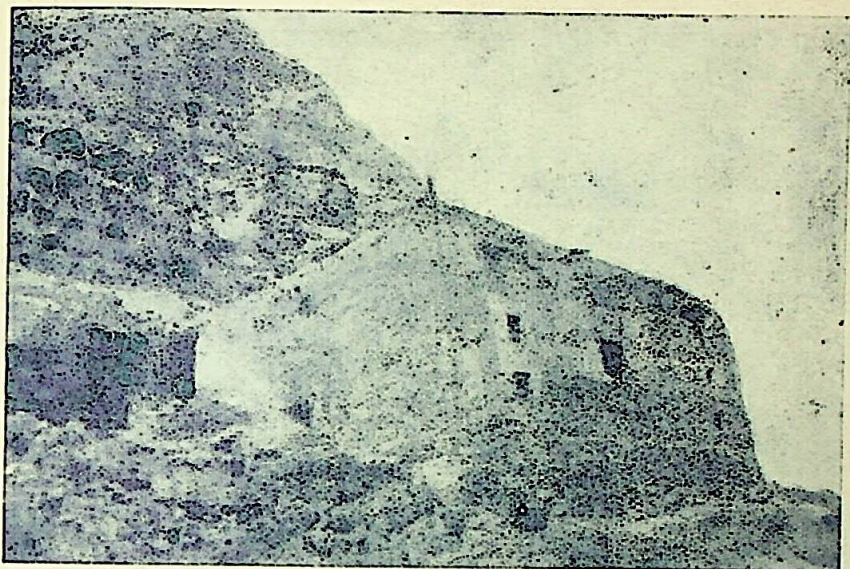
न्यनरी गोम्पा—श्री कैलास का पहला मठ

[देखो पृ० ३४४
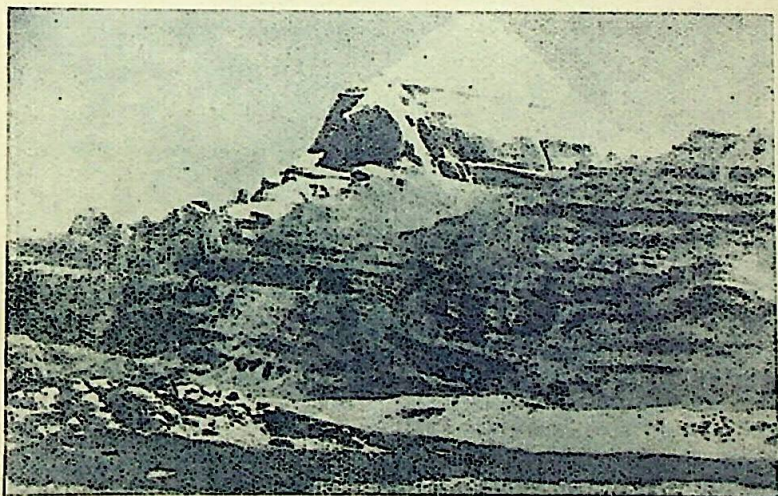
न्यनरी गोम्पा से कैलास और गोंबो फंग (रावण-पर्वत)

[देखो पृ० ३४४
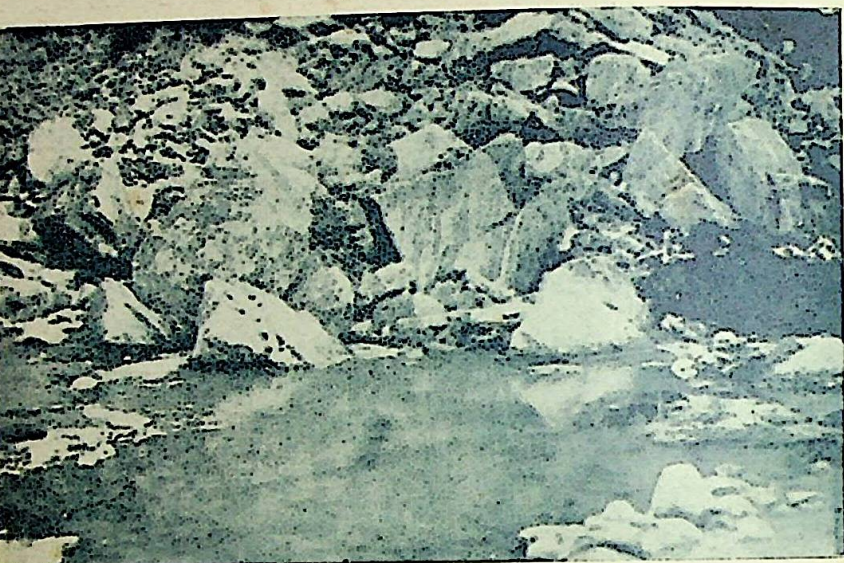
कालापानी के स्रोत—काली नदी का उद्गम

[देखो पृ० ३३५

हिमालय की मालगाड़ी—भेड़-बकरियाँ

[देखो पृ० १९७

पुराणों में एक कथा है कि एक समय एक टाशी लामा मानसरोवर की यात्रा के प्रसंग में मानसरोवर की इस रेत को कई घोड़ों पर लाद कर टाशी ल्हुम्पो ले जा रहे थे। मार्ग में घोड़ेवाले उन्हें पागल समझकर सारी रेत को मार्ग में ही फेंकते गए। टाशी ल्हुम्पो पहुँचने पर चेमनेङा के सारे बोरे खाली हो गए। केवल एक थैली में एक मुट्ठी भर रेत बच रही थी, जिससे टाशी ल्हुम्पो के मंदिर में सोने का पानी चढ़ाया गया, जो अब तक विद्यमान है। लोग इसी रेत को बड़ी श्रद्धा से प्रसाद के रूप में ले जाते हैं। मानसरोवर के प्रसाद रूप में ली जाने वाली रेत यही है।

(४) मानसरोवर की चारों ओर एक प्रकार का सुगंधित छोटा पौधा उगता है, जिसे सुखाकर धूप के काम में लाते हैं। यह पौधा हिमालय के अन्य भागों में भी पाया जाता है। (५) मानसरोवर के कई मठों में, विशेषकर टुगोल्हो गाँव में, पंगपो नामक सुगंधित धूप मिलती है, जिसे भोटिया लोग माखी कहते हैं। यह विशेष कर मानसरोवर के पूर्व की ओर होती है। (६) मानसरोवर में छोटी-बड़ी बहुत-सी मछलियाँ हैं। बड़ी-बड़ी लहरों से चोट खाकर कितनी ही मछलियाँ मरकर किनारे पर लग जाती हैं। वहाँ के लोग इन्हें सुखाकर रख लेते हैं। इन्हें पास रखने या इनकी धूप जलाने से ग्रह और भूतों की बाधा हट जाती है। किंतु जीवित मछलियों को कोई नहीं मारते। कैलास की धूप और विभूति, मानसरोवर की धूप, चेमानेङा, पंगपो, और मछलियाँ वहाँ की गोम्पाओं में बेची जाती है।

उपसंहार

यात्रा में लौटते समय आवश्यकतानुसार, बीच-बीच में विश्राम करते हुए अग्रसर होना चाहिये। मार्ग की दुर्गमता के कारण जीवन में बहुधा इस यात्रा पर जाने का अवसर एक से अधिक बार नहीं आता, अतः यात्री को चाहिये कि अवकाश निकालकर कुछ दिनों तक श्री कैलास-शिखर के चरण-प्रांत में या परम पुनीत मानसरोवर के गंभीर और प्रशांत तट पर बैठकर कुछ काल अविच्छिन्न ध्यान में व्यतीत करे, जहाँ से श्री कैलास-शिखर के दिव्यदर्शन

एवं पुनीत मानसरोवर का स्पर्श तथा उसके निर्मल जल में मज्जन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह धार्मिक हो या भ्रमण करने के उद्देश्य से गया हो, इस महान् तीर्थ में कुछ दिनों तक निवास करने के सौभाग्य से वंचित नहीं होना चाहिये। यथासंभव यह यात्रा मानसिक चंचलता और दौड़धूप में न हो तो अधिक अच्छा, थोड़े समय के लिये देश और काल का भाव भूलकर, किंचित् इस बात पर भी दृष्टि प्रसार कर विचार कीजिए कि अपनी जीवन-यात्रा की नौका कहाँ से चली, अब कहाँ है, आगे कहाँ और कैसे जानेवाली है, और इसका क्या उद्देश्य है? मन लगे तो एक पग आगे जाकर इस पर भी तनिक विचार कीजिए कि इस यात्रा के सूत्रधार के प्रति हमारा क्या संबंध या कर्त्तव्य है?

परम पवित्र श्री कैलास-शिखर की मंत्रवत मुग्ध करनेवाली महत्ता, शोभा और उसके वैभव का अथक दृष्टि से निरीक्षण करते हुए और नीलमणि के समान वक्षस्थल वाले मानसरोवर के पुनीत तट पर, उसके द्वारा श्रद्धा को उद्बोधित करनेवाली प्रशांतता की थपकियों का अनुभव करते हुए, कोई भी व्यक्ति रातदिन अखंड ध्यान और तत्त्वविचार में निमग्न होकर, समय को क्षण की भाँति व्यतीत कर सकता है। यहाँ के स्वच्छंद वातावरण में प्राणी स्वाभाविक रूप से आनंद का श्वास लेने लगता है। उसे जीवन का वास्तविक आनंद अनुभूत होने लगता है। मन स्वेच्छा से, देशकाल से परे होकर उस विमुग्धकारी एवं स्वच्छ नीलोदक से तरंगायित सरोवर में विहार करने के लिये छटपटाने लगता है। भूगोल या भूगर्भशास्त्र के विशाल साम्राज्य में श्री कैलास-शिखर के अन्वेषण या इसके जलीय तत्त्व के तारतम्य से, पृथ्वी के दूसरे भागों में स्थित सरोवरों से इस अतुल सरोवर की तुलना की बात निस्संदेह बहुत ही सुंदर मनबहलाव की सामग्री हो सकती है, और वह साधारण धीमानों के लिये प्रयत्न का विषय हो सकता है। पर स्वर्गीय सौंदर्य और नैसर्गिक गुणों से युक्त सर्वदा शुभ्र हिमाच्छन्न छत्रों से सुशोभित, श्री कैलास-शिखर के—जहाँ हिंदू पुराणों के अनुसार परम पुरुष शिव अर्धांगिनी पार्वती के साथ, और तिब्बती शास्त्रों के अनुसार भगवान् बुद्ध अपने पाँच सौ बोधिसत्त्वों के साथ निवास

कर रहे हैं—सम्मुख होने के अंतरानंद का सजीव वर्णन, ग्रंथकार की अपेक्षा कोई प्रतिभाशाली कवि ही भली भाँति कर सकता है। यदि इनकी विवश करनेवाली सुंदरता और रूपराशि ने मानव-मन को आकर्षित न किया होता तो दो विभिन्न धर्म—हिंदू और बौद्ध—के लिये ये दोनों समान प्रतिष्ठा के योग्य अन्य किस कारण से हो सकते? उस दिव्य शिखर ने अपने गौरव की अमिट छाप इस प्रकार डाल दी है कि वे इसे भूतल की नहीं वरन् स्वर्ग की सृष्टि मान बैठे हैं। गुरला घाटा या सरोवर के तटस्थित पहाड़ों के किसी स्थान से शिखर का प्रथम दर्शन भी उस स्वर्गीय दृश्य से शरीर को रोमांचित कर नयनों को आनंदाश्रु से भर देता है। निस्संदेह निकट का सहवास विलक्षण समाधि में निमग्न कर देता है, तब अन्य अवसरों की अपेक्षा परमात्मा का निकटतम अनुभव होता है।

ग्रंथकार की यह धारणा है कि यदि वह किसी भी पाठक के हृदय में इस आनंदधाम (कैलास मानसरोवर) की शिक्षाप्रद तथा शरीर एवं आत्मा को बलवती बनानेवाली यात्रा की ओर अभिरुचि तथा उत्साह उत्पन्न करने में सार्थक हुआ और अंतरानंद की वह अनुभूति जगाने में सफल हुआ, जो लेखक की भाँति प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनुभवसाध्य है, तो वह अपने परिश्रम को सफल तथा धन्य मानेगा। इसके अतिरिक्त यदि कोई भक्त सर्वांतर्यामी की प्रेरणा से स्वयं सिद्धि प्राप्त कर अपने मित्रों के हृदय में भी अखंड ज्योति का प्रकाश उद्दीप्त कर सका तो आत्मप्रेरणा की श्रृंखला को उत्पन्न कर इस प्रकार कार्य-कर होते हुए देख उसे परमसंतोष होगा कि वह प्रेरणा की इस क्रमानुवर्तित श्रृंखला का जन्मदाता है। अपने पर न्यस्त मानव-सेवा की महान तथा स्वाभाविक पूर्ति होने पर इस प्रकार का संतोष होना उचित ही है।

इसी प्रसंग में एक पाश्चात्य व्यक्ति, जो मानसरोवर पर केवल भौगोलिक अन्वेषण के लिये गए थे, के मन पर मानसरोवर का क्या प्रभाव पड़ा, उसे जान लेना उचित है। 'ट्रैन्स-हिमालया' नामक पुस्तक में डा० स्वेन हेडिन लिखते हैं—"मानसरोवर पवित्रता और शांति का भंडार है। धरातल पर कोई भाषा नहीं है, जिसमें ऐसे ज़ोरदार शब्द हों जो इस सरोवर का पूरा

वर्णन कर सकें। हंस के झुंड तैर रहे हैं और चारों ओर अवर्णनीय सन्नाटा छाया हुआ है, जो अजीब किस्म की अलौकिकता, प्रशान्तता, गंभीरता, और सूक्ष्मता के वातावरण से परिपूर्ण है। जिससे मुझे श्वास प्रश्वास लेना भी कठिन-सा हो गया। मेरे जीवन भर में किसी विवाह के जलूस, किसी विजय या मृत्यु का गीत, किसी गिरजाघर के उपदेश ने इतना प्रभाव नहीं डाला जितना गोछुल गोम्पा के छत से इस सरोवर के दृश्य ने। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं अंतरिक्ष में तरण कर रहा था। इस अनुभूति के भ्रम में पड़कर मैंने छत के चबूतरे की दीवाल को जोर से पकड़ा।···अहा! मानसरोवर कैसा आश्चर्य-जनक सरोवर है। इसे वर्णन करने के लिये मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं। मैं अपने जीवनभर में इसे नहीं भूल सकता हूँ। सरोवर से विदा होकर चलते समय मुझे असह्य दुःख हुआ।...इसका प्रभाव मेरे मन पर ऐसा पड़ा है, जैसे यह एक कथा या कविता या गीत हो। मेरे जीवनभर के पर्यटनों में कोई ऐसी वस्तु या घटना नहीं है, जो इस सरोवर पर की हुई एक रात्रि की मुग्ध करने वाली नौका-यात्रा से तुलना कर पावे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मैं परमात्मा की वीणा के हृद्तंतुओं के महान् और गंभीर स्पंदनों को सुन रहा था। मुझे ऐसा भान हुआ कि यह सारा संसार मिथ्या है और चारों ओर के दृश्य लौकिक, भौतिक, या आडंबरयुक्त नहीं हैं, अपितु स्वर्ग की सीमा के—परलोक के हैं।... संसार में कई इससे भी अधिक सुंदर सरोवर हैं। जैसे इसके पश्चिम में स्थित राक्षसताल निस्संदेह इससे सुंदरतर है, परंतु प्राकृतिक सौंदर्य के साथ इस प्रकार का अलौकिक प्रतिभाशाली और प्रभाव डालनेवाला सरोवर संसार भर में अन्य कोई नहीं है।"

चतुर्थ तरङ्ग

मार्ग-तालिकाएँ

सूचना

इन तालिकाओं में सर्वप्रथम पड़ावों को क्रमिक संख्या दी गई है। उसके बाद पाड़वों के नाम दिये गए हैं। फिर दो स्थानों के अंतर तथा कुल दूरी का जोड़ क्रमशः दो छोटे कोष्ठकों में मीलों में दिया गया है। उसके बाद बड़े कोष्टक में उस स्थान की समुद्रतल से ऊँचाई फीटों में दी गई है और अंत में उन स्थानों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। विवरण में पंक्तियों के प्रारंभ में दी हुई मीलों की संख्या क्रमशः एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी प्रकट करने के लिये हैं। स्थानों के विशेष विवरण पादटिप्पणियों (फ़ुट नोट्स) में दिये गए हैं। पाठकगण पढ़ते समय इन विशेषताओं पर ध्यान रखें।

सांकेतिक शब्द

डा० = डाकघर
ता० = तारघर
अ० = अस्पताल
डाब० = डाकबँगला
जं० = जंगलात का बँगला या 'फ़ॉरेस्ट रेस्ट हाउस'
रे० = रेस्ट हाउस

स्कू० = स्कूल
ध० = धर्मशाला
डेरे = डेरे के स्थान
पी० = पी० डब्ल्यू० डी०
दे० = देखिए पृष्ठ
चाय = चाय की दुकान
? = संदिग्ध विषय

Mild descent = मंद उतराई
Descent = उतराई
Steep descent = कड़ी या कठिन उतराई
Very steep descent = बहुत कठिन उतराई
Falling descent = लुढ़कती उतराई

Mild ascent = मंद चढ़ाई
Ascent = चढ़ाई
Steep ascent = कड़ी या कठिन चढ़ाई
Very steep ascent = बहुत कठिन चढ़ाई
Almost prependicular ascent = खड़ी चढ़ाई

तालिका १

श्री कैलास और मानसरोवर का पहला मार्ग

अल्मोड़े से लीपूलेख घाटा होकर—२३६ मील

अल्मोड़ा—(०) (०) [५४१४] यह जिले का प्रधान स्थान है। डा०, ता०, डाब०, जं०, होटल, बाज़ार, चाय, मोटर एजेंसी इत्यादि। हल्द्वानी रेलवे स्टेशन पैदल के मार्ग से ४१ मील और मोटरबस के मार्ग से ८८ मील है।

१ मील ढूँगाधारा की 'टोल बार', दुकान, चाय।

½ मील बल्ढोटी, खच्चर और टट्टुओं के ठहरने का स्थान।

१ मील ईसाईयों के मिशन का सेनटोरियम।

१¾ मील चितई, दुकान, चाय, मंदिर, जल-धारा।

१¼ मील चौखुटिया या पेटसाल तक कठिन उतराई, गधेरे को पुल से पार करें, यहाँ से बाड़ेछीना तक मंद चढ़ाई है।

½ मील दुकान, चाय, जल की धारा।

¾ मील एक संकीर्ण पुल को पार करें।

¾ मील शील, दुकान, चाय।

बाड़े छीना[1] (८½) (८½) [४०००] १ मील चाय, डा०, जं०, स्कू० बाजार,

---

[1]यहाँ से एक मार्ग मिरतोला जाता है, जहाँ श्री कृष्णप्रेम (निक्सन) तथा श्री आनंदप्रिय (मेजर अलेकजेंडर) आदि कुछ अंग्रेज भक्तों ने उत्तर वृंदावन नामक आश्रम का निर्माण किया है। यह एक रमणीय स्थान है। यहाँ कृष्ण भगवान् का एक सुंदर मंदिर है। बाड़े छीने से मिरतोला पगडंडी से ४½ मील और घोड़े की सड़क से ७ मील की दूरी पर है। मिरतोला से जागेश्वर २ मील पर है।

यहाँ से धारचूले तक ऋतु में आम मिलते हैं।

१ मील सुपई, दुकान।

१ मील चीड़ के जंगल में होकर चढ़ाई है।

१ मील मंद उतराई।

१. धौल छीना[1] (५) (१३½) [६०००] २ मील धौल छीना तक कड़ी चढ़ाई,[2] चा०, डाब०, दुकान, ठंढा स्थान, यहाँ से भौंरा का गधेरे तक लगातार कड़ी उतराई है।

बूंगा (२½) (१६) २½ मील, बूंगा तक घने जंगल में होकर उतराई, दुकान, चाय, घोड़ेवालों का ठहराव, सुंदर पड़ाव।

२ मील भौंरे के गधेरे तक चीड़ के जंगलों से उतराई, दुकान, चाय।

कनारी छीना (२¾) (१८¾) ¾ मील डा०, जं०, दुकान।

¼ मील कड़ी उतराई।

१¾ मील जालीखेत, दुकान, आम के बगीचे।

½ मील डुंगरलेख छीना, यहाँ पर ऋतु में आसपास में आम बहुत मिलते हैं।

१ मील कड़ी उतराई।

१¾ मील सरयू के पुल तक मंद उतराई, पुल पार करें।[3]

सेराघाट-मल्ला (५¼) (२४) यह सरयू के बाँयें किनारे पर है। यहाँ दुकान,

---

[1]यहाँ से पूर्व की तरफ मिरतोला १ मील पर है। पश्चिम की तरफ बिनसर नामक एक स्वास्थ्यप्रद स्थान ६ मील पर है। वह ७९१२ फीट की ऊँचाई पर है। यहाँ का जलवायु ठंढा है। यहाँ से बदरीनाथ से नेपाल की सीमा तक के बर्फीली चोटियों के मनोहर दृश्य दिखलाई पड़ते हैं।

[2]धौल छीना पहुँचने के ५ फर्लांग पहले कालून नामक स्थान पर २ दुकान तथा यात्रियों के ठहरने के लिए मकान बने हुए हैं, और यहाँ पर एक पानी की धारा है।

[3]पुल पहुँचने से पहिले और मार्ग से कुछ नीचे कलमी आम के बगीचे लगे हुए हैं, जहाँ पर आम सस्ते मूल्य पर प्राप्त हो जाते हैं।

चाय, आम और केले मिलते हैं। गर्म स्थानहै, (यहाँ से एक मार्ग गंगोलीहाट होते हुए पिठेरागढ़ जाता है) दुकान से कुछ नीचे एक शिवालय है, जिसकी ठीक दूसरी तरफ, नदी के पार जैगणा नदी सरयू से मिलती है। दोनों के संगम बहुत सुंदर है।

२. शल्या (२½) (२६½) २½ मील कड़ी चढ़ाई शल्या, दुकान, चाय, पानी की धारा।

¼ मील चढ़ाई, नरुवा का घोल, दुकान।

½ मील फड्याली नदी पर पुल पार करें।

गणाई[1] (३½) (३०) २¾ मील गणाई तक मंद चढ़ाई, डा०, स्कूल, दुकान, चाय, पानी का नल, यह गर्म स्थान है। सड़क से आधे मील हटकर जं०।

¾ मील तपोवन, दुकान।

१¾ मील सिमलता, दुकान।

१ मील साता, दुकान।

१ मील कुलरूँ गाड़ के ऊपर की विस्तरद्यो पुल को पार करें, (पुल से ¼ मील पहले मार्ग से नीचे एक शिवालय है।)

बाँसपटान (६) (३६) १½ मील बाँसपटान, मार्ग भर के सुंदर स्थानों में से यह एक है। यहाँ कई उपत्यकाएँ मिलती हैं। कगारें, संकीर्ण घाटियाँ, कई प्रकार की खेतीवारी, दुकान, चाय।

१½ मील गोदी गाड़, दुकान, चाय।

½ मील स्याली, दुकान, चाय।

सुक्ल्याडी (३) (३९) १ मील दुकान, चाय, घोड़ेवालों का ठहराव।

१ मील मार्ग सीधा है।

२ मील बेरीनाग के शिखर तक चीड़ के जंगलों में होकर कड़ी चढ़ाई, (यहाँ से बागेश्वर २३ मील है); यहाँ से गुरघटिया के पुल तक (६¾

---

[1]यहाँ भंगेरा के बीज बहुत मिलते हैं, जो मार्ग में खटाई में डालने के के लिये अच्छी वस्तु है।

मील) लगातार उतराई, बरसात में मार्ग में बिछलन होती है।

३. बेरीनाग[1] (३¼) (४२¼) [७०००] ¼ मील बेरीनाग या वेणीनाग तक उतराई, डा०, अ०, स्कूल, बाजार, चाय, मिठाई मिलने का अंतिम स्थान, धर्मशाला, चाय के बगीचे, पहाड़ की रीढ़ पर एक ओर नाग का मंदिर और दूसरी ओर जं०, यहाँ से बदरीनाथ, त्रिशूल, नंदादेवी, नंदाकोट, पंचचूल्ही, और छिपलाकोट की बर्फीली चोटियों का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। यहाँ से एक मार्ग पाताल-भुनेश्वर और गंगोलीहाट जाता है।

१½ मील उतराई, मुंडकट्टा गणेश, दुकान, केले, यहाँ से एक मार्ग पाताल-भुवनेश्वर और गंगोली हाट जाता है।

मंगरोली (१¾) (४४) ¼ मील उतराई, दुकान, मूल स्रोत की सुंदर धारा, दूध, दही, केले मिलते हैं, ठहरने का अच्छा स्थान, चाय।

गड़तिर (२½) (४४¾) ¾ मील गड़तिर तक उतराई, दुकान, केला।

---

[1]जागेश्वर, गंगोलीहाट, और पाताल-भुवनेश्वर के दर्शनार्थी बाड़े छीने से यात्रा के मार्ग को छोड़कर इनका दर्शन करके बेरीनाग के पास आकर पहले मार्ग पर लौटकर आते हैं। अल्मोड़े से बाड़े छीना ८½ मील, पणुवा नौला ४½ मील, जागेश्वर ३ मील नैनी ८ मील, हरारा २¼ मील, सेराघाट तल्ला १¾ मील, गंगोलीहाट ६½ मील, पाताल भुवनेश्वर ६½ मील, और बेरीनाग ११ मील (कुल ५३ मील) है।

बागेश्वर जानेवाले कैलास से लौटते समय बेरीनाग से जाकर वहाँ से सीधे अल्मोड़ा पहुँच सकते हैं। बेरीनाग से सानी उड्यार १० मील है, बागेश्वर १३ मील, ताकुला १२ मील और अल्मोड़ा १५ मील (कुल ५० मील) है। या बागेश्वर से सोमेश्वर १४ मील है और वहाँ से अल्मोड़े तक, जो २५ मील की दूरी पर है, सीधे मोटर बस जाती है, बागेश्वर से बैजनाथ तेरह मील पर है; वहाँ से सोमेश्वर १८ मील है और वहाँ से अल्मोड़ा ४२ मील दूर है। बैजनाथ से अल्मोड़े और काठगोदाम तक मोटरें भी जाती हैं।

½ मील उतराई, बघोरा।

¾ मील उतराई, चौपाता, दुकान। १ मील बलगडी, दुकान, चाय।

१½ मील लिकतड, उतराई, दुकान, अमरूद के बगीचे, बेरीनाग से यहाँ तक पास के पहाड़ों का दृश्य बहुत सुंदर है, रास्ते में, बाँज (ओक) के पेड़ हैं। ¼ मील उतराई गुरघटिया का पुल पार करें।

१ मील चढ़ाई। ¾ मील अम्तड़ गाँव।

४. थल[1] (७¾) (५१¾) [३०००] १¼ मील थल, डा०, दुकान, चाय। यहाँ आम और केले मिलते हैं, गर्म स्थान है। यहाँ पहुंचने से पहले आधे मील पर एक पहाड़ की चोटी पर जं० [३४००]। थल रामगंगा के दोनों तटों पर बसा हुआ है, यहाँ रामगंगा का पुल पार करें। बाँये किनारे पर बालेश्वर महादेव का एक पुराना मंदिर है। वैशाख पूर्णिमा को एक सप्ताह तक बड़ा भारी मेला लगता है। (यहाँ से एक मार्ग पिठौरागढ़ जाता है जो अट्ठाइस मील पर है।) पास ही एक गाड़ है।

¼ मील स्कू० (यहाँ से एक मार्ग तेजम होकर मिलन जाता है, जो १२+४७¾=५९¾ मील की दूरी पर है।)

३ मील कड़ी चढ़ाई, यहाँ से सान्देव तक बीच-बीच में विश्राम के साथ-चढ़ाई पड़ती है।

२¼ मील साता, ईसाई मिशनरी का एक मकान, यहाँ से बेरीनाग दिखाई पड़ता है।

१¼ मील मापानी, गाड़ पहाड़ के ऊपर से एक मार्ग पर गिरती है।

सान्देव (७¾) (५९½) [६४००] १ मील सान्देव का जं० मार्ग से एक फलांग

---

[1] थल से लगभग एक मील आगे सड़क से दाहिनी तरफ एक फर्लांग की दूरी पर एकहथिया देवल नामक मंदिर है। इस मंदिर को एक ही हाथ वाले शिल्पकार ने ३० फीट लंबा, १७ फीट चौड़ा, और १७ फीट ऊँचे पत्थर की चट्टान से खोद कर ७½ फीट लंबा ३½ फीट चौड़ा और १० फीट ऊँचा मंदिर बनाया।

ऊपर पहाड़ की चोटी पर है, जहाँ से बर्फों का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। सड़क के पास ही एक दूकान है।

५. डीडीहाट (२½) (६२) [६०००] २½ मील कड़ी चढ़ाई, डीडीहाट या दिक्कुड़ डा०, स्कू०, चाय, डीडीहाट का गाँव पड़ाव से एक मील की दूरी पर, पहाड़ों के मध्य एक विशाल दून में है।

३½ मील काँडाधार तक बीच-बीच में विश्राम के साथ चढ़ाई है, दुकान है, यहाँ से अस्कोट के रजवाड़ों का प्रांत प्रारंभ होता है, अस्कोट तक कड़ी उतराई। ½ मील एक जलधारा। १ मील चोरपानी।

अस्कोट[1] (७) (६६) [५०००] २ मील डा०, जं० (अस्कोट पहुँचने से आध मील इधर ही सड़क के पास एक पहाड़ के ऊपर है), स्कू०, बाजार, चाय, धर्मशाला, मंदिर, अस्कोट के जमींदार या रजवाड़े यहाँ रहते हैं, यहाँ उनका साधुओं के लिये सदावर्त है।

३¾ मील चीड़ के जंगल होकर गरजिया के पुल तक कड़ी उतराई, यहाँ वर्षा के समय बहुत बिछलन रहती है। एक ऊँचे पहाड़ पर से एक सुंदर जलप्रपात चट्टानमय दीवालों पर कई धाराओं में विभक्त होकर गिरता है; यहाँ गोरीगंगा या गौरीगंगा को एक पुल से दाहिनी तरफ पार करना पड़ता है, दुकान, यहाँ से एक मार्ग गौरीगंगा के किनारे किनारे ऊपर की तरफ जोहार को जाता है। पुल से कुछ गज आगे

---

[1]अस्सीकोट = अस्सी दुर्ग। कहा जाता है कि यहाँ अस्सी राजाओं ने राज्य किया था; इसलिये अस्कोट नाम पड़ा। यहीं पर टनकपुर की सड़क मिलती है। जिसका ब्यौरा यों है—टनकपुर से सुखीढाँग का पड़ाव या मोल-झाड़ी ८ मील; (यहाँ से पुण्यागिरि देवी का स्थान ७ मील टनकपुर से भी उतना ही दूर); मोलझाड़ी से दीउरी ८ मील; वहाँ से चम्पावत १६ मील; (यहाँ से मायावती आश्रम ऊपर पहाड़ पर दो मील है); लोहाघाट ६ मील लोहाघाट से घीड़ा ९ मील; गुरना १० मील; पिठोरागढ़ ८ मील; सातगढ़ १० मील; सिंगाली ६½ मील; और अस्कोट ६½ मील (योग ९१ मील) है।

दो तीन स्थानों पर सड़क पर ऊपर से पत्थर गिरते रहते हैं, ऊपर के पहाड़ के बालूमय होने के कारण सूखे दिनों में ये गिरते हैं।

१ मील मार्ग सीधा है, (यहाँ से प्रधान सड़क होकर दुदी गाँव तक पौन मील तक कड़ी चढ़ाई है)।

६. जौलजीबी[1] (५) (७४) [२१००!] ¾ मील प्रधान सड़क को बाँई तरफ

---

[1] यहीं पर लीपूलेख से आई हुई काली गंगा तथा मिलम हिमनदी से आई हुई गौरीगंगा का संगम है। जौल = जोड़ा या दो नदी + जीब = दो नदियों के मध्य जीभ जैसा लंबा भू भाग। संगम से थोड़ा ऊपर एक ऊँचे स्थान में आम के एक सघन बगीचे में महादेव जी का एक छोटा-सा मंदिर है। यहाँ से संगम का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। मंदिर के नीचे गौरी के किनारे पर गाँव बसा हुआ है, जिसके सभी निवासी प्रायः मुसलमान हैं। गाँव के पास ही भोटियों के शीतकाल के डेरे हैं। वृश्चिक संक्रांति पर (१५, १६ नवंबर) जौलजीबी में एक बड़ा मेला लगता है, जो तीन चार दिनों तक रहता है। इस मेले में तिब्बती माल—ऊन, ऊनी कंबल, चमड़े, नमक आदि को लेकर जोहार और दारमा परगने के भोटिये व्यापारी बहुत संख्या में एकत्रित होते हैं। लग-भग चार पाँच लाख रुपये का व्यापार होता है। नेपाली और देशी लोग भी दस हजार तक एकत्रित होते हैं। यहाँ तिब्बत और भोट के ऊनी थुल्मे, गुदमे, चुटके, पंखियाँ, अन्य प्रकार के कंबल और कालीन, थी (तिब्बत का एक प्रकार का बर्फानी चीता), यजी, गुवा (एक प्रकार की बारहसिंगी), बरड़, बकरी, भेड़ आदि की खाल, टट्टू, खच्चर, भेड़ और बकरी, कस्तूरी, आसपास और नेपाल से घी, मधु, और च्यूरे का घी और गुड़ इन वस्तुओं की विशेषता रहती है। इनके अतिरिक्त अन्य मेलों में आने वाली सभी वस्तुएँ मिलती हैं। अक्टोबर के अंत में गर्ब्यांग का डाकघर बंद होने के बाद छः महीने के लिये यहाँ खुल जाता है। मेले के कुछ दिन पहले से ही, जब नदियों में जल घट जाता है, संगम से कुछ ऊपर—काली और गोरी—दोनों नदियों पर कच्चे पुल लग जाते हैं, जो प्रायः छः महीने तक रहते हैं। यहाँ से लीपूलेख

छोड़कर गोरी के किनारे-किनारे जौलजीबी तक बढ़ें। काली और गौरी का संगम।

$\frac{1}{2}$ मील प्रधान सड़क के किनारे के दुदी गाँव तक चढ़ाई है, यह दारमा के भोटियों के शीतकाल के निवास हैं।

२$\frac{1}{2}$ मील विश्राम के साथ किंखोला तक चढ़ाई, सड़क के ऊपर और नीचे गाँव हैं।

१ मील थोड़ा-सा ऊँचा-नीचा मार्ग।

$\frac{3}{4}$ मील तोला तक कठिन उतराई, गाँव सड़क से ऊपर है, ठीक सामने काली के दूसरे पार नेपाल की ओर अति रमणीय दृश्य है।

$\frac{1}{4}$ मील बंड नामक स्थान तक कड़ी उतराई।

$\frac{1}{4}$ मील एक गाड़। $\frac{1}{4}$ मील वेन्ड्या गाँव तक कड़ी चढ़ाई।

बलुवाकोट (६$\frac{1}{2}$) (८०$\frac{1}{2}$) [३०००] $\frac{3}{4}$ मील बलुवाकोट तक उतराई, स्कूल, दुकान, गर्म स्थान, दारमा के भोटियों का शीतकाल का निवास, सड़क के ऊपर बलुवाकोट नामक गाँव एक ऊँचे मैदान पर है, इसे बलुआकोट या बल्वाकोट भी कहते हैं, यहाँ से पंगू गाँव तक विषैले सर्प पाये जाते हैं।

१ मील कुचिया, सरकारी पड़ाव, दुकान; यहाँ एक धर्मशाला की अत्यावश्यकता है; जिसके आभाव से यात्रियों को बहुत कष्ट होता है।

१ मील नंतड़ी। १$\frac{1}{4}$ मील छरसम। $\frac{3}{4}$ मील धीमी चढ़ाई।

१ मील छोलियोकी धार तक कड़ी चढ़ाई, ठीक नदी के पार एक

घाटा तक मार्ग प्रायः काली नदी के किनारे ही जाता है जो नेपाल और ब्रिटिश भारत की सीमा है। यहाँ से लेकर लीपूलेख तक काली फुफकारती हुई, एवं अपनी दाढ़ को बढ़ाकर गंभीर गर्जन करती हुई प्रवाहित होती है, जिससे उसको पैदल पार करना असंभव है। जौलजीबी में दारमा के भोटिये लोग शीतकाल में रहते हैं। संगम से एक मील नीचे काली के दाहिने किनारे पर हंसेश्वर नामक स्थान है। वहाँ हंसेश्वर महादेव का मंदिर है।

बड़ा गाँव है, जहाँ ऊख आदि विशाल सीढ़ीदार खेतियों के दृश्य बहुत मनोमोहक हैं।

कालिका (६) (८६½) १ मील कालिका गाँव तक कठिन उतराई, कालिका से उतरते समय सामने बहुत दूर तक फैले हुए गाँव के खेत और उतरती हुई टेढ़ी-मेढ़ी काली नदी के दृश्य बहुत ही सुहावने हैं, नदी को पार करें, दुकान, कालिका का गाँव गाड़ की दोनों ओर है।

¼ मील काली की सुंदर धारा।

½ मील गोठी, दारमा के भोटियों का शीतकाल का निवास।

¾ मील निगल पानी, दारमा के भोटियों का शीतकाल का निवास।

½ मील फुलतड़ी, नदी को पार करें।

¼ मील गलाती, दारमा के भोटियों का शीतकाल का निवास।

७. धारचूला[1] (४) (९०½) [३०००] १¾ मील धारचूला, डा०, डाब०, स्कू०, दुकान, गर्म स्थान।

तपोवन (२) (९२½) २ मील तपोवन, लगभग ग्यारह वर्ष पहले यह रामकृष्ण मिशन का एक केंद्र था, जो अब टूट गया है। आजकल यहाँ सरकारी ग्राम-सुधार संघ का एक अस्पताल है, उसके समीप ही एक छोटा-सा

---

[1] यहीं पर घोड़े का प्रबंध समाप्त हो जाता है। आगे गर्ब्यांग तक कुली का प्रबंध यहाँ से या खेला से करना पड़ता है, जो पं० उमापति जी और हरिदत्त जी दुकानदार या राय साहब पं० प्रेमवल्लभजी के द्वारा हो सकता है। यहाँ बारहों महीने केले और ऋतु में आम और अमरूद मिल जाते हैं, शीत काल में ब्याँस के भोटिया लोग यहाँ उतरते हैं। यहाँ काली में एक रस्सी का पुल है, जिसे पार करके नेपाल की सीमा में पहुँचते हैं, जहाँ एक नेपाली लेफ्टिनैन्ट कुछ सिपाहियों के साथ रहते हैं। नेपाल की इस सीमा से घी के सैकड़ों कनिस्टर धारचूला होकर अल्मोड़े भेजे जाते हैं। बढ़िया घी रुपये में सेर से सवा सेर तक मिल जाता है। यहाँ और खेले में घी, मट्ठा, आदि वस्तुओं के रखने लायक लकड़ी के बर्तन मिलते हैं।

शिवालय और धर्मशाला है। यहाँ से दो सौ गज पर काली नदी के किनारे गर्म जल के सोते हैं, जो बाढ़ के दिनों में पानी के भीतर डूब जाते हैं।

½ मील राँथी या तांथू गाड़, जो दो तीन धाराओं में बहती है, मार्ग से ऊपर दो मील पर एक पहाड़ के ऊपर राँथी नामक गाँव है।

३ मील कुला गाड़, जो पहाड़ से उछलती कूदती, पत्थरों पर टकराती हुई उतरती है, इसका दृश्य बड़ा रमणीक है, नदी को पुल से पार करें।

१ मील यहाँ से एक मार्ग जुम्मा गाँव होकर छिपलाकोट[1] जाता है।

¼ मील येला गाड़ या रील गाड़, जो छिपलाकोट की पर्वतमाला से निकलती है। यहाँ से रजबाड़ का प्रांत समाप्त हो जाता है, नदी को पुल से पार करना पड़ता है।

¾ मील साँकुरी की दुकान, चाय, साँकुरी का गाँव सड़क से एक मील ऊपर पहाड़ पर है।

½ मील रौंती गाड़।

८. खेला[2] (८) (१००½) [५५००] २ मील खेला तक कड़ी चढ़ाई, दुकान, दारमा सेवा संघ की दो छोटे-छोटे कमरेवाली धर्मशाला, यहाँ से चारों तरफ के पहाड़ का दृश्य बहुत ही सुंदर है, गायका विशुद्ध घी रुपये में एक सेर से सवा सेर तक मिल जाता है, यहाँ से आगे दारमे की सड़क पर लगभग आधे मील पर गाँव में डा० और स्कू० है।

---

[1]छिपलाकोट के पूरे विवरण के लिये देखिए पृष्ठ २६१।

[2]यहाँ से एक मार्ग दारमा घाटा और ज्ञानिमा मंडी होकर कैलास जाता है। देखिए श्री कैलास मानसरोवर का दूसरा मार्ग। दारमा के मार्ग में खेला से ६½ मील की दूरी पर न्यों नामक गाँव में खरउड्यार या मृत्यु गुफा है। पूरे विवरण के लिये देखिए पृष्ठ २६२ खेला या धारचूला से गर्ब्यांग तक के कुली या
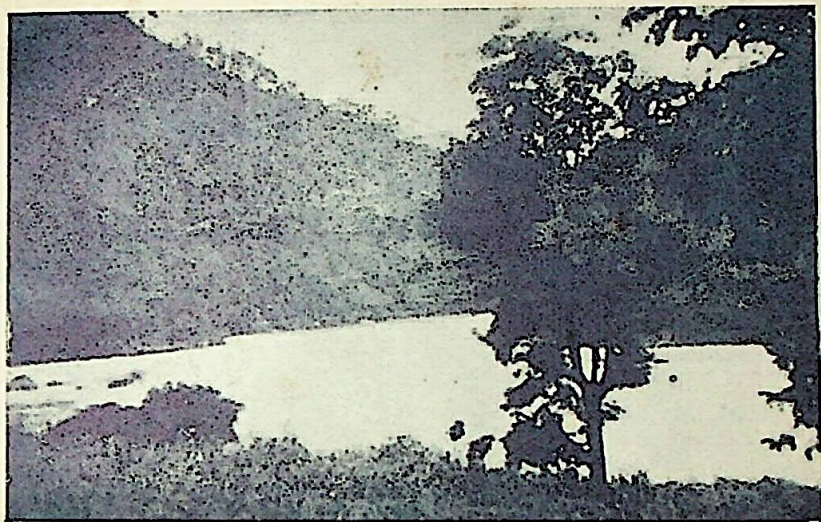
काली और गौरी नदी का संगम—जौलजीबी
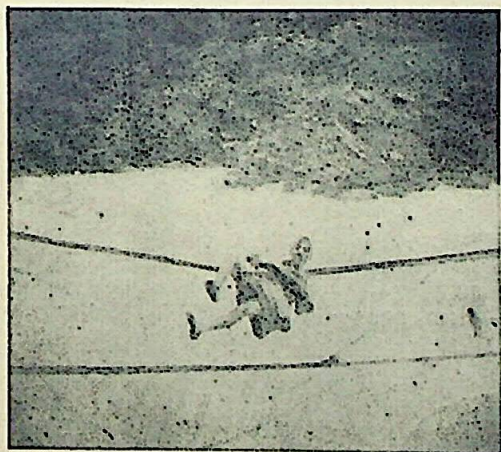
[देखो पृ० ३२५

अंतरिक्ष में लटक रहा है—रस्सी का पुल, धारचूला

[देखो पृ० ३२७

तीर्थपुरी गोम्पा के नीचे डोलमा का एक प्रतीक

[देखो पृ० ३०७
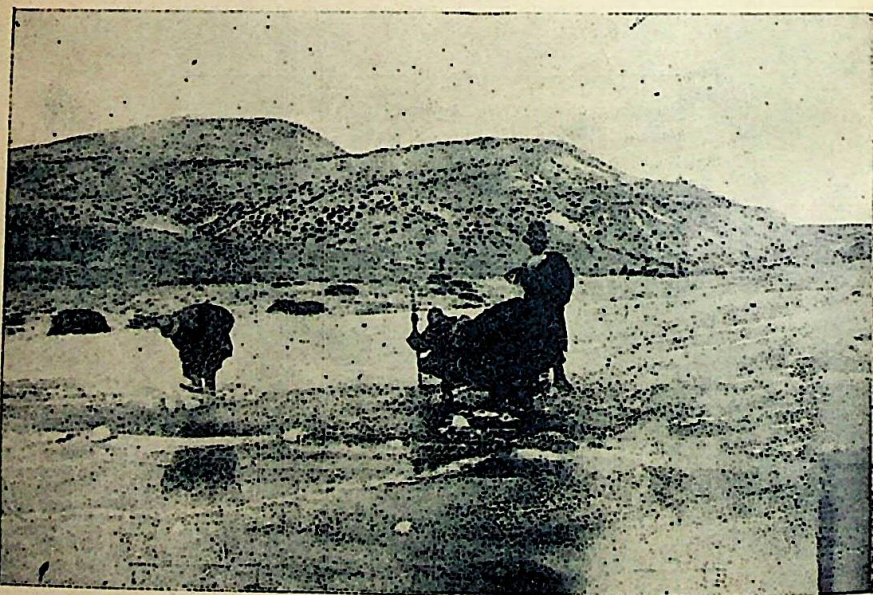
तीर्थपुरी के गर्म जल के सोते

[देखो पृ० ३०७

तीर्थपुरी का प्रधान गोम्पा

[देखो पृ० ३०७
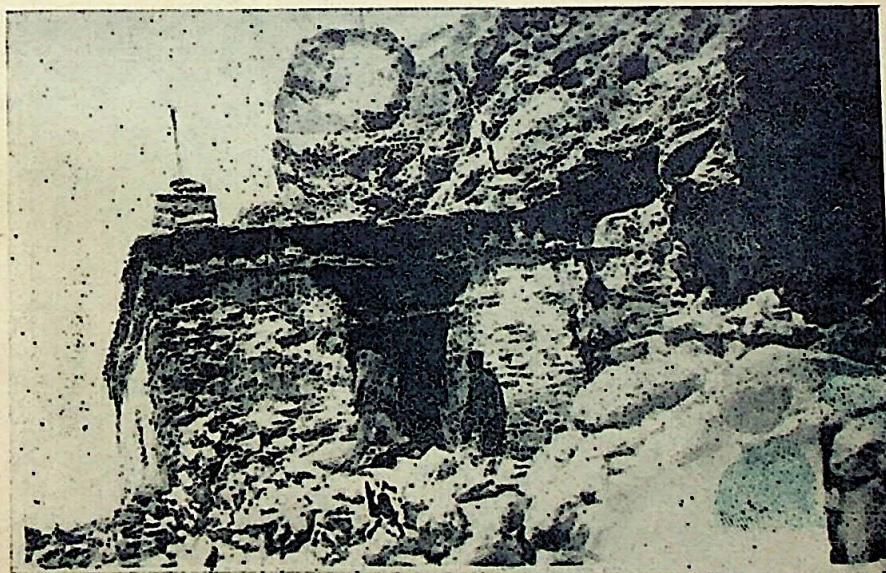
गुफा में स्थित दूसरा गोम्पा

[देखो पृ० ३०७
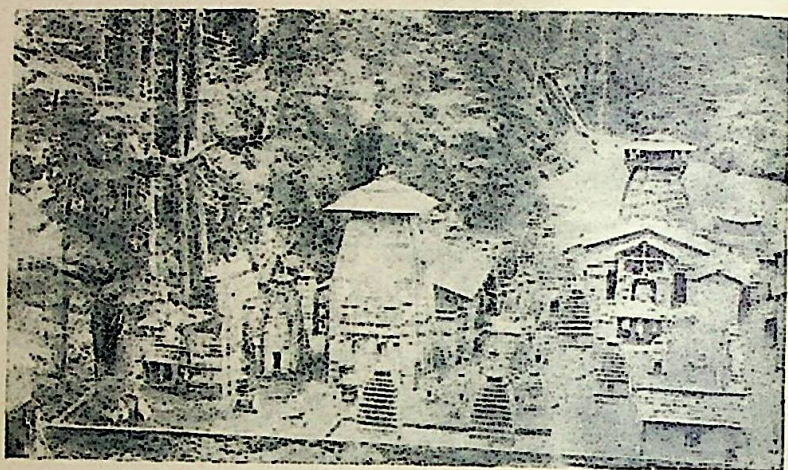
जागेश्वर

[देखो पृ० २८७
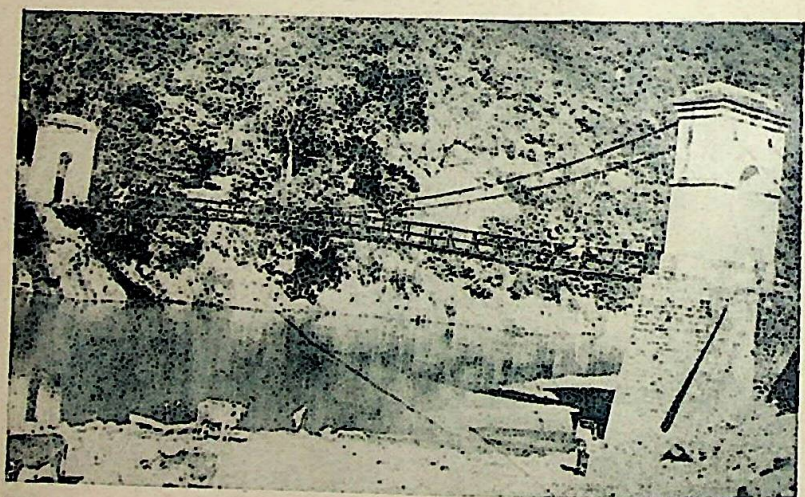
सरयू नदी पर लोहे का झूलानुमा पुल
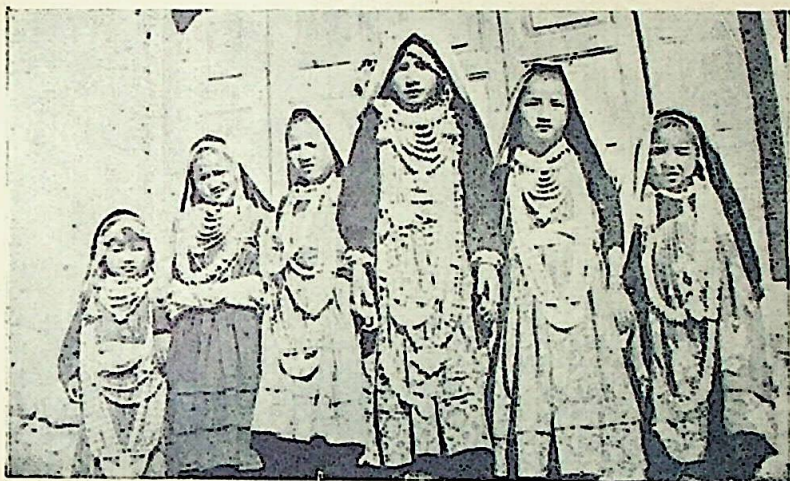
[देखो पृ० ३२०

भोटिया बच्चे, चौदाँस

[देखो पृ० २९५

भोटिया स्त्रियाँ, चौदाँस

[देखो पृ० २९५
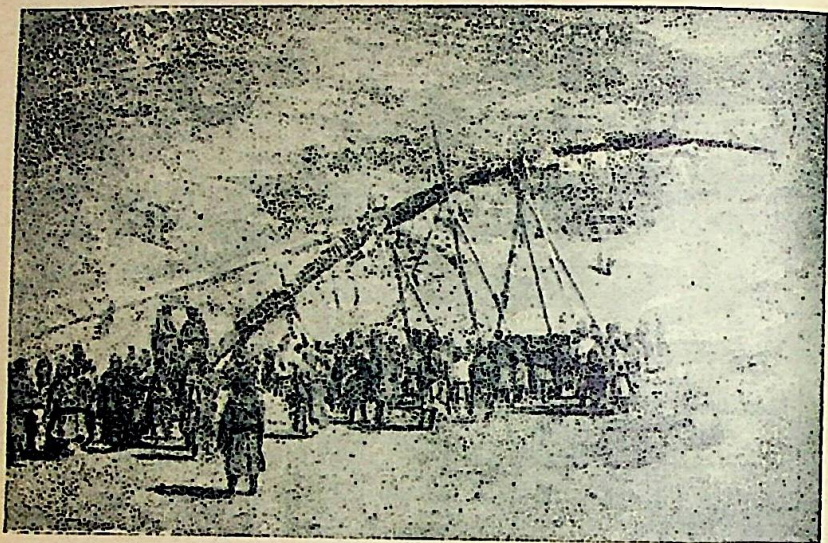
वैशाख पूर्णिमा के दिन कैलास के पश्चिम में ध्वजारोहण समारोह

[देखो पृ० ४४
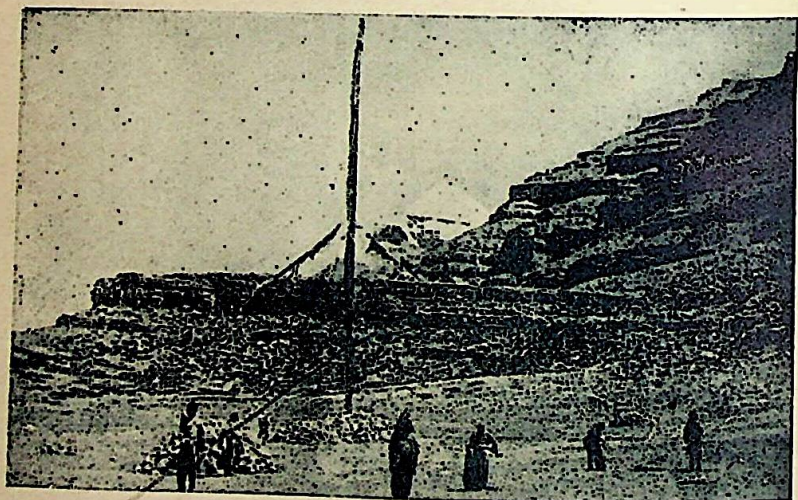
तरबोछे (ध्वजा) और कैलास-शिखर

[देखो पृ० ४४
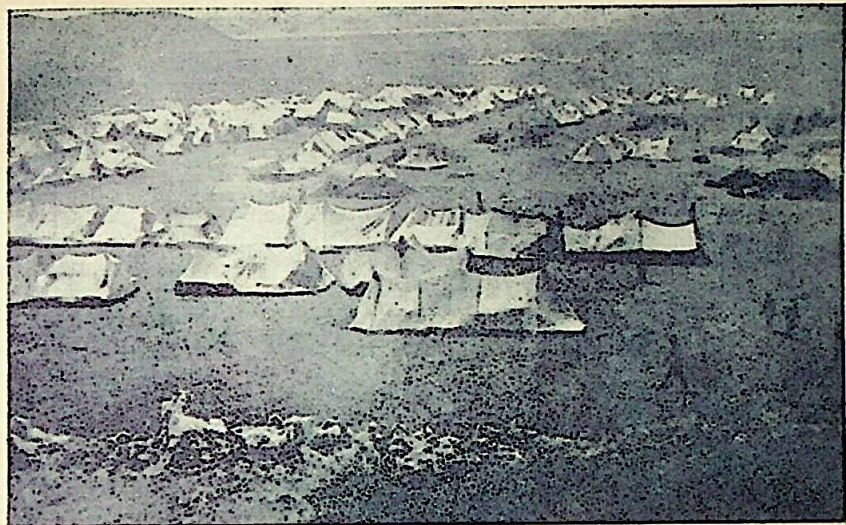
ज्ञानिमा मंडी

[देखो पृ० ३६७
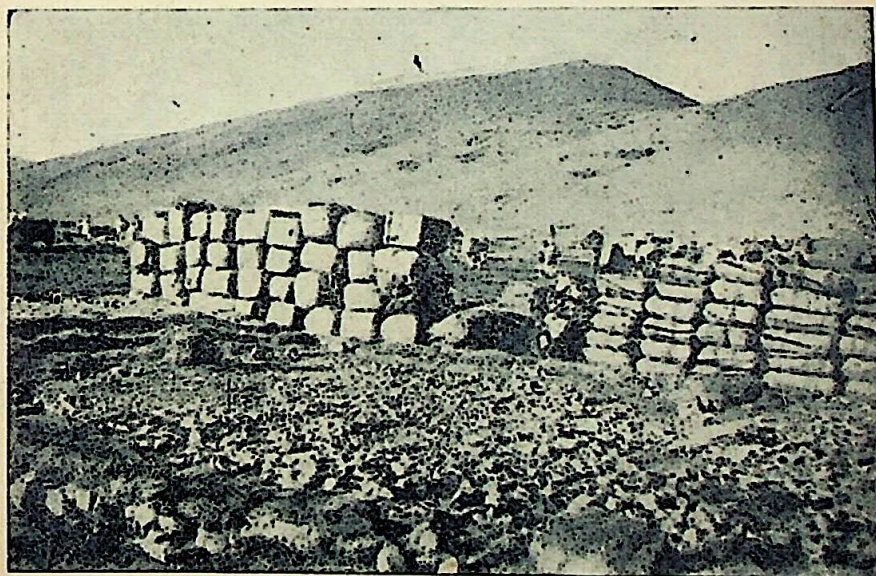
मंडी में गुड़, चाय, और कपड़ों की गठरियाँ

[देखो पृ० ३०३
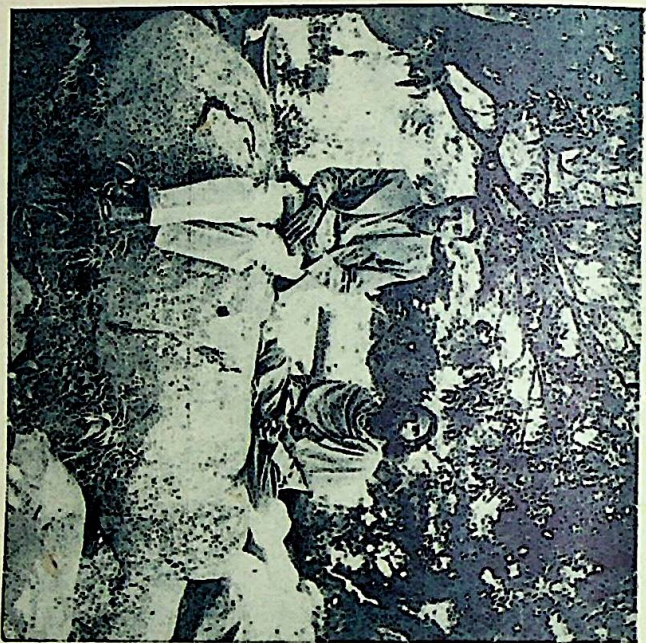
धनोल्टी के जंगल में बरवारी (जिला भागलपुर) के राजा साहब श्री भूपेंद्रनाथ सिंह जी तथा लेखक
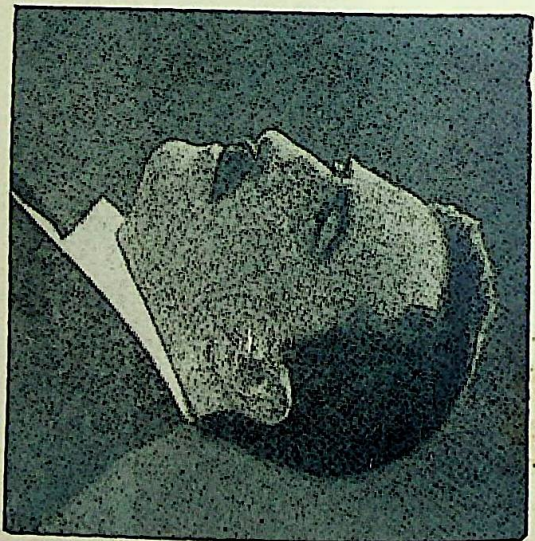
स्वेडन देश के विख्यात अन्वेषक तथा भूगोल-शास्त्रज्ञ डा० स्वेन हेडिन

[देखो पृ० २३८

[३६००] १½ मील तोवाघाट तक कड़ी उतराई, उछलती-कूदती, उफान मारती और गरजती हुई धौलीगंगा को पुल से पार करें। धौलीगंगा दारमा घाटा से आकर पुल से पौन मील नीचे काली गंगा से मिलती है। इसका गंभीर दृश्य दर्शनीय है, यहाँ से भोटियों की चौंदास की पट्टी आरंभ होती है।

[६००] ३ मील ठानीधार तक बहुत कड़ी चढ़ाई है। यहाँ से खेले का विशाल सुंदर दृश्य दिखाई पड़ता है, धार या घाटे पर पहले-पहल पत्थरों के ढेर और झंडे देखने में आते हैं।

पंगू[1] (६) (१०६½) [६६००] १½ मील साधारण चढ़ाई, इस मार्ग में यह भोटियों का पहला गाँव, स्कूल, अखरोट के पेड़।

[६६६८?] १½ मील जुंगती गाड़ तक उतराई।

९. सोसा[2] (३) (१०६½) [८४००?] १¾ मील सोसा तक कड़ी चढ़ाई, स्कू०, दरमा सेवा-संघ की धर्मशाला, यहाँ आलू अधिक मिलते हैं, ढंढा

डाँडी का प्रबंध दुकानदार ठाकुर प्रतापसिंह जी मानसिंह के द्वारा हो सकता है। यह आरोग्य दायक स्थान होने के कारण एक-दो दिन ठहर कर विश्राम करने योग्य है। यहाँ गाय का विशुद्ध घी और भंगेरी नामक एक प्रकार का बीज मिलता है। इसके दाने सरसों के दाने के बराबर होते हैं; खटाई में डालने से वस्तु स्वादिष्ट हो जाती है। यह यात्रा में बहुत काम देता है। नीचे आते वक्त यह साथ लाने की वस्तु होती है। गणाम में मिलने वाले भांग के बीज (भंगेरा) से और इससे कोई संबंध नहीं है।

[1] यहाँ से आगे सभी गाँवों में खाने पीने के सामान मिल जाते हैं क्योंकि गाँव के निवासी व्यापारी हैं तथा प्रत्येक गाँव में कोई न कोई धर्मशालाएँ अवश्य हैं।

[2] यहाँ से मार्ग छोड़कर तीन मील की दूरी पर एक सुंदर पहाड़ के ऊपर श्री १०८ नारायण स्वामी जी महाराज का बनाया हुआ अति मनोरम एवं दर्शनीय श्री नारायण आश्रम है।

स्थान है।

तिथलाकोट (१$\frac{१}{२}$) (१११) [६०६८] १$\frac{१}{२}$ मील तिथलाकोट तक चढ़ाई, धर्म-द्वार नामक एक दरवाजा रास्ते की बाईं ओर थोड़ी उँचाई पर है, जिसमें एक बड़ा घंटा लगा हुआ है, पत्थरों का ढेर और झंडे, देवी का स्थान, यह पहले सरकारी पड़ाव था। यहाँ कोई गाँव और दुकान नहीं है, केवल सोसा और तिथलाकोट के बीच एक छोटी-सी धर्मशाला है।

सिरदंग ($\frac{३}{४}$) (१११$\frac{३}{४}$) $\frac{३}{४}$ मील सिरदंग तक कठिन उतराई, दारमा सेवा-संघ की धर्मशाला, सड़क के नीचे गाँव, स्कू०, ठहरने के लिये अच्छे स्थान हैं।

सिरखा ($\frac{१}{२}$) (११२$\frac{१}{४}$) $\frac{१}{२}$ मील कठिन उतराई, गाँव सड़क से एक फर्लांग नीचे है। डा०, स्कू०, धर्मशाला, अखरोट और सेब के बगीचे, सड़क से एक फर्लांग ऊपर ईसाई मिशन के बगीचे हैं, जहाँ ऋतु में आड़ू, सेब, और नासपाती मिलते हैं, (सिरदंग से कुछ नीचे रुंग नामक एक गाँव है, जहाँ कई प्रकार की साग-सब्जियाँ मिलती हैं।)

१$\frac{३}{४}$ मील समरे या सुमरिया तक उतार, यहाँ पर कभी-कभी दुकान लगती है।

[९८४०] २$\frac{३}{४}$ मील रुंगलिंग या सुमरिया धार तक सघन जंगल से होकर बहुत कड़ी चढ़ाई, पत्थरों का ढेर और झंडे हैं।

३$\frac{१}{४}$ मील सिंखोला गाड़ तक घने जंगल होकर कठिन उतराई, (आधे मार्ग में एक सोता है,) नदी की दो शाखाओं को पुल से पार करें।

[७०००] १$\frac{१}{२}$ मील गल्ला गाँव तक मंद चढ़ाई, गाँव छोटा है, जो ठहरने के उपयुक्त नहीं है, यहाँ पर अखरोट और बाँज के पेड़ हैं।

१०. जिपती (११) (१२३$\frac{१}{४}$) [८०००?] १$\frac{३}{४}$ मील जिपती तक मंद चढ़ाई, एक छोटी धर्मशाला, खेला से जिस काली नदी का साथ छोड़ दिया था, वह यहाँ आने पर मिलती है। यहाँ काली नदी सड़क से कई सौ फीट नीचे है।

१ मील बिंजूकुटी या बिंदाकोट तक उतार, केवल ठहरने के स्थान, धारा, यहीं पर चौदाँस की पट्टी समाप्त हो जाती है तथा आगे से ब्याँस की पट्टी आरंभ हो जाती है, यहाँ से निजंग तक निरपानी कहलाता है, यहाँ से गर्ब्यांग तक का मार्ग सारी यात्रा में सब से कष्टप्रद है।

२½ मील जुमली उड्यार तक बहुत कड़ा उतार पड़ता है। बीच-बीच में खड़ी सीढ़ियों से होकर उतरना होता है। एक गुफा है, भोटियों का पड़ाव है, पास ही पहाड़ के ऊपर से एक गाड़ मार्ग पर गिरता है। इस स्थान को नजंग-तल्ला और लोकरफू भी कहते हैं, काली समीप में ही है, (काली के पुल को पार करके नदी की बाईं तट पर १६३२ से पहले नेपाल में एक मील तक मार्ग जाता था, जो बंद हो गया, अब काली के दाहिने किनारे पर मार्ग चालू है।)

½ मील काली के पार नेपाल की तरफ तंपाकू या थिंग गाड़ का एक जल-प्रपात ४० फीट की ऊँचाई से नीचे कालीगंगा के बायें तट पर गिरता है।

⅜ मील सीढ़ीदार बहुत कड़ी चढ़ाई। ⅜ मील सीढ़ीदार बहुत कड़ी उतराई। ½ मील मार्ग सीधा है। ⅜ मील चढ़ाई कड़ी है।

नजंग जलप्रपात (५¾) (१२६) ⅛ मील नजंग गाड़ के जलप्रपात तक कड़ी उतराई, जल-प्रपात की ऊँचाई लगभग ७० फीट है, दृश्य बहुत सुंदर है, प्रपात के नीचे भी नजंग गाड़ उछलती-कूदती उतरती है, गाड़ के ऊपर का पुल पार करें।

[८०००] ¾ मील बोला घाटा[1] तक कड़ी चढ़ाई, यहाँ पर कालीगंगा

---

[1]यहाँ से निजंग जलप्रपात के ऊपर होते हुए जिपती को छोड़कर उस पहाड़ के ऊपर से निरपनिया का पुराना मार्ग सीधे गब्बा गाँव तक जाता था; मार्ग में पानी के अभाव के कारण उसका निरपनिया नाम पड़ा है। अब यह मार्ग बंद हो गया है और जो नया मार्ग जिपती होकर चालू है, उसमें स्थान-स्थान पर पर्याप्त पानी मिलता है।

लगभग २००० फीट नीचे चट्टानमय कगारों की दीवालों के मध्य में एक पतले साँप की भाँति बहती है। ३/४ मील कड़ी उतराई, लुङतीयर (मार्ग से १०० गज नीचे कुनकुना पानी का सोत)। १/२ मील कड़ी उतराई। १/२ मील मालपा के भोटियों का पड़ाव, मालपा नदी को पुल से पार करें।

११. मालपा (२१/२) (१३११/२) [७२००] एक ऊँचे टीले पर मालपा, माल्पा, या मालिपा की दारमा सेवा-संघ की धर्मशाला तथा हलकारे का छप्पर है, यहाँ कोई गाँव या दुकान नहीं है, इस पड़ाव के लिये भोजन की सामग्री जिपती से ले जानी चाहिये। ठंढा स्थान है। मालपा से गर्ब्यांग तक का मार्ग खतरनाक है, वर्षा होते समय कहीं-कहीं पहाड़ के टूटने से सड़क पर पत्थर गिरते रहते हैं।

२१/२ मील पेलशीती तक बीच-बीच में विश्राम के साथ कड़ी चढ़ाई, भोटियों का पड़ाव, यहाँ पहुँचने के कुछ पहले दो ऊँचे जलप्रपात के फुहारे पड़ते हैं, जो ठीक मार्ग के ऊपर वर्षा के समान जोरों से गिरते रहते हैं। [८०००] २ मील लामारी तक चढ़ाई, बुदी के खेत, कोई गाँव नहीं। २१/२ मील कोथला[1] तक कड़ी चढ़ाई, बुदी के खेत।

३/४ मील पाला या बुदी गाड़ तक कड़ी उतराई, पुल से नदी पार करें।

बुदी (८३/४) (८४०१/४) [८८००] १ मील बुदी गाँव तक मंद चढ़ाई, मार्ग से एक फर्लांग की दूरी पर गाँव है, स्कू०, धर्मशाला, गाँव के ठीक सामने नैपाल की सीमा पर ननूजुंग की बर्फीली चोटी और ढालुओं का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है, दो फसलें होती हैं; इस गाँव वाले तथा ऊपर के लोग शीतकाल में नीचे धारचूले जैसे गर्म स्थानों में उतर जाते हैं, गाँव की रक्षा के लिये दो एक व्यक्ति रहते हैं।

[१०५००] २१/२ मील बहुत कड़ी चढ़ाई है, चढ़ाई के अंत में दो पत्थरों के बीच मार्ग संकीर्ण हो जाता है, कुछ आगे चलकर दो तीन

---

[1]चढ़ाई अंत होने से १/४ मील पहले एक छोटी-सी धर्मशाला है।

टूटे फूटे घर पड़ते हैं, जहाँ कई वर्ष पहले तिब्बती लोग शीतकाल में नमक लाकर अनाज से बदलते थे।

$\frac{3}{4}$ मील खेतो, मैदान में भोटियों के पड़ाव हैं, जो तीन फर्लांग तक फैले हुए हैं, यहाँ के मैदानों में यत्र तत्र शीत प्रदेशों में होने वाले कई प्रकार के जंगली फूल खिले रहते हैं, जो देखने में अति सुंदर लगते हैं।

$\frac{1}{2}$ मील चीड़ के जंगलों में से होकर कठिन और बिछलनवाली उतराई, एक छोटी गाड़। $\frac{1}{2}$ मील छोङपू छू, एक और गाड़।

$\frac{3}{4}$ मील गाँव के घंटे तक मंद चढ़ाई, मार्ग में भिन्न-भिन्न रंग और नाना प्रकार के फूलों से सुसज्जित घास के मैदान हैं। ये फूलभरे मैदान मनोमुग्धकारी एवं नेत्ररंजक हैं।

१२. गर्ब्यांग[1] (५) (१४५$\frac{1}{4}$) [१०३२०] $\frac{3}{4}$ मील गर्ब्यांग तक वर्षा के समय बिछलनदार और पंकिल मार्ग पड़ता है, इसमें भारत का अंतिम गाँव और डाकघर है। गाँव से $\frac{1}{4}$ मील बाहर डाब०, स्कू०, गाँव के बीच में एक दारमा सेवा संघ की धर्मशाला है, ब्याँस के भोटियों का सबसे बड़ा गाँव है, इसमें लगभग २०० घर हैं।

$\frac{3}{4}$ मील काली के किनारे तक बहुत कड़ी और बिछलनदार उतराई[2] है।

---

[1]कुलियों का प्रबंध यहाँ से समाप्त हो जाता है। आगे घोड़े या झब्बू आदि के प्रबंध के लिये यहाँ के गाइड, पटवारी, पोस्ट-मास्टर, या स्कूल के पंडित से सहायता मिलती है। यहाँ कंबल और तंबू किराये पर मिलते हैं। खाने पीने के सभी सामान भी यहाँ मिल जाते हैं। यहाँ गेहूँ, जौ, फाफर, आलू, गोभी, राई, और मूली आदि खाद्य वस्तुएँ उत्पन्न की जाती हैं। यहाँ खेती बारी पर्याप्त रूप में होता है। स्थान ठंढा है। परंतु जल की बहुत कमी है। पीने का जल सोतों से मिलता है। इस गाँव से लगभग एक मील पर काली नदी है। गर्ब्यांग के लोग गर्ब्याल, बुदी के लोग बुद्याल, कुटी के लोग कुट्याल, और छंगरू के लोग छंग्यील कहलाते हैं।

[2]उतराई के मार्ग में बायीं और खड़ी दीवालों में स्तरों के तह-पर-तह

$\frac{1}{2}$ मील यहाँ पर ओवलटीन के रंग के समान जलवाली काली और दूध के रंग के जलवाली टिकर नदी का संगम[1], काली के ऊपर सीतापुल को पारकर बाईं तरफ़ जायँ, यह नेपाल के राज्य में है, पुलिस की चौकी है[2]।

$\frac{1}{2}$ मील काली के किनारे-किनारे।

१$\frac{1}{4}$ मील बीच-बीच में विश्राम करते हुए चढ़ाई, यहाँ झकती गाड़ को पार करें। $\frac{1}{4}$ मील कड़ी चढ़ाई, यहाँ से कौवा-तल्ला के खेत, डेरे, और मकान आरंभ होते हैं।

बिछे हुए देखने में आते हैं। इन तहों की ऊँचाई कहीं-कहीं २०० फीट तक है। इन तहों में कई प्रकार की मिट्टी और रेत स्पष्ट दिखलाई पड़ती है भूगर्भशास्त्रज्ञ भूगर्भ के अंतस्तल के इन स्तरों से इन स्थानों की बनावट, समय, और कई अन्य विषयों का पता लगा सकते हैं।

[1]यहाँ से एक मार्ग कुटी को जाता है, जो १८$\frac{1}{2}$ मील की दूरी पर है। यहाँ समीप के गाँवों में शालग्राम या सामुद्रिक प्रस्तरावशेष प्रायः मिल जाते हैं, जिनमें कई 'आयर्न पाइराइट' या स्वर्णमाक्षिक के भी होते हैं। कुटी से ७ मील आगे जोलिङ्कोङ नामक स्थान पर तिब्बतियों की मंडी लगती है। मंडी से १३ मील आगे लंपियाधुरा नामक घाट है। कुटी और धुरा के बीच में छोटा कैलास और मानसरोवर पड़ता है, जिसका दृश्य अति रमणीक है।

[2]पुल से पौन मील की दूरी पर पहाड़ के नीचे एक समतल भूमि पर छंग्रू नामक एक गाँव ४४६० फीट की ऊँचाई पर है। गाँव के ऊपर के पहाड़ में छंग्रू राखू नामक एक बड़ी भारी गुफा है। इसमें कई नरकंकाल, पेटियाँ और कई पुराने कालीन आदि पड़े हैं। कई वर्ष पहले जब गाँव में चेचक की बीमारी फैली, तो गाँव के लोग उस गुफा में जा कर छिपे थे और वहाँ पर बीमारी के विशेष रूप से फैलने के कारण सभी मर गए। इस संबंध में वहाँ के लोग कई विचित्र कथाएँ सुनाते हैं। गुफा का मार्ग बहुत दुर्गम और संकीर्ण है। छंग्रू गाँव और वहाँ से बारह मील ऊपर के टिंकर नामक गाँव भोटियों की बस्ती है।

१$\frac{3}{4}$ मील काली और कुटी नदी का संगम, जो मार्ग से दो तीन फर्लांग नीचे है। यद्यपि कुटी दुगुनी या तिगुनी बड़ी है फिर भी काली ही प्रधान नदी मानी जाती है। यहाँ से कौवा-मल्ला के खेत, मकान, और पड़ाव के छप्पर आरंभ होते हैं। खेती के दिनों में गुंजी गाँव के लोगों का यहाँ डेरा रहता है। १$\frac{1}{4}$ मील कौवा के खेत।

$\frac{1}{2}$ मील यहाँ काली के ऊपर शंगडूमा के पुल को पार कर दाहिने किनारे पर उतरें, अंगरेजी राज। १$\frac{1}{4}$ मील लारेला के डेरे। १$\frac{1}{4}$ मील सिङडिड्डुप गाड़। २ मील आगे काली को पुल से पार करें।

१३. कालापानी[1] (११) (१५६$\frac{1}{4}$) [१२०००] कुछ गज आगे चलकर पहाड़ के मूल में बड़े-बड़े पत्थरों के बीच से सोते निकलते हैं। वह जल एक छोटे-से नाले के रूप में कुछ गज आगे चलकर काली में मिल जाता है। सोते कालापानी और नाला काली नदी के नाम से पुकारा जाता है, इसलिये नेपाल की सीमा यहाँ समाप्त होती है। पास ही गर्ब्यालों के दो मकान हैं।

---

[1]ये सोते काली नदी का उद्गम-स्थान माना जाता है, यद्यपि प्रधान नदी लीपूलेख घाटे से आती है। यह काली के नाम से कालापानी कहा जाता है, जो अपभ्रंश होकर कालापानी हो गया है। कुछ लोगों का मत है कि सोतों का पानी जिन पत्थरों पर बहता है, वे काले हैं, इसलिये उसका नाम काला पानी पड़ गया। सोतों के दोनों ओर पड़ाव हैं। यहाँ से एक मील तक गर्ब्यालों के खेत पड़ते हैं। चलते समय कुछ खट्टे पदार्थ यहाँ से जेब में रख लें ताकि घाटे पर चढ़ते समय वह काम आवे। कालापानी से सबेरे ४ या ५ बजे उठ कर चल दें और धूप कड़ी होने के पहले ही लीपूलेख को पार कर लें, जिससे चढ़ते समय विशेष कष्ट न हो। यहाँ से और विशेषकर घाटे पर चढ़ते समय मुँह, नाक, और होठों पर वेसलिन लगा लेनी चाहिये, जिससे उन स्थानों पर ठंढक और वायु का प्रभाव न पड़ सके।

$\frac{3}{4}$ मील पंखा गाड़ को पुल से पार करें।[1]

$\frac{1}{2}$ मील गरिफू और थिरखा गाड़ (काली) का संगम, कुछ आगे चलकर काली को पुल से पार करें, यहाँ भी थोड़े खेत हैं, (यहाँ से २ फर्लांग की दूरी पर थिरखा गाड़ के बायें किनारे पर दो पुराने मकान हैं।

१ मील क्रिरमोकोङ, दो धर्मशालाएँ, धारा, कभी-कभी दुकान, यहाँ झब्बू के चौकीदार रहते हैं, आस-पास के पहाड़ के दृश्य बहुत सुंदर हैं।

१ मील ङुर, पड़ाव की दीवाल[2], यहीं से ङुर गाड़ को पार करें।

$\frac{1}{2}$ मील तल्ला-तरा, दो धर्मशालाएँ।

$\frac{3}{2}$ मील मल्ला-तरा तक चढ़ाई, दो धर्मशालाएँ।

ङाविंदङ (४$\frac{1}{4}$) (१६०$\frac{1}{2}$) $\frac{1}{2}$ मील ङाविंदङ तक चढ़ाई, दो धर्मशालाएँ, आग जलाने के लिये पेमा की झाड़ी, एक बड़ी उपत्यका से वहती हुई लिलिङ्ती नामक नदी काली से बाएँ किनारे पर मिलती है, घोड़े के लिये अच्छा चरागाह, यहाँ से लीपूलेख घाटे तक कड़ी चढ़ाई पड़ती है। $\frac{3}{4}$ मील चील तक चढ़ाई, डेरे के स्थान।

[१५०००]·१ मील (१४८०.० ?) शंगचम तक चढ़ाई, गीली जगह, बहुत ठंढा स्थान, मार्ग की अंतिम धर्मशाला, लकड़ी का अभाव, जहाँ तक हो सके यहाँ पर पड़ाव न डालें।

---

[1]इस स्थान को भोटिया लोग पंखा कहते हैं, परंतु कालापानी के स्रोतों से लेकर यहाँ तक के सभी स्थान कालापानी के नाम से ही व्यवहृत है। यहाँ पर गर्ब्यालों के चार-पाँच मकान हैं, जिनमें प्रायः यात्री ठहरा करते हैं। पंखा में पहले पहल मणि-पत्थरों के ढेर दिखलाई पड़ते हैं।

[2]जहाँ पर पानी और घास का पास होता है, भोटिया लोग वहीं पर पड़ाव डालते हैं। उन स्थानों में वायु के झोंकों से बचने के लिये पत्थरों की छोटी छोटी ३ या ४ फीट की ऊँचाई की अर्धचंद्र या गोलाकार दीवालें बनाते हैं और दीवालों के पास सामान को रखकर वहाँ रात में विश्राम करते हैं। मैं इन स्थानों को 'डेरे के स्थान' और दीवालों को 'पड़ाव की दीवालें' कहूँगा।

१$\frac{1}{4}$ मील छिनकू तक चढ़ाई ।

लीपूलेख घाटा[1] (५) (१६५$\frac{1}{2}$) [१६७५०] २ मील लीपूलेख घाटा तक कड़ी चढ़ाई, इसे तिब्बती भाषा में फोबिया ला कहते हैं, झंडे और पत्थरों के ढेर ।

२ मील नामशन तक तिब्बत की तरफ बहुत कड़ी उतराई, डेरे ।

१$\frac{3}{4}$ मील कोंयाछुमी, लीपूलेख से आई हुई नदी तक कड़ी उतराई, नदी को दाहिनी ओर को पार करें ।

२ मील पाला-कोङ, चार कमरे वाली एक धर्मशाला ।

पाला[2] (६) (१७१$\frac{1}{2}$) [१४०००] $\frac{1}{4}$ मील पाला तक उतराई, चार-चार कमरोंवाली दो धर्मशालाएँ, विशाल डेरे, थक गए हों तो यहीं ठहर कर दूसरे दिन सबेरे तकलाकोट जा सकते हैं ।

$\frac{1}{4}$ मील यहाँ लीपूलेख से आई हुई नदी और टिंकर लीपू से आई हुई जुङ्जुङ नदी का संगम है, इसे भोटिया लोग तिसुम (तीन पानी) भी कहते हैं, जुङ्जुङ को पुल से पार करें, यहाँ घोड़ों को पानी में से जाना पड़ता है, कभी-कभी दोपहर के बाद नदी का जल बढ़कर अलंध्य हो जाता है, जिससे यात्रियों को इसी पार रहकर दूसरे दिन सबेरे पार करना पड़ता है ।

---

[1] जून के महीने में लीपूलेख घाटा पहुँचने में दो तीन फर्लांग तक बर्फ पर जाना पड़ता है; पर जौलाई के महीने में बहुत कम बर्फ रहती है । यहाँ से भारत की सीमा का अंत होकर तिब्बत की सीमा प्रारंभ हो जाती है । यदि तीव्र वायु न हो तो घाटा पर थोड़ा विश्राम करके चारों ओर के दृश्यों का आनंद लेते हुए जलपान करके तिब्बत की ओर बढ़ें । घाटा से पाला तक लगातार उतराई पड़ती है, जिसमें आधा भाग बहुत कठिन है । यहाँ से मांधाता की बर्फीली चोटियाँ दिखलाई पड़ती हैं ।

[2] इस ग्रंथ में तिब्बत में दी हुई मीलों की दूरी में किंचित् संशोधन की अवकाश है ।

२ १/४ मील नदी के क़िनारे-क़िनारे चलें, इस नदी से पानी को छोटी-छोटी नहरों में तकलाकोट के कई गाँवों में खेती के लिये ले जाते हैं ।

१ ३/४ मील टाशीगोंग का गाँव, जिसमें एक ही घर है, यहाँ से मार्ग जौ और मटर के हरे-भरे लहलहाते हुए खेतों से होकर जाता है । छोटी-छोटी नहरों को काट-काटकर उनसे खेतों की सींचाई होती है, यहाँ का दृश्य रमणीक है ।

१ १/२ मील मगरुम, बड़ा गाँव, देश की भाँति यहाँ भी मैदान में नहरें और खेत हैं, गाँव के नीचे नदी के किनारे कई पनचक्कियाँ हैं, जिनमें मटर और जौ पीसे जाते हैं, नदी को पुल से पार करके आगे बढ़ें ।

१४. तकलाकोट[1] (५ १/४) (१७६ ३/४) [१३,१००] १/२ मील तकलाकोट मंडी ।

१/८ मील चढ़ाई । ३/८ मील गुकुङ तक कठिन उतराई, यहाँ के घर गुफाओं में बने हुए हैं, गोम्पा, पुल से करनाली या मप्छू को दाहिनी ओर पार करें । नेपालियों की मंडी है, जोङपोन का व्यापारी मकान,

१ १/२ छेमो छोरतेन,[2] यहाँ से गरु गाँव तक जौ और मटर की खेती ।

---

[1]तकलाकोट की मंडी एक पहाड़ के नीचे की संकीर्ण अधित्यका पर है । पहाड़ नदी से लगभग ३०० फीट ऊँचा है, जिसके ऊपर सिंबिलिङ गोम्पा और जोङपोन का किला है । मंडी में पाँच-छः सौ तंबू या डेरे लगते हैं, जो ब्याँस, चौदाँस, और दारमा के भोटियों के रहते हैं । मंडी से सब प्रकार के सामान मिलते हैं । यहाँ ईंधन का बहुत अभाव है । कैलास जाने और लौट कर गर्ब्यांग तक पहुँचने के लिये घोड़े आदि का प्रबंध यहीं पर करें । आगे के लिये भोजन का सामान भी यहीं से पूरा करें । आवश्यकता पड़ने पर मोटे तिब्बती कंबल यहाँ खरीद सकते हैं । बंदूक और पथप्रदर्शक यहीं पर मिलते हैं । यहाँ से खोचारनाथ १२ मील पर है । कैलास जाते या लौटते समय यहाँ जा सकते हैं । देखिए तालिका ४ ।

[2]यहाँ मार्ग की दाहिनी ओर बड़े-बड़े दो छोरतेन हैं, जो जोरावर सिंह के सूबेदारों के कहे जाते हैं ।

तोयो (३) (१७७¾) १ मील तोयो, एक बड़ा गाँव, यहाँ काश्मीर के जनरल जोरावर सिंह की समाधि है। दे० २१६।

½ मील गरु छू को पुल से पार करें। ¼ मील गरु गाँव तक चढ़ाई।

१½ मील हरा ला तक मंद और कड़ी चढ़ाई, पत्थरों का एक ढेर, जिसे तिब्बती भाषा में लप्चे कहते हैं, यहाँ से सिबिलिङ गोम्पा दिखलाई पड़ता है। ½ मील चढ़ाई।

¾ मील खिरोक नामक एक सुंदर छू तक उतराई, जो नीचे ली छू नाम से पुकारा जाता है, डेरे, नदी को पार करें।

२ मील शिकठा तक मंद चढ़ाई, एक बड़ा लप्चे। १¾ मील अधित्यका।

रिंगुंग छू (८½) (१८८¼) [१४,०००] ¼ मील रिंगुंग छू तक कठिन उतराई, यह नदी चातुर्मास में बड़े वेग से बहती है। दो फीट से अधिक जल रहता है, और नदी को पैदल पार करना पड़ता है। डेरे, पड़ाव की दीवाल, मणि-दीवाल, रिंगुंग गाँव मार्ग से आधे मील नीचे गुफाओं में बसा हुआ है।

⅛ मील रिंगुंग नदी से रिंगुंग गाँव तक जानेवाली नहर को यहाँ पार करें। ⅛ मील रिंगुंग छू की एक शाखा पार करें, जो परबू छू में मिलती है। २¼ मील लाजेकेप, कुछ चढ़ाई और उतराई[1], डेरे।

१५ बलडक[2] (४½) (१९२¾) [१५ ०००] २ मील बलडक छू, नदी को दाहिनी

---

[1] यहाँ से परबू या बुरफू का गाँव लगभग एक मील हैं, वहाँ एक ही घर है और थोड़ा सा खेत है। गाँव के पास ही नदी के बाएँ तट पर एक अधित्यका के किनारे पुराने दुर्ग का खंडहर है। वहाँ अब भी बाईस फीट की ऊँचाई की मोटी मोटी दीवालें खड़ी हैं। इस दुर्ग को सन् १८४१ में जोरावर सिंह ने तोड़ डाला। लाजेकेप का जल परबू और दुङ्मर होकर करनाली में गिरता है। परबू से दुङ्मर एक मील दूरी पर है। दुङ्मर में प्रायः सभी घर गुफाओं में निर्मित हैं, वहाँ पर्याप्त खेत हैं।

[2] बलडक से एक मार्ग राचसताल होकर सीधा च्यू गोम्पा या परखा को

ओर पैदल पार करें, वड़े डेरे, पड़ाव की कई दीवालें।

१½ मील मंद चढ़ाई, ५० गज के भीतर तीन लप्चे, यदि आकाश विमल हो तो यहाँ से श्री कैलास-शिखर के अग्रभाग का प्रथम दर्शन होता है।

१¾ मील लप्चे, यहाँ से कैलास का अग्रभाग फिर दिखलाई पड़ता है।

¾ मील से गङ, डेरे, दलदल भूमि के बीच में पड़ाव की दीवाल।

गुरलाफुक् या गोरीउड्यार (४½) (१९७¾) १½ मील गुरला छू, यह कभी-कभी पानी के बढ़ जाने से अलंघ्य हो जाता है, नदी को पार करें, गुरलाफुक्, जिसे भोटिया लोग गोरीउड्यार कहते हैं, डेरे। पड़ाव की दीवालें और गुफाएँ हैं, कुछ लोगों की धारणा है कि इन्हीं गुफाओं में गणेश का जन्म हुआ था। यहाँ से गुरला घाटा तक तीक्ष्ण पत्थरों से होकर कठिन चढ़ाई पड़ती है।

३½ मील कड़ी चढ़ाई, एक वड़ा लप्चे। ⅛ मील दूसरा बड़ा लप्चे। ⅜ मील छुङ छू तक उतार हैं, जो मांधाता के शिखरों से निकल कर राक्षसताल में गिरता है।

गुरला ला[1] (४) (२०१¼) [१६२००] लगभग १०० गज की कड़ी चढ़ाई

जाता है। यह मार्ग वर्णित मार्ग से केवल २ मील कम तो है, पर आगे वर्णित मार्ग से मानसरोवर के सारे पश्चिमीय किनारे की यात्रा का पूरा आनंद प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये यात्रियों को चाहिये कि तकलाकोट में ही घोड़े वालों से मानसरोवर के किनारे होकर जानेवाले मार्ग से ही जाने की व्यवस्था बाँध लें। वलडक से करदुङ गाँव लगभग ३-४ मील की दूरी पर है। परखा का तसम शीतकाल में यहाँ रहता है। पहाड़ की चोटी पर एक मठ है, जो मशङ गोम्पा के अंतर्गत है।

[1] यहाँ से श्री कैलास और पुनीत मानसरोवर तथा राक्षसताल का विशाल एवं मनोरम दृश्य दिखलाई पड़ता है। दाहिनी ओर मांधाता की गगनचुंबी चोटियाँ हैं और पिछली ओर भारत की सीमा की स्वच्छ हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ हैं। देखिए पृष्ठ ३०१। गुरला ला से एक मार्ग ईशान कोण से ठुगोल्हो गोम्पा जाता

चढ़ कर गुरला ला या गुरला घाटा, एक बड़ा लप्चे, भंडे और तोरन (जिन्हें तिब्बती भाषा में तर्चोक कहते हैं), और मंडल (एक के ऊपर एक रक्खे हुए दस-पंद्रह पत्थरों का ढेर)।

¼ मील उतराई, बड़ा लप्चा,।

½ मील लङ छू तक उतराई, लङ छू मांधाता से निकलकर राक्षसताल में गिरती है, पड़ाव की दीवालें।

¾ मील उतराई, मंडल, पास ही एक लामा का शपजे या पादचिह्न है।

२½ मील थंपारा के डेरे तक कड़ी उतराई।

१६. मानसरोवर (६) (२१०¼) [१४९५०] ५ मील मानसरोवर के नैऋत्य कोण तक तीन मील उतराई और दो मील मंद उतार, शुशुप छो के वायव्य कोण में डेरे, इस तालाब में हंस और अन्य जल पक्षी अधिकांश में पाये जाते हैं।

गोछुल गोम्पा[1] (४) (२१४¼) [१५१००] ४ मील मानसरोवर के पश्चिमी किनारे-किनारे गोछुल या गोसुल गोम्पा तक।

१¼ मील गोछुल-चङमा, डेरे। ¾ मील सरोवर के किनारे-किनारे

है, जो मानसरोवर का आठवाँ मठ है और यहाँ से ६¾ मील दूर है।

[1]सरोवर के तल से लगभग १५० फीट की ऊँचाई पर गोछुल गोम्पा, पक्षी के लटकते हुए घोंसले के समान, एक पहाड़ पर स्थित है। यह कैलास का पहला मठ है। गोम्पा के शिखर से सरोवर का विशाल सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। ऊपर बैठकर घंटों ध्यान में व्यतीत किया जा सकता है। यह मानसरोवर का सब से अधिक उष्ण स्थान है। पर कैलास-शिखर के दर्शन के लिये गोम्पा से २०० गज की कड़ी चढ़ाई तय करनी पड़ती है या मानसरोवर के किनारे-किनारे तीन चार फलाँग उत्तर की ओर जाना पड़ता है। गोम्पा के निकट और मानसरोवर के पास कई छोटी-बड़ी गुफाएँ हैं। गोम्पा से २½ मील ऊपर पहाड़ पर चढ़ कर पश्चिम में टापुओं के सहित राक्षसताल, पूर्व में मानसरोवर, दक्षिण में मांधाता का महान् और अपूर्व सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है।

छेरिङ-मद्‌ङ तक, डेरे, मणि-दीवाल। $\frac{1}{2}$ मील यहाँ से मानसरोवर को छोड़कर कुछ ऊपर जायँ।

$\frac{1}{4}$ छेती छो[1], बाईं ओर थोड़ी ही दूर पर छेती छो है और दाहिनी ओर सरोवर के किनारे पर लगभग एक मील लंबा, संकीर्ण एवं थोड़ी गहराई वाला अर्धचंद्राकार तालाब है।

१$\frac{1}{4}$ मील छेती छो और अर्धचंद्राकार तालाब के बीच में।

$\frac{1}{2}$ मील मंद चढ़ाई, छकछुल-गङ्ग (जहाँ से साष्टांग दंडवत् नमस्कार किया जाता है), लप्‌चे और मणि-दीवाल।

$\frac{1}{2}$ मील सेरा ला, लप्‌चे। $\frac{3}{4}$ मील उतराई, यहाँ से सेरका-खीरो तक दाहिनी और बाँईं तरफ़ पहले के सोने की खुदाई के गढ़े दिखलाई पड़ते हैं।

१$\frac{1}{4}$ मील रास्ते से बाँईं तरफ सेरका खीरो का छोरतेन, देखिए पृष्ठ १२७।

१ मील मंद चढ़ाई।

१७. गङ्गा छू[2] (च्यू गोम्पा के पास) (८$\frac{1}{4}$) (२२२$\frac{1}{2}$) $\frac{1}{4}$ मील उतार,

---

[1]मानसरोवर से आधे मील पश्चिम में है, जिसमें कई टापू हैं। तालाब और टापुओं में सुहागा और शोरा होता है। यह तालाब लभभग १ मील लंबा और $\frac{1}{2}$ मील चौड़ा है। देखिए पृष्ठ १२८। बलडक से राक्षसताल होकर आने वाला मार्ग यहाँ पर मिलता है जिसका विवरण इस प्रकार है :—बलडक से गुरला छू ३$\frac{3}{4}$ मील; गुरला छू पार करके मैदान में १ मील; थङ्गातोङ्ला तक दो तीन विराम के साथ कड़ी और बहुत कड़ी चढ़ाई ५$\frac{1}{2}$ मील; रेजङ छू तक उतार १$\frac{1}{4}$ मील, लंका डोङ्खङ (एक धर्मशाला की टूटी हुई दीवाल) $\frac{1}{2}$ मील; योग १२ मील, पहले दिन का मार्ग); राक्षसताल के किनारे किनारे २ मील; राक्षसताल को छोड़ कर बहुत कड़ी चढाई १$\frac{1}{2}$ मील; तरको ला २ मील; वहाँ से छेती छो तक मंद उतराई ४ मील, (योग ६$\frac{1}{2}$ मील)। बलडक से राक्षसताल होकर यहाँ तक २१$\frac{1}{2}$ मील है और मानसरोवर होते हुए २४$\frac{1}{4}$ मील है। अर्थात् दोनों मार्गों में लगभग ३ मील का अंतर पड़ता है।

[2]जैसा कि पहले भी कह चुके हैं, मानसरोवर का पानी गङ्गा छू से

गङ्गा छू, गर्म पानी के सोते और कुंड, डोङ्खङ (तिब्बती धर्मशाला), डेरे, दोनों किनारों में गुफाएँ।

परखा या बरखा[१] (९) (२३१½) [१५०५०] ६ मील परखा, तसम या तरजम, यहाँ से कैलास का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। देखिए पृष्ठ ३०६। इसके पास ही डमा[२] छू है, नदी को पार करें।

१८. तरछेन या दरचेन (७½) (२३६) [१५१००] ७½ मील दलदल भूमि होकर झोङ छू और तरछेन छू की पाँच सात शाखाओं को पार कर तरछेन पहुँचें। यहीं से कैलास परिक्रमा प्रारंभ होती है।

बाहर जाता है, जो राक्षसताल में ही गिरता है। गङ्गा छू के बायें किनारे पर गर्म जल का सोता है, जिस पर स्नान के लिए कुंड बने हुए हैं। गंधक के इस गर्म जल में नहाने से थकावट दूर होती है। गठिये के रोगी यहाँ स्नान करने आते हैं। देखिए पृष्ठ ६३ और १३१। यहाँ से च्यू गोम्पा तक २ फर्लांग की कड़ी चढ़ाई है। च्यू गोम्पा गङ्गा छू के दाहिने तट पर मानसरोवर के वायव्य कोण में एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है। यह मानसरोवर का दूसरा मठ है। गरम जल के पास की धर्मशाला च्यू गोम्पा की ओर से बनायी गई है। इन सोतों से मानसरोवर दो फर्लांग पर है। गोम्पा में ठहरने की अपेक्षा मल्लाठक के पास मानसरोवर या गर्मजल के सोतों के निकट डेरा डालना उत्तम है।

[१]यदि परखा में डेरा डालना हो तो जाते समय गङ्गा छू से और लौटते समय कैलास से तंबू गाड़ने के लिये एक बड़ा पत्थर साथ ले जाना चाहिये, क्योंकि कील ठोंकने के लिये आस-पास में कहीं भी पत्थर नहीं मिलता।

[२]डमा छू से तरछेन छू तक लगभग पाँच मील दलदल भूमि में जाते समय यात्री सावधान रहें। इसके दोनों ओर बहुत दलदल भूमि या 'डम' होने के कारण इसे डम या डमा छू कहते हैं।

तालिका २

श्री कैलास-परिक्रमा

—३२ मील

तरछेन या दरचेन (०) (०) [१५१००] कैलास की परिक्रमा यहीं से आरंभ होकर यहीं समाप्त भी होती है। यहाँ से कैलास के अग्रभाग के किंचित् दर्शन हो जाते हैं, निकटवर्ती पहाड़ के ऊपर से तो पूर्ण दर्शन होता है। यहाँ तरछेन लब्रङ का मकान और अन्य चार-पाँच घर हैं, मंडी तथा काले तंबू हैं, देखिए पृष्ठ ३१०।

२$\frac{1}{4}$ मील छकछल-गङ तक कुछ ऊँचाई-नीचाई के साथ, कई मणि-दीवालें हैं, कैलास-शिखर यहाँ से दिखाई पड़ता है।

सेरशुङ (३$\frac{3}{4}$) (३$\frac{3}{4}$) १$\frac{1}{2}$ मील सेरशुङ तक उतराई, यहाँ पर तरबोछे नामक महाध्वजा है, वैशाख पूर्णिमा को बुद्ध भगवान् के जन्म-दिवस पर यहाँ भारी मेला लगता है। देखिए पृष्ठ ४४। यहाँ से २०० गज आगे छोरतेन कङनी नामक लाल दरवाजा है।

१ मील ल्हा छू के किनारे-किनारे, दाहिनी ओर के पहाड़ में नरोपुंजुङ की गुफा है, नीचे कई मणि-दीवालें और छोरतेन हैं, ल्हा छू की एक शाखा को पैदल पार करके प्रधान शाखा को पुल से पार करें।

न्यनरी या[1] छुकू गोम्पा (१$\frac{1}{4}$) (५) $\frac{1}{4}$ मील न्यनरी गोम्पा तक तीक्ष्ण पत्थरों में कड़ी चढ़ाई।

---

[1]कुछ लोग इसे अपभ्रंश करके नंदी या न्यंदी भी कहते हैं। यह कैलास का पहला मठ है, इसमें पाँच डाबे रहते हैं। डुवङ के प्रधान देवता छुकू रिंपोछे की मूर्ति श्वेत संगमर्मर की बनी हुई है। मूर्ति की दोनों ओर दो बड़े-बड़े हाथी के दाँत हैं, जिनकी लंबाई ५४ इंच और मोटाई की परिधि २० इंच हैं। इसके अतिरिक्त डावा नमायल की एक मूर्ति है, जिसकी दाढ़ी श्वेत

गोम्पा के मार्ग में कई मणि-दीवालें हैं, ल्हा छू को पार करके फिर बाँयें किनारे पर जायँ।

२½ मील मार्ग की दाहिनी ओर और कैलास से पश्चिम ओर गोंबोफेङ नामक एक सर्प की फण की भाँति काला-सा पहाड़ है। देखिए, पृ० ३६, नदी के दाहिने किनारे, न्यनरी गोम्पा और इस स्थान के बीच में तीन चार छोटी-छोटी नदियाँ न्यनरी पहाड़ से जल-प्रताप की भाँति नीचे गिरती रहती हैं, जिनमें से एक ७०० फीट ऊँची है।

२ मील तमडिन डोङखङ नामक स्थान पर बुद्ध भगवान् का एक पाद चिह्न (शपजे) है।

½ मील सामने उत्तर और वायव्य कोण से बेलुङ और डुङलुङ[1] नामक दो नदियाँ ल्हा छू के दाहिने किनारे पर गिरती हैं, दाहिने किनारे पर जानेवाले पहली नदी को पैदल पार कर दूसरी नदी को पुल से पार करें। २¼ मील कङजम छू को पार करें।

¼ कङजम छू की दूसरी धारा को पार करें। डेरे, पड़ाव की दीवारें[2]।

और टोपी गुरु नानक जैसी है, इसलिये लोग इसे भूल से गुरु नानक की मूर्ति मान बैठते हैं। यहाँ पर कंजूर की पोथियाँ हैं। छत के ऊपर की छोटी-सी कोठरी चकङ है, इसमें कङरी-ल्हप्चेन, महाकाली, और महाकाल की मूर्तियाँ हैं। पास में हाथी के दो छोटे-छोटे दाँत हैं। कमरे के बाहर और भीतर कई बंदूकें, जोरावर सिंह के लोहे की कवच, टोपी, तलवार, लठ, और चमड़े की ढाल तथा बहुत-से भारतीयों के चढ़ाये हुए चिमटे आदि हैं। गोम्पा की छत से कैलास का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। नदी के दाहिने और बाँये दोनों किनारों से होकर मार्ग है। बाँये किनारे का मार्ग कुछ कम दूर है।

[1]इस नदी की घाटी के ऊपरी भागों में जंगली याक बहुत हैं। नदी के किनारे-किनारे होकर एक मार्ग सिंधु नदी के उद्गम को जाता है।

[2]प्रायः यात्रियों के जत्थे, जिनके पास तंबू हैं यहीं पर डेरा डालते हैं। अकेले दुकेले यात्री या तिब्बती यात्री गोम्पा में ठहरते हैं। यहाँ एक दिन मुकाम

१. डिर फुक गोम्पा[1] ($७\frac{१}{४}$) ($१२\frac{१}{४}$) मील कुछ गज नीचे ल्हा छू-पार करें
डिरफुक गोम्पा [१६४००] फीट, मठ पास के २ या ३ घर हैं।

करके कैलास-शिखर के मूल पर जाना चाहिये। मार्ग का विवरण इस प्रकार है—

$\frac{१}{८}$ मील कड़ी चढ़ाई, छोरतेन; $\frac{१}{८}$ मील हरी बरफ; $\frac{१}{२}$ मील बर्फ के ऊपर और उसके पार्श्व में कड़ी चढ़ाई, मार्ग में गुग्गुल, वत्सनाभि, और कुछ अन्य प्रकार के फूल हैं। यहाँ कैलास के मूल में 'डोम' जैसी काली मिट्टी से मिली हुई बर्फ की हिमनदी है। इस काली बर्फ के ऊपर सुरम्य, छोटे-बड़े, श्वेत हिम के लिंगों की कई पंक्तियाँ हैं। यहाँ से कैलास के मूल की दीवाल तक बाईं या दाहिनी ओर जा सकते हैं। $\frac{३}{८}$ मील बाईं ओर कड़ी चढ़ाई, धोकेदार पत्थर, मिट्टी और कभी-कभी बर्फ के ऊपर जाना पड़ता है। मार्ग में कहीं-कहीं कैलास-धूप उगती है; $\frac{१}{८}$ मील आगे चल कर कैलास की खड़ी दीवाल पर पहुँचते हैं। यहाँ सदा कैलास के शिखर से हिमखंड गिरने की आशंका बनी रहती है। यहाँ तक कुल दूरी $१\frac{३}{८}$ मील है। डेरे से लेकर यहाँ तक दृश्य बहुत ही गंभीर और अद्भुत है। प्रायः यहाँ बादल आया-जाया करते हैं और ओले गिरते रहते हैं।

[1] इसे डिर्थिनफुक् भी कहते हैं। कैलास का यह दूसरा मठ है। यहाँ एक लामा और पाँच डाबा रहते हैं। मंदिर का प्रधान देवता शाक्यपेंदे है, जिसके पेट में कई देवता प्रदर्शित किये गए हैं। मंदिर में स्थित एक गुफा में गेवा गोजङ्बा की मूर्ति है, जिसके संबंध में कहा जाता है कि कैलास के मार्ग का प्रथम अन्वेषण करने वाला यही है। गोम्पा के बाहर सामने एक ध्वजा है। कैलास-पुराण का एक संस्करण इस गोम्पा से छपता है। यहाँ से कैलास का सब से सुंदर और गंभीर दृश्य दिखाई पड़ता है। उसकी नैसर्गिक प्रतिभा आनंद देने वाली है। यह एक वेदी पर स्थित रजत-कँगूरे के समान स्थित है, जिसके संरक्षक की भाँति दोनों ओर से वज्रपाणि और अवलोकितेश्वर हैं। कैलास के सामने खड़े होकर दिखाई पड़ने वाले शिखरों के नाम ये हैं—वज्रपाणि (छाना दोर्जे), श्री कैलास-शिखर (कङरिम्पोछे), अवलोकितेश्वर (चेनरेसी), मंजुश्री (जम्बियङ), और छोगेल-नोरसङ। गोम्पा के छत या मठ की कोठरी के झरोखे

¼ मील ल्हा छू के पुल तक उतराई, यहाँ पर नदी को पुल से पार करें, डोलमा ला तक पत्थरों की बहुत कठिन चढ़ाई है, ऊँचाई के कारण वायु के पतली होने से दम छुटने लगता है।

१ मील बहुत कड़ी चढ़ाई, तंग्यू, डेरा।[1]

पर बैठ कर रात-दिन को क्षण के समान बिना थके हुए कैलास के सौंदर्य का निरीक्षण करने में व्यतीत किया जा सकता है। दृश्य की महत्ता और गंभीरता तथा वहाँ के स्थानों में व्याप्त आध्यात्मिक वातावरण का वर्णन नहीं किया जा सकता। रात के समय चंद्रमा की कांति पड़ने से इसकी शोभा और भी बढ़ जाती है। यहाँ से एक मार्ग ल्हा छू के किनारे-किनारे ल्हे ला होकर सिंधु के उद्गम् को जाता है, जो लगभग ३४ मील की दूरी पर है। कुछ लोग भ्रमवश सिंधु नदी का उद्गम कैलास के तल में मानते हैं, पर यह धारणा निराधार है।

[1]कङजम छू से ¼ मील पर पोलुङ छू (पो=धूप, लुङ=घाटी) को पार करें। इस नदी की घाटी में हिमनदी तक कैलास धूप बहुत उगती है। इस छू से एक मील कड़ी चढ़ाई चढ़ कर तंग्यू तक पहुँचते हैं; यहाँ से कैलास का दृश्य (चेनरेसी और जम्बियङ के मध्य) बहुत मनोरम है। रजत-पीठिका पर रक्खे हुए शिवलिंग की भाँति कैलास-शिखर के पूर्वी तल से जम्बियङ तक हिम नदी फैली हुई है। तङ्ग्यू से डोलमा ला २¾ मील रह जाता है, जो कैलास की बारह परिक्रमा कर चुके हैं, वे तेरहवीं परिक्रमा में यहाँ से यात्रा-मार्ग छोड़ कर खंडो-सङ्लम के मार्ग से जाने के अधिकारी हो जाते हैं। उस मार्ग का विवरण इस प्रकार है—

तंग्यू से ½ मील कड़ी उतराई है, यहीं डोलमा ला छू को पार करें, (यहाँ से एक-दो फलांग नीचे डोलमा ला छू के बायीं किनारे पर एक बड़े पत्थर के नीचे एक गुफा है। वायु से बचने के लिये गुफा के चारों ओर पत्थर की चिनाई हुई दीवालें हैं। गुफा के भीतर पर्याप्त प्रकाश है, जिसमें तीन-चार मनुष्य रह सकते हैं। इसमें कई वर्ष पहले एक लामा ने निवास किया था, जिसके

१ मील कठिन चढ़ाई, तुटुप, तक यहाँ तिब्बती लोग बाल काट कर चढ़ाते हैं, और चित लेटकर मृत्यु का अभिनय करते हैं।

$\frac{१}{२}$ मील कठिन चढ़ाई के बाद दिक्पा-करनक[१], २० गज आगे एक और

नाम पर यह 'लामा क्यङगुन कङरी फुक्पा, नाम से प्रसिद्ध है); $\frac{१}{८}$ मील पर खंडोसङलम छू को पार करें; $\frac{३}{४}$ मील पत्थरों में नदी की बाईं ओर कड़ी चढ़ाई है। (बाईं ओर खंडोसङलम छू के सिरे पर पिरोजी रंग का एक छोटा-सा तालाब है); एक मील धोखेदार दरारों से युक्त हिम पर कड़ी चढ़ाई है। बर्फ पर चलते समय कभी-कभी ऊपर की पतली बर्फ के टूटने के कारण भीतर के दो-दो गज गहरे खड्डों या पानी में गिरने का डर रहता है। चढ़ाई के अंत में खंडोसङलम ला है। दाहिनी ओर फकनारी-शिखर है और बाईं ओर खंडोसङलम-शिखर है। चारों ओर का दृश्य सुरम्य है। यहाँ से कुछ गज आगे एक लप्चे है; यहाँ से १$\frac{३}{४}$ मील लुढ़कती हुई कड़ी उतराई पड़ती है, बाईं ओर खंडोसङलम छू और दाहिने ओर शिङजोंङ का संगम है। यहाँ पर नदी पार करें; $\frac{३}{४}$ मील पत्थरों के बीच होकर कड़ी उतराई, खंडोसङलम और ल्हमछिखिर का संगम; यहीं पर कैलास की परिक्रमा का मार्ग मिल जाता है। कङजम छू से कुल दूरी यहाँ तक ४$\frac{३}{४}$ मील है। इस मार्ग में घोड़ा या याक नहीं चलते। डोलमा ला की अपेक्षा खंडोसङलम ला कम ऊँचा है। यह मार्ग डोलमा ला के मार्ग से १$\frac{१}{२}$ मील कम है। इस पर जाने के इच्छुक डिरफुक् गोम्पा के किसी पथप्रदर्शक को साथ लेकर जाते हैं, जिसको एक रुपया मजदूरी देनी पड़ती है। बादल के समय इस मार्ग से नहीं जाना चाहिए क्योंकि यहाँ बहुत बर्फ गिरये की संभावना बनी रहती है। लेखक इस मार्ग से दो बार जा चुका है।

[१] दिक्पा-करनक्=पापियों की परीक्षा का पत्थर। यहाँ एक बड़ा भारी चट्टान है, जिसके नीचे बिल की भाँति एक गुफा है, जिसमें पतला मनुष्य सिमट-कर रेंगते हुए कठिनता से जा सकता है। यह गुफा चार-पाँच गज से अधिक तो नहीं है, पर बनावट में टेढ़ी-मेढ़ी होने के कारण इसे पार करने में कठिनता होती है। इसे पेट के बल रेंग कर इधर से उधर पार करने वाला व्यक्ति निष्पाप समझा

छोटा दिक्पा-करनक है, पास ही मार्ग से कुछ ऊपर चरोक डोङ्खङ (एक टूटी हुई धर्मशाला), डेरे, पड़ाव की दीवालें।

¼ मील समतल, बीच में पत्थरों से होकर एक छोटी-सी नदी बहती है।

डोलमा ला[1] (४) (१६¾) १ मील डोलमा ला के घाटे तक दम घुटने वाली बहुत कड़ी चढ़ाई।

गौरीकुंड (¼) (६०½) [१८२००] ¼ मील बड़े-बड़े पत्थरों के बीच बहुत कड़ी उतराई, इसे तिब्बती भाषा में ठुकीजिङ्बू कहते हैं। यह तालाब लगभग बारहों महीने बर्फ से ढका रहता है, जिससे बर्फ तोड़कर स्नान करना पड़ता है। देखिए पृष्ठ ४७। यहाँ से ल्हमछिखिर छू तक पत्थरों के बीच से लुढ़कती हुई बहुत कठिन उतराई पड़ती है, वहाँ से जुन्ठुलफुक् तक साधारण उतार है।

२½ मील शप्जे-डक्थोक् तक बहुत कड़ी और लुढ़कती चढ़ाई है, यहाँ एक बड़े भारी चट्टान पर बुद्ध भगवान् का पादचिह्न है, डेरे, पड़ाव

जाता है और पार करने में असमर्थ व्यक्ति पापी गिने जाते हैं। मोटे आदमी के लिये पार करना असंभव ही होता है। कभी-कभी बिल में घबड़ाहट से बीच में अटक जाने के कारण उसे पीछे से पैर पकड़कर या आगे से हाथ खींचकर निकालना पड़ता है। देह को ढीली कर तथा हाथ को फैलाकर युक्तिपूर्वक इसे पार किया जा सकता है।

[1] डोलमा ला या देवी के घाटे पर डोलमा के नाम पर एक बड़ा भारी पत्थर है, जिसके ऊपर कपड़े के रंग-बिरंगे झंडे लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त कई लप्चे, तरचोक, तोरण, और मंडल आदि हैं। डोलमा की चट्टान की दरार में तिब्बती लोग अपने टूटे हुए दाँतों को रख देते हैं, जिससे उसमें दाँतों की एक माला-सी बन गई है। घाटा पर पहुँच कर यात्री लोग वहाँ कपड़े के झंडे लगाते हैं, तथा पत्थर में मक्खन लगा कर उसकी प्रदक्षिणा करते हैं, और कुछ खाद्यवस्तु बाँटते हैं। यहाँ से गौरीकुंड दिखलाई पड़ता है। यहाँ से उतर कर मार्ग सीधा गौरीकुंड पर ही जाता है।

की दीवाल है।

$\frac{1}{4}$ मील ल्हमछिख़िर के दाहिने किनारे तक उतराई।

१$\frac{3}{4}$ मील ल्हमछिखिर छू के किनारे-किनारे दल-दल भूमि होकर खंडोसङ्लम छू तक उतार, यहाँ से इस नदी को पार करें। मार्ग से दाहिनी ओर पहाड़ के बीच में मेज की भाँति खंडोसङ्लम की बर्फीली चोटी है और उसके पीछे कैलास का शिखर दिखाई पड़ता है।

३$\frac{1}{2}$ मील तोपछेन छू और ल्हमछिखिर तक उतराई है। तोपछेन छू ल्हमछिखिर के बायें किनारे पर आकर मिलती है, संगम से नीचे चलकर नदी भोङ छू के नाम से प्रसिद्ध है। (जो लोग डिरफुक् गोम्पा से ल्हे ला होकर सिंधु के उद्गम पर जाते हैं, वे तोपछेन छू के किनारे-किनारे इस स्थान पर लौटकर आते हैं)।

जुन्ठुलफुक् गोम्पा[1] (६$\frac{1}{4}$) (२५$\frac{3}{4}$) १$\frac{1}{4}$ मील जुन्ठुलफुक् गोम्पा तक मंद उतराई, खंडो संगम से यहाँ तक स्थान-स्थान पर और गोम्पा के पास कई बड़ी-बड़ी मणि-दीवालें हैं।

१ मील इस बीच में ३ या ४ नदियों को पार करना पड़ता है।[2]

---

[1]यह कैलास का तीसरा मठ है, जिसमें तीन डाबा हैं। मठ की गुफा में मिलरेपा और अन्य देवताओं की मूर्तियाँ हैं। गुफा में हाथी के दो दाँत हैं, जो न्यनरी गोम्पा वाले दाँतों से छोटे हैं। गुफा के बाहर दाहिनी ओर दुवङ में डावानमयग्ल की मूर्ति है और बाईं ओर लगभग सात फीट ऊँचा चौकोर पत्थर का खंभा है, जो तिब्बत के विख्यात सिद्ध मिलरेपा का लट्ठ कहा जाता है। यात्री लोग इसे उठाने में अपने बल की परीक्षा करते हैं। गोम्पा के सामने बाहर एक ध्वजा है। यह और न्यनरी गोम्पा तरछेन लब्रङ के अंतर्गत है।

[2]यहाँ से एक मार्ग गेङ्टा गोम्पा को जाता है, जो ६ मील पर है। तीन-चार पहाड़ों को पार करके जाना होता है। चढ़ाव-उतार के कारण बहुत कम यात्री इस मार्ग से जाते हैं, परंतु मैं तो तीन बार इस मार्ग से जा चुका हूँ। लोग प्रायः तरछेन से होकर जाते हैं।

३ मील छुकछुल-गङ[1] मणि-दीवालें, यहाँ से फ्रोङ छू कगारे को छोड़ कर परखा के मैदान में प्रवेश करती है। मार्ग नदी को छोड़कर पश्चिम की ओर मुड़ता है। १ मील यहाँ से तरछेन दिखलाई पड़ता है। $\frac{1}{2}$ मील यहाँ पर एक छोटे नदी को पार करें। $\frac{3}{4}$ मील यहाँ लंबी-लंबी मणि-दीवालें हैं।

२. तरछेन[2] (६$\frac{1}{4}$) (३२) यहाँ पर तरछेन या उमा छू को पुल से दाहिनी ओर

---

[1]यहाँ से च्यू गोम्पा सीधे मार्ग से १३ मील है, (डमा छू ४$\frac{1}{2}$ मील, च्यू गोम्पा ८$\frac{1}{2}$ मील = १३ मील इस मार्ग में डमा छू के आर-पार आध आध मील की दल-दल भूमि से जाना पड़ता है। यात्री सावधानी से जायँ।

[2]तिब्बती लोग श्री कैलास की तुलना सहस्रार चक्र से, ल्हा छू, फ्रोङ छू, और तरछेन छू की केङमा, रेंङमा, और उमा अर्थात् इडा, पिंगला, और सुषुम्ना, से करते हैं। तरछेन से भी एक मार्ग गेङटा गोम्पा को जाता है, जो २$\frac{1}{4}$ मील की बहुत कड़ी चढ़ाई पर है। यह कैलास का चौथा मठ है यह एक पहाड़ की चोटी पर बना हुआ है और एक बड़े किले के समान प्रतीत होता है। इसमें पाँच डाबा हैं। यह कैलास का सबसे बड़ा मठ है। दुवङ का प्रधान देवता छोलोकेश्वरी और चकङ की खंडो है। गोम्पा की एक कोठरी में जोरावर सिंह के लोहे के दो कवच, टोप, तलवार, और फरसा विद्यमान हैं। गोम्पा के सामने, बाहर एक ध्वजा है। यहाँ से कैलास नहीं दीखता। दक्षिण में परखा मैदान, राक्षसताल, और मांधाता आदि की बर्फीली चोटियों का मनोहर दृश्य दिखाई पड़ता है। गोम्पा के नीचे दो-तीन घर, कई मणि-दीवालें, छोरतेन, और पड़ाव की दीवालें हैं। यहां से सिलुङ गोम्पा दो मील पर है ($\frac{1}{4}$ मील उतार, $\frac{5}{8}$ मील चढ़ाई, १ मील कठिन उतराई और $\frac{1}{8}$ मील सिलुङ छू पार करके सिलुङ गोम्पा।) सिलुङ गोम्पा के दुवङ में दोर्जेछङ और डोंजुन-डुपथो की मूर्ति और चकङ में अप्‌ची की मूर्ति है। यहाँ मंदिर के सामने एक ध्वजा है। यहाँ पर दो घर और पड़ाव की दीवालें हैं। सिलुङ और गेङटा गोम्पा ल्हासा की ओर के डेकुङ नामक मठ के अंतर्गत है। यह कैलास

पार कर तरछेन पहुँचें, यहाँ श्री कैलास की परिक्रमा समाप्त हो जाती है। सतलज या सिंधु कैलास की परिक्रमा में कहीं नहीं मिलतीं।

का पाँचवाँ मठ है और सबसे छोटा है। इसमें दो डाबा रहते हैं। यहाँ से कैलास का दक्षिणी दृश्य बड़ा मनमोहक है। यहाँ से सेरशुङ के तरबोछे डेढ़ मील की लुढ़कती हुई कठिन उतराई के मार्ग में हैं। यहाँ से एक मार्ग सेरदुङ-चुकसुम और छो कपाला को जाता है, जिसका ब्योरा इस प्रकार है —

तरछेन से सिलुङ गोम्पा २$\frac{१}{२}$ मील की चढ़ाई; १$\frac{१}{४}$ मील कड़ी चढ़ाई, बाईं ओर पहाड़ में कई गुफाएँ; $\frac{३}{४}$ मील कड़ी चढ़ाई, मंडल, छुकछुल-गङ, (पहाड़ के नीचे सेरदुङ-चुकसुम छू और छो कपाला छू का संगम है। इन दोनों के मध्य में नेतेन्-येलक्जुङ नामक पर्वत है, जो लेटे हुए नंदी के आकार का है); $\frac{१}{२}$ मील उतराई, यहां पर लिङसिङजेन नामक पक पत्थर पर घोड़े का एक पाद-चिह्न है; $\frac{१}{४}$ मील नदी के किनारे-किनारे; १$\frac{१}{४}$ मील पत्थरों में कड़ी चढ़ाई; $\frac{१}{२}$ मील अति कठिन चढ़ाई, सेरदुङ-चुकसुम है। देखिए पृष्ठ ४७। $\frac{१}{४}$ मील कैलास की मेखला में चढ़कर चरोक-फुरदोद ला पार करें। मिट्टी और पत्थरों की १ मील लुढ़कती हुई उतराई; २ मील कड़ी उतराई; $\frac{३}{४}$ मील पुनः उतराई, $\frac{१}{२}$ मील पत्थरों में होकर कड़ी चढ़ाई, छोकपाला, रुकता और दुर्चा नामक दो छोटे-छोटे तालाब; १$\frac{१}{४}$ मील बहुत कड़ी उतराई, यहाँ पर नदी पार करें, सिलुङ गोम्पा तक २$\frac{१}{४}$ मील कड़ी उतराई; तरछेन तक २$\frac{१}{२}$ मील उतराई; है। इस प्रकार तरछेन से सेरदुङ-चुकसुम तक की कुल दूरी ७$\frac{३}{४}$ मील है; वहाँ से छो कपाला ४$\frac{१}{४}$ मील है; सिलुङ गोम्पा ३$\frac{१}{२}$ मील है; तरछेन २$\frac{१}{२}$ मील है; कुल यात्रा लगभग १८ मील की है।

तालिका ३

पुनीत मानसरोवर की परिक्रमा

आठों मठों का दर्शन करते हुए—६४ मील

गोछुल गोम्पा[1] (०) (०) यह पुनीत मानसरोवर का प्रथम मठ है। इसमें ३ डावा रहते हैं। २०० गज ऊपर चढ़ने पर कैलास का दर्शन होता है। देखिए पृष्ठ ३४२। १$\frac{1}{4}$ मील गोछुल चङ्मा, डेरे। $\frac{3}{4}$ मील छेरिङ-मदङ, डेरे, मणि-दीवाल। १$\frac{1}{4}$ मील मानसरोवर के पास श्वेत जल के एक संकीर्ण जलाशय का प्रारंभ, इसके और सरोवर के मध्य का अंतर आठ-दस गज का है।

१$\frac{1}{4}$ मील जलाशय और मानसरोवर के बीचोंबीच लाल पहाड़ के एक अंतरीप तक, (यहाँ से मार्ग छोड़कर आधा मील ऊपर सेरा ला के पास सरोवर का पहला छुकछुल-गङ है)।

१$\frac{1}{4}$ मील सेरका-खितोङ, यहाँ से राक्षसताल तक सोने की खानें हैं, मणि-दीवाल।

१$\frac{1}{4}$ मील मल्लाठक, यहाँ पर एक ज्वालामुखी पहाड़ का अंतरीप सरोवर

---

[1]गोम्पा के चकङ में गोंबोसेटुप और दुवङ में थुजीछिंबो और चेनरेसी की मूर्तियाँ हैं। चेनरेसी की मूर्ति ग्यारह सिर और एक हज़ार हाथ हैं। दुवङ में केंगुनजिंबानुरबू-कङरी-लामा शकबर की मूर्तियाँ तथा अन्य कई मूर्तियाँ हैं। उपर्युक्त लामा इस मठ के निर्माता हैं। कंजूर के १०८ खंड यहाँ विद्यमान हैं। अतिशा कैलास से खोचार जाते समय यहाँ पर सात दिन ठहरे थे। गोम्पा से पहाड़ के ऊपर २०० गज़ चढ़ने पर कैलास का दर्शन होता है। देखिए पृष्ठ ३४१।

तक चला गया है, जो खड़ी दीवाल के समान है[1], गोछुल गोम्पा से यहाँ तक मार्ग सरोवर के किनारे-किनारे है।

¼ मील कड़ी चढ़ाई, (यहाँ से एक मार्ग गङ्गा छू को पार करके सीधा च्यू गोम्पा को जाता है)।

१ मील गङ्गा छू के पास के गर्म सोतों तक उतराई, यहाँ से गङ्गा छू को पार करें। देखिए पृष्ठ १३१।

च्यू या ज्यू गोम्पा (८½) (८½) ¼ मील च्यू गोम्पा तक चढ़ाई, यह मानसरोवर का दूसरा मठ है। इसमें पाँच डाबा हैं। यहाँ से कैलास, मानसरोवर और मांधाता तथा राक्षसताल का विशाल दृश्य दिखाई पड़ता है। यह कैलास के डिरफुक् गोम्पा के अंतर्गत है। चकङ में पद्मसंभव की मूर्तियाँ है। पहाड़ के ऊपर २ या ३ घर हैं। यह पहाड़ की चोटी पर बैठे हुए पक्षी के समान प्रतीत होता है। च्यू = पक्षी। यहाँ पर सरोवर का पहला लिङ्ग है। ½ मील सरोवर के वायव्य कोण में उतराई। ¾ मील सेमाफुक ला तक कठिन चढाई, लप्चे।२ मील

---

[1]यहाँ से आगे सरोवर के किनारे होकर नहीं जा सकते, क्योंकि जल गहरा है और खड़ा पहाड़ है। जब शीतकाल में सरोवर जम जाता है तो उस समय बर्फ के ऊपर होकर यहाँ से जाना संभव हो जाता है। एक फर्लांग बर्फ पर जाने के बाद फिर सरोवर के किनारे होकर जा सकते हैं। वहाँ से एक या दो फर्लांग आगे चलकर चट्टान के बीच में ङावाङोपो-ड्डुपुक् नामक एक गुफा है। यहाँ कभी कभी शीतकाल में कोई डाबा रहता है। वहाँ से दो फर्लांग आगे संतोकपरी नामक पहाड़ के नीचे मणि-दीवाल और डेरे की दीवालें हैं। यहाँ पर शीतकाल में च्यू गोम्पा के चरवाहे भेड़-बकरी चराने के लिये रहते हैं। किनारे से ५० गज़ की दूरी पर मानसरोवर के भीतर एक गर्म जल को सोते हैं। मानसरोवर के किनारे-किनारे कई प्रकार के छोटे-मोटे चिकने पत्थर पाये जाते हैं। प्रायः यात्री लोग पश्चिमी किनारे पर अधिक जाते हैं। अतः उन पत्थरों को वहाँ से प्रसाद के रूप में लाते हैं।

मंद उतार।

चेरकिप गोम्पा[1] (४) (१२½) ¾ मील चेरकिप गोम्पा तक कठिन उतराई, यह मानसरोवर का तीसरा मठ है, एक डाबा है। १ मील तासालुङ तक सरोवर के किनारे-किनारे, मणि-दीवाल। सरोवर छोड़ के १ मील चढ़ाई।

१. लङपोना गोम्पा[2] (४½) (१७) २½ मील लङपोना गोम्पा तक साधारण चढ़ाई-उतराई, इसमें एक लामा और चार डाबे रहते हैं।

¼ मील ग्युमा छू तक, जिसमें बाढ़ के दिनों में ३½ फीट तक जल रहता है, बाएँ किनारे को पार करके आगे विशाल मैदान के मार्ग में बढ़ें, यहाँ झुंड के झुंड क्यङ नामक जंगली घोड़े चरते हुए देखने में आते हैं। ४⅝ मील यहाँ लुङ नक छू को पार करें।

१¼ मील एक छू को पार करें। इन दोनों छू के मध्य में तरुआ नामक

---

[1]यह मठ सरोवर के किनारे ही पर है। दुवङ में गुरु रिम्पोछे की मूर्ति है, चकङ अलग नहीं है। सरोवर का यह सब से छोटा मठ है। मंदिर के सामने एक ध्वजा है। यह तरछेन के अंतर्गत है। यहाँ से कैलास-शिखर के दर्शन होते हैं। पड़ाव की दीवाल है, जहाँ शीतकाल में गड़ेरियों के दो तीन तंबू लगते हैं। गोम्पा के निकट ही सरोवर के किनारे कई गुफाएँ हैं, जिनमें कुछ भिक्षु लोग शीतकाल में एकांतवास करते हैं।

[2]यह ग्युमा छू के दाहिने किनारे पर सरोवर से डेढ़ मील पर है। यहाँ पर सरोवर का दूसरा लिंग है। चकङ में ल्हप्लेन, ल्हमो आदि की और दुवङ में शाक्य मुनि की मूर्तियाँ हैं। मंदिर के प्रांगण में एक और बाहर में एक ध्वजा है। यह लदाख के हेमिस गोम्पा के अंतर्गत है। यहाँ से कैलास के दर्शन होते हैं। गोम्पा से ५० गज़ की दूरी पर दक्षिण दिशा में एक चट्टान की अंतरीप हाथी की सूँड़ की भाँति है, जहाँ एक छोटा सा मठ लङपोना के नाम पर बना हुआ है। गोम्पा के दक्षिण में विशाल मैदान है, जहाँ अधिक घास होने के कारण होर पुरङ के चरवाहे शीतकाल में याक और भेड़-बकरियों को चराने के लिये जाते हैं।

एक काँटेदार झाड़ी होती है, जिसके फल पीले तथा खाने में खट्टे होते हैं।

पोनरी गोम्पा[१] (८) (२५) २ मील पोनरी गोम्पा तक साधारण और कठिन चढ़ाई, यह मानसरोवर का पाँचवाँ मठ है, इसमें एक लामा और ५ डाबा रहते हैं।

१$\frac{3}{4}$ मील कठिन उतराई, कोजिनछुंगो के डेरे, पड़ाव की दीवालें।

२$\frac{1}{4}$ मील पलचेन छू तक मैदान में मंद उतार, इसमें लगभग दो या तीन फीट गहरा जल रहता है, यहाँ नदी को पार करें।

१$\frac{1}{2}$ मील पलचुङ छू, लप्चे, मणि-पत्थर, यहाँ इस नदी की तीन शाखाओं को पार करें, जिनमें से दो में दो-तीन फीट का गहरा जल रहता है।[२]

---

[१]यह गोम्पा हिमाच्छादित पोनरी शिखर (१९६६४ फीट) के तल में एक संकीर्ण घाटी में स्थित है। गोम्पा के चकङ में ल्हप्सेन और दुवङ में गेबा-चम्बा की मूर्तियाँ है। गोम्पा के बाहर एक ध्वजा है। यह मठ पूर्वी तिब्बत के सेरा महाविहार के अंतर्गत है। कंजूर की पोथियाँ हैं। इसमें यहाँ से कैलास के दर्शन तो नहीं होते, किंतु मांधाता के महान् शिखरों को प्रतिबिंबित करते हुए सरोवर का दृश्य दिखलाई पड़ता है। सरोवर यहाँ से लगभग ६ मील की दूरी पर है। सरोवर और पोनरी के बीच में कुक्यंल छुंगो, शम छो, और डिङ छो हैं। कुक्यंल छुंगो देवताओं के स्नान करने का तालाब है, और यह मानसरोवर का सिर माना जाता है।

[२]तरछेन से सीधा आया हुआ मार्ग यहाँ पर मिलता है, जिसका विवरण इस प्रकार है—तरछेन से झोङ छू ३ मील, तीन फीट गहरी नदी को पार करें, अवङ छू ३ मील; फिलुङ-कोङमा छू २ मील; फिलुङ-फरमा $\frac{3}{4}$ मील; फिलुङ-योङमा २$\frac{3}{4}$ मील; ग्युमा छू ३ मील, ढाई फीट गहरी नदी की दो तीन शाखाओं को पार करना; क्यो $\frac{1}{4}$ मील, डेरे कुगालुङ छू २$\frac{1}{2}$ मील; (योग १७$\frac{1}{4}$ मील, जो एक दिन में समाप्त किया जाता है) लुङनक छू ३$\frac{3}{4}$ मील; कुक्यंल छुंगो

$\frac{1}{4}$ मील डादुङजे, डेरे, पड़ाव की दीवाल, यहाँ पर शीतकाल में गड़रिये रहते हैं। $\frac{1}{2}$ मील पेगुर, डेरे, यहाँ शीतकाल में गड़रिये रहते हैं। १ मील समो छुङपां, दो फीट गहरी नदी को बाँई ओर पार करें। १ मील सरोवर का किनारा। १ मील सरोवर के किनारे-किनारे हवासेनी-मदङ तक मणि-दीवाल, सरोवर का दूसरा छुकछुल-गङ। $\frac{1}{2}$ मील सरोवर को छोड़ कर बाईं ओर चढ़ाई, लप्चे। $\frac{1}{2}$ मील अधित्यका।

२. सेरालुङ गोम्पा[1] (११$\frac{3}{4}$) (३६$\frac{3}{4}$) $\frac{1}{2}$ मील सेरालुङ गोम्पा तक उतराई, मानसरोवर का छठवाँ मठ, यहाँ १ अवतारी लामा और १६ डाब रहते हैं।

१$\frac{1}{4}$ मील सेरालुङ उपत्यका होकर सरोवर के किनारे तक उतराई, सेरा डोङखङ नामक एक टूटी-फूटी धर्मशाला है,[2] डेरे, मणि-दीवाल।

का प्रारंभ २$\frac{1}{2}$ मील (कुक्यंल छुंगो का झील लगभग २$\frac{3}{4}$ मी० लंबा है); पलचेन छू २$\frac{1}{4}$ मील; पलचुङ छू १$\frac{1}{4}$ मील; और सेरालुङ गोम्पा ६$\frac{1}{4}$ मील (योग १६ मील, दूसरे दिन समाप्त किया जाता है।)

[1]गोम्पा में पहुँचने के पहले मार्ग में सुंदर छोरतेनों और मणि-दीवालों की एक पंक्ति है। गोम्पा सेरालुङ-उपत्यका में दाहिने किनारे पर है। उसके चकङ में अप्‌ची और दुवङ में लोबन रिम्पोछे (पद्मसंभव), शाक्य थुब्बा (बुद्ध भगवान्) आदि की मूर्तियाँ हैं। सरोवर का तीसरा लिङ यहीं पर है। मंदिर के प्रांगण में एक ध्वजा है। यह गोम्पा डेकुङ मठ के अंतर्गत है। यहाँ मठ के अतिरिक्त तीन चार घर, एक डोङखङ और पाँच काले तंबू हैं। मठ की छत से कैलास के दर्शन तो नहीं होते, पर मंदिर के बाहर कुछ गज आने के बाद मानसरोवर और अस्तकालीन सूर्य और कैलास का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। इसके पास ही एक सुंदर जल का सोता है। मानसरोवर यहाँ से १$\frac{1}{4}$ मील है।

[2]यह स्थान हवासेनी-मदङ से (जहाँ से सरोवर को छोड़ कर सेरालुङ

१ मील सरोवर के किनारे-किनारे रिकसुम-गोम्बा (वज्रपाणि, अवलोकितेश्वर, और मंजुश्री के तीन टीले), यहाँ पर सेरालुङ गोम्पा से एक मार्ग सीधा आता है, जो लगभग १½ मील पर है, जिसमें आधे मार्ग रेत में होकर लुढ़कती हुई कठिन उतराई है।

२ मील सरोवर के किनारे-किनारे केतर डोङखङ तक, सूखे हुए डोमोशङ छू के किनारे पर सरोवर के पास ही पुरानी धर्मशाला है, मानसरोवर की परिक्रमा करते समय मैंने यहाँ पर चार-पाँच बार पड़ाव डाले।

¾ मील टेढ़ा-मेढ़ा और सूखा दंगुक-चमदोङ छू।

४⅛ मील टग छम्पो[1] तक कुछ दूर सरोवर के किनारे और कुछ आगे

गोम्पा जाते हैं) १ मील की दूरी पर है। हवासेनी-मदङ से लेकर सरोवर के किनारे किनारे ३ मील तक चेमानेङा नामक पंचरंग की रेत मिलती है, जिसे यात्री लोग प्रसाद रूप में लेजाते हैं। देखिए पृष्ठ ३१२।

[1]सरोवर से आधे मील ऊपर के स्थान में यह पार करने योग्य होता है। चौमासे में जल कभी-कभी पाँच या छः फीट तक बढ़ कर अलंघ्य हो जाता है। मानसरोवर से लगभग ४ मील की दूरी पर टग नदी के दाईं और बाईं ओर गर्म जल के सोतें हैं। इनके आसपास चौमासे में जिंबू (तिब्बती प्याज) काटने के लिये खंपा लोग कई दिनों तक डेरा डालते हैं। यहाँ से २ या ३ मील आगे नदी के बाएँ किनारे पर अवस्थित पुरूरव नामक स्थान पर सितंबर के पहले या दूसरे सप्ताह में सात-आठ दिन तक एक मंडी लगती है, जहाँ नेपाल के लिमी प्रांत के लोग अनाज और लकड़ी की बनी वस्तुएँ, और तिब्बती लोग नमक, थाक, आदि लेकर बेचने के लिये लाते हैं। यहाँ दो तीन भोटियों की भी दुकानें लगती है। यहीं से नदी के किनारे-किनारे होकर टग ला जाकर ब्रह्मपुत्र के उद्‌गम तक एक मार्ग जाता है, जो मानसरोवर से ६३ मील पर है।

टग छम्पो मानसरोवर में गिरने वाली नदियों में सब से बड़ी है। इसका उद्‌गम कङलुङ कङरी नामक हिमनदियों में है। कुछ लोग मानते हैं कि

थोड़ी-सी ऊँची-नीची भूमि में होकर, नदी को पार करें।

२ मील एक पहाड़ की नोक के ऊपर होकर कुछ चढ़ाई और उतराई, नीमापेंडी छू,[१] यहाँ नदी को पार करें।

½ मील नीमापेंडी की उपत्यका में होकर।

२ मील यहाँ रिलजुङ नामक छोटे छू तक सरोवर के किनारे-किनारे, छू को वा किनारे को पार करें, मणि-दीवालें और छोरतेन, रोवर सका तीसरा छकूछल-गङ।

येर्नगो गोम्पा[२] (१४¾) (५०½) १ मील येर्नगो गोम्पा, मानसरोवर का सातवाँ मठ, ५ डाबे, गोम्पा के पास ही रिलजेन छू को पार करें।

३. ठुगोल्हो गोम्पा[३] या ठोकर मंडी (८) (२¼) (५३¾) २¼ मील ठुगोल्हो

ब्रह्मपुत्र नदी मानसरोवर के पूर्व तट से निकलती है, परंतु यह धारणा सर्वथा भ्रमभूलक और निराधार है।

[१]नीमापेंडी की उपत्यका बहुत चौड़ी है। उपत्यका की दोनों ओर ऊँचे पहाड़ और अधित्यकाएँ हैं। सरोवर से एक मील की दूरी पर नोनोकुर नामक चरवाहों के डेरे हैं, जहाँ नदी की दोनों ओर २९ काले तंबू मील-भर तक लगते हैं। गर्मी में ये तंबू उपत्यका के उपरी भागों में तलिङ नामक स्थान में ले जाये जाते हैं।

[२]इस मठ के चकङ और दुवङ एक है उसमें गुरूरिम्पोछे की मूर्ति है। मंदिर से सटे हुए दो तीन घर हैं। यह साक्य गोम्पा के अंतर्गत है। यह मानसरोवर के किनारे ही स्थित है। गोम्पा के पश्चिम में पास ही रिलजेन छू बहती है। इस नदी में एक प्रकार के काले पत्थर हैं जिनके ऊपर मणि-मंत्र खोदे जाते हैं। गोम्पा के आस पास और कुछ आगे ठुगोल्हो गोम्पा के मार्ग में सुंदर मणि-पत्थरों के कई ढेर और दीवालें हैं।

[३]ठुगोल्हो, ठु=स्नान, गो=सिर, ल्हो=दक्षिण। यह मठ सरोवर के पास ही पूर्वाभिमुख स्थित है। तिब्बती लोग यहीं स्नान करते हैं। कम-से-कम अपने सिर को तो अवश्य धो लेते हैं। यहाँ तक कि भेड़ बकरियों के ऊपर भी

गोम्पा तक कुछ दूर डमाओं के बीच और कुछ दूर सरोवर के किनारे, मानसरोवर का आठवाँ मठ है, जिसमें १ लामा और ७ डाबा, रहते हैं, यहाँ से गोसुल गोम्पा तक मार्ग प्रायः सरोवर के किनारे से ही है।

पानी छिड़क देते हैं। यह सरोवर के मठों में सबसे प्रसिद्ध और प्रधान मठ हैं। चकङ में कङरी रह्प्स्रेन और दुवङ में दोर्जेछङ की मूर्तियाँ हैं। मठ के भीतर से पश्चिम का किवाड़ खोलने पर सामने कैलास का दर्शन होता है। यहाँ पर सरोवर का चौथा लिङ है। गोम्पा के प्रांगण और बाहर में ध्वजा है। यह और गोछुल गोम्पा सिंबिलिङ मठ की शाखा है। यहाँ के भिक्षु लोग सिंबिलिङ से प्रति तीन वर्ष पर नियुक्त किये जाते हैं। यहाँ के वर्तमान लामा का नाम नौ कुशोक ला (१६४० से १६४३ तक) हैं, जो एक टुलकू (अवतारी) लामा हैं। ये बड़े विद्वान् और सुयोग्य व्यक्ति हैं। लेखक सन् १६३६-३७ में वर्ष भर अपनी तपस्या के लिये यहीं ठहरा था, और प्रति वर्ष यहीं चातुर्मास में जाया करता है। लेखक की प्रेरणा से सन् १६३६ से यहाँ पर श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर एक वृहत् यज्ञ, भजन, और प्रसाद-वितरण तथा भोजादि समारोह होता है। १६४१ के अगस्त में यहाँ पर एक सुंदर यज्ञवेदी और मंडप श्री कनकदंडि नारायण शास्त्री, श्री गोपालकृष्ण शास्त्री, तथा श्री शंकर शास्त्री, के द्रव्य-सहायता से उनके पिता श्री विश्वपति शास्त्री जी के स्मारक में निर्मित कराया गया है।

गोम्पा के पास आठ घर और एक डोङखङ है। परंतु प्रायः गाँववाले बकरी के साथ चरागाह में रहते हैं। जुलाई और अगस्त के महीने में यहाँ एक अच्छी मंडी लगती है। उस समय ब्यांस और चौदाँस के भोटियों के १० या १५ तंबू लगते हैं। कुछ दिन के लिये १०-१५ खंपों के भी डेरे लगते हैं। यह ऊन कतरने का सबसे भारी केंद्र है। भोटिये लोग इसे ठोकर मंडी के नाम से पुकारते हैं। इस नाम का ठाकुर शब्द से कोई संबंध नहीं है। मठ की दक्षिण दिशा में मांधाता श्रेणी के दो छोटे शिखर हैं। इसमें दाहिने शिखर का नाम थुब्बारी है, जो ठुगोल्हो से लगभग ५½ मील पर है। इस शिखर के ऊपर से समस्त मान-सरोवर, टापुओं के सहित राक्षसताल, सामने का कैलास, और दूर तक का

कैलास का पीठ—पश्चिमी दृश्य

[देखो पृ० ३४५
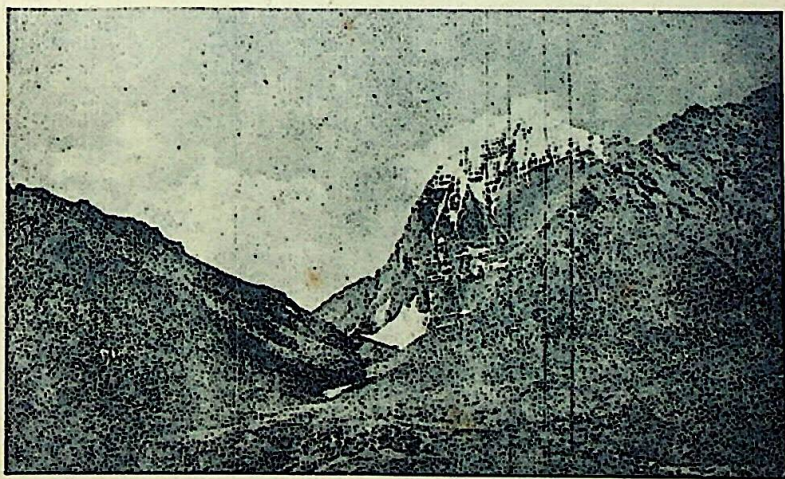
कैलास के वायव्य कोण का दृश्य

[देखो पृ० ३४५
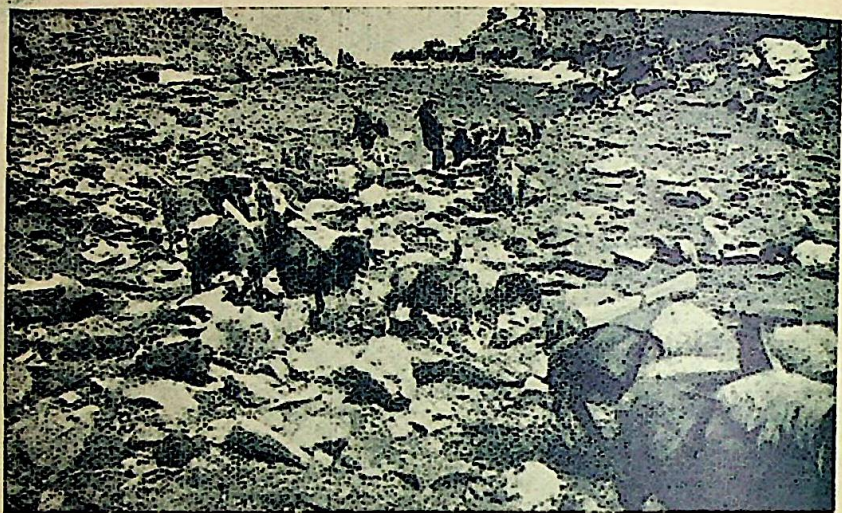
भोटिया व्यापारियों की भेड़-बकरियाँ लीपूलेख घाटा पार कर रही हैं

[देखो पृ० ३०२
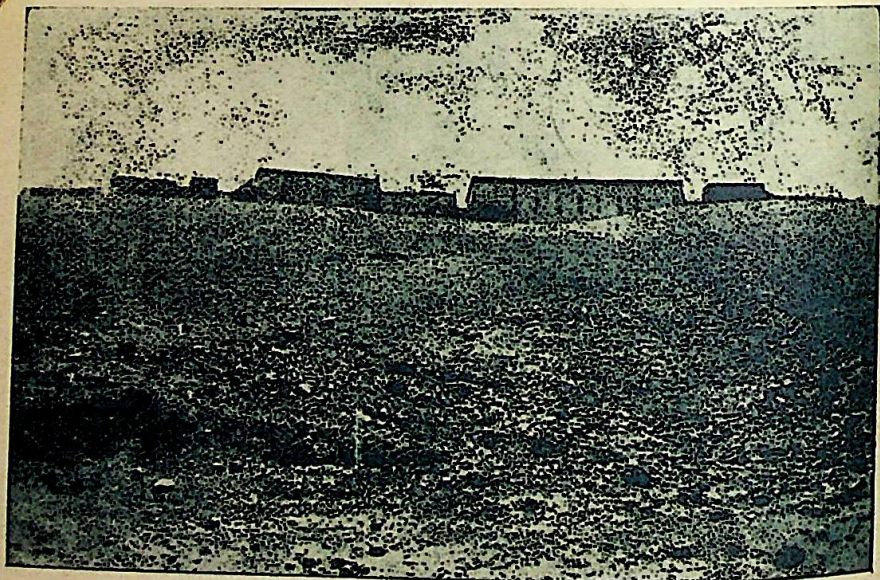
तकलाकोट—गोम्पा और जोङ, पीछे का दृश्य

[देखो पृ० ३०२
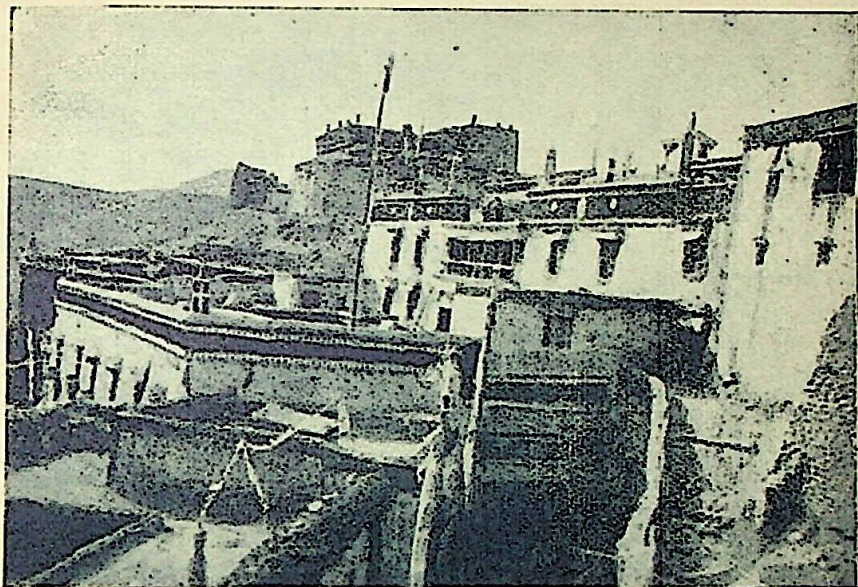
सिंबिलिङ गोम्पा, तकलाकोट

[देखो पृ० १७६

सिंबिलिङ गोम्पा के कुछ भिक्षु

[देखो पृ० १७६
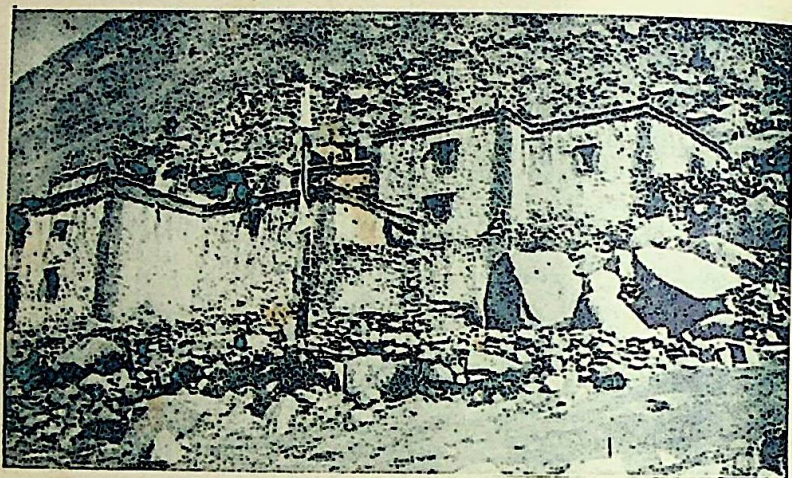
डिरफुक् गोम्पा—कैलास का दूसरा मठ

[देखो पृ० ३४६
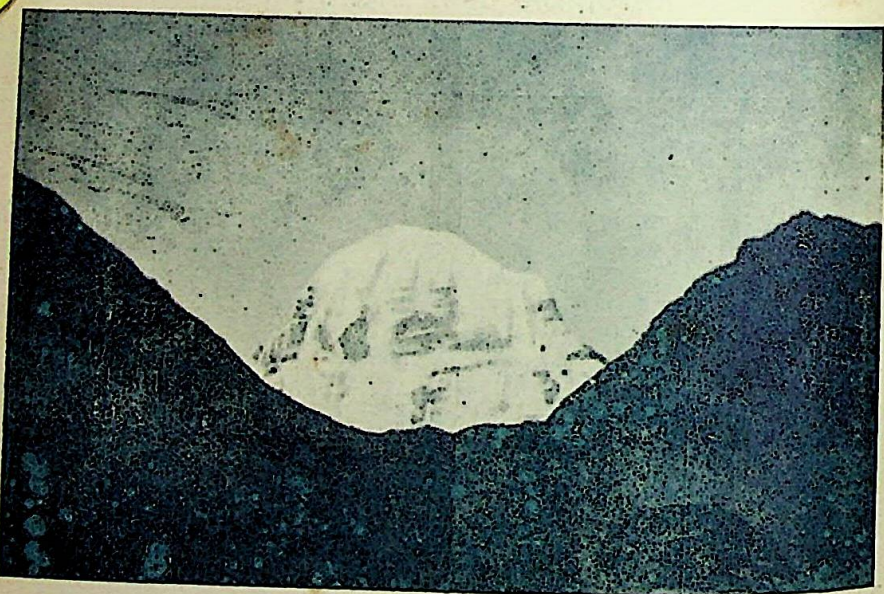
पूर्णिमा की चाँदनी में कैलास की दिव्य छटा

[देखो पृ० ३४७

½ मील अनुरा छू, छोटा-सा छू ।१¼ मील नमरेल्डी छू[१], यहाँ २-३ फीट गहरी नदी को पार करें। ¼ मील ठानदोवा, नमरेल्डी की एक शाखा । १¼ मील सेलुङ-हुर्दुङ छू, २ या ३ फीट की गहरी नदी को पार करें। सेलुङ-हुर्दुङ नदी अपने स्थान को प्रायः बदलती रहती है तथा कभी-कभी नमरेल्डी में मिलकर एक हो जाती है ।

१ मील मोमो दुनगू[२], टूटी-फूटी धर्मशाला की नींव । ¼ मील युशुप छो का प्रारंभ । २ मील युशुप छो[३] के दूसरे सिरे तक मार्ग सरोवर और

विशाल दृश्य अति रमणीक और नेत्ररंजक है। शिखर की पश्चिम दिशा में नमरेल्डी का कगारा दिखलाई पड़ता है। ठुगोल्हो से एक मार्ग सीधे गुरला ला को जाता है, जिसका ब्यौरा इस प्रकार है—ठुगोल्हो से नमरेल्डी छू २ मील, सेलुङ-हुरदुङ १¼ मील, (यहाँ से गुरला ला तक मंद चढ़ाई), गोगटा २½ मील, पड़ाव की दीवालें ३½ मील, गुरला ला ½ मील; योग ६¾ मील।

[१]इस नदी के ऊपरी कगारे में कई प्रकार के रंग-बिरंगे फूल हैं। यहीं पर दो सुंदर बर्फानी तालाब हैं, तथा वे गुफाएँ हैं जिनमें मानसरोवर के आस पास के लोगों ने उस समय में आश्रय लिया था जब जोरावर सिंह ने तिब्बत पर आक्रमण किया था। इस नदी के सिरे पर दो छोटे-छोटे सुंदर तालाब बर्फ के मध्य में हैं, जिनमें 'छूश्या' (जल-मांस) नामक एक शाक पैदा होता है। समीप में कैलास की धूप भी मिलती है। यहाँ से आगे चलकर पर्वत-माला पार करके तकलाकोट जा सकते हैं, किंतु मार्ग बहुत दुर्गम है।

[२]यहाँ पर गुड़ की भेली, और थू-जैसे तथा चाय की ईंट के आकार के एक प्रकार के पत्थर के सात ढेर तथा कुछ मणि-पत्थर भी हैं। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में भारत की सात कुमारियों ने इन्हें भारत से लाकर रक्खा था। यहाँ पर सरोवर का चौथा छुकछुल-गङ है।

[३]मानसरोवर के किनारे नैऋत्य कोण का यह छोटा सा धनुषाकार (शशुप) जलाशय लगभग २ मील लंबा और १००-२०० गज चौड़ा है। मानसरोवर और जलाशय के मध्य का अंतर लगभग ६० फीट का है जो छोटे-छोटे चिकने पत्थरों से

युशुप छो के बीच से जाता है, डेरे।

१ मील तक्शुर, मणि-दीवाल, बाईं ओर मार्ग से कुछ ऊपर तक्शुर के पड़ाव की दीवालें हैं, जहाँ शीतकाल में कुछ गड़रिये डेरे डालते हैं।

२$\frac{1}{4}$ मील गोछुल-ल्होमा, मार्ग के ऊपर पहाड़ पर एक छोरतेन के ऊपर गोछुल-ल्होमा (दक्षिण गोछुल), गड़रियों के शीतकाल के डेरे हैं, छोरतेन होकर पहाड़ ही पहाड़ गोछुल गोम्पा तक एक मार्ग जाता है, परंतु सरोवर के किनारे के मार्ग से ही जाना चाहिये।

४. गोछुल गोम्पा (१०$\frac{1}{4}$) (६४) $\frac{3}{4}$ मील सरोवर के किनारे-किनारे चलकर १०० गज ऊपर पहाड़ पर खड़ी चढ़ाई पार करने पर गोछुल गोम्पा में पहुँचते हैं, मानसरोवर[1] की परिक्रमा यहाँ पर समाप्त हो जाती है।

आकीर्ण है। जलाशय के कोण में एक और छोटा-सा जलाशय है। इन जलाशयों में ङङ्वा (हंस) आदि अन्य जल पक्षी बहुत रहते हैं। युशुप छो के जलाशय के मध्य से लेकर गोछुल गोम्पा से तीन फर्लांग आगे तक कैलास के दर्शन नहीं होते।

[1]मानसरोवर की परिधि ५४ मील है और यह दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में विशेष चौड़ा है। इसका पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी, और उत्तरी तट क्रम से १६, १०, १३, और १५ मील है। गहराई लगभग ३०० फीट तथा क्षेत्रफल लगभग २०० वर्गमील है। राक्षसताल की परिधि ७७ मील है, और क्षेत्रफल १४० वर्गमील है। मानसरोवर के किनारे पर ८ और राक्षसताल के किनारे पर एक मठ है। चातुर्मास में मलाठक से लेकर चेरकिप तक और तासालुङ से लेकर समो छम्पो तक छोड़कर सर्वत्र सरोवर के किनारे-किनारे आ-जा सकते हैं। शीतकाल में जब सरोवर जम जाता है तो सारे सरोवर की परिक्रमा किनारे-किनारे कर सकते हैं। पूर्ण विवरण के लिये देखिए प्रथम तरंग।

तालिका ४

तकलाकोट से खोचारनाथ

—१२ मील

तकलाकोट (०) (०) दे० ३०३, ३३८। $\frac{१}{२}$ मील चढ़ाई, एक नया छोरतेन।

गुकुङ ($\frac{१}{२}$) ($\frac{१}{२}$) $\frac{३}{४}$ मील तक कठिन उतराई, गुफाओं में घर, गोम्पा, यहाँ पर पुल से करनाली को बाईं ओर को पार करें।

डंगेछिन छू ($\frac{१}{४}$) नदी को पुल से बाईं ओर पार करें। डंगेछिन गाँव नदी के ऊपर एक मील की दूरी पर है। यहाँ से गेजिन तक मार्ग में स्थान-स्थान पर मणि-दीवालें और छोरतेन हैं। मार्ग के दोनों ओर खेत और गाँव हैं।

किरोङ ($१\frac{१}{४}$) (२) मार्ग के पास ही बाईं ओर एक गोम्पा है।[1]

गेजिन छू (१) (३) नदी को बाईं ओर पार करें।

गेजिन[2] ($\frac{१}{४}$) ($३\frac{१}{४}$) गाँव मार्ग के दोनों ओर स्थित है।

---

[1] बहुत वर्ष पहले यहाँ पर एक गोम्पा था, जिसके जीर्ण होने पर सिंबिलिङ गोम्पा के अवतारी लामा नौकुशोक ने आज से २० वर्ष पहले इसका निर्माण कराया। देवागार में चंबा, जम्बयङ लुबजङदारा, और डोलमा की मूर्तियाँ हैं। फसल के दिनों में अन्न एकत्रित करने के लिये उक्त लामा गुरु २०-२५ डाबाओं के साथ आकर यहाँ दो मास तक ठहरते हैं।

[2] गाँव के समीप मार्ग से बाईं ओर १०० गज की दूरी पर दीपंकर श्रीज्ञान का पादचिह्न है। ठीक सामने करनाली नदी के पार एक पर्वत की चोटी पर सिद्धीखर नामक गोम्पा है, जो सिंबिलिङ की शाखा है। उस गोम्पा से तकलाकोट और खोचार के मध्य में स्थित करनाली नदी की घाटी का सुंदर दृश्य देखने में आता है। पहले वहाँ एक बड़ा दुर्ग था जिसको १८५४ में गोरखों

डुप छू (१) मार्ग की बाईं ओर दीपंकर श्रीज्ञान द्वारा निर्मित एक छोटा सा स्रोत है। यहाँ से कङजे तक खेती नहीं होती।

कङजे छू (२¾) (८) यहाँ से नदी को बाईं ओर पार करें।[1]

१ मील कड़ी चढ़ाई, एक बड़ा लप्चे। यहाँ से खोचार तक ज्वाला-मुखी पर्वत का अवशेष मालूम होता है।

२ मील तक बीच-बीच में चढ़ाइयों के साथ उतराई, पुराने छोरतेन, मणि, लप्चे, और मंडल हैं। यहाँ से खोचार गोम्पा का प्रथम दर्शन होता है।

ने विध्वंस कर दिया। ६ फीट मोटी और २५ फीट ऊँची दीवालों के खंडहर अभी विद्यमान हैं। इसके समीप में कई गाँव हैं, जिनमें अधिकांशतः खेती होती है। वहाँ जाने के लिये सीधा तक्लाकोट से ही करनाली नदी के दाहिने किनारे से जाना पड़ता है, क्योंकि यात्रा के दिनों में करनाली नदी को पार करना प्रमादयुक्त है।

तक्लाकोट से सिद्दीखर ५ मील है। सिद्दीखर से लुक्पू नामक गाँव लगभग ६ मील है। वहाँ से खितुरफुक् ६ मील पर है। खितुर में एक फुक् या गुफा है, जिसमें एक समय एक कुत्ता भीतर जाकर अदृश्य हो गया और कुछ काल बाद नेपाल में निकला। (खी=कुत्ता, तुर=भाग गया या अदृश्य हो गया) कुष्ट रोगी इस गुफा के दर्शन के लिए जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि उस गुफा में जाने से कुष्ट रोग छूट जाता है या कम से कम बढ़ नहीं सकता। लुक्पू से खितुर तक का मार्ग बहुत चढ़ाई-उतराई का है। वहाँ से एक मार्ग खोचार को भी जाता है, जो लगभग १० मील की दूरी पर है।

[1] नदी के दोनों किनारों पर कई पनचक्कियाँ हैं। मार्ग से ऊपर नदी की घाटी में चङमा नामक कई पेड़ हैं। नदी के बाएँ तट पर मार्ग के दोनों ओर कङजे नामक गाँव है, उसमें खेत अधिक हैं। मार्ग में बहुत सी धर्मशालाएँ भी हैं। मार्ग की बाईं ओर के गाँव में एक गोम्पा है, जो पूर्वी तिब्बत के छङ-सुंगलिङ विहार की एक शाखा है।

लालुङ्वा छू (३१/४) (११ १/४) मील, यहाँ से फिर खेत प्रारंभ हो जाते हैं, नदी को बाईं ओर पार करें।

१. खोचारनाथ (३/४) (१२) तिब्बती लोग इसको केवल खोचार कहते हैं। देखिए पृष्ठ १७६।

तालिका ५

तकलाकोट से कैलास (तरछेन)

ज्ञानिमा मंडी और तीर्थपुरी होकर—१११ मील

तकलाकोट (०) (०) देखिए पृष्ठ ३०३, ३३८।

तोयो (३) गाँव, यहाँ पर जोरावर सिंह की समाधि है, और खेत हैं।

देलालिङ (१/४) गरु छू को पुल से पार करें, देलालिङ का गाँव, यहाँ पर लामा ङुटुप का एक बड़ा छोरतेन है। आगे का मार्ग करनाली के किनारे-किनारे है।

लीँ (२) तोय का एक छोटा गाँव, खेत, लाँ नदी को पार करें।

छुरकुती (१ १/४) यहाँ पर गर्म जल का एक सोता था, जो अब सूख गया है, ठीक सामने करनाली के पार कुनकुने गर्म जल का एक सुंदर सोता है।

सलुङ का डेरा (१ १/२) करनाली के पार दाहिने किनारे पर सलुङ नामक तीन चार घर का एक गाँव है, खेत।

रोनम (१ १/२) मार्ग से २ फर्लांग ऊपर तीन घर का गाँव है, खेत, नदी के पार दोह का गाँव, जहाँ खेत हैं।

रिंगुंग छू (१) यहाँ रिंगुंग छू पार करें।

मप्छू या करनाली (१/४) ३ या ४ फीट की गहराई वाली वेगवती करनाली नदी के दाहिने किनारे को पार करें, १ मील चलने के बाद नदी के बाएँ किनारे पर खेत से भरे हुए दुङमर का गाँव दिखलाई पड़ता है।

हरकोङ छू और करनाली का संगम (१ १/४) मार्ग के नीचे पड़ाव की दीवालें, कुछ खेत और उसके नीचे संगम, यहाँ से करनाली का किनारा छोड़ कर हरकोङ छू के किनारे-किनारे जाना चाहिये।

१. हरकोङ (२ १/४) (१४ १/४) गाँव, तीन घर, कुछ काले तंबू, थोड़े खेत।

उर ला (६ ३/४) अंत में पौन मील की कड़ी चढ़ाई, लप्चे।

मप्चा चुंगो (२) (२३) प्रारंभ में पौन मील की उतराई, मणि-दीवालें।[1]

मप् छू (२) यहाँ पर ३ या ४ फीट गहरी वेगवती मप् छू को पार करे।

२. अनलङ (३ ३/४) (२८ ३/४) अनलङ या अमलंङ, डेरे, पड़ाव की दीवालें।

शींगलप्चे ला (१ १/२) अंत में एक मील की कड़ी चढ़ाई।

छू जू (छूजा) (७) प्रारभ के एक मील तक कठिन उतराई के बाद नदी को पार करें, कई काले तंबू।

छू जू ला (२ ३/४) अंत के दो मील में कड़ी चढ़ाई।

छकरा मंडी[2] (४) (४४) प्रारंभ के दो मील में बहुत कठिन उतराई।

---

[1] मार्ग से दाहिनी ओर करनाली के तट के तल से एक बड़ा सोता तीव्र वेग से निकलता है, जिसका नाम मप्चा चुंगो (मयूर का मुख) है। यह करनाली का उद्गम माना जाता है। सोते का पानी हरी-हरी घासों के ऊपर से होकर नदी में गिरता है। घास का रंग मयूर-कंठ के वर्ण का है। करनाली की हिमनदी-उद्गम (ग्लेशियल सोर्स) लम्पिया घाटा के पास है, जो यहाँ से लगभग दो दिन के मार्गपर है। मप्चा चुंगो से लगभग दो मील पर बाईं ओर के पहाड़ पर प्रसिद्ध मशङ या मङशम गोम्पा नामक लाल टोपी शाखा के बौद्ध धर्मावलंबियों का है, इसमें १९४० ई० के अगस्त महीने में ६ वर्ष के एक अवतारी लामा को गद्दी पर बिठाया गया है। मठ की गद्दी पर बैठने वाले दूसरे लामा यही हैं।

[2] यहाँ दारमा के भोटियों की बड़ी मंडी है। परंतु कुछ जोहारी भी इस मंडी में आते हैं। मंडी अगस्त और आधे सितंबर तक लगती है। यहाँ पर एक पेय जल का स्रोत तथा एक भारी तालाब है, जिसके चारों ओर शोरा है।

३. ज्ञानिमा मंडी[1] (५) (४६) [१५१००] इसे खरको भी कहते हैं।
ज्ञानिमा रप (४½) यहाँ तक मार्ग श्वेत शोरा की दल-दल भूमि में होकर जाता है, तीन चार फीट गहरे पानी को पार करें, यहाँ से दारमा याङ्ती नदी का उद्गम दो दिन के मार्ग की दूरी पर है।
एक कम ऊँचाई का घाटा (३¼) अंत में पौन मील की कड़ी चढ़ाई।
छूरूलबा ला (५) प्रारंभ में ¼ मील तक कठिन उतराई तथा अंत के २¼ मील में बहुत कड़ी चढ़ाई पड़ती है।
शिठुम (३) (६४¾) अंत तक उतराई है, परंतु प्रारंभ में ½ मील तक कठिन उतराई, डेरे, पहाड़ों के बीच में एक चौबटिया, संकुचित स्थान है, एक छोटा सोता, यहाँ प्रायः डाकुओं का भय रहता है।
तरा ला (३) घाटे तक चढ़ाई। ५ मील एक नदी के सूखे पाट तक बहुत

इस तालाब से निकल कर एक छू ज्ञानिमा के तालाब में गिरता है। यह मंडी परखा-तसम के शासन के अंतर्गत है। जिस पहाड़ के तल में मंडी लगती है, उसके शिखर से कैलास का भव्य दर्शन होता है।

[1]ज्ञानिमा पश्चिमी तिब्बत की सभी मंडियों में बड़ी है। यहाँ ५०० या ६०० तंबू लगते हैं। यह प्रधानतया जोहारियों की मंडी है। परंतु सभी घाडे और सभी स्थानों—दारमा, ब्याँस, नीती, माना, नीलंग, रामपुर, रुदोक, कुल्लू, लदाख, काश्मीर, ल्हासा, नेपाल, पुरङ, आदि—के व्यापारी यहाँ आते हैं। इस मंडी में हरे साग के अतिरिक्त कलकत्ते के बाजार की सभी वस्तुएँ मिलती हैं। मंडी जौलाई और अगस्त के महीने में एक छोटे से पहाड़ के दोनों ओर लगती है। यहाँ स्वच्छ जल के कई सोते हैं। समीप ही एक छोटी-सी नदी है जो कुछ दूर आगे जाकर एक चौड़े तालाब सी बन जाती है। मंडी के चारों ओर शोरा पाया जाता है। मंडी के पूर्व के पहाड़ के उत्तरीय छोर पर जोरावर सिंह के तोड़े हुए एक पुराने किले के खंडहर हैं। पहाड़ के शिखर से कैलास के दर्शन होते हैं। पश्चिमी तिब्बत के सभी प्रधान स्थानों और घाटों को यहाँ से मार्ग जाता है। यह दापा जोङ के शासन के अंतर्गत है।

कठिन और लगातार उतराई पड़ती है । ३ मील सतलज के किनारे तक नदी के पाट से होकर । १/४ मील सतलज के किनारे-किनारे जाकर ३ या ४ फीट गहरी वेगवती सतलज को पार करें ।

५. तीर्थपुरी गोम्पा[1] (८ १/४) (७६) [१४६००] कुछ तिब्बती लोग इसे टेटापुरी भी कहते हैं । देखिए पृ० ३०६ ।

ट्रोकपो-नुप छू (५ १/४) २ या ३ फीट गहरी नदी को पार करें, इसके दोनों ओर डेरे ।

ट्रोकपो-शर छू[2] ३ या ४ फीट की गहरी वेगवती नदी को पार करें; (यहाँ से सतलज के दोनों ओर मार्ग है) ।

---

[1]यहाँ से सीधा न्यनरी गोम्पा जाने के मार्ग का विवरण इस प्रकार है—तीर्थपुरी से ट्रोपो-नुप् छू ४ १/४ मील; ट्रोकपो-शर ३/४ मील; गोयक छू २ मील; चुकटा छू ७ १/२ मील, यह दो या तीन फीट गहरी नदी है, योग १४ १/२ मील है; यह पहले दिन का मार्ग है । दूसरे दिन का मार्ग—चुकटा से शरला-चकङ २ १/२ मील है; शर ला ३/४ मील, लप्चे, यह नाममात्र का ला है । यहाँ पर एक पहाड़ है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वैशाख पूर्णिमा के दिन कैलास की छाया इस पर गिरती है । इस पहाड़ की लाल मिट्टी को तिब्बती लोग प्रसाद रूप में ले जाते हैं, जो पशु रोगों में औषधि का काम देती है । ३/४ मील करलेप छू, लप्चे; १/१६ मील लपचे; ३/१६ मील लप्चे, मंडल की कतारें, एक दो फीट गहरी करलेप छू को पार करें; १ १/४ मील करलेप की एक छोटी सी शाखा; १/४ मील दलदल भूमि पर; १ मील पर करलेप छू की प्रधान नदी, दो या ढाई फीट की गहरी इस नदी को पार करें; १ १/४ मील डेरे; १ १/४ मील एक छू; १/४ मील एक और छोटी छू; १/४ भीतर एक और छोटी छू; १/८ मील कड़ी चढ़ाई, लप्चे; १/८ घाटे के ऊपर, छकछल-गङ, मंडल, यहाँ से ल्हा छू और कैलास दिखाई पड़ता है; १/२ मील ल्हा छू के तट तक बहुत कठिन उतराई; १ १/४ मील न्यनरी गोम्पा, योग ११ ३/४ मील है । तीर्थपुरी से न्यनरी कुल २६ १/४ मील है और तीर्थपुरी से तरछेन २८ मील है ।

सतलज (२) गोयक नामक नदी सतलज के दाहिने किनारे पर मिलती है।
सतलज के बाएँ किनारे को पार करें, जो २-३½ फीट गहरा है।

चुकटा (४) यह नदी भी सतलज के दाहिने किनारे पर मिलती है, इस नदी का पाट बहुत चौड़ा है और यह कई शाखाओं में बहती है; यहाँ से ऊपर चलकर सतलज का स्वरूप खेतों को सींचनेवाली एक पतली नहर की भाँति हो जाता है, यहाँ नदी थोड़ी दूर तक दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। १ मील आगे सतलज को दाहिनी ओर पार करें।

६. दुलचू गोम्पा (२) (६०¾) [१४८२०] १ मील (?) आगे दुलचू गोम्पा सतलज के दाहिने किनारे पर स्थित है, गोम्पा से एक फलांग की दूरी पर दलदल में स्थित स्रोतों में सतलज का परंपरागत उद्गम-स्थान है, देखिए पृष्ठ ३०६, तालिका ६।

चङजे-चङजू (८¼) डेरे, पड़ाव की दीवालें।

करलेब छू (७½) यहाँ २ या २½ फीट गहरी नदी को बाएँ किनारे पर पार करें।

ल्हा छू (३) २½ या ३ फीट गहरी वेगवती नदी को बाएँ किनारे पर पार करें।

७. कैलास (तरछेन) (२½) (१११) देखिए पृष्ठ ३४४।

तालिका ६

तकलाकोट से तीर्थपुरी

सीधा मार्ग—६५ मील

तकलाकोट (०) (०) देखिए पृष्ठ ३३८ और तालिका ५।

रिंगुग छू (१०½) ,, ,,

१. मप् छू (¾) (११¼) करनाली नदी का बायाँ तट।

$\frac{1}{2}$ दुङ्मर छू दुङ्मर का गाँव[1] यहाँ से $\frac{1}{2}$ मील की दूरी पर है।

$\frac{1}{2}$ मील यहाँ से ठीक सामने करनाली के पार हरकोङ छू है, जिसकी बाईं ओर और करनाली के दाहिने तट पर गर्म पानी के कुछ सोते हैं। $\frac{3}{4}$ मील बलडक छू, यहाँ से गुरला छू तक दलदल भूमि है। यहाँ घुड़सवार को सावधानी से चलना चाहिये, हो सके तो उतर कर चलें, क्योंकि प्रायः घोड़े कीचड़ में धँस जाते हैं।

गुरला छू[2] (२$\frac{3}{4}$) (१४) १ मील १$\frac{1}{2}$ या २ फीट गहरी नदी के दाहिने किनारे को पार करें। यहाँ से कुछ नीचे चलकर गुरला छू करनाली में मिलती है। १$\frac{3}{4}$ मील करनाली के किनारे-किनारे, नदी छोड़ कर दाहिने ओर १ फलाँग जाने पर एक लप्चे।

$\frac{3}{4}$ मील उपत्यका पर। $\frac{1}{4}$ मील उतार, रो नामक स्थान, खेत। २ मील ग्युङडी, यहाँ दलदल भूमि में कुछ सोते हैं। $\frac{3}{4}$ मील छमी, करदुङ गाँव के खेत हैं, यहाँ से $\frac{3}{4}$ मील आगे करनाली को बाईं ओर छोड़कर छिबरा छू के किनारे-किनारे ऊपर जाना चाहिये।

२. छिपरा पड़ाव (१०) (२४) ४$\frac{1}{2}$ मील छिपरा छू के किनारे पर पड़ाव है।

छिपरा ला (२) २ मील कड़ी चढ़ाई, लप्चे, तरचोक, यहाँ से मांधाता और धौली की हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ दिखलाई पड़ती हैं।

२ मील छिपरा दो तक कुछ दूर बहुत कड़ी फिर कुछ कम कड़ी उतराई

---

[1] दुङ्मर से बुरफू एक मील और पुरबू से बलडक ४ मील है।

[2] यहाँ से लगभग १$\frac{1}{2}$ मील ऊपर गुरला छू के बाएँ किनारे करदुङ (कर = सफेद, तुङ = शंख) नामक एक गाँव है। यहाँ पर परखा तसम शीतकाल में रहता है, ७-८ घर हैं, पर्याप्त खेत हैं। एक छोटे-से पहाड़ की चोटी पर एक गोम्पा है, जो लगभग बीस वर्ष पहले निर्मित हुआ था। यह मशाङ गोम्पा की शाखा है। गोम्पा की चकङ डोलमा दुबङ में शाक्य थुब्बा की मूर्ति है। दूसरे भवन में चार बड़े-बड़े मणि-चोंगे हैं। सौ वर्ष पहले यहाँ पर एक जोङपोन होते थे, जोरावर सिंह ने यहाँ के दुर्ग का विध्वंस कर दिया था।

है। बाईं ओर की दून अनलङ को और दाहिने ओर की राक्षसताल को जाती है। $\frac{3}{4}$ मील एक ला तक चढ़ाई, लप्चे, यहाँ से कैलास के दर्शन होते हैं। २ मील ग्येकुङ तक कुछ दूर बहुत कड़ी और कुछ दूर कड़ी उतराई है।[1] $\frac{1}{4}$ मील मैदान। $\frac{1}{4}$ मील से अधिक चढ़ाई, लप्चे। $\frac{3}{4}$ मील उतार, लप्चे, मांधाता दिखाई पड़ता है। $\frac{1}{4}$ मील बहुत कठिन उतराई। १ मील विशाल मैदान (अंत में राक्षसताल और ज्ञानिमा मार्ग की काट)। $\frac{1}{2}$ मील मंद चढ़ाई। $\frac{1}{4}$ मील मंद उतराई डेरे। $\frac{1}{4}$ मील मंद उतराई। १ मील पर्वत के नीचे एक विशाल मैदान के किनारे-किनारे।

३. युपचा[2] (९$\frac{1}{4}$) (३५$\frac{1}{4}$) छोटे-छोटे सोते हैं और चारों ओर विशाल मैदान है।

२$\frac{1}{2}$ मील एक ला तक मंद चढ़ाई; राक्षसताल, मांधाता नंदादेवी, और त्रिशूल की चोटियाँ दिखाई पड़ती हैं। $\frac{1}{2}$ मील बहुत कड़ी उतराई।

२$\frac{1}{4}$ मील मैदान (उस मैदान का जल राक्षसताल में जाता है।)

छुलम ला (६$\frac{1}{4}$) १ मील मंद चढ़ाई, इसे थलम ला भी कहते हैं, कैलास के दर्शन, ज्ञानिमा-कैलास मार्ग की काट (छूमिकशला यहाँ से ३ मील क दूरी पर है।)

२ मील सामान्य, कठोर, और मंद उतराई, डेरे।

$\frac{1}{2}$ मील कड़ी और मंद उतराई। एक सूखा नाला, जो छूमिकशला नाले में मिलता है, छूमिकशला आगे सतलज में जाकर मिलती है।

३ मील मैदान में दोमरा तक, एक लाल पर्वत के अग्रभाग के नीचे

---

[1] पर्वतों के मध्य में चारों ओर फैला हुआ यहाँ एक विशाल मैदान है। मैदान के बीच में एक छोटा-सा नाला बहता है। बरसात में होरग्येवा वालों के तंबू यहाँ लगते हैं। बाईं ओर का मार्ग अनलङ और दाहिनी ओर का टक्-करपो जाता है।

[2] यहाँ से $\frac{3}{4}$ मील आगे दाहिनी ओर एक छोटा-सा पहाड़ है। उसका रंग 'यु' (पिरोजा) जैसा नीला है, इसलिये इस स्थान का नाम युपचा पड़ गया।

मणि-दीवालें हैं ।

सतजल (८) २$\frac{1}{2}$ मील एक पर्वत के किनारे-किनारे ।

१ मील टेढ़-मेढ़ो सतलज के बाएँ किनारे दलदल भूमि होकर, यहाँ पर सतलज ६ फीट चौड़ी है, २ फीट गहरी सतलज के दाहिने किनारे को पार करें ।

लङ्चेन खम्बब् (१$\frac{1}{4}$) $\frac{1}{4}$ मील दल-दल भूमि में, ५० गज लंबे-चौड़े दलदल भूमि में कुछ सोते हैं, जो तिब्बती पुराणों के अनुसार सतलज के उद्‌गम माने जाते हैं। राक्षसताल से यहाँ तक सतलज नदी छोलुङ्बा के नाम से भी पुकारी जाती है।

४. दुलचू गोम्पा ($\frac{1}{4}$) (५१) $\frac{1}{4}$ गोम्पा, दे० ३०८ ।

$\frac{3}{8}$ मील सतलज के बाएँ किनारे को पार करें ।

$\frac{1}{8}$ मील गोम्पा के पास रहने से यहाँ डेरा डालने में विशेष सुविधा होती है ।

$\frac{1}{2}$ मील तक सतलज एक तालाब-सी बन जाती है ।

चुकटा छू[1] (२) $\frac{3}{4}$ मील । $\frac{1}{2}$ मील पर्वतों के मध्य में । १$\frac{1}{2}$ मील के बाद लप्चे, अंत में १ फर्लांग कड़ी चढ़ाई । १$\frac{1}{2}$ मील एक सूखा नाला ।

सतलज (४) $\frac{1}{2}$ मील २—३$\frac{1}{2}$ फीट गहरी और वेगवती सतलज के दाहिने

---

[1]यह नदी कैलास पर्वत-माला से आकर सतलज के दाहिने किनारे पर मिलती है । इसका पाट $\frac{3}{4}$ मील चौड़ा है। यह कई शाखाओं में बहती है और सतलज से लगभग १० गुना अधिक पानी लाती है । बरसात में कभी-कभी सतलज से ४० गुना बढ़ जाती है । यहाँ तक सतलज का स्वरूप खेतों को सिंचानेवाली एक छोटी सी नहर की भाँति है ; चुकटा के मिलने के बाद सतलज सचमुच हिमालय की अन्य नदियों के वैभव को प्राप्त करती है, और बहुत वेग से बहती है । यहाँ से $\frac{1}{2}$ मील तक नदी ऊँची पर्वत-मालाओं के मध्य बहुत संकीर्ण घाटी में बहती है । वहाँ एकदम बहुत सुंदर और गंभीर हो जाती है । इस घाटी में जाते समय मनुष्य एक अलौकिक आनंद का अनुभव करता है ।

किनारे को पार करें। यहाँ से आगे लगभग २ मील तक सतलज के विशाल दून में (इस स्थान को शकारीजे कहते हैं) चौमासे में गड़रियों के कई तंबू लगते हैं, क्योंकि नदी के दोनों ओर दलदल भूमि और चरागाहे हैं।

ट्रोपो-शर छू[1] (२) २ मील यहाँ तक मार्ग दलदल भूमि में है, सतलज का मनोरम दृश्य है। दे० तालिका ५। ¼ मील कड़ी चढ़ाई, लप्चे। ¼ मील ऊँची-नीची। ¼ मील कड़ी उतराई।

ट्रोपो-नुप (३¼) यह भी एक वेगवती नदी है जो ३ फीट गहरी है, दाहिने किनारे को पार करें। ¾ मील कड़ी चढ़ाई, लप्चे। २½ मील उपत्यका, खंडोमा नामक मंडलों का एक गोल। १½ मील उपत्यका पर, एक सूखा नाला। ½ मील सूखा नाला।

५. तीर्थपुरी (५¼) (६५) ¼ मील तीर्थपुरी गोम्पा। देखिए पृष्ठ ३०६।

तालिका ७

कैलास (तरछेन) से ज्ञानिमा मंडी

—३८ मील

कैलास (तरछेन) (०) (०) देखिए पृष्ठ ३४४।

---

[1] इसे टोकपो-शर भी कहते हैं। यह बहुत वेगवती नदी है, और ४ फीट गहरी है। कुछ यात्री इस नदी के बाएँ किनारे पर डेरा डालकर तीर्थपुरी होकर शाम को वापस लौट आते हैं। ऐसा करने में ट्रोपो-शर और ट्रोपा-नुप इन दोनों नदियों को सारे घोड़े और सामान लेकर दो बार पार करने के कष्ट से बच जाते हैं। सतलज और ट्रोपो-शर का संगम यहाँ से बहुत समीप है और खड़ी दीवालों के पर्वत की मध्य में है।

ल्हा छू (२$\frac{१}{४}$) २$\frac{१}{२}$ या ३ फीट गहरी वेगवती नदी के दाहिने किनारे को पार करें।

खलेब छू (३) २$\frac{१}{२}$ फीट गहरी नदी को दाहिने किनारे पर पार करें।

सतलज (८$\frac{३}{४}$) यहाँ एक फुट गहरी सतलज को बाएँ किनारे पर पार करें।

लेजेन्डक या ललिङटक ($\frac{१}{२}$) डेरे, यहाँ सतलज को दाहिनी ओर छोड़कर मार्ग से दाहिनी ओर पहाड़ में बड़ी-बड़ी गुफाएँ हैं, यहाँ प्रायः डाकुओं का भय रहता है।

ललिङटक ला ($\frac{३}{४}$) चढ़ाई, लप्चे।

१. छूमिक्शला (६$\frac{१}{२}$) (२१$\frac{३}{४}$) डेरे, छोटा-सा नाला, मार्ग में दाहिनी ओर दूर में दुलचू गोम्पा दिखाई पड़ता है।

छुलम ला (३) लप्चे, यहाँ तक कैलास के दर्शन होते हैं। यहाँ से एक मार्ग दुलचू जाता है, जो ६$\frac{१}{२}$ मील पर है।

रन्दक छू (४) एक छोटा सा छू, डेरे।

पसालुङ ला (१) चढ़ाई।

पसालुङ (३) प्रारंभ में $\frac{३}{४}$ मील तक कड़ी उतराई, डेरे।

रप[१] (४) २ या ३ फीट गहरे रप को पार करें। रप बहुत दलदल है।

२. ज्ञानिमा मंडी (१$\frac{१}{४}$) (३८) एक पहाड़ पर चढ़कर दूसरी ओर उतरें और दलदल भूमि से होते हुए एक छोटी सी नदी को पार करें, ज्ञानिमा मंडी, देखिए तालिका ५।

---

[१]नदी को पार करने का योग्य स्थान।

तालिका ८

अलमोड़े से लीपूलेख घाटा, तकलाकोट, ज्ञानिमा मंडी, और तीर्थपुरी होकर कैलास, कैलास-परिक्रमा, मानसरोवर परिक्रमा और गुरला ला होकर खोचारनाथ और गर्ब्यांग होते हुए अलमोड़े लौटने तक के सम्पूर्ण यात्रा की संक्षिप्त तालिका—६०० मील

स्थान का नाम	दो स्थानों के अंतर	कुल दूरी मील
अलमोड़ा	०	०
१. बाड़े छीना	८½	८½
धौल छीना	५	
बुंगा	२½	
कनारी छीना	२¾	
२. सेराघाट	५¼	२४
गणाई	६	
बाँसपटान	६	
सुकुल्याड़ी	३	
३. बेरीनाग	३¼	४२¼
गड़तिर	२½	
४. थल	७	५१¾
सान्देव	७¾	
५. डीडी हाट	२½	६२
अस्कोट	७	
६. जौलजीबी	५	७४
बलुवाकोट	६½	
७. धारचूला	१०	९०½
तपोवन	२	
८. खेला	८	१००½
पंगु	६	
९. सोसा	३	१०९½
सिरदंग	२¼	
सिरखा	½	
१०. जीबती	११	१२३¼
निजङ जलप्रपात	५¾	
११. मालपा	२½	१३१½
बुदी	८¾	
१२. गर्ब्यांग	५	१४५¼
१३. कालापानी	११	१५६¼
लीपूलेख घाटा	९¼	१६५½
पाला	६	
१४. तकलाकोट	५¼	१७६¾
तोयो	३	

	स्थान	दूरी	कुल
	मप् छू या करनाली	७¾	
१५.	हरकोङ	३½	१६१
	मयूचा चुंगो	८¾	
	मप् छू	२	
१६.	अनलङ	३¾	२०५¼
	शिंगलप्चे ला	१½	
	छूजू ला	६¾	
	छकरा मंडी	४	
१७.	ज्ञानिमा मंडी (खरको)	५	२२५¾
	ज्ञानिमा रप	४½	
१८.	शिठुम	११¼	२४१½
	तरा ला	३	
१९.	तीर्थपुरी	८¼	२५२¾
	ट्रोकूपो-शर छू	६	
२०.	दुलचू गोम्पा	८¾	२६७½
२१.	कैलास (तरछेन)	२१½	२८८¾
	न्यनरी गोम्पा	५	
२२.	डिरफुक् गोम्पा	७¼	३०१
	डोलमा ला	४	
	गौरीकुंड	¼	
	जुं ठुलफुक् गोम्पा	६¼	
२३.	झोङ छू	३	३१७½
	ग्युमा छू	११½	
२४.	कुगलुङ छू	२¾	३३१¾
	पलचेन छू	८½	
	पलचुङ छू	१¼	
	समो छुङपो	२¾	
२५.	सेरालुङ गोम्पा	३½	३४७¾
	टग छुंङपो	६¼	
	येर्नगो गोम्पा	५½	
२६.	ठुगोल्हो गोम्पा (मानसरोवर)	२¼	३६४¾
	गुरला ला	९¾	
	गुरलाफुक् (गौरी उड्यार)	४	
२७.	बलडक	४½	३८२½
२८.	तकलाकोट	१६	३९८½
२९.	खोचारनाथ	१२	४१०½
	तकलाकोट	१२	
३०.	पाला	५¼	४२७¾
	लीपूलेख घाटा	६	
३१.	कालापानी	६½	४४३
३२.	गर्ब्यांग	११	४५४
३३.	मालपा	१३¾	४६७¾
३४.	जीपती	८¼	४७६
३५.	सोसा	१३¾	४८९¾
३६.	खेला	९	४९८¾
३७.	धारचूला	१०	५०८¾
३८.	जौलजीबी	१६½	५२५¼
३९.	डीडीहाट	१२	५३७¾
४०.	थल	१०¼	५४७½
४१.	बेरीनाग	९½	५५७

४२. सेराघाट	१८¼	५७५¼
४३. बाड़े छीना	१५½	५९०¾
४४. अल्मोड़ा[1]	८½	६०० (¾)

तालिका ९

कैलासखंड और केदारखंड के कुछ प्रधान स्थानों के मध्य की दूरी

	मील
१. अल्मोड़े से कैलास (लीपूलेख घाटा होकर)	२३९
२. अल्मोड़े से कैलास (दारमा घाटा होकर)	२३०
३. अल्मोड़े से कैलास (ऊँटाधुरा होकर)	२१०
४. जोशीमठ से कैलास (गुनला-नीती घाटा होकर)	२००
५. जोशीमठ से कैलास (डमजन-नीती होकर)	१६०
६. जोशीमठ से कैलास (होती-नीती होकर)	१५८
७. बदरीनाथ से कैलास (माना घाटा होकर)	२३८
८. मुखुवा (गंगोत्तरी) से कैलास (जेलूखागा होकर)	२४३
९. शिमला से कैलास (शिपकी घाटा और गरतोक होकर)	४४५

---

[1]मार्ग में घोड़े और कुलियों के प्रबंध तथा विश्राम के लिये १९ दिन और लगाकर पूरी यात्रा—कैलास और मानसरोवर की परिक्रमा और ज्ञानिमा मंडी, तीर्थपुरी, और खोचारनाथ के दर्शन—दो महीने में अच्छी प्रकार से कर सकते हैं। जो उतना समय नहीं लगा सकते तथा इतने दिनों तक लगातार यात्रा के कष्ट को नहीं सहन कर सकते, वे अपनी अनुकूलता के अनुसार यहाँ पर दी हुई तालिका से अपना यात्रा-क्रम बना लें।

	मील
१०. शिमला से कैलास (थुलिङ मठ होकर)	४७३
११. काश्मीर-श्रीनगर से कैलास (लदाख होकर)	६०५
१२. पशुपतिनाथ (नेपाल) से कैलास (मुक्तिनाथ और खोचार होकर)	? ५२५
१३. ल्हासा से कैलास	? ८००
१४. कैलास-परिक्रमा	३२
१५. मानसरोवर की परिधि	५४
१६. रावणह्रद की परिधि	७७
१७. कैलास (तरछेन) से सिंधु नदी का उद्गम (ल्हे ला या तापछेन ला होकर)	४६
१८. परखा से ब्रह्मपुत्र का उद्गम	६२
१९. परखा से सतलज का उद्गम (दुलचू गोम्पा के पास)	२२
२०. परखा से टग छङपो का उद्गम	६५
२१. तकलाकोट से करनाली का उद्गम	२३
२२. कैलास से मानसरोवर	१६
२३. कैलास से तीर्थपुरी	२८
२४. कैलास से दुलपू गोम्पा	२१

	मील
२५. कैलास से ज्ञानिमा मंडी	३८
२६. तीर्थपुरी से "	२७
२७. ज्ञानिमा मंडी से गरतोक	७६
२८. " सिबचिलिम मंडी	२८
२९. " तकलाकोट	४६
३०. तकलाकोट से ठुगोल्हो	३४
३१. " खोचारनाथ	१२
३२. सिबचिलिम से नाब्रा मंडी	३८½
३३. नाब्रा से थुलिङ मठ	३३½
३४. थुलिङ से बदरीनाथ	? १००
३५. तरछेन से सेरदुङ-चुकसुम	७¾
३६. " छो कपाला	६
३७. तरछेन से सेरदुङ-चुकसुम और छो-कपाला होकर तरछेन	१८
३८. हल्द्वानी से अल्मोड़ा (पैदल)	४१
३९. " " (बस)	८६
४०. अल्मोड़े से पिंडारी ग्लेशियर	७३
४१. हृषीकेश से यमुनोत्तरी	११८½
४२. " गंगोत्तरी	१४५
४३. " केदारनाथ	१३३½
४४. " बदरीनाथ	१६७½
४५. " जोशीमठ	१४८½
४६. जोशीमठ से बदरीनाथ	१९
४७. रामनगर से बदरीनाथ	१६४
४८. यमुनोत्तरी से गंगोत्तरी	९८½
४९. गंगोत्तरी से केदारनाथ	१२३

	मील
५०. केदारनाथ से बदरीनाथ	१०१
५१. मसूरी से यमुनोत्तरी	८६
५२. हृषीकेश से यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, तथा बदरीनाथ होकर हृषीकेश	६०८
५३. गंगोत्तरी से गोमुख	१३
५४. उत्तरकाशी से डोडीताल	१८
५५. केदारनाथ से वासुकीताल	१२
५६. चमोली से गोहन	१६
५७. पांडुकेश्वर से लोकपाल	१५
५८. बदरीनाथ से सतोपंथ	१८
५९. मिलम से शांडिल्यकुंड	६
६०. धारचूला से छिपलाकोट	२५

तालिका १०

श्री कैलास और मानसरोवर का दूसरा मार्ग

अल्मोड़े से दारमा घाटा होकर—२३० मील

अल्मोड़ा (०) (०)

१.—७. ... ...

८. खेला (१००½) (१००½) देखिए श्री कैलास का पहला मार्ग। इस मार्ग का अंतिम डाकघर, धौलीगंगा के किनारे।
न्यो (६½) दो घर का गाँव, खरउड्यार या मृत्युगुफा। देखिए पृष्ठ २६२।
सोवला (½) दारमा भोटियों का गोदाम-घर, दारमा भोट यहाँ से प्रारंभ होता है।

९. दर (२) (११२½) गाँव, गाँव से १ मील ऊपर गर्म सोते। ३ मील बोलिङ, गाँव। ५ मील उड़थिंग, गुफाएँ। १ मील सेला, गाँव।

१०. नागलिंग (१४) (१२६½) ५ मील गाँव। इस गाँव के आस-पास सोमा या सोमकल्प नामक एक औषधि बहुत उत्पन्न होती है। इसका लैटिन नाम 'एफेड्रा वलगेरिस' है। यह दमा की विख्यात औषधि है।

४ मील बालंग, गाँव । ४ मील दुगतू या दुगतुंग और सौन, गाँव । २ मील दाँतू, गाँव ।

११. गो (१२) (१३८½) २ मील अंतिम गाँव ।

बिदङ (६) यहाँ अगस्त के महीने में एक मंडी लगती है। दारमा, नीती, और नेपाल के लोग, खम्पा, और तिब्बती डोकपा मंडी में आते हैं। विशेषकर ऊन, नमक, और अनाज का विनिमय होता है।

१२. डावे (११) (१५५½) धर्मशालाएँ घाटे की चढ़ाई प्रारंभ ।

दारमा घाटा या नूवे (५½) (१६१) [१८५१०] अंत में आध मील की खड़ी चढ़ाई है, जहाँ घोड़े नहीं चल सकते, भारतीय सीमा, यह घाटा जून के महीने से सितंबर के अंत तक जाने के योग्य रहता है, बहुधा बर्फ में दरारों के कारण धोखा हो जाता है।

मङवल[1] या मङुल (४) (१६५) डेरे, यहाँ तक उताराई ।

सिलती (५½) सन् १९३० से यहाँ पर एक छोटी सी मंडी १० या १५ दिनों के लिये लगती है।

१४. लामा छोरतेन (४½) (१७५) यहाँ कई छोरतेन और मणि-दीवालें हैं। यहाँ एक मंडी लगती है।

छकरा मंडी (१२) (१८७) इसे कुछ लोग ज्ञानिमा-छकरा भी कहते हैं। यह दारमा भोटियों की मंडी है, यहाँ से एक मार्ग सीधा छलम ला होकर कैलास जाता है, देखिए तालिका ७।

१५. ज्ञानिमा मंडी (५) (१९२) जोहार भोटियों की मंडी, देखिए तालिका

१६. छुमिकूएशला (१६¼) (२०८¼) डेरे।

१७. कैलास (तरछेन) (२१¾) (२३०) देखिए तालिका १ और ७।

---

१ यहाँ से एक मील पीछे से ही एक मार्ग लम्पिया घाटा को जाता है। मङवल से लम्पिया घाटा ४½ मील [१८१४० फीट], वहाँ से जोलिङ कोङ १२ मील, कुटी ६½ मील, गर्ब्यांग १८½ मील है।

तालिका ११

श्री कैलास और मानसरोवर का तीसरा मार्ग

अल्मोड़े से ऊँटाधुरा घाटा होकर—२१० मील

अल्मोड़ा (०) (०)

(६½) दीनापानी, जं०, दुकान, चाय।

कपड़खान (१) दुकान, अल्मोड़े से यहाँ तक मोटर सड़क है, यहीं से एक मार्ग बिनसर के सेनेटोरियम को जाता है, जो ५ मील पर है।

भैंसोड़ी छीना (२¾) घाटा।

बसौली (१) कड़ी उतराई, गाँव, दुकान।

१. ताकुला (२½) (१४¾) दुकान, डा०, चाय, ½ मील आगे डाब०।

देवलधार (५¼) अंत के १½ मील कड़ी चढ़ाई।

बिलोनसेरा (४½) कड़ी उतराई।

२. बागेश्वर (२½) (२७) [३२००] गोमती और सरयू के संगम पर है, डा०, अ० डाब०, बाघनाथ का मंदिर, दे० २८८।

लाहुरगाड़ का पुल (३) यहाँ से सड़क को छोड़कर एक मार्ग गौरीउड्यार को जाता है, जो तीन मील की दूरी पर है, दे० २८६।

३. कपकोट (११) (४१) डा०, डाब०, स्कू० दुकान।

भानी गाँव (३¾) बागेश्वर से यहाँ तक मार्ग सरयू के किनारे-किनारे जाता है।

श्यामाधुरा (७¾) (५२) [६६००] अंत के दो मील कड़ी चढ़ाई, डा०, दुकान। ¾ मील धार तक कड़ी चढ़ाई। २ मील कठिन उतराई। १½ मील रामगंगा तक बहुत कड़ी उतराई। २½ मील के बाद रामगंगा के ऊपर की रस्सी के पुल को पार करके, ½ मील पर।

४. तेजम[1] (७) (५९) [३२८०] तेजम डा०, आयुर्वेदिक औषधालय, स्कू०, जकुला नदी को पुल से पार करके आगे बढ़ें।

बमन गाँ (४) गाँव मार्ग से ऊपर है, सामने नदी के पार एक सुंदर जल-प्रपात है।

ला (२$\frac{1}{4}$) तेजम से यहाँ तक मार्ग जकुला नदी के किनारे-किनारे जाता है, नदी को पुल से पार करें।

गिरगाँव (२) कड़ी चढ़ाई, छोटा डाब०, गाँव दूर है।

कालामुनी (२$\frac{3}{4}$) घाटा तक चढ़ाई।

तिकसेन (५$\frac{1}{4}$) बीच बीच में विश्राम के साथ कड़ी उतराई।

५. राथी (मानस्यारी) (२) (७७$\frac{1}{4}$) कड़ी उतराई, डा०, डाब०, आस पास का प्रदेश मानस्यारी के नाम से प्रसिद्ध है, मल्ला जोहार के भोटिये शीत काल में यहाँ उतरते हैं, मानस्यारी में हरताल और गंधक की खानें हैं।

सुरिङ घाट (२) उतराई, यहाँ से मिलम तक मार्ग गौरीगंगा के किनारे-किनारे जाता है।

लीलम (२$\frac{1}{4}$) गाँव मार्ग से कुछ दूर है।

पिलती गाड़ (२$\frac{1}{2}$) पिलती गाड़ बहुत ऊँचाई से एक सुंदर जल-प्रपात के रूप में गौरीगंगा के उस पार बाएँ किनारे पर गिरती है।

रलम गाड़ (१$\frac{1}{4}$) यह नदी भी गौरीगंगा में बाएँ किनारे पर मिलती है।

ररगड़ी (१$\frac{3}{4}$)

पोटिंग गाड़ (२) नदी के पुल को पार करें।

६. बाग उड्यार ($\frac{1}{4}$) (८६$\frac{1}{4}$) [८,६००] गुफा, डेरे।

---

[1]प्रायः रामगंगा के ऊपर रस्सी के पुल को पार करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसलिये बहुत कम लोग इस मार्ग से जाते हैं। तेजम से तल्ला जोहार का भोट आरंभ होता है। शीतकाल में मल्ला जोहार के भोटिये यहाँ उतरते हैं। यहाँ से थल १२ मील पर है।

टिबू नहर (२) सड़क-जमादार का छप्पर।

मपंग (२¾) डेरे, पड़ाव की दीवालें, टिबू और इस स्थान के मध्य में दो-तीन बड़े-बड़े हिम-खंड हैं। ड्राप सीन के समान यहाँ से पहाड़ का दृश्य बदल जाता है।

लासपागड़ी (१) गुफा, गाँव सड़क से दूर पर है।

रिलकोट (२) [१२२००] एक नदी को पार कर गाँव में पहुँचें। ५-६ घर, धर्मशाला, थोड़ी खेती। ½ मील आगे पुराने रिलकोट के खंडहर।

मरतोली (२¼) [११८७०] बड़ा गाँव, स्कूल, नंदामाई का मंदिर, गाँव के पास ही भूर्ज वृक्षों के जंगल, ½ मील की बहुत कड़ी उतराई के बाद लोवन नदी को पार करें। ½ मील के आगे गौरी को पुल से पार करें।

बुरफू (२) बुरफू का बड़ा गाँव, स्कूल, धर्मशाला।

बिल्जू (२½) स्कू०, गाँव से कुछ आगे चल कर नंदादेवी के पूर्वी शिखर का अपूर्व दृश्य दिखाई पड़ता है। २½ मील आगे खोपङ या गोङ्खा को पुल से पार करें, जो ऊँटाधुरा से आकर यहाँ से कुछ नीचे गौरी से मिलती है। ¾ मील आगे मिलम।

७. मिलम[1] (३) (१०६¾) [११२३२] डा०, स्कू०, धर्मशालाएँ।

---

[1]यह जोहार के भोटियों का सबसे बड़ा और मार्ग का अंतिम गाँव है। जून से सितंबर के अंत तक लोग यहाँ रहते हैं। इसमें ४०० घर हैं। जौलाई के महीने में यहाँ के प्रायः सभी पुरुष व्यापार के लिये तिब्बत की मंडियों में जाते हैं। इसलिये ६० फी सदी खेत बिना जोते ही रह जाते हैं। सभी भोटियों में यहाँ के लोग विशेष सभ्य और पढ़े-लिखे होते हैं। प्रसिद्ध भौगोलिक पं० नैनसिंह और कृष्णसिंह यहीं के निवासी थे। आगे ज्ञानिमा मंडी के लिये सभी प्रबंध यहाँ से करना पड़ता है। गाँव से गौरीगंगा एक फलाँग की दूरी पर है। यहाँ से मिलम ग्लेशियर (हिमनदी) २ मील की दूरी पर है, जहाँ से गौरीगंगा निकलती है। मिलम ग्लैशियर का मुख (स्नाउट) जहाँ से गौरीगंगा निकलती है, वहाँ २४ फीट ऊँचा और १६ फीट चौड़ा है। इसका

९३/४ मील शिलङ-तल्ला, डेरे, पड़ाव की दीवालें ।

१ मील शिलङ-मल्ला, डेरे, धर्मशाला, पड़ाव की दीवालें ।

१ छोतपानी या शूंतपानी, दाहिनी ओर काली बर्फ का गल, (काली मिट्टी से मिले हुए होने के कारण बर्फ काला सा दिखाई पड़ता है।)

१/२ मील पलथङ, पहाड़ की चोटी पर धर्मशाला, लप्चे ।

८. दुङ या दुङ्गा (३/४) (११५३/४) गोङखा के निकट ही ३,४ बड़ी-बड़ी गुफाएँ, डेरे, [१३७२०] लकड़ी का अभाव, धुरा की चढ़ाई यहाँ से प्रारंभ होती है।

बोमलास-मल्ला (२१/४) [१५०१०] डेरे, बाईं ओर सुंदर हिमनदियों के दृश्य ।

१ मील कालामटिया, काली मिट्टी की पृथ्वी, डेरे । १ मील सफेद गल, श्वेत बर्फ की हिमनदी । १/२ मील ऊँटा का जम, डेरे, धुरा के नीचे ।

ऊँटाधुरा (६१/२) (१२२१/२) [१७९५०] २ मील बहुत कड़ी चढ़ाई ।

गङपानी (११/२) डेरे, बहुत कठिन उतराई, यहाँ की नदी गिरथी नदी में जा

दृश्य बहुत सुंदर और गंभीर है। सदा बर्फ के गलने के कारण यहाँ पत्थर नीचे गिरते रहते हैं। मुख के सामने दो दो, तीन तीन गज मोटे हिमखंड बिखरे हुए पड़े रहते हैं। हिमनदी के ऊपर तीन मील पर एक पहाड़ के नीचे शंगस या शांडिल्य कुंड नामक एक छोटा सा तालाब है, जो लगभग ४२० फीट लंबा और २२५ फीट चौड़ा है। यहाँ पर चौमासे में गड़रिये चरागाह में आते हैं। शंगस कुंड के सामने मिलम ग्लैशियर के दाहिने किनारे पर सिकडम नामक एक और सुंदर हिमनदी आ मिलती है। यहाँ जलाने के लिये लकड़ियाँ बहुत मिलती हैं। श्रावणी पूर्णिमा के समय पर यहाँ मेला लगता है, उस समय मिलम वाले यहाँ पर स्नान के लिये आते हैं। यहाँ का जल बर्फीला नहीं है। ६-७ मील आगे चलकर मिलम ग्लेशियर के सिरे पर सूर्यकुंड नामक एक तालाब है। ग्लेशियर के सिरे की त्रिशूली चोटियों पर चढ़ने के लिये सन् १९३९ के जौलाई के महीने में पोलैंड का एक पर्वतारोही दल आया था। शिखर पर चढ़ते समय, तीसरे पड़ाव में हिमखंड टूट कर गिरने के कारण उनमें से दो दब कर मर गए।

कर गिरती है।

जयंती या जंती धुरा (२) (१२५ ३/४) [१८५००] कठिन चढ़ाई, यहाँ पर बहुत दम घुटता है।

न्हज गाँव (२ १/४) बहुत कठिन उतराई, डेरे, पड़ाव की दीवालें, यहाँ का जल नीचे गिरथी में जाता है, यहाँ इंधन का अभाव रहता है।

कुंङरी-बिङरी का घाटा (१ १/२) (१२६ १/२) [१८३००] बहुत कड़ी चढ़ाई, भारत की सीमा, १ फर्लांग आगे लप्चे, यहाँ से कैलास के दर्शन होते हैं, ये घाटे जौलाई से अक्टूबर तक पार करने योग्य रहते हैं।

६. छिरचिन[1] (५) (१३४ १/२) [१६३६०] यहाँ तक बीच-बीच में विश्राम के साथ कठिन उतराई है। डेरे, पड़ाव की दीवालें, गुफा। १/४ मील आगे छिरचिन की १ १/२ फीट की गहरी एक शाखा के दाहिने किनारे को पार करें। ३ मील सुमनाग या सुमनाथ, डेरे। यहाँ से १/२ मील नदी के पाट में चलकर डेढ़ फीट गहरी छिरचिन की दूसरी शाखा को पार करें, डेरे। ३/४ मील तोकपू डेरे। २ १/४ मील

---

[1] प्रायः दुङ से प्रातःकाल ही उठकर तीनों घाटियों को पारकर यहीं आकर संध्या समय में डेरा डालना पड़ता है। मार्ग में लकड़ी और घोड़े के घास का अभाव रहता है तथा ठंढक बहुत पड़ती है। यदि किसी को लाचार होकर ठहरना हो तो न्हज गाँव के डेरे में रहते हैं। परंतु वहाँ भी बहुत कष्ट सहन करना पड़ता है। इस पड़ाव के पास तीन नदियाँ मिलकर छिरचिन नदी बनती है, जिसका पाट लगभग ३/४ मील चौड़ा है, जो पत्थरों से भरा हुआ है। पर नदी की धारा कम चौड़ी है। पाट के विशाल होने के कारण यह तालाब सा दीखता है। छिरचिन से सुमनाग तक नदी के पाट तथा दोनों के पहाड़ों में कई प्रकार के शालग्राम, थनेली या थनेरी पत्थर, (जिसे घिसकर लगाने से स्तन के ऊपर का व्रण अच्छा होता है) और जहरमोरा पत्थर मिलता है। दोनों ओर के पहाड़ों पर हिमफुली या गोदंती और हरताल मिलती है। छिरचिन से एक मार्ग सिबचिलिम जाता है।

सीमा[1]। १½ मील चिलिमपानी, यह नदी सिबचिलिम जाती है।
१ मील लट्टुश्रा, डेरे, कुछ दूर पर गुफाएँ हैं।

१०. ठाजङ[2] (१२) (१४६½) ३ मील डेरे।

सूखाठाजङ (२¼) डेरे, पड़ाव की दीवालें।

छिनकू (२½) छिनकू (छू = नदी, नकपो = काला), १½ या २ फ़ीट गहरी नदी को पार करें।

ठंपा (३) ठंपा या ठंत्रा पहुँचने से पहले ½ मील चढ़ाई, डेरे, पड़ाव की दीवालें, एक सोता। यहाँ से ¼ मील चढ़ने पर लप्चे। कैलास के दर्शन होते हैं, ½ मी० उतराई, मैदान।

११. गुनियाङ्ती[3] (नदी) (३¾) (१५८) ३ मील, २ या २½ फ़ीट गहरी नदी को पार करें, दोनों श्रोर डेरे।

दारमा याङ्ती (नदी) (२¼) २ या ३ फ़ीट गहरी नदी को दाहिने किनारे पार करें, नदी के दोनों किनारों पर डेरे, पड़ाव की दीवालें।

१२. ज्ञानिमा मंडी (११¾) (१७२) देखिए तालिका ५।

---

[1]यहाँ पर भारत की सीमा दिखाने के लिये १९३८ में भारत के सर्वेवालों ने ३ फ़ीट चौड़ी श्रौर २ फ़ीट ऊँची पत्थरों की एक लंबा दीवाल बना दी है। ज्ञात नहीं, सर्वेवालों ने श्रपनी सीमा को यहाँ पर किस श्राधार पर निश्चित किया है। परंतु तिब्बती लोग श्रपनी सीमा को भारत में मिलम से १२¾ मील नीचे मपङ के पास बतलाते हैं।

[2]डेरे के स्थान से बाँईं श्रोर के पहाड़ की चोटी पर एक लप्चे श्रौर तरचोक है, जहाँ पर तिब्बती श्रौर भोटियों ने पुरानी बंदूकें श्रौर श्रन्य हथियार चढ़ा रक्खे हैं।

[3]गुनियाङ्ती श्रौर दारमायाङ्ती के किनारे-किनारे यहाँ से ५-६ मील नीचे दोनों किनारों पर यत्र-तत्र डेरे के स्थान श्रौर पड़ाव की दीवालें हैं। व्यापारी लोग श्रपने श्रवसर, श्रौर सुविधा के श्रनुसार जिस किसी स्थान में

१३. छू मिक्शला (१६$\frac{1}{8}$) (१८८$\frac{1}{8}$) डेरे, देखिए तालिका ७।
१४. कैलास (तरछेन) (२१$\frac{3}{8}$) (२१०) „ „

तालिका १२

श्री कैलास और मानसरोवर का चौथा मार्ग

जोशीमठ से गुनला नीती घाटा होकर—२०० मील

जोशीमठ[1] (०) (०) [६, २००] डा०, ता०, अ०, डाव०, ध०, मंदिर बाजार, जव की धाराएँ। ६ मील तपोवन, गर्म जल के सोते, कुंड, (यहाँ से भविष्यबदरी मार्ग से हट कर ३ मील पर है,) यहाँ से ४ मील आगे नीती भोट का प्रांत प्रारंभ होता है।

१. सुरईठोटा (१६) (१६) १० मील, डेरे, ध०। ७ मील तमक, डेरे, ध०। २ मील जुम्मा, डेरे, ध०।

२. मलारी (१८) (३४) [१०१५०], बड़ा गाँव, ध०, स्कू०। ५ मील बंपा,

---

पार करके चले जाते हैं। इसलिये ठंबा से लेकर ज्ञानिमा मंडी तक की दूरी, पार करने के स्थान के अनुसार बदल जाती है। कुछ लेखकों ने इन दोनों नदियों के नाम भ्रम से गुणवंती और दमयंती लिखे हैं। याङ्ती = नदी। तिब्बती भाषा में इनके नाम छू मिङ्जुङ और छू मिङजिङ हैं।

[1]ज्योतिर्मठ आदि शंकराचार्य के चार मठों में एक है, परंतु ३५० वर्षों से जीर्ण रूप में था। सन् १९४२ में प्रयाग के कुंभ मेले के अवसर पर इस मठ के एक नये आचार्य नियुक्त किये गये। यहाँ वासुदेव और नृसिंह के मंदिर हैं। बदरीनाथ यहाँ से १९ मील, हृषीकेश १४८$\frac{1}{2}$ मील, और रामनगर १६४ मील की दूरी पर है। यहाँ से नीती घाटा तक मार्ग धौलीगंगा के किनारे-किनारे है।

बड़ा गाँव, अंतिम, डा०, ध०। १½ मील गमशाली [१०३१७] ध०।

३. नीती (६½) (४३½) इस मार्ग का अंतिम गाँव, ध०, स्कू०।

४. गुठिङ (८¼) (५१¾) डेरे, पड़ाव की दीवालें, मार्ग में दो कड़ी चढ़ाइयाँ और एक कठिन उतराई। ३½ मील शेपुक, डेरे, पड़ाव की दीवालें। २¾ मील नकुला का बर्फ का पुल। ४½ मील पातालपानी, पाताल गंगा की दोनों ओर डेरे, पड़ाव की दीवालें। ¾ मील गेलडुङ, डेरे, पड़ाव की दीवालें।

५. ख्युङलुङ (१५¾) (६७½) [१४७०३] ४¼ मील डेरे, यहाँ से घाटे तक कड़ी और फिर बहुत कड़ी चढ़ाई पड़ती है।

नीती घाटा (४½) (७२) [१६६००] अंत के १½ मील की चढ़ाई बहुत कड़ी और ख़तरनाक है, भारत की सीमा, यह घाटा जून से नवंबर तक यात्रा के योग्य रहता है। घाटे के ऊपर लगभग २ मील, लप्चे, यहाँ से कैलास के दर्शन होते हैं। १¼ मील जिंडू, बहुत कठिन उतराई, डेरे।

६. चङलूस (१२) (८४) ८¾ मील डेरे, पड़ाव की दीवालें। ५ मील हार्थो, डेरे, पड़ाव की दीवालें।

७. नाब्रा मंडी[1] (११½) (९५½) ६½ मील नीति भोटियों की बड़ी मंडी है। ५¾ मील गेउँल छू (ग्युंगुल या गेयुल), दो घर, कुछ जौ के खेत, नदी के दोनों ओर डेरे, पड़ाव की दीवालें, मणि-दीवालें, ३ फीट गहरी नदी को पार करें। ७½ मील डोङपू छू, डेरे, यहाँ ३ फीट गहरी वेगवती नदी को पार करें।

८. डोङ पू गोम्पा (१४) (१०९½) ¾ मील गाँव, गोम्पा, कुछ खेत।

९. दोनगू छू (२½) (११५) डेरे, पड़ाव की दीवालें। २½ दोनगू, डेरे, जल

---

[1]यहाँ २००-२५० तंबू लगते हैं। यह मंडी जौलाई से सितंबर तक रहती है। यह दापा से लगभग ६½ मील पर है। दापा जोङ के अत्याचारों से ऊबकर उसके प्रतिकार स्वरूप सन् १९२९ में नीती के भोटियों ने मंडी को दापा से उठाकर यहाँ (नाब्रा में) एक विशाल दून में लगाया, जो गरतोक-नीती के

का अभाव। १४$\frac{७}{८}$ मील तीसुम छू, नदी की दोनों ओर डेरे, पड़ाव की दीवालें।

१०. सिबचिलिम मंडी[1] (१९) (१३४) २$\frac{१}{८}$ मील सिब छू के बाएँ किनारे पर स्थित एक छोटी-सी मंडी, डेरे, पड़ाव की दीवालें, ३० फीट गहरी जलवाली वेगवती नदी को पार करें।

मणिथङा (७$\frac{१}{८}$) मणि-दीवालें, डेरे, आसपास में ७-८ काले तंबू।

गोंबाचिन[2] (३$\frac{१}{२}$) डेरे, पड़ाव की बड़ी बड़ी दीवालें, किसी समय यहाँ तक बड़ी भारी मंडी लगती थी।

११. गुनियाङ्ती नदी (४$\frac{१}{८}$) (१४९) २ या ३ फीट गहरी जलवाली नदी को पार करें, नदी के दोनों किनारों पर डेरे, पड़ाव की दीवालें।

दारमा याङ्ती (नदी) (३$\frac{३}{४}$) २ या २$\frac{१}{२}$ फीट गहरी जलवाली नदी को पार करें, नदी के दोनों किनारों पर डेरे और पड़ाव की दीवालें, देखिए तालिका ८।

१२. ज्ञानिमा मंडी (६$\frac{१}{८}$) (१६२) देखिए तालिका ५।

१३. छूमिक्शला (१६$\frac{१}{४}$) (१७८$\frac{१}{४}$) डेरे।

१४. कैलास (तरछेन) (२१$\frac{३}{४}$) (२००) देखिए तालिका ७।

राजमार्ग पर है। यहाँ ३-४ पक्के मकान भी बन गए हैं। यह दापा जोङ के शासन के अंतर्गत है। यहाँ से सतलज का पुल लगभग ३ मील पर है। आस-पास की अधित्यकाओं पर जिंबू अधिक होता है।

[1]जौलाई और अगस्त के महीने में यहाँ नीतीवालों के ७-८ तंबू लगते हैं। कभी-कभी एकाध जोहारी भी आ जाते हैं। सिब छू नदी का पाट यहाँ चौड़ा है। यह नदी तीन-चार शाखाओं में बहती है। यहाँ से एक मार्ग ख्युङ्लुङ होकर तीर्थपुरी जाता है, जो लगभग ३२ मील की दूरी पर है और दो दिन का मार्ग है।

[2]मणिथङा और गोंबाचिन के मध्य में एक नदी की ४-५ शाखाओं को पार करना पड़ता है। संभवतः यह छिनकू छू ही है।

तालिका १३

श्री कैलास और मानसरोवर का पाँचवाँ मार्ग

जोशीमठ से डमजन-नीती घाटा होकर—१६० मील

जोशीमठ (०) (०) देखिए तालिका १२ ।

१—२. ... ...

३. नीती (४३½) (४३½) गाँव ।

बोमलास घाटा (७) (५०½) बहुत कड़ी और खड़ी चढ़ाई, लप्चे और तरचोक ।

४. डमजन (३¼) (५३¾) कड़ी उतराई, डेरे ।

डमजन-नीती घाटा (५¾) (५६½) [१६२०० ?] घाटा तक बहुत कड़ी चढ़ाई, लप्चे और तरचोक, भारत की सीमा, जून से अक्टूबर तक लाँघने योग्य है, यहाँ से कैलास के दर्शन होते हैं ।

५. होती (५½) (६५) बहुत कठिन उतराई, डेरे, पड़ाव की दीवालें, यहाँ पर होती घाटा का मार्ग मिलता है ।

तोनजेन ला (३½) (६८½) [१६३५०] घाटा तक बहुत कड़ी चढ़ाई, लप्चे । ४ मील सग, डेरे ।

६. छलंपा (१०) (७८½) ३ मील की चढ़ाई और ३ मील की उतराई, डेरे । ३ मील की चढ़ाई और ३ मील की उतराई, डेरे, डाकर, पड़ाव की दीवालें । ६½ मील तीसुम, डेरे, पड़ाव की दीवालें ।

७. सिबचिलिम (१५¾) (९४¼) ३¼ मील, देखिए तालिका १२ ।

८. गुनियाङ्कती (१२) (१०६¼) डेरे ।

९. ज्ञानिमा मंडी (१२¾) (१३२) मंडी ।

१०. छुमिक्शला (१६¼) (१३८¼) डेरे ।

११. कैलास (तरछेन) (२१¾) (१६०) ।

तालिका १४

श्री कैलास और मानसरोवर का छठा मार्ग

जोशीमठ से होती-नीती घाटा होकर—१५८ मील

जोशीमठ (०) (०)।

१, २. ... ... देखिए तालिका १२।

३. तिमरसिम् (४२½) (४२½) नीती पहुँचने से १ मील पहले ही एक छोटा सा गाँव, यहाँ से घाटा तक बहुत कड़ी चढ़ाई है।

३ मील कसाईं, डेरे, पड़ाव की दीवालें।

४. कालाजबर (६) (४८½) ३ मील डेरे, पड़ाव की दीवालें।

होती-नीती घाटा (७) (५५½) [१६३६०] इसे होती, चोर-होती, या होती धुरा भी कहते हैं। भारत की सीमा, विशेषकर इस घाटे से वर्षाऋतु में जाते हैं, यहाँ से रिमखिम तक बहुत कड़ी उतराई है। २½ मील बंजर-मल्ला, डेरे। १½ मील बंजर-तल्ला, डेरे।

१½ मील रिमखिम [१४२५०] डेरे पड़ाव की दीवालें, यहाँ से होती के डेरे तक होती नदी के किनारे-किनारे ऊपर से जाना पड़ता है।

५. होती (७½) (६३) २ मील डेरे, डमजन घाटा का मार्ग यहाँ मिल जाता है। यहाँ की होती नदी मलारी के पास धौलीगंगा में मिलती है।

६-१०. ... ...

११. कैलास (तरछेन) (९५) (१५८) देखिए तालिका १३।

तालिका १५

श्री कैलास और मानसरोवर का सातवाँ मार्ग

बदरीनाथ से माना घाटा होकर—२३८ मील।

बदरीनाथ (०) (०) [१०५००] डा०, ता०, अ०, डाग०, ध०, श्री बदरी-नारायण का मंदिर, यह भारत के चारों धाम में एक है, यहाँ से हृषीकेश १६८ मील और रामनगर १६४ मील पर है।

माना (२) (२) इसे माणा या मणिभद्रपुरी भी कहते हैं, मार्ग का अंतिम गाँव, इधर का एक मात्र भोटिया गाँव, यहाँ के भोटिये मार्छे कहलाते हैं। ३ मील बलवाण, गुफा, डेरे। २ मील मूसापानी, डेरे। १½ मील शकपाडाँग, ३-४ अच्छी गुफाएँ, डेरे। १½ मील बुजकुली, ३-४ अच्छी गुफाएँ, डेरे।

१. घसतोली (६½) (११½) १½ मील, गुफा, डेरे, देहरादून के मार्टिन साहब गंगोत्तरी से मध्य मार्ग होकर यहाँ पर आए थे। ३ मील बुडचौन, डेरे। ½ मील खोरजाकवोट, डेरे, पड़ाव की दीवालें।

२. सरस्वती (८½) (२०) ५ मील, डेरे, पड़ाव की दीवालें, घाटे की चढ़ाई यहाँ से प्रारंभ होती है। २½ मील रत्ताकोणा, डेरे। १ मील ताराई, डेरे। ३ मील रात्तसताल, बर्फ के बीच में छोटा-सा ताल। ½ मील देवताल, छोटा-सा ताल।

माना घाटा या चिरबिटिया (८½) (२८½) [१८४००] १½ मील भारत की सीमा, घाटा जौलाई से सितंबर तक लाँघने योग्य है।

३. पोती (६) (३७½) डेरे, यहाँ तक उतराई।

४. जोगोराव (८) (४५½) डेरे। ३ मील शिपुक-मैदान, डेरे। ३ मील [१६४००] चरंग ला, चढ़ाई।

५. रामूराव (१६) (६१½) १० मील डेरे, प्रारंभ में ३ मील तक उतराई है।

६. शंकरा (१०) (७१½) डेरे।
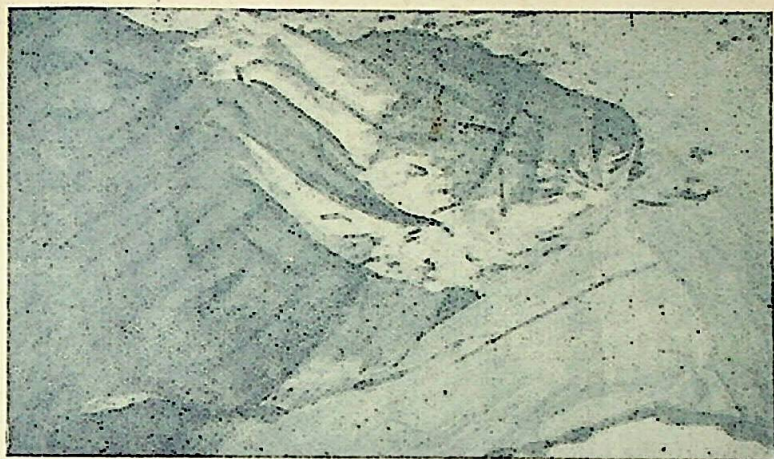
मिलम ग्लेशियर या गौरी की हिमनदी

[देखो पृ० ३८३
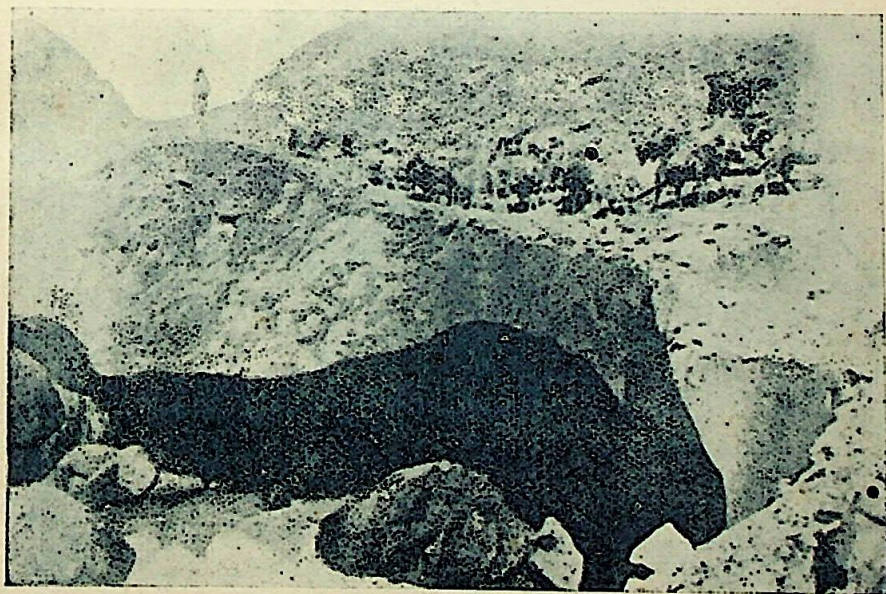
बर्फ का पुल, नकुला
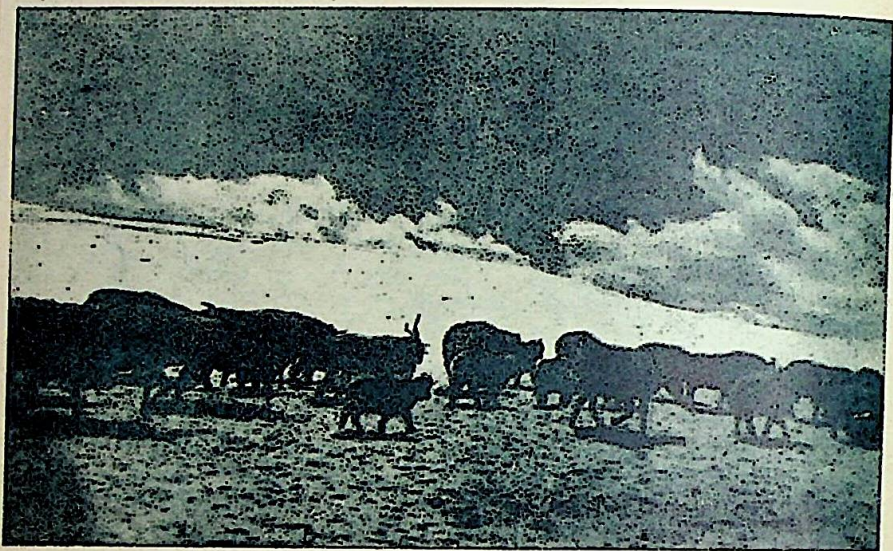
[देखो पृ० ३८८

नीती घाटा
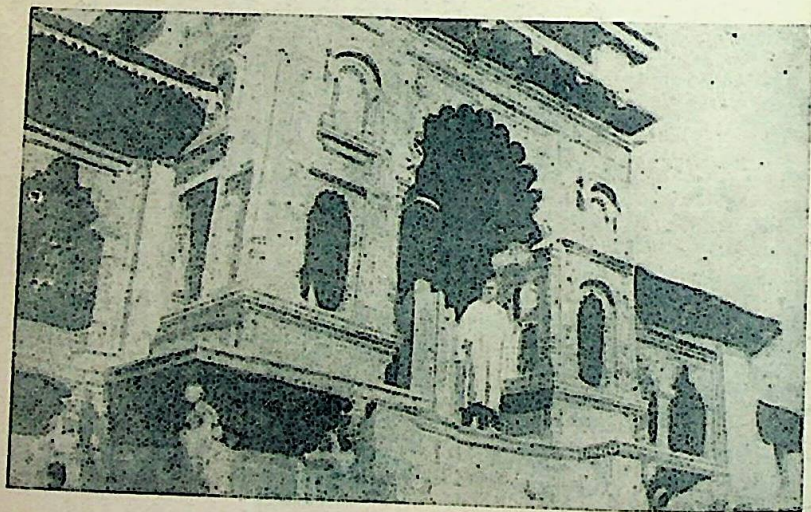
[देखो पृ० ३८८

बदरीनाथ का मंदिर

[देखो पृ० ३९२
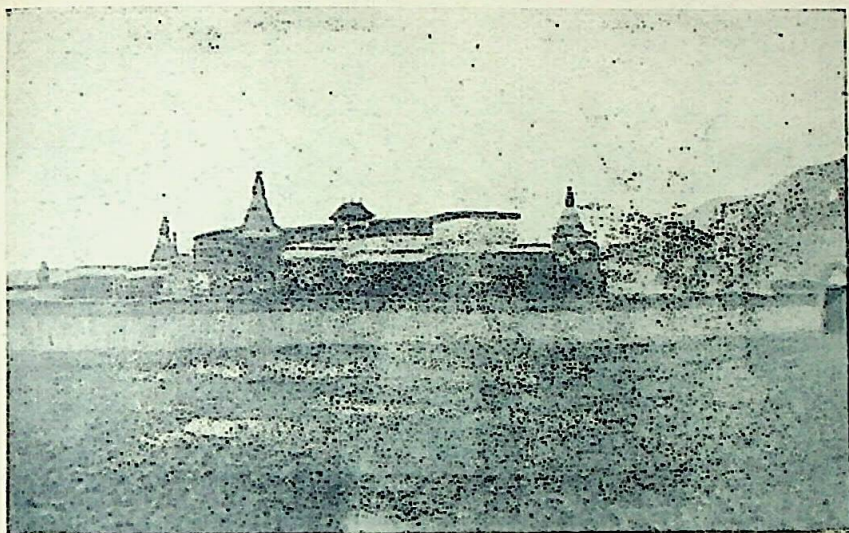
थुलिङ मठ
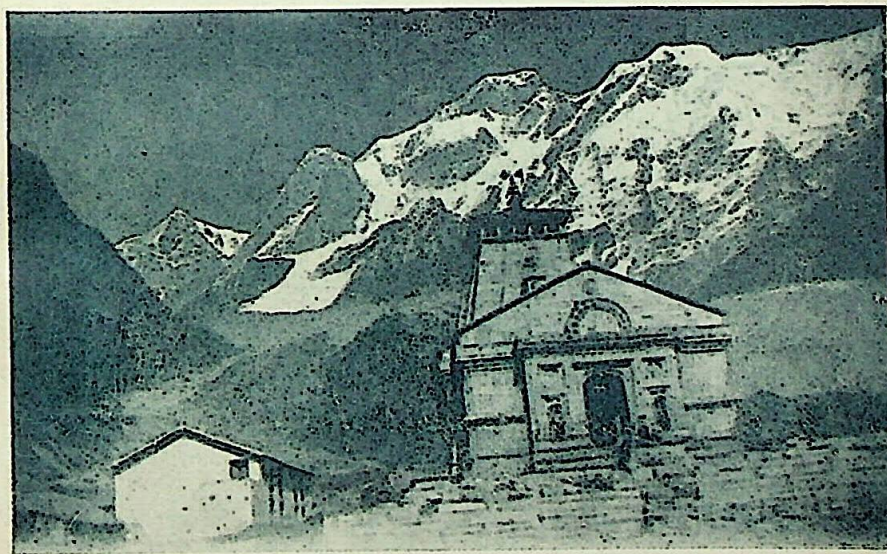
[देखो पृ० ३६३

केदारनाथ का मंदिर और पीछे के हिम-शिखरों का दृश्य
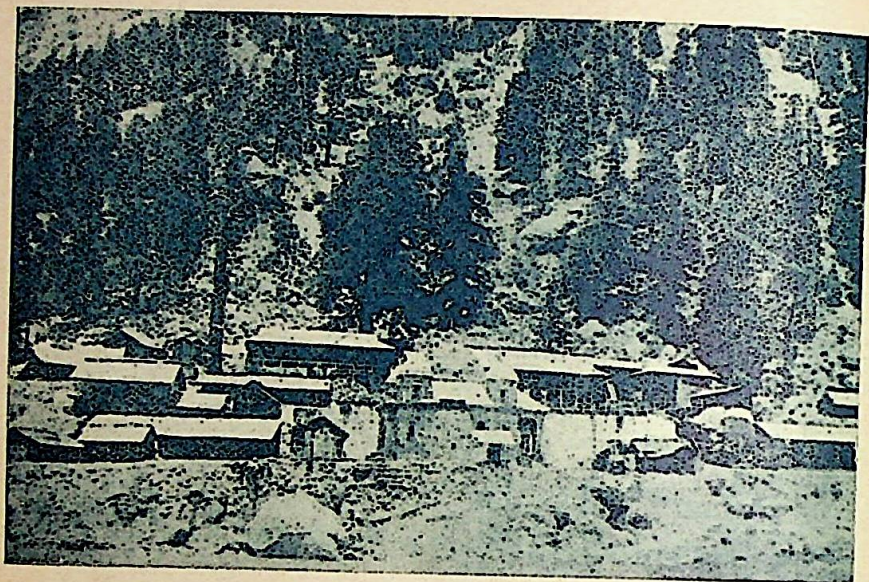
गंगोत्तरी

[देखो पृ० ३६५
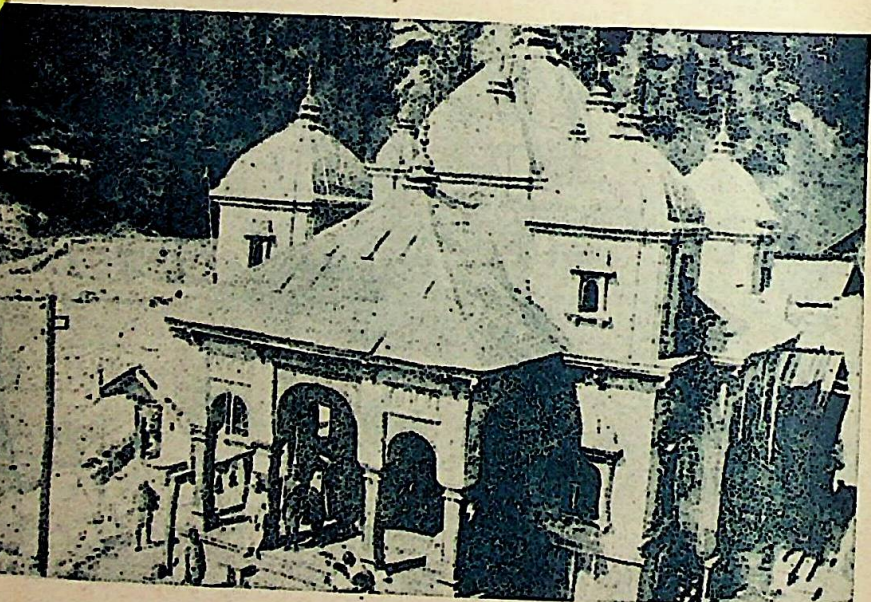
गंगोत्तरी में गंगादेवी का मंदिर

[देखो पृ० ३६५
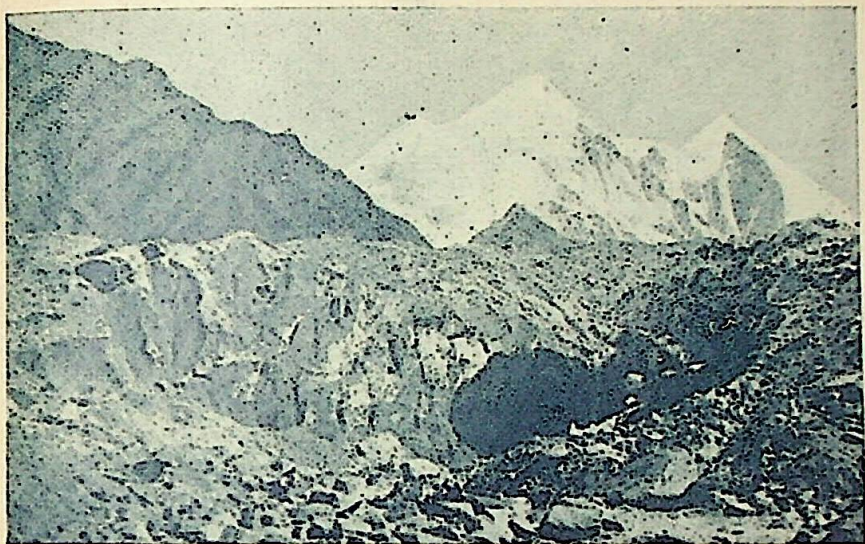
गोमुख और सतोपंथ के हिम-शिखर

[देखो पृ० ३६५

लामायूरु गोम्पा, लदाख
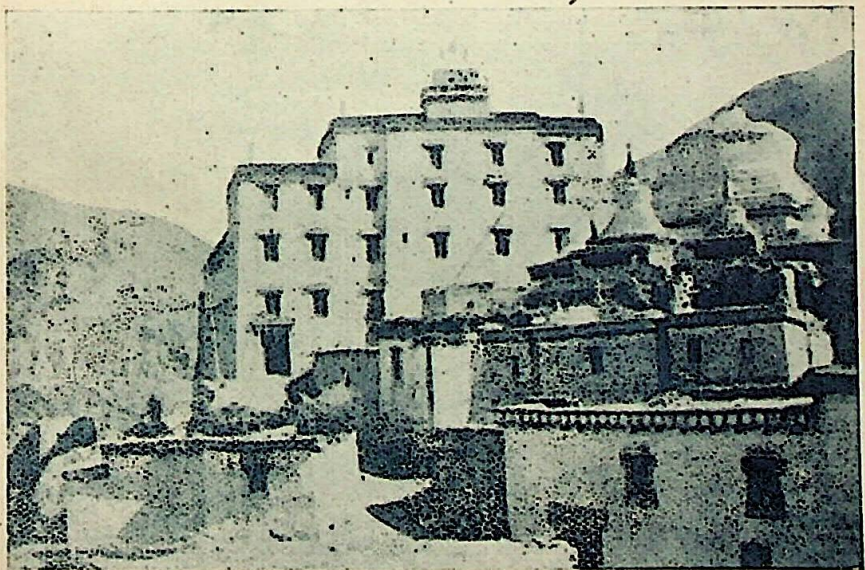
[देखो पृ० ४०२

गरतोक में छोङ्दू (घुड़दौड़) के समय तिब्बती सिपाही

[देखो पृ० ४००

गरतोक के मेले में तिब्बती भद्र-महिलाएँ

[देखो पृ० १७२
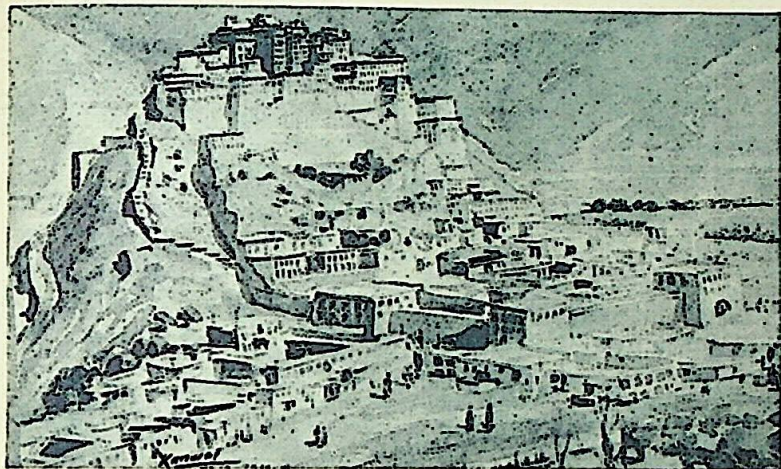
पोताला राजप्रासाद, ल्हासा
(फोटो चित्रकार श्री कँवलकृष्ण जी के सौजन्य से प्राप्त)

[देखो पृ० २०६
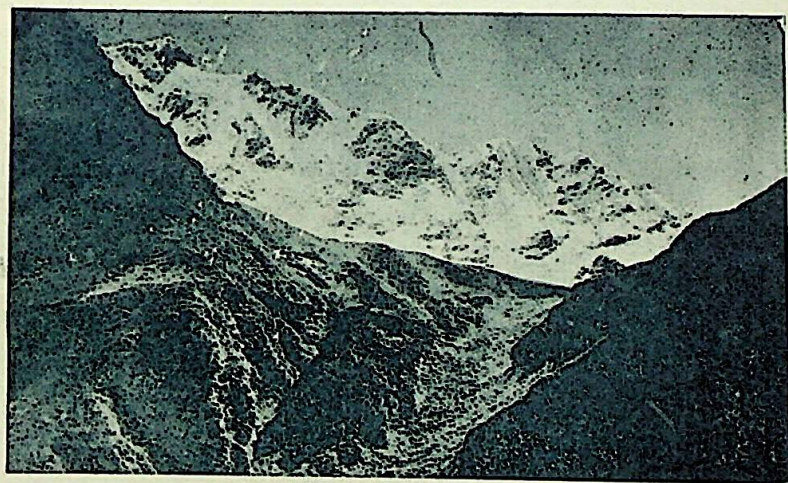
पिंडारी ग्लेशियर
(फोटो श्री एम्० बी० एल० दरजी के सौजन्य से प्राप्त)
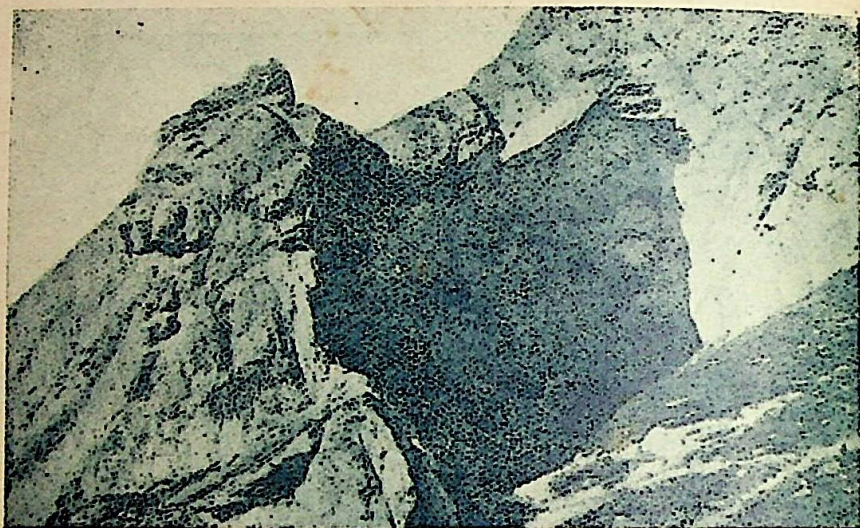
[देखो पृ० ४१४

अमरनाथ की गुफा, काश्मीर

[देखो पृ० ४१८
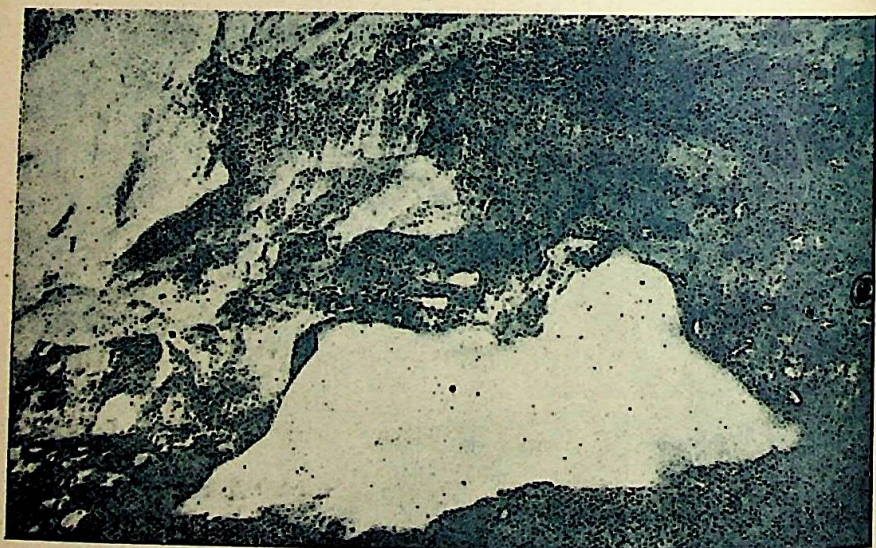
अमरनाथ की गुफा में बर्फ का शिवलिंग

[देखो पृ० ४१६

७. सत्तूखाना (२२ !) (९३) डेरे।
८. थुलिङ गोम्पा[१] (७ !) (१००) [१२२००] मठ, गाँव, थुलिङ से १ मील

[१]इसे तुलिङ, थोलिङ, या थुन्दिङ भी कहते हैं। यह मठ सतलज की बाईं ओर नदी से एक मील की दूरी पर है। यह पश्चिमी तिब्बत का सब से प्रसिद्ध मठ है। सन् १०३० में इसका निर्माण हुआ था। तुर्कों ने एक-दो बार इसमें आग लगा दी थी और भारत के कई अमूल्य और प्राचीन संस्कृत और तिब्बती ग्रंथों को जलाकर नष्ट कर दिया था। नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान सन् १०४२ में, बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये यहाँ आकर नौ महीने तक ठहरे थे और यहीं रहकर कतिपय ग्रंथों का प्रणयन किया था। कई भारतीय पंडितों ने यहीं पर रहकर, बौद्ध धर्म-संबंधी पालि ग्रंथों का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया था। इस मठ में छोटे-बड़े १०८ देवागार हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न आकार और स्वरूप की धातु और मिट्टी की बनी बौद्ध धर्म के देवी-देवताओं, लामाओं, और आचार्यों की सहस्रों मूर्तियाँ हैं। अलमारियों में अच्छी तरह से सजी हुई कई छपी और हस्तलिखित पुस्तकों के वेष्टन हैं, जिनमें कंजूर और तंजूर की पोथियाँ भी हैं। बड़े देवागार में प्रधान मूर्ति पद्मासन-स्थित शाक्यथुब्बा (बुद्धभगवान्) की है, जिनके ऊपर सोने के पत्ते चढ़े हुए हैं। छः फीट ऊँची यह मूर्ति एक ऊँची वेदी पर विराजमान है। भ्रम में पड़कर कई हिंदू इसे आदि बदरीनारायण की मूर्ति मान कर घी की बत्तियों के लिये गाय, बकरियाँ, और रुपये-पैसे भी चढ़ाते हैं। यहाँ एक देवागार में ७ या ८ गज की ऊँची चम्बा (मैत्रेय) की मूर्त्ति है। इस मठ में एक दक्षिणावर्त शंख, हंस के एक बड़े अंडे के बराबर एक जौ का दाना, और कुछ अन्य अपूर्व वस्तुएँ हैं। ये वस्तुएँ विशेष भेंट चढ़ाने पर ही दिखलाई जाती हैं। इस मठ की चाहरदीवारी १५० गज से अधिक का वर्ग है। इसके चारों ओर फाटक हैं। इस मठ में १-२ लामा और लगभग १०० डाबा रहते हैं। मठ के प्रधान लामा प्रति-तीन वर्ष में बदलते रहते हैं। वे ल्हासा से आते हैं। शीतकाल में पट बंद होने के पहले, इस मठ से कुछ प्रसाद और

आगे २ मील तक बहुत कड़ी चढ़ाई है, उसके बाद मंगनङ तक बीच-बीच में अधित्यकाओं से होकर मंद उतराई पड़ती है।

९. मंगनङ (१३) (११३) गाँव, खेती, मठ, यह डेपुङ विहार की शाखा है। यहाँ पर ३-४ फीट गहरी और पर्याप्त चौड़ी वेगवती मंगनङ छुम्पो के दाहिने किनारे को पार करें।

१०. दापा या दाबा (१४) (१२७) [१४०००] जोङ, मठ, गाँव, खेती, यहाँ की मंडी १९२९ से यहाँ से उठकर नाब्रा में लगा करती है, नाब्रा मंडी, सिबचिलिम मंडी, ज्ञानिमा मंडी, और मिसर तसम दापा जोङ के शासन के अंतर्गत हैं।

११. नाब्रा मंडी (६½) (१३३½) देखिए तालिका १२।

भेंट बदरीनाथ के मंदिर के लिये रावल (पूजारी) के यहाँ भेजा जाता है। बदरीनाथ के रावल भी मंदिर के कुछ प्रसाद और भेंट थुलिङ मठ के लिये भेजते हैं। ज्ञात नहीं यह प्रथा कब से प्रचलित है। गोम्पा के चारों ओर कई छोरतेन और मणि-दीवालें हैं, जो इस मठ के प्राचीन वैभव को प्रकट करती हैं। इसमें से कई तो जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं और कुछ अच्छी स्थिति में हैं।

मठ के दक्षिण भाग में १०-१५ घरों का गाँव है। और २-३ मील दूर सतलज नदी तक जौ और मटर के खेत हैं। पर्याप्त गर्म स्थान है। इसलिये सतलज के किनारे ३-४ गज ऊँचे पेड़ होते हैं। गोम्पा से कुछ दूर पर एक छोटे से नाले के किनारे मठ की ओर से लगाये हुए पीपल के बगीचे हैं। जौलाई और अगस्त के महीनों में यहाँ जेलूखागा घाटा होकर आये हुए खंपाओं, २-४ माना और नीती के भोटियों की मंडी लगती है। आस-पास के पहाड़ में जिंबू बहुत होता है। यहाँ से १० मील नीचे सतलज के किनारे पर छबरङ जोङ है। थुलिङ से २ मील ऊपर सतलज पर एक पुल है।

थुलिङ से गरतोक, तीर्थपुरी, शिमला, और कुल्लू को मार्ग जाते हैं। दापा, सिबचिलिम, और ज्ञानिमा बिना गये ही यहाँ से एक मार्ग सीधे तीर्थपुरी को जाता है।

१२-१७. ... ...
१८. कैलास (तरछेन) (१०३½) (२३८)

तालिका १६

श्री कैलास और मानसरोवर का आठवाँ मार्ग

मुखुवा (गंगोत्तरी) जेलूखागा घाटा होकर—२४३ मील

मुखुवा (गंगोत्तरी) (०) (०) गंगोत्तरी के पंडों के गाँव, यहाँ से टिहरी और नरेंद्रनगर होते हुए हृषीकेश १४५ मील, मसूरी ११० मील, और गंगोत्तरी १३ मील की दूरी पर है। ४ मील जांगला, जं०, दुकान। १ मील कोपांग, डेरे, पड़ाव की दीवालें, हरसील के जाड़ (भोटियों) के डेरे, ¾ मील आगे गंगोत्तरी का मार्ग दाहिनी ओर फूटता है, जो ७½ मील पर है, (यहाँ से जाह्नवी और भागीरथी का संगम ½ मील पर है) यहाँ से जेलूखागा तक मार्ग जाह्नवी या जाड़गंगा के किनारे-किनारे होकर जाता है। २¾ मील डाँडा, डेरे, पड़ाव की दीवालें। ३½ मील कर्चा, डेरे, यहाँ 'पदम' के पेड़ होते हैं।

१. लामाथङ (१३½) (१३½) २¼ मील डेरे, यहाँ से ¾ मील आगे पहला लप्चे और तरचोक। २½ मील कडोली, डेरे।

नीलङ (७½) (२१) [११,१८१] ५ मील ऋषिगंगा पार करके गाँव पहुँचें, इस मार्ग का अंतिम गाँव है, यहाँ पर जाड़ (भोटिये) रहते हैं, खेती यहाँ पर्याप्त होती है। १½ मील मणि-रिंगुवा, डेरे। ३¾ मील मगरू, डेरे। ¾ मील संगम—जाह्नवी और मुलिङ नदी का संगम है, मुलिङ के किनारे-किनारे होकर एक मार्ग बदरीनाथ जाता है। ½ मील नागतोरू, डेरे।

२. दु सुंदू (८½) (२९½) २½ मील जाह्नवी और जधुङ के संगम, दो सुंदू भी

कहते हैं। सुंदू = संगम। डेरे, पड़ाव की दीवालें। (जधुङ नदी के ऊपर संगम से २ मील पर जधुङ नामक एक जाड़ों का गाँव है। २½ मील हिल्दिङ, डेरे। १½ मील सुनामा, डेरे, इसे सोनम भी कहते हैं। १¾ मील छामरेवासा, डेरे, लप्चे, तरचोक, मणि-दीवालें। ३ मील चङमागेरिया, डेरे। ½ मील याङरा, डेरे।

३. तिपानी (११¼) (४०¾) २ मील, तीन नदियों का संगम, डेरे। १¾ मील गुग्गुल सुंदू, डेरे। १ मील पुलिङ सुंदू [१२६८४], डेरे, विशाल मैदान। १½ मील दु सुंदू, डेरे। १ मील टिङटिया, डेरे, पड़ाव की दीवालें, इसे तिङता भी कहते हैं। १¾ मील कैडावास, डेरे।

४. मंडी (खागे के नीचे) (६¼) (५०) २¼ मील डेरे, यहाँ से घाटे की कड़ी चढ़ाई प्रारंभ होती है।

जेलूखागा (घाटा) (३¼) (५३¼) [१७४६०] तिब्बती लोग इसे छुङछोक ला कहते हैं, लप्चे और तरचोक, भारत की सीमा, जून के मध्य से अक्टूबर के मध्य तक पार करने योग्य, यहाँ से ओप नदी तक बहुत कड़ी और खड़ी उतराई पड़ती है। १ मील पङदे, डेरे। २¼ मील पिलपिला, तिब्बत की ओर खागे के नीचे।

५. ओप नदी (४¼) (५७½) १ मील नदी की दोनों ओर डेरे, २ या २½ फीट की गहरी नदी के दाहिने किनारे को पार करें (यहाँ से ½ मील ऊपर नदी पर पुल है)। ४ मील डाक, डेरे। ४ मील फुला ला पड़ाव, डेरे। १¼ मील फुला ला, लप्चे और तरचोक। २¼ मील गुरु का पानी, डेरे, पड़ाव की दीवालें। १ मील जारा, डेरे, पड़ाव की दीवालें।

६. पुलिङ मंडी[1] (१६¼)(७३¾) ३¾ मील (मंडी तक १¼ मील कड़ी उतराई)।

---

[1]यहाँ पर २-३ मकान और पड़ाव की दीवालें तथा एक मणि-दीवाल है। यहाँ जौलाई के मध्य से अगस्त के अंत तक नीलङ के जाड़ और रामपुर-बशहर वालों की मंडी लगती है, जहाँ विशेषकर चावल, जौ, फाफर, नमक, और ऊन का विनिमय होता है। यहाँ से २-३ फर्लांग नीचे नदी के पार पुलिंग का गाँव है,

१$\frac{1}{8}$ मील एक नदी, १$\frac{1}{2}$ या २ फीट गहरी नदी को पार करें, डेरे।
४$\frac{1}{2}$ मील बाबरा, डेरे।

७. शरवाराव[1] (६$\frac{1}{8}$) (८३) ३$\frac{1}{2}$ मील १$\frac{1}{2}$ या २ फीट गहरी नदी के दाहिने किनारे को पार करें, नदी के दोनों किनारों पर डेरे, पड़ाव की दीवालें। १$\frac{1}{2}$ मील कड़ी चढ़ाई। $\frac{1}{2}$ मील कड़ी उतराई। $\frac{1}{2}$ मील कड़ी चढ़ाई। ५$\frac{3}{8}$ मील कांचनथंगा के ऊपर, लपूचे और तरचोक। २ मील बड़े-बड़े दुर्गों के खंडहरों के समान पानी से कटे हुए पहाड़ों के बीच से कड़ी उतराई। १$\frac{1}{8}$ मील एक सूखे नाले के आर-पार ठुसी ला, डेरे, माना-छबरङ का मार्ग यहाँ पर मार्ग को काट कर आगे जाता है (यहाँ से छबरङ जोङ ३ मील दक्षिण में है)। १$\frac{1}{2}$ मील बरखू, १५-१६ गुफाएँ हैं, शीतकाल में कुछ तिब्बती लोग यहाँ पर ठहरते हैं।

८. थुलिङ (२२) (१०५) ६ मील देखिए तालिका १५।

९.-१७. ... ...

१८. कैलास (तरछेन) (१३८) (२४३)

तालिका १७

श्री कैलास और मानसरोवर का नवाँ मार्ग

शिमले से गरतोक होकर—४४५ मील

शिमला (०) (०) [७०४३] ग्रीष्मकाल में बड़े लाट साहब का निवास-स्थान,

---

जिसमें जौ की खेती बहुतायत से होती है, और १०-१५ घर हैं।

[1]इसे शरबरक या शबरक भी कहते हैं। यहाँ से एक मार्ग माना घाटा और एक सीधा मङनङ को, बिना थुलिङ गये, जाता है। यहाँ से दुपाङ १० मील और वहाँ से मङनङ १० मील है।

बड़ा शहर, यहाँ से पू तक पी० डब्ल्यू० डी० की सड़क है, जो हिंदुस्तानी तिब्बत रोड के नाम से प्रसिद्ध है।

१. फगु (१२) (१२) रे०।

२. मटियाना (१७) (२६) रे०।

३. नरकंडा (११) (४०) रे०।

४. ठनाधार (११) (५१) रे०, सराय, रामपुर-बशहर स्टेट, यहाँ से मार्ग सतलज के बाएँ किनारे होकर जाता है।

५. नेर्त (११) (६२) स्टेट की सराय।

६. रामपुर (६) (७१) [३०६३] शहर।

७. गौरा (७) (७८) रे०।

८. सरहन (१३) (६१) इसे सराहन भी कहते हैं, रे०, यहाँ से चीनी तक सतलज के दोनों ओर सुंदर दृश्य।

९. टरंडा (१४) (१०५) रे०।

१०. नीचर (१०) (११५) [७६००] जंगलात का प्रधान कार्यालय, सतलज के दाहिने तट पर।

११. उरनी (१३) (१२८) पी० रे०।

१२. चीनी (१५) (१४३) स्टेट के बँगले, तहसील, चीनी से कनम तक सुंदर दृश्य।

पंगी (५) पी० रे०।

१३. जंगी (१०) (१५८) पी० रे०।

१४. कनम (१४) (१७२) पी० रे०।

चैस्रू (१०) पी० रे०।

१५. पू (६) (१८८) शहर, अंतिम डा०, यहीं से आगे के लिए भोजन सामग्री ले लेनी चाहिए, पी० सड़क का अंत, यहाँ से ३ मील आगे सतलज को पुल से बाईं ओर पार करें।

१६. ममगीया (१०) (१९८) अंतिम गाँव, गोम्पा, यहाँ से घाटे की चढ़ाई प्रारंभ होती है।

शिपकी घाटा (४) (२०२) [१५४००] भारत की सीमा, यह घाटा मई से नवंबर तक पार करने योग्य रहता है ।

१७. शिपकी पड़ाव (८) (२१०) [१०६००] डेरे ।

१८. कूके (५) (२१५) गाँव ।

१९. टियग (१५) (२३०) गाँव, सतलज को पुल से दाहिनी ओर पार करें ।

२०. मियङ (१२) (२४२) गाँव ।

२१. शिरिङ ला के तल (८) (२५०) डेरे, यहाँ से घाटे की चढ़ाई प्रारंभ होती है ।

शिरिङ ला [१६४००] यहाँ से घाटे की उतराई प्रारंभ होती है ।

२२. नुह (१५) (२६५) गाँव ।

२३. हुले (१२) (२७७) डेरे ।

२४. खिनिफुक् (१३) (२९०) गाँव, यहाँ से २ मील आगे चलकर एक मार्ग दाहिने किनारे से थुलिङ को जाता है ।

२५. शाङछी जोङ (१५) (३०५) [१३७६०] छबरङ जोङ का ग्रीष्मकाल के ठहरने का स्थान ।

२६. शङ (६) (३११) गाँव ।

२७. एक नदी के पास (१४) (३२५) डेरे । लोआचे ला [१८५१०] ।

२८. एक नदी के पास (१४) (३३६) डेरे ।

आइ लप्चे । भोङछुङ ला [१७४००] ।

२९. गरतोक की एक नदी के पास (१२) (३५१) डेरे ।

३०. गरतोक[१] (९) (३६०) [१५१००] पश्चिमी तिब्बत की राजधानी ।

३१. नोक्यू तसम (६) (३६६) [१५०००] तीन घर, गरतोक-ल्हासा के वाणिज्य मार्ग में यह पहला तसम (ट्रान्स्पोर्ट और डाक एजेंसी) है ।

---

[१] यहाँ पर वायसराय के दो भवन, सात-आठ घर, १० या १९ काले तंबू, १ गोम्पा (इसमें आठ भिक्षु रहते हैं), और १ डोङखङ है । वायसराय ग्रीष्म ऋतु में छः महीने तक यहाँ पर रहते हैं । अगस्त के मध्य से लेकर सेप्टेंबर

डोक्यू (८) डेरे ।

पार छू (५) नदी की दोनों ओर डेरे, २ या २½ फीट गहरी नदी को पार करें ।

लङ्पोछे छू (३) नदी की दोनों ओर डेरे, २ या २½ फीट गहरी नदी को पार करें ।

३२. छोंपता (५) (३८७) डेरे, यहीं से चरगोत घाटा की चढ़ाई प्रारंभ होती है ।

चरगोत ला (२) [१६२००] ।

ङिङरी (२) उतराई, डेरे ।

३३. मिसर तसम (१४) (४०५) [१४३००] तीन घर, ल्हासा के मार्ग में दूसरा तसम ।

३४. तीर्थपुरी (४) (४०९) गोम्पा, गर्म सोते, देखिये तालिका ५ ।

३५. दुलचू गोम्पा (१४¾) (४२३¾) ।

३६. कैलास (तरछेन) (२१¼) (४४५) ।

के मध्य तक यहाँ पर एक मंडी लगती है, जिसमें विशेषकर जोहार और नीती के कुछ व्यापारी आते हैं । भाद्रपद पूर्णिमा के अवसर पर यहाँ छोङ्दू नामक घुड़दौड़ का एक मेला लगता है, तब पश्चिमी तिब्बत के चारों गवर्नर (जोङ) या उनके प्रतिनिधि उपस्थित रहते हैं, मेला ३-४ दिन तक रहता है ।

यह पश्चिमी तिब्बत के ब्रिटिश ट्रेड एजेंट का प्रधान स्थान है ।

तालिका १८

श्री कैलास और मानसरोवर का दसवाँ मार्ग

शिमले से थुलिङ होकर—४७३ मील

शिमला (०) (०) देखिए तालिका १७।

१-२३. ....।

२४. खिनिफुक् (२९०) (२९०) गाँव, यहाँ से २ मील आगे चलकर बाईं ओर का मार्ग गरतोक जाता है।

२५. टिबू (२०) (३१०) डेरे।

२६. नियङ (६) (३१६) डेरे। शङसी, डेरे।

२७. थुलिङ (१६) (३३५) देखिए तालिका १५।

२८-३६.............

३७. कैलास (तरछेंन) (१३८) (४७३)।

तालिका १९

श्री कैलास और मानसरोवर का ग्यारहवाँ मार्ग

काश्मीर-श्रीनगर से लदाख होकर—६०५ मील।

श्रीनगर (०) (०) [५२६०] भूतल पर स्वर्ग कहलाने वाले काश्मीर की राजधानी।

१. गंदरबल (१३) (१३) डा०, ता०, रे०।

२. कंगन (११) (२४) [५७६५] डा०, रे०, यहाँ पर 'पासपोर्ट' की जाँच की जाती है।

३. गुंड (१३) (३७) [६५००] डा०।

४. सोनमर्ग (१४) (५१$\frac{१}{२}$) [८७५०] डा०, ता०, रे०।

५. बालतल (६) (६०$\frac{१}{२}$) [६४५०] रे०, गाँव नहीं है, (अमरनाथ की गुफा यहाँ से १२ मील पर है)।

जोजी ला (२$\frac{१}{२}$) (६३) [११५७८] लदाख का सूबा प्रारंभ होता है। ६ मील मछोई, ता०, रे०, गाँव नहीं है।

६. मटयन (७) (७६) रे०।

७. द्रास् (१२$\frac{१}{२}$) (८८$\frac{१}{२}$) [१०६३६] डा०, ता०, रे०, सराय।

८. समसा-खरबू (२२$\frac{१}{२}$) (१११) रे०।

९. कर्गिल (१६$\frac{१}{४}$) (१२७$\frac{१}{४}$) [१८७६०] डा०, ता०, अ०, रे०, तहसील।

१०. मुलबेक (२२$\frac{१}{२}$) (१४६$\frac{३}{४}$) [१०३५०] रे०, मार्ग में पहला गोम्पा।

नम्मिक घाटा (६) [१३०००] घाटा।

११. बोध-खरबू (८$\frac{१}{२}$) (१६४$\frac{१}{४}$) रे०, सराय। १० मील फ़ोतु ला [१३४४६]।

१२. लामायुरू (१५) (१७६$\frac{१}{४}$) [११४००] ५ मील यह लदाख के बड़े मठों में से एक है। १०$\frac{१}{४}$ मील खालसी, डा०, ता०, (कुछ स्थानों को छोड़कर यहाँ से लगभग २७० मील तक मार्ग सिंधु नदी के किनारे-किनारे है।)

१३. नुरला (१८$\frac{३}{४}$) (१९८) ८$\frac{१}{२}$ मील रे०।

१४. ससपुल (१४$\frac{३}{४}$) (२१२$\frac{३}{४}$) डा०, रे०। ७$\frac{१}{२}$ मील बोज़गो, गोम्पा।

१५. नीमू (११$\frac{१}{२}$) (२२४$\frac{१}{४}$) ४ मील गोम्पा, रे०। १३$\frac{३}{४}$ मील पितक, गोम्पा।

१६. लेह (लदाख) (१७$\frac{३}{४}$) (२४२) [११५०३] ४ मील डा०, ता०, रे०, अ०, गोम्पा, काश्मीर स्टेट और ब्रिटिश सरकार के ज्वाइंट कमिश्नर यहाँ रहते हैं, यह एक बड़ी मंडी है। यारकंद, काशगर, तिब्बत, और भारत के व्यापार का बड़ा केंद्र है। मार्ग में अंतिम डा०, आगे का सारा प्रबंध यहीं से करना पड़ता है।

१७. चूशोट (१२) (२५४) गाँव। ११ मील हेम्मिस का बागीचा, हेम्मिस गोम्पा मार्ग से १ मील ऊपर है। यह लदाख का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध मठ है।

१८. मरचलङ (१३) (२६७) २ मील गाँव। ५ मील उगु का पुल।

१९. उपश्री (१०) (२७७) ५ मील गाँव । ७ मील मिरू गाँव ।

२०. ग्या (१०) (२८४) [१३५००] गाँव । ५ मील शग्रोत, डेरे ।

टगलङ ला (१२) (३०६) [१७५००] ७ मील चढ़ाई ।

२१. डेब्रिङ (४) (३१०) [१५९८०] डेरे । १२ मील पोंगोनागु, डेरे ।

२२. थुपजे (१५) (३२५) ३ मील डेरे, गोम्पा । पोलोगोंका ला [१६४०० ?]

२३. पूगा (१६)(३४१) [१४३००] यहाँ एक घर, गर्म सोते और गंधक की खान है।

२४. लङशम (१८) (३५९) चुंगीघर, (सिंधु नदी के पार न्यीमा और मोथ नामक गाँव हैं) यहाँ पर सिंधु नदी का पाट लगभग ३/४ मील चौड़ा है।

२५. डुङटी (१८) (३७७) डेरे ।

२६. निगूचे (१३) (३९०) डेरे ।

२७. फुग्चे (१४) (४०४) डेरे ।

२८. लगनखेल (१२) (४१६) डेरे । ७½ मील टेटोर-योङमा, डेरे । १½ मील टेटोर-कोङमा, डेरे ।

२९. देमचोक (१२) (४२८) ३ मील गाँव, जौ के खेत, काश्मीर और तिब्बत की सीमा, गाँव से कुछ ऊपर गर्म जल के सोते । ७ मील टमाकोलक, कुछ खेत ।

३०. टाशीगोङ[1] (१९)(४४७) [१३९००] १२ मील २०-२५ घर का गाँव, बड़ा गोम्पा ।

३१. लङमर (१६) (४६३) गाँव, खेत के दो चार टुकड़े, यहाँ से १ मील आगे गरतोङ नदी के दूसरे तट पर सुहागे की बड़ी-बड़ी खानें हैं ।

३२. गरगुनसा (१८) (४८१) [१४०६५] पश्चिमी तिब्बत के गरपोन या वायसराय के शीतकाल में ६ महीने तक निवास-स्थान, गोम्पा ।

३३. नमरू (२४) (५०५) गाँव, कुछ खेत, गाँव से कुछ दूर पर गर्म जल के सोते ।

३४. गरतोक (१५) (५२०) देखिए तालिका १७ ।

---

[1] यह मठ एक टीले पर स्थित है पहले यह लदाख का था परंतु अब सेरा विहार की एक शाखा है । इसके बदले में काश्मीर सरकार को मिसर में कुछ अधिकार मिला है ।

३५-३९. ... ...
४०. कैलास (तरछेन) (८५) (६०५)

तालिका २०

श्री कैलास और मानसरोवर का बारहवाँ मार्ग

ल्हासा से ग्यांची और शिगर्ची होकर—८०० ? मील

ल्हासा
१. नेथङ
२. छुशुल
३. कंबा-पाचिक
४. पेटिस्रो
५. नङछे जोङ
६. रिबुङ
७. ग्यगछे
८ ग्यांची
९. टोकरी
१०. पन्नङ जोङ
११. शिगर्ची (टाशी ल्हुम्पो)
१२. नेथङ गोम्पा
१३. कङछेन गोम्पा
१४. शिपकी डिङ
१५. टाशीगोङ
१६. पुङछोक् लिङ
१७. चकढोङ
१८. मोहरी
१९. सङलिङ
२०. ङवरिङ
२१. रलुङ
२२. कोनदुन
२३. कोरगेप
२४. सङसङ
२५. शेरू
२६. केटोरुङ
२७. केटो
२८. रूछेन
२९. रपका
३०. समकू
३१. उकशू
३२. साका जोङ
३३. ललुङ
३४. न्युकू
३५. नदी का तट
३६. लुकचङ
३७. तमसकरङ
३८. टदुम
३९. लुङ-परमा
४०. टूटू
४१. टुकसुम
४२. ङकचकसुङ
४३. टमसङ
४४. सुमदो
४५. ल्होलुङ
४६. टक-करपो
४७. थोकचेन
४८. ङालुकरो
४९. परखा
५०. कैलास (तरछेन)

तालिका २१

तरछेन से सिंधु नदी का उद्गम

ल्हे ला होकर जाना और तोपछेन ला होकर लौटना —६२ मील

तरछेन (०) (०) यहाँ से कैलास की परिक्रमा प्रारंभ होती है, देखिए तालिका २। ५ मील न्यनरी गोम्पा, कैलास का प्रथम मठ। ४$\frac{3}{4}$ मील ङुङलुङ छू, इस नदी के ऊपर-ऊपर एक मार्ग ब्रह्मपुत्र के उद्गम पर जाता है।

डिरफुक् गोम्पा[1] (१२$\frac{1}{4}$) (१२$\frac{1}{4}$) २$\frac{1}{2}$ मील कैलास का दूसरा मठ, देखिए तालिका २। कैलास परिक्रमा के मार्ग को दाहिनी ओर छोड़कर यहाँ से ल्हे ला तक मार्ग उत्तर की ओर ल्हा छू के किनारे-किनारे चलता है। ३$\frac{1}{4}$ मील पर दाहिनी ओर सेलुङमा, डेरे। २$\frac{1}{2}$ मील पर बाईं ओर छुलुङ, डेरे, १$\frac{1}{2}$ मील पर दाहिनी ओर केलुङवा, डेरे, यहाँ से कड़ी चढ़ाई प्रारंभ होती है। $\frac{3}{4}$ मील पर डोलुङवा[2], डेरे, यहाँ से

---

[1] डिरफुक् गोम्पा से सिंगी खम्बब् (सिंधु नदी का उद्गम) को तीन मार्ग जाते हैं—(१) ङुङलुङ छू के किनारे-किनारे ङुङलुङ ला होकर, (२) ल्हा छू के किनारे-किनारे छेठी और छेठी लचेन ला होकर, (३) ल्हे ला होकर। तीसरा मार्ग सबसे छोटा, दूसरा लंबा और बहुत विकट, तथा पहला सबसे लंबा है। सिंगी खम्बब् से तरछेन लौटने के लिये तोपछेन ला का मार्ग निकट और सुगम है। सिंगी खम्बब् के तिब्बती यात्री इस तालिका में दिये हुए मार्ग का अनुसरण करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से डोलमा ला की कड़ी चढ़ाई और उतराई को बिना पार किये ही कैलास की परिक्रमा की जा सकती है। मैंने भी इसी मार्ग से यात्रा की थी।

[2] लुङ, लुङमा, लुङवा, या लुङबा ये सभी शब्द उपत्यका (वेली) के पर्यायवाची नाम हैं।

घाटा तक पत्थरों में होकर बहुत कड़ी चढ़ाई पड़ती है।

ल्हे ला (१० ३/४) (२३) ३ १/२ मील, इसे लप्चे-चिकपा ला भी कहते हैं, लप्चे, मंडल, यहाँ से ४ १/२ मील तक बहुत कड़ी उतराई, डेरे।

शरशुमी (५ १/४) ३/४ मील आगे डेरे। यहाँ से ल्हे ला से आई हुई नदी के किनारे-किनारे लुङ्घेप छू के संगम तक उतराई।

लुङ्घेप छू (६) सामने नदी के पार बाएँ किनारे पर न्यीमालुङ छू का संगम है। लुङ्घेप छू के किनारे-किनारे आगे बढ़ें।

२. लुङ्घेप[1] (२ १/४) (३६ १/२) नदी के दोनों किनारे डेरे, २ ३ काले तंबू। २-३ फीट गहरी नदी को पार करें।

रूङमागेम[2] (६ १/२) कुछ चढ़ाव-उतार, डेरे, नदी को पार करें। ३/४ मील सिंगी-छवा के पहाड़ की रीढ़ तक बहुत कड़ी चढ़ाई। ३/४ मील बहुत कठिन उतराई, वोखर छू को पार करें।

३. सिंगी खम्बब्[3] (२) (४६) [१६९३०] १/२ मील सिंगी खम्बब् या सिंधु के

---

[1]यहाँ से १ मील नीचे नदी के दाहिने किनारे पर लुङ्घेप-ङिङरी नामक एक छोटा-सा पहाड़ है, जिसके तल में नदी चौड़ी होकर एक तालाब-सी बन गई है, जो लुङ्घेप-ङिङरी छो के नाम से पुकारी जाती है।

[2]इस नदी का ऊपरी भाग मुंजन छू और नीचे का भाग सिंगी या सिंधु नदी में मिलने तक रूङमागेम के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ आस-पास में विस्तृत चरागाह हैं। अम्दो प्रांत के चरवाहे हजारों भेड़-बकरियों और सैकड़ों याकों को लेकर यहाँ चराने के लिये आते हैं। सिंगी खम्बब् प्रांत के गन्ध-पदार्थ अपनी विशेषता के लिये प्रसिद्ध हैं।

[3]यहाँ पर स्वच्छ जल के ३ या ४ सोते पृथ्वी से निकले हुए हैं। इनके पास ही एक चौकोर मणि-दीवाल है। मणि-मंत्र के छहों अक्षर डेढ़-डेढ़ फीट के लंबे पत्थरों पर खुदे हुए हैं। एक पत्थर पर धर्मचक्र खुदा हुआ है। सोतों के मिश्रित जल का तापक्रम ४५° था। इन सोतों का जल छोटे-छोटे कुंडों में इकट्ठा हो जाता है, जिनमें घास उगी रहती है। फिर इन कुंडों का जल एक छोटे-से

उद्‌गम, डेरे, आस-पास में अम्दो प्रांत के गड़रियों के काले तंबू हैं। २ मील रुङमागेम, डेरे, नदी के बाएँ तट को पार करें। ३ मील की कड़ी चढ़ाई। १$\frac{1}{4}$ मील की बहुत कठिन उतराई, लुङधेप-ङिङरी, डेरे। २ मील लुङधेप छू, डेरे, यहाँ से आगे का मार्ग लुङधेप छू के किनारे-किनारे जाता है। ४$\frac{1}{2}$ मील, न्यिमालुङ छू, इसके बाएँ तट को पार करें, यहाँ से घाटा की चढ़ाई प्रारंभ होती है। मार्ग से १ फर्लांग नीचे ङिमालुङ छू लुङधेप से मिलती है। ४ मील आगे १$\frac{1}{2}$ या २ फीट गहरी लुङधेप छू के बायें किनारे को पार करें। १$\frac{1}{4}$ मील आगे लुङधेप छू के दाहिने किनारे पर एक नदी मिलती है।

४. तोपछेन ला के नीचे (२०)(६६) २ मील तोपछेन ला के नीचे डेरे, (आगे न्यिमालुङ से यहाँ तक मार्ग दलदल होकर है।) यहाँ से बड़े-बड़े पत्थरों के बीच से होकर बहुत कड़ी चढ़ाई, घाटा।

तोपछेन ला (५) (७१) बड़े-बड़े पत्थरों पर होकर ७ मील की बहुत कड़ी उतराई। ५ मील मंद उतराई, यहाँ से कैलास का पूर्वी दृश्य दिखलाई पड़ता है।

संगम (१३) $\frac{3}{4}$ मील तोपछेन छू और ल्हमछीखिर का संगम, तोपछेन ला से

नाले के रूप में आधे मील नीचे बोखर छू में मिलता है। इन सोतों के पास ही ३-४ गज की ऊँचाई में अधित्यका के एक श्वेत चट्टान के किनारे पर मोटे खंभे जैसे तीन लप्चे या मंडल, और कुछ मणि-पत्थर हैं। उन पर तिब्बती यात्री रंग-बिरंगे चिथड़े चढ़ाते हैं। सोतों के उत्तर की ओर के पहाड़ का नाम सिंगी-यूरा है और दक्षिण की ओर बोखर छू के पार के पहाड़ का नाम सिंगी-छ्वा है। सिंगी खम्बब् के ईशान कोण में लामा ला है। इसे पार कर एक मार्ग थोक-जलुङ की सोने की खानों को जाता है। सिंगी को सेंगी, या सेंगे भी कहते हैं। खम्बब् को कुछ पूर्वी तिब्बती खम्बा भी कहते हैं। मैं सिंधु नदी के उद्‌गम पर सन् १९३० की ४ जौलाई को गया था और समीप में ३ दिनों तक ठहरा था।

लेकर यहाँ तक स्थान-स्थान पर डेरे और पड़ाव की दीवालें, संगम से कुछ ऊपर ३ फीट गहरी ल्हमछिखिर के दाहिने किनारे को पार करें। यहाँ से कैलास परिक्रमा का मार्ग मिलता है। १½ मील ल्हम छिखिर के किनारे जुन्ठुलफुक् गोम्पा, कैलास का तीसरा मठ, देखिए तालिका २।

५. तरछेन (६½) (९२)

तालिका २२

तरछेन से ब्रह्मपुत्र और टग नदी का उद्गम

गुरला ला होकर तकलाकोट लौटना—१६७ मील

तरछेन (०) (०) देखिए तालिका २। ३ मील भोङ छू, डेरे, तीन फीट गहरी नदी को पार करें। ३ मील अबङ छू, डेरे, नदी को पार करें। २ मील फिलुङ-कोङमा छू, डेरे, नदी को पार करें। ¾ मील फिलुङ-फरमा छू, डेरे, नदी को पार करें। २¾ मील फिलुङ-योङमा छू, डेरे, नदी को पार करें। २¾ मील ग्युमा छू, डेरे, २½ फीट गहरी नदी को पार करें। ¼ मील क्यो, डेरे।

१. कुगलुङ छू (१७) (१७) २½ मील डेरे, नदी को पार करें। ३¾ मील लुङनक छू। २½ मील कुक्यँल छुगो। २¼ मील पलचेन छू, डेरे, २-३ फीट गहरी नदी को पार करें। १¼ मील पलचुङ छू, डेरे, ३ फीट गहरी नदी को पार करें।

२. सेरालुङ गोम्पा (१६) (३३) ६¼ मील मानसरोवर का छठा मठ, देखिए तालिका ३। हरकोङ ३½ मील काले तंबू। ४ मील छोमोकुर, काले तंबू।

३. नामरदिङ (१५) (४८) ७½ मील डेरे, पड़ाव की दीवालें, यहाँ नामरदिङ छू को पार करें, यहाँ से मानसरोवर के दर्शन होते हैं।

चङशा ला (४) घाटा तक १½ मील की कड़ी चढ़ाई और घाटा से १½ मील तक कठिन उतराई।

छुमिक-थुङटोल[1] (३½) (५५½) सोता।

लङ्चेन खम्बब्[2] (¾) सोता, यहाँ से आगे १¼ मील से २ मील तक टग नदी के दोनों किनारों और पाट में श्वेत बालू है।

टगरमोछे (२¾) (५९) डेरे, पड़ाव की दीवालें, (यहाँ से एक मार्ग टग के किनारे-किनारे लगभग १० मील कङ्लुङ कङरी हिमनदियों तक जाता है, यही टग छुम्पो का उद्गम-स्थान है।)। यहाँ से १ मील

---

[1]छू=जल, मिक=आँख, थुङ=देख, टोल=निर्वाण; अर्थात् जो कोई इस नेत्र सदृश स्रोत को देख लेते हैं, वे अवश्यमेय निर्वाण प्राप्त करते हैं। यह ऊँचे पहाड़ों के बीच में टग छुङपो के दाहिने किनारे पर है। स्रोत की चारों ओर १६ गज लंबी और १० गज चौड़ी मणि-दीवाल है, जिसमें लगे हुए झंडे सोते पर झुके हुए हैं। यह सोता ३-४ फीट गहरा तथा ३ फीट व्यास का है। इसमें तिब्बती यात्रियों द्वारा चढ़ाये हुए चार साधारण पिरोजे, दो कंकण, कुछ लाल और नीले दाने, और कुछ छोटी मोटी वस्तुएँ हैं, जो स्वच्छ पिरोजे जैसे निर्मल जल में हस्तगत पदार्थों के समान दिखलाई पड़ते हैं। स्रोत का जल स्वच्छ और निर्मल है। इसके नीचे से जल बाहर निकल कर एक छोटे से नाले के रूप में कुछ गज नीचे टग में गिरता है। स्वेन हेडिन ने भ्रमवश इसका नाम छुक्को रक्खा था। तिब्बती पुराण में यह लिखा गया है कि गंगा या लङ्चेन खम्बब् कैलास से निकल कर यहाँ पर प्रकट होकर फिर यहाँ से दुलचू गोम्पा में प्रकट होती है। यह सोता चेनरेसी (श्वेत), छगनादोर्जे (नीला), और जम्बियङ (पीला) पहाड़ों के बीच में है। सोता पहुँचने के मार्ग में और आगे कई मंडल, लप्चे, और मणि हैं।

[2]सोते के पास एक बड़ा लप्चे है, जिसमें एक लंबी लकड़ी में कई रंग-बिरंगे झंडे लगे हुए हैं। यह सोता काले पत्थरों से निकलकर और उसी प्रकार के पत्थरों में होकर एक छोटे से नाले के रूप में बहता है।

दलदल भूमि में चल कर टगरमोछे छू को पार करें, जो लगभग ¾ मील नीचे जाकर टग छुम्पो में मिलती है। आगे १ मील कड़ी चढ़ाई।

टक्करबू ला (२) लप्चे। छोटे-बड़े पत्थरों से ऊँचे नीचे होकर ५¾ मील के बाद चामर, डेरे, मार्ग की बाईं ओर एक पहाड़ है, जिसकी चोटी पर लप्चे और तरचोक हैं, इस पहाड़ के ठीक दक्षिण की ओर दूर में कङलुङ हिमनदियों का सुंदर दृश्य है, टक्करबू ला और चामर के बीच में कई छोटे-बड़े तालाब हैं।

टग ला (६) (६७) [१७३८२] ¾ मील लप्चे और तरचोक। ३½ मील तमलुङ छो, इस सरोवर के किनारे-किनारे स्थान-स्थान पर डेरे हैं, शीतकाल में चरवाहे आकर यहाँ ठहरते हैं। इस सरोवर से आगे कई छोटे-छोटे ताल हैं, जो परस्पर मिले हुए हैं। २½ मील सरोवर के साथ-साथ (तमलुङ छो से एक नदी निकल कर आगे अङसी छू से मिलती है)। २½ मील के बाद एक मार्ग पूर्व की ओर कोङ्यू छो, बोङबा, आदि स्थानों को जाता है। २¼ मील दक्षिण की ओर मंद चढ़ाई है, यहाँ से उत्तर की ओर कोङ्यू छो दिखाई पड़ता है। २¼ मील की क्रमशः साधारण, कठिन, और बहुत कठिन उतराई है।

५. अङसी छू (१३) (८०) नदी की दोनों ओर डेरे हैं, इसका पाट चौड़ा और गंभीर है, इसके बीच में ऊपर और नीचे कई तालाब बने हुए हैं, २, २½ फीट की गहरी नदी को पार करें। ½ मील नदी की उपत्यका। १¼ मील मंद और कड़ी चढ़ाई। २½ मील अधित्यका के ऊपर मंद चढ़ाई, बीच में बाईं ओर एक तालाब है।

शिबलारिङमो ला (४¼) यह घाटा दो घरों के मध्य के संकीर्ण गली की भाँति ऊँचे-ऊँचे दो पहाड़ों के बीच में एक गज चौड़ा है। (घाटे के पास ही दाहिनी ओर एक गहरा तालाब है।) ¾ मील तंग घाटा में पत्थरों से होकर उतराई, यहाँ से बाईं ओर एक तालाब है। ३¼ मील पत्थरों पर ऊँचे नीचे होकर मार्ग, आधे मार्ग में चंद्राकार एक सुंदर तालाब

है, जिसमें एक द्वीप है। यहीं पर एक छोटी नदी को पार करें। ½ मील चढ़ाई। १¾ मील बहुत कड़ी उतराई।

चेमायुङ्डुङ छू (५½) नदी का पाट और दाहिना किनारा श्वेत बर्फ़ से ढका हुआ-सा प्रतीत होता है। अङसी की उपत्यका के समान ही चेमायुङ्डुङ की उपत्यका भी कई तालाबों से भरी हुई है।

चेमायुङ्डुङ पू (५½) तमचोक खम्बब् की प्रथम हिमनदी, इसकी जिह्वा पर फिसले हुए पहाड़ के टुकड़ों के ढेर लगे हुए हैं। ग्लैशियर के ऊपर दो तालाब बने हुए हैं, यहाँ से मार्ग पश्चिम की ओर मुड़ता है।

६. तमचोक खम्बब्[1] (¾) (९६) ब्रह्मपुत्र का उद्गम-स्थान।

---

[1] ता = अश्व, अमचोक = कान, खम्बब् = मुख से निकला हुआ, अर्थात् अश्व-कर्ण-मुख से निकली हुई नदी। एक और व्युत्पत्ति के अनुसार, तमचोक = दिव्य अश्व, खम्बब् = मुख से निकला हुआ, अर्थात् दिव्य अश्व के मुख से निकली हुई नदी। यहाँ पर १२ फीट ऊँचा एक बड़ा भारी पत्थर है, जिसके ऊपर दो पादचिह्न हैं। ये नरोपुङजुङ के माने जाते हैं। उस पर केवल पत्थरों के ढेरों से चिनी हुई दीवालों की एक छोटी सी पूर्वाभिमुख कोठरी बनी हुई है। इस कोठरी के ऊपर जंगली याक के दो सींग रक्खे हुए हैं। बड़े पत्थर से सटी हुई एक छत वाली और दो बिना छत वाली, पत्थरों के ढेर की दीवालों की धर्मशालाएँ हैं। पत्थर की चारों ओर कई मंडल बने हुए हैं। पास ही एक सूखा सोता है, जिसमें ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में जल होता है, (ऐसा वहाँ के लोगों ने बताया।) नदी यहाँ पर चेमायुङडुङ नाम से प्रसिद्ध है, जो उक्त पत्थर से १० गज की दूरी पर है। इस स्थान से १ मील ऊपर तमचोक खम्बब् नामक एक बड़ी हिमनदी है, जो ब्रह्मपुत्र की प्रधान हिमनदी है। इसमें तमचोक खम्बब् या ब्रह्मपुत्र का वास्तविक उद्गम-स्थान है। यह और चेमायुङडुङ पू ब्रह्मपुत्र के दोनों कान समझे जाते हैं। ये दोनों चेमायुङडुङ पू या केवल चेमायुङडुङ के सम्मिलित नाम से प्रसिद्ध हैं। इसे चेमायुन्दुङ या चेमायुङडुङ

शिवलारिङमो ला (११$\frac{3}{4}$)
७. अङसी छू (४$\frac{1}{4}$) (११२) डेरे।
टग ला (१३)
८. टगरमोछे (८) (१३३) डेरे।
छुमिक-थुङटोल (३$\frac{1}{2}$) (३) सोता, डेरे। ६$\frac{1}{4}$ मील टगपोटोङ, डेरे।
 ६$\frac{1}{2}$ मील टग नदी के बाएँ किनारे को पार करें, टोमोमोपो के डेरे, उबलते और उछलते हुए गर्म जल के सोते।
९. न्योंबा-छुजेन (१६$\frac{1}{2}$) (१५३) $\frac{3}{4}$ मील टग नदी के दोनों किनारे के गर्म जल के सोते, डेरे, दे० १३१, ३५८। ३$\frac{1}{2}$ मील निमापेंडी छू, नोनोकुर के

भी कहते हैं। चेमा = रेत, युन्दुङ = स्वस्तिका। छोरतेन के सामने नदी के दाहिने किनारे पर इन दोनों हिमनदियों के बीच में एक चौड़े सिर वाला शिखर है। तमचोक खम्बब् के प्रधान ग्लैशियर के वायव्य कोण में एक और छोटी हिमनदी है, जिसके पीछे अङसी हिमनदी है। सन् १९३७ के १७, १८ जून को मैं ब्रह्मपुत्र के उद्गम पर था। उस समय नदी का पाट ५ से २० गज तक चौड़ा, ६ से ७ फीट तक मोटा (तमचोक खंबब् की प्रधान हिमनदी के मुख से) और ३ मील लंबा था, और बर्फ से भरा हुआ था। पाट में जमी हुई इस बर्फ के बीच में ३ से ६ फीट चौड़ी और ६ फीट गहरी, बर्फ की खड़ी दीवालों के बीच में नदी प्रवाहित हो रही थी। अगस्त के महीने में 'ञाकोरा' के घुमक्कड़ गड़रिये यहाँ जंगली याकों का, जो यहाँ अधिक हैं, शिकार करने के लिये आते हैं।

स्वेन हेडिन ने भ्रमवश ब्रह्मपुत्र के उद्गम को चेमायुङडुङ कङरी में न मान कर कुबी में रखे थे, जिसकी चर्चा मैंने विस्तार से 'ऐक्सप्लोरेशन इन टिबेट' (तिब्बत में अन्वेषण) नामक पुस्तक में की है। चेमायुङडुङ की उपत्यका में बहुत अच्छी घास होती है, इसलिये ञाकोरा के चरवाहे यहाँ अधिक आते हैं। नदी की दोनों ओर स्थान-स्थान पर डेरे लगते हैं। नदी का श्वेत बालू १० मील तक फैला हुआ है, जो दूर से देखने में गिरी हुई बर्फ के समान प्रतीत होता है।

काले तंबू, देखिए तालिका ३। नदी के बाएँ किनारे को पार करें। $३\frac{१}{४}$ मील येर्नगो गोम्पा, मानसरोवर का सातवाँ मठ।

१०. ठुगोल्हो (६) (१६२) देखिए तालिका ३। मानसरोवर का आठवाँ मठ, $६\frac{१}{२}$ मील गुरला ला।

११. वलडक ($८\frac{१}{२}$) (१८०) डेरे।

१२. तकलाकोट (१६) (१९६)।

तालिका २३

तकलाकोट से मप्चा चुंगो

करनाली का उद्गम—२१ मील

तकलाकोट (०) (०) देखिए तालिका ५।

१. हरकोङ छू ($१४\frac{१}{४}$) ($१४\frac{१}{४}$)

२. मप्चा चुंगो ($८\frac{३}{४}$) (२३) सोते।

तालिका २४

कैलास से दुलचू

सतलज का उद्गम—२१ मील

कैलास (तरछेन) (०) (०)

ल्हा छू ($२\frac{१}{४}$)

करलेब छू (३)

चङजे-चङजू ($७\frac{१}{२}$)

१. दुलचू ($८\frac{१}{४}$) (२१) देखिए तालिका ५।

तालिका २५

अल्मोड़े से पिंडारी ग्लेशियर

—७४ मील

अल्मोड़ा (०) (०)

१. ताकुला (१५) (१५) डा०, डाव०, दुकान।

२. बागेश्वर (१२) (२७) सरयू और गोमती नदी का संगम, डा०, अ०, डाव०, स्कूल, बाजार, मंदिर आदि। दे० २८८, तालिका ११।

३. कपकोट (१४) (४१) डाव०, दुकान, धर्मशाला।

लोहारखेत (९) डाव०, दुकान।

४. ढाकुरी (६) (५६) डाव०, दुकान।

खाती (५) डाव०, दुकान।

द्वाली (४) डाव०।

५. फुरकिया (६) (७१) डाव०।

पिंडारी ग्लेशियर[1] (३) (७४) [१२८८०] बहुत सुंदर हिमनदी।

---

[1]ग्लेशियर पहुँचने से एक मील इधर ही एक गुफा है, जो नंदादेवी का शीतकालीन निवासस्थान माना जाता है। ग्लेशियर के पूर्व में नंदाकोट शिखर (२२५१० फीट), पश्चिम में नंदाकना का शिखर (२०७०० फीट), और त्रिशूल का शिखर (२२३०० फीट) और उत्तर में नंदादेवी का शिखर (२५६४० फीट) है। यहाँ से एक मार्ग कैलास के तीसरे मार्ग में बर्फ से होकर मरतोली गाँव को जाता है। इस मार्ग से पहले-पहल श्री ट्रेल गए थे, इसलिये यह बर्फीला घाटा 'ट्रेल पास' नाम से प्रसिद्ध है।

तालिका २६

श्रीनगर से अमरनाथ

पहलगाँव होकर—५६ + २८$\frac{3}{4}$ = ८७$\frac{3}{4}$ मील

श्रीनगर (०) (०) [५२६०] जम्मू और काश्मीर रियासत की राजधानी। ६ मील पांपुर, यहाँ पर केसर की खेती होती है, जिसके फूल आश्विन पूर्णिमा को तोड़े जाते हैं।

अवंतिपुरा (१८$\frac{1}{2}$) (१८$\frac{1}{2}$) ६$\frac{1}{2}$ मील पुराने मंदिरों के खंडहर। ७ मील संगम—झेलम और विश्वा नदी का संगम। ३$\frac{1}{2}$ मील विजबिहारा, शहर। ४ मील खानाबल, जम्मू से श्रीनगर जाने वाला मार्ग यहाँ पर मिलता है, जम्मू यहाँ से १७३ मील की दूरी पर है।

अनंतनाग[1] (१५$\frac{1}{2}$) (३४) [५३००] १ मील यह इस्लामाबाद भी कहलाता है, शहर। २ मील गौतमनाग, सोते। १$\frac{1}{2}$ मील ववन, गाँव।

मट्टन[2] (४$\frac{1}{2}$) (३८$\frac{1}{2}$) १ मील अमरनाथ के पंडे यहाँ रहते हैं। $\frac{3}{4}$ मील बुन्जू, यहाँ पर मार्ग से दाहिनी ओर के पहाड़ में लगभग २०० गज लंबी

---

[1]यहाँ पर एक पहाड़ की जड़ से कई सोते या नाग निकलते हैं, इसलिये इस स्थान का नाम अनंतनाग पड़ा। इन सोतों के पास एक बड़ा सुंदर कुंड बना हुआ हुआ है, जो ४ फीट गहरा है। इस कुंड का जल कुछ नीचे तक दूसरे कुंड में गिरकर वहाँ से एक नदी के रूप में बाहर निकलता है। यहाँ से एक मार्ग अच्छाबल और वेरीनाग को जाता है।

[2]यहाँ भी दो कुंड हैं, जिनकी गहराई १२-१२ फीट है। यहाँ से २ मील पर एक पहाड़ के ऊपर प्रसिद्ध मार्तंड के मंदिर के खंडहर हैं, जो १२०० वर्षों का पुराना है। इस मंदिर की नींव २२५ फीट लंबी और १५० फीट चौड़ी है।

गुफा है, जिसमें अँधेरे के कारण दीप या टॉर्च लेकर और कहीं-कहीं पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता है।

ऐशमुकाम (६) (४७½) ८¾ मील मुसलमानों का एक तीर्थ। २½ मील गणेशपुरा, मार्तंड की नहर का प्रधान स्थान। ३ मील बटकुट, अमरनाथ के चढ़ावे का तीसरा अंश इस गाँव के मुसलमानों को दिया जाता है।

पहलगाँव[1] (११½) (५६) [७२००] ६ मील ठंढे स्थान, दुकान, यहाँ पहलगाँव के 'कैंपिंग ग्राउंड' या डेरे के स्थान हैं। १ मील पहलगाँव, गाँव। १ मील पहलगाँव, शेषनाग नदी के पार दाहिने किनारे पर यात्रियों के छप्पर (पिलग्रिम शेड्स) हैं। २½ मील फ्रिशिन, मार्ग का अंतिम ग्राम।

१. चंदनवाड़ी[2] (८½) (६७½) [६२००] ४ मील यात्रियों के छप्पर। १½ मील

---

[1]श्रीनगर से यहाँ तक ६९ मील मोटरबस चलती है। यहाँ से अमरनाथ तक घोड़े, डाँडी या पालकी पर जा सकते हैं। कुली भी मिल सकते हैं। सारा प्रबंध यहीं से करना पड़ता है, बहुत ठंढा स्थान है। अमरनाथ यहाँ से २८¾ मील है। अच्छी तरह से ३½ दिन में वहाँ जा सकते हैं, और लौटते समय २ दिन में शीघ्रता से लौट सकते हैं। वैसे तो श्रावण पूर्णिमा के समय अमरनाथ की यात्रा का पूरा प्रबंध काश्मीर सरकार के 'धर्मार्थ' विभाग की ओर से किया जाता है। उस अवसर पर सारा मार्ग साफ किया जाता है। प्रत्येक पड़ाव पर दुकानें खोल दी जाती हैं। दरबार की ओर से निश्चित भाव पर वस्तुएँ मिलती हैं। साधु-संन्यासियों के लिये भोजन, वस्त्र, तंबू आदि सभी प्रकार के प्रबंध रहते हैं। 'धर्मार्थ'-विभाग के सुपरिंटेंडेंट और अन्य कर्मचारी, पुलिस, चलते-फिरते अस्पताल भी यात्रियों के साथ-साथ चलते रहते हैं। श्री १०८ शंकराचार्य छड़ी को साथ लेकर पैदल यात्रा करते हुए दशमी तक पहलगाँव पहुँच जाते हैं। अमरनाथ की यात्रा श्रावण पूर्णिमा के अतिरिक्त आषाढ़, भाद्रपद पूर्णिमा या किसी और तिथि में स्वतंत्र रूप से की जा सकती है।

[2]चंदनवाड़ी पहुँचने से कुछ पहले शेषनाग और आस्थानमर्ग नाम की

पिशूघाटी[1] यहाँ पर जंगल समाप्त हो जाता है। २$\frac{1}{2}$ मील जोजीपाल, यहाँ से $\frac{3}{4}$ मील कड़ी चढ़ाई। २$\frac{1}{4}$ मील कुट्टा। १ मील शेषनाग[2] [११७३०] सरोवर।

२. वौजन (८) (७५$\frac{1}{2}$) [१२२३०] १ मील इसे ववजन भी कहते हैं, यात्रियों के छप्पर, यहाँ पर ईंधन का बहुत अभाव है, एक हरी झाड़ी मिलती है, वायु तीव्र चलती है। १$\frac{1}{2}$ मील अश-डढ़ा की, डेरे। १$\frac{1}{2}$ मील महागुनस [१४००० ?] कड़ी चढ़ाई, घाटा है, महागुनस की चढ़ाई और उतराई पर थोड़ी दूर तक बर्फ पर चलना पड़ता है, फिर वहाँ पंचतरणी तक लगातार उतराई है, कैलनाड़ तक

नदियों का संगम है। संगम से कुछ आगे बढ़कर आस्थानमर्ग की नदी को पुल से पार करके चंदनवाड़ी पहुँचते हैं। यहाँ से एक मार्ग आस्थानमर्ग और हत्यारी तालाब होकर अमरनाथ को जाता था, जो अब काश्मीर सरकार ने बंद करा दिया है। यह पड़ाव चीड़ के जंगल के बीच में है। चंदनवाड़ी से कुछ दूर आगे चल कर शेषनाग की नदी पर एक बड़ा भारी हिमखंड गिरकर बर्फ का एक प्राकृतिक पुल बन गया है।

[1] चंदनवाड़ी से पिशूघाटी तक बहुत कड़ी चढ़ाई है। परंतु कुछ वर्ष पहले चढ़ाई की कठिनता से बचाने के लिये काश्मीर सरकार की ओर से एक मंद चढाई का मार्ग निर्मित कराया है, पर वह लंबा है।

[2] शेषनाग का मनोरम तालाब लगभग ६ फलाँग लंबा और २ फलाँग चौड़ा है। शेषनाग से कुछ मील उत्तर की ओर सुंदर बर्फीली चोटियाँ और कोहेनहार हिमनदी (१७००० फीट) हैं, जहाँ से जल आकर पर्वतों के बीच में तालाब बन गया है। इस तालाब से शेषनाग की नदी निकलती है। शेषनाग ११७३० फीट की ऊँचाई पर है। आस-पास के पहाड़ों में चूना और 'जिप्सम' होने के कारण इसका जल दूध जैसा श्वेत होता है। तालाब पर पहुँचने के लिये मार्ग छोड़कर लगभग १ मील नीचे उतरना पड़ता है। मार्ग से यह तालाब ५०० फीट नीचे है। शेषनाग का आध्यात्मिक स्पंदन अमरनाथ से भी बढ़कर है।

बहुत कड़ी उतराई है। १ मील हुकसर। ३/४ मील कैलनाड़, नदी, अस्थानमर्ग का मार्ग यहाँ आकर मिलता है, (कैलनाड़ से हत्यारा तालाब २ मील है, मार्ग चढ़ाई का है। यहाँ पर एक बार बर्फ गिरने से सैकड़ों यात्री मर गए, इसलिये इसका नाम हत्यारा तालाब पड़ा है। १/२ मील सस्कटी तक कड़ी चढ़ाई, [१३८६० फीट], ३ मील बहुत कड़ी उतराई, आस्थानमर्ग। ४ मील कड़ी उतराई, चंदनवाड़ी। कैलानाड़ से चंदनवाड़ी इस मार्ग से कुल ६१/२ मील है।) यहाँ से पंचतरणी तक नदी को तीन बार इधर और उधर पार करना पड़ता है। २ मील नगारपल, एक बड़ा भारी पत्थर।

३. पंचरतरणी[१] (८१/४) (८३३/४)[१२०१५] ११/२ मील, नदी का दाहिने किनारे को पार करें, यात्रियों के छप्पर।

अमरनाथ गुफा[२] (४) (८७३/४) [१२७२६] गफा में बर्फ के शिवलिंग।

---

[१]पंचतरणी के पड़ाव पर पहुँचने से पहले नदी की पाँचों शाखाओं को पार करना पड़ता है। यह सिंधनदी (झेलम नदी की उपनदी) की उपनदी है। यहाँ से एक मार्ग भैरव घाटी [१४३५०] होकर सीधा अमरनाथ को जाता है, जो ३ मील दूर है। पंचतरणी से प्रातःकाल उठकर अमरनाथ पहुँचकर फिर पंचतरणी लौटना होता है। पंचतरणी से एक मील आगे ३/४ मील की बहुत कड़ी चढ़ाई है। वहाँ से मार्ग दाहिनी ओर मुड़ जाता है। कुछ स्थानों को छोड़कर यहाँ से अमरनाथ तक अमरावती नदी कई फीट ऊँची बर्फ से ढकी रहती है, जिसके ऊपर होकर मार्ग जाता है। अमरावती गंगा से १ फर्लांग ऊपर चढ़कर गुफा पर पहुँचते हैं।

[२]अमरनाथ की गुफा लगभग १५० फीट लंबी, उतनी ही चौड़ी, और उतनी ही ऊँची है। गुफा की संपूर्ण छत और दीवालों से सर्वदा पानी भीतर टपकता रहता है, जिससे सारी गुफा गीली रहती है। प्रतीत होता है, पहाड़ चूने का है। गुफा की दीवाल पर दो छेद हैं, जिसमें से पानी विशेष रूप से निकलता है, जो बाहर आते ही ठंढक के कारण जम जाता है। इन छेदों में से एक बड़ा है,

अमरनाथ की गुफा के भीतर की छत में एक नहीं प्रत्युत् कई जोड़े

जिसके नीचे बर्फ लिंग के आकार का बन जाता है। वह लिंग अमरनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अमरनाथ के लिंग की बाईं ओर गणेश का और दाहिनी ओर पार्वती और भैरव की पृथक्-पृथक् छोटी-छोटी मूर्तियाँ बर्फ की बन जाती हैं। परंतु श्रावण पूर्णिमा तक ये तीनों गल जाते हैं। इसलिये यात्रा के समय पंडे लोग बाहर से बर्फ के टुकड़ों को लाकर उनके किनारों को लोई से ढक लेते हैं। अमरनाथ की गुफा दक्षिणाभिमुख है। सूर्य की किरणें गुफा के भीतर अमरनाथ तक न पहुँचकर पार्श्वों में ही रह जाती हैं। इसलिये गुफा के भीतर के बर्फ का लिंग ग्रीष्म ऋतु में भी नहीं गलता है। अमरनाथ के लिंग के संबंध में यह किंवदंती फैलती आई है कि वह शुक्ल प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक बढ़ता है और कृष्ण प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक पूरा गल जाता है। यह बात केवल काल्पनिक और भ्रमात्मक है। मैंने इस गुफा में १२ दिन तक रह कर निरीक्षण किया, और उसी वर्ष आषाढ़, श्रावण, और भाद्रपद में जाकर लिंग के स्वरूप के परिमाण को मापा। उस वर्ष लिंग की खड़ी ऊँचाई (पर्पेन्डिक्यूलर हाइट) आषाढ़ में ७½ फीट, श्रावण में ४ फीट, और भाद्रपद में १ फुट रही। आषाढ़ के महीने में लिंग का रूप स्पष्ट था, श्रावण में साधारण, और भाद्रपद में लिंग की आकृति विनष्ट होकर केवल बर्फ के एक छोटे से टुकड़े के रूप में अवशेष रह गई थी। अमरनाथ के तीनों महीनों का परिमाण और तुलनात्मक आकार चित्र-संख्या ११६ में दिया गया है। इसलिये उक्त किंवदंती में कितना तथ्य है, इसे पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं।

अमरनाथ की गुफा के भीतर एक छोटी सी गुफा में से चूने जैसे एक श्वेत पदार्थ को विभूति के लिये प्रसाद के रूप में लाते हैं, जिसे श्रावणी के दिन बटकोट के मुसलमान बेचते हैं। रासायनिक परीक्षा द्वारा ज्ञात हुआ कि इसमें 'केलसियम क्लोराईड' प्रधान द्रव्य है और 'केलसियम सलफेट' पर्याप्त परिमाण में है। गुफा के पश्चिम की ओर अमरगंगा नामक एक छोटी सी धारा है जिसमें यात्री लोग स्नान करते हैं।

कबूतर (काले और भूरे मिले हुए रंग के), कौवे, 'काले कौवे', लाल चोंच और लाल चंगुल, पीली चोंच और लाल चंगुल वाले कौवे, गौरैये, उल्लू,

---

चंदनवाड़ी से लेकर अमरनाथ और यहाँ से आगे २, ३ मील तक पंजाब के गुज्जर (बकरी चरानेवाले) और काश्मीर के चौपान (भेड़ चराने वाले) अपनी भेड़-बकरियों को चराने के लिये, चौमासे में स्थान-स्थान पर डेरा डालकर ठहरते हैं। वे सब मुसलमान हैं।

लगभग ४०० वर्ष पहले बटकुट के मुसलमान चरवाहों ने पहले-पहल इस गुफा का पता हिंदुओं को दिया था। इसलिये श्रावणी के अवसर पर जो अमरनाथ के लिंग पर चढ़ावा (रुपया-पैसा) चढ़ाया जाता है, उसके तीन भाग करके एक भाग शंकराचार्य के मठ को, एक भाग पंडों को, और एक भाग बटकुट के मुसलमानों को मिलता है। शिवपुराण अथवा किन्हीं अन्य पुराणों में अमरनाथ का वर्णन या उल्लेख कहीं नहीं मिलता। काश्मीर के अतिप्राचीन नीलमत पुराण में वहाँ के सभी तीर्थों का वर्णन आता है, उसके १३२४वें श्लोक में केवल अमरनाथ का उल्लेख मात्र किया गया है। उसी पुराण में वितस्ता (झेलम) को काश्मीर का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ माना गया है, अमरनाथ को नहीं। इसी प्रकार काश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहास राजतरंगिणी के प्रथम भाग में २६७ वें श्लोक में भी अमरेश्वर का केवल उल्लेख किया गया है। कोई विशेष वर्णन नहीं है। राजतरंगिणी के अंग्रेजी अनुवादक डा० स्टेइन ने भी लिखा है—"अमरनाथ के नाममात्र के उल्लेख से पता लगता है कि प्राचीन काल में यह अति साधारण तीर्थ रहा होगा।" एक काश्मीरी पंडित का कहना है कि भवानी-सहस्रनाम नामक पुस्तक में काश्मीर के सभी तीर्थों का उल्लेख है, परंतु अमरनाथ की चर्चा कहीं नहीं है। यह भी कहा जाता है कि अमरनाथ के बारे में जो अमरकथा है उसे एक काश्मीरी पंडित ने लगभग एक शताब्दी पहले लिखा था। परंतु वह किसी पुराण के अंतर्गत नहीं है। काश्मीर के एक वृद्ध पंडित का कहना है कि लगभग २०० वर्ष पहले काबुल के दीवान नंदराम के एक संबंधी पंडित हरिदास ट्रिकू ने इस गुफा का पता लगाया। उस समय

मैने, और दो अन्य प्रकार के पक्षी हैं। इनके अतिरिक्त गुफा के ऊपर उड़ते हुए चील देखने में आते हैं। गुफा के नीचे बिलों में जंगली चूहे हैं।

मार्ग भैरौ घाटी होकर जाता था। लगभग १०० वर्ष बाद से पहले राजा रणजीत सिंह के संबंधी संतसिंह अमरनाथ के दर्शन के लिये एक दूसरे मार्ग से गए, जिससे होकर आज-कल यात्री वहाँ जाते हैं। इसलिये यह मार्ग 'संतसिंह का मार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है।

अमरनाथ की गुफा की छत के ऊपर कोई तालाब या सोता नहीं है; क्योंकि गुफा की छत से पहाड़ सीधा खड़ा है और ऊपर कोई समतल मैदान आदि नहीं है। गुफा के नीचे उतरकर अमरावती को पार करना चाहिये। वहाँ से २-३ फर्लांग आगे जाकर फिर अमरावती को बर्फ के पुल से पारकरके लगभग ३½ मील बर्फ और पत्थरों पर होते हुए ज्ञानागंग के किनारे-किनारे बहुत कड़ी चढ़ाई पड़ती है। चढ़ाई समाप्त करके अमरनाथ के घाटे पर पहुँचने पर वहाँ बर्फीले मैदान में ज्ञानसर और सोमसर नामक दो छोटे-छोटे ताल हैं। यहाँ का मार्ग बहुत भयावह, दुर्गम और विपज्जनक है। मैं इन सरों पर सन् १९२९ के २३ अगस्त को गया था। उस समय दिन के बारह बजे तापक्रम ३४° था। यहाँ और अमरनाथ के बीच में मार्ग से दाहिनी ओर थोड़ी ऊँचाई पर कई छोटी-छोटी गुफाएँ हैं, जिनमें से १ या २ में बर्फ के लिंग बने हुए हैं। इन सरों से दूसरी ओर उतर कर ज़ोज़ीला से आगे लदाख़ के मार्ग पर मटयन पहुँच सकते हैं।

अमरनाथ गुफा के सामने भैरव का पहाड़ है, जिसे पार करके एक मार्ग सीधे पंचतरणी को जाता है। कुछ वर्ष पहले कुछ यात्री मोक्ष प्राप्ति की आशा से पहाड़ की चोटी से नीचे गिर कर प्राण त्याग करते थे। ऐसे ही अमरनाथ की गुफा से गिरकर भी कुछ लोग मरते थे; इसलिये अब भी श्रावण पूर्णिमा के दिन, गुफा से कुछ आगे और भैरव घाटी के मार्ग में पुलिस के आदमी नियुक्त किये जाते हैं, जिससे कोई भी उधर न जा सके और इस प्रकार का कोई उपद्रव न करने

तालिका २७

रक्सौल से पशुपतिनाथ

—७७ मील

रक्सौल (ब्रिटिश)[1] बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे का अंतिम स्टेशन, यहाँ से ½ मील पर नेपाल का रक्सौल स्टेशन है। ३½ मील वीरगंज, स्टेशन, बाजार, धर्मशाला।

पावे। उस दिन सवेरे ७ बजे से यात्रा प्रारंभ होकर दोपहर में २-३ बजे तक समाप्त हो जाती है और किसी को वहाँ नहीं रहने देते। श्रीनगर से एक मार्ग बालतल होकर अमरनाथ जाता है। ज्येष्ठ या आषाढ़ मास में जब नदी बर्फ से ढकी रहती है, तब इस मार्ग से जाना चाहिये। श्रीनगर से बालतल ५० मील और वहाँ से अमरनाथ १२ मील है।

[1]अयोध्या और गोरखपुर होकर या समस्तीपुर और मुज्जफरपुर होकर रक्सौल पहुँच सकते हैं। यहाँ से ½ मील की दूरी पर नेपाल राज्य का रक्सौल है। यहीं से नेपाल की 'लाईट रेलवे लाईन' प्रारंभ होती है। पशुपतिनाथ या काठमांडू जाने के लिये प्रायः नेपाल सरकार से पासपोर्ट लेना पड़ता है, परंतु शिवरात्रि के अवसर पर सात दिन पहले से लेकर १० दिन बाद तक, प्रत्येक यात्री को नेपाल दरबार की ओर से पासपोर्ट मिल जाता है। उस समय रक्सौल स्टेशन पर टिकट लेते समय एक छोटे से नेपाली कागज पर पासपोर्ट मिल जाता है। नेपाली रक्सौल से अमलेखगंज तक लगभग २४ मील तक रेल जाती है। रेल का किराया १ रुपया है, परंतु यात्रा के दिनों में किराया आधा कर दिया जाता है। यात्रा के दिनों में भीड़ के कारण, बहुधा तीसरे दरजे के यात्रियों से ठसाठस भरे हुए मालगाड़ी के डब्बों में यात्रा करने के लिये बाध्य होना पड़ता है।

१. अमलेखगंज[1] (२०) (२४) यहाँ से नेपाल की 'लाईट रेलवे' आरंभ होती है, बाजार और होटल हैं, यहाँ से भीमफेड़ी तक मोटर जाती है, जिसका भाड़ा एक रुपया तक होता है। ६ मील चंडीमाई का मंदिर, यहाँ चंडी का एक छोटा-सा मंदिर है, पहाड़ पर लगभग १ फर्लांग लंबी दो सुरंगों से होकर मोटर जाती है।

२. भीमफेड़ी[2] (२७) (५१) २१ मील धर्मशालाएँ, बाजार, यहाँ पासपोर्ट बदलना पड़ता है। यहाँ से आगे नदी को पार करें। २½ मील चिसागढ़ी, बहुत कड़ी चढ़ाई है, यहाँ पर पासपोर्ट फिर बदलना पड़ता

---

[1] अमलेखगंज से भीमफेड़ी तक यात्रा के दिनों में लगभग २७ मील तक माल लादने वाली 'बस' चलती है, जिसका भाड़ा आठ आने से १ रुपये तक होता है। अमलेखगंज में ठहरने के लिये धर्मशाला, होटल और दुकानें हैं।

[2] भीमफेड़ी से काठमांडू पहुँचने के लिये यहीं से कुली या डाँडी का प्रबंध करना पड़ता है। यहाँ पर धर्मशालाएँ, दुकान आदि हैं। यहाँ काठमांडू तक मार्ग में पड़ाव के स्थानों में धर्मशालाओं के अतिरिक्त नेपाल सरकार की ओर से तंबू, और महात्मा और गरीबों के लिये अन्न-क्षेत्र तथा सदावर्त की सुव्यवस्था रहती है। यहाँ पर फिर से पासपोर्ट बदलना पड़ता है। पशुपतिनाथ की यात्रा में केवल भीमफेड़ी से लेकर थानकोट तक १६ मील पैदल या डाँडी पर जाना पड़ता है, शेष सारे मार्ग की यात्रा रेलगाड़ी या मोटर-बस से कर सकते हैं। पैदल मार्ग में लगभग ४ मील की दो कड़ी चढ़ाइयाँ और ४½ मील की दो कड़ी उतराइयाँ हैं। भीमफेड़ी से १½ मील इधर ही ढोरसुङ नामक स्थान पर 'एलेक्ट्रिक रोपवे' का एक स्टेशन है। यहाँ से १४ मील की दूरी तक (काठमांडू से ४½ मील इधर) माल रात दिन इस आकाश-तार द्वारा जाता है। पहाड़ के ऊपर बड़े-बड़े लोहे के खंभे गड़े रहते हैं, उन खंभों में तारों की मोटी रस्सी लगी रहती है, जिसमें झूले लटकते रहते हैं। उन्हीं से माल ढोया जाता है। बीच-बीच में उचित स्थानों में 'ट्रांसमीटर्स' होते हैं जहाँ से इन झूलों के माल की

हैं, एक पुराना किला है, कुछ दुकानें हैं। ½ मील चढ़ाई। २½ मील बहुत कड़ी उतराई, कुलीखानी का गाँव। ½ मील कुलीखानी, यहाँ पर नदी को पार करके चट्टी, दुकान, धर्मशाला, यात्रियों के लिये तंबू।

३. मारखू (८) (५६) २ मील दुकान, धर्मशालाएँ। ½ मील कड़ी चढ़ाई। २½ मील चढ़ाई और ½ मील उतराई, चितलंग, इसे चितलांग भी कहते हैं, गाँव। २ मील चंदनगढ़ी का घाटा, बहुत कड़ी चढ़ाई, यहाँ से नेपाल की दून और दूर के बर्फीले शिखरों की श्रेणियों का सुंदर दृश्य दिखलाई पड़ता है। २½ मील पानीघाट, बहुत कड़ी उतराई, चट्टी, दुकान।

थानकोट (८) (६७) ½ मील उतराई, नेपाल सरकार की ओर से साधुओं के लिये लंगर (भोजनालय), यात्रा के दिनों में यहाँ से काठमांडू तक लारी चलती है। १½ मील 'रोपवे' का स्टेशन। ५ मील पचाली घाट, चुंगी का दफ्तर। ½ मील थापथाली साधुओं का स्थान।

काठमांडू[1] (८) (७५) १ मील काष्ठमंडप या काठमांडव भी कहते हैं, नेपाल की राजधानी है।

बदली दूसरे स्थानों के लिये की जाती है। जिनके पास सामान का विशेष बोझ हो और उन्हें पास में रखने की विशेष आवश्यकता न हो तो वे इस पर भेज सकते हैं; परंतु उसको काठमांडू में छुड़ाने में विशेष झंझट पड़ता है। 'रोप लाईन' पर आठ आने मन भाड़ा लगता है।

[1]यह नेपाल की राजधानी है। यहाँ पर राजवंशियों के बड़े-बड़े राजप्रासाद, पुराने हिंदू और बौद्ध मंदिर हैं यहाँ गोरखनाथ के भी कई मंदिर हैं। बाजार पुराने ढंग के हैं। यहाँ शिवरात्रि के दिन 'परेड' के मैदान में शाम ३½ बजे एक बृहत् प्रदर्शन होता है। मैदान के चारों ओर ३ या ४ बजे के लगभग ४०००-५००० गोरखे सिपाहियों के साथ बड़े और छोटे जंगी लाट, पाँच सरकार, और तीन सरकार उपस्थित होते हैं। उस समय पशुपतिनाथ
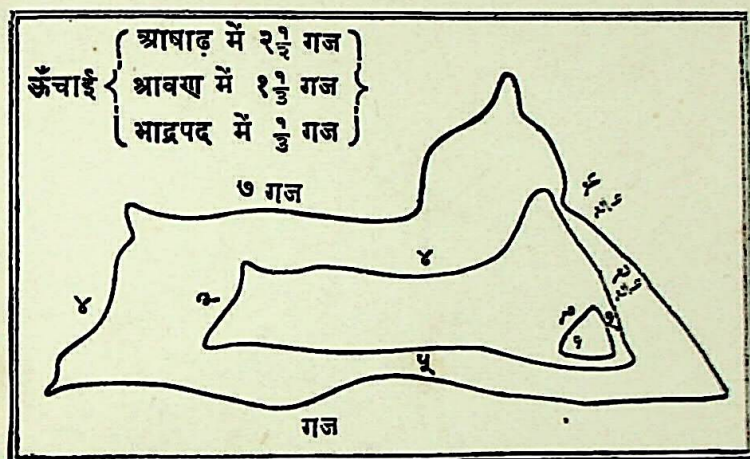
विविध मासों में अमरनाथ के लिंग के आकार और परिमाण

[देखो पृ० ४१६
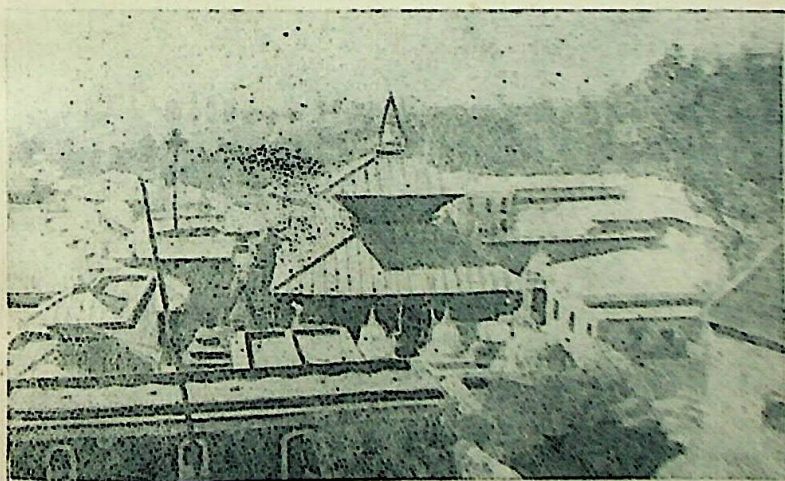
पशुपतिनाथ का मंदिर, काठमांडू

[देखो पृ० ४२५

४. पशुपतिनाथ[1] (२) (७७) काठमांडू नगर से लगभग २ मील पर पूर्व में

के सम्मानार्थ (सलामी के रूप में) लगातार १० मिनट तक बंदूकों की फायर होती है और बीच-बीच में तोपें भी छूटती रहती हैं। इसके बाद सभी अफसर मैदान के पूर्व भाग में स्थित भद्रकाली के मंदिर की प्रदक्षिणा करके अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं। यहाँ से गौरीशंकर के बर्फीले युगल-शिखर दिखलाई पड़ते हैं।

नेपाल के महाराज को पाँच सरकार कहते हैं। अर्थात् उनके नाम के पहले ५ श्री लिखा जाता है, तथा उनके महामंत्री तीन सरकार कहे जाते हैं और उनके नाम के पहले ३ श्री लिखा जाता है। यथार्थ में मंत्री ही वहाँ के सर्वेसर्वा हैं, और महाराज, अर्थात् ५ सरकार, तो नाममात्र के लिये हैं। नेपाल के राज्य के अपने सिक्के अलग हैं। नेपाली रुपया साढ़े बारह आने के बराबर होता है। पैसे भी मोटे और पतले होते हैं, जो ताँबे के बने होते हैं।

[1]मंदिर वाग्मती नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। मंदिर के ऊपर लकड़ी की सुंदर कारीगरी है और भीतर लगभग एक गज का ऊँचा लिंग है, जिसके चारों ओर मुख हैं। यहाँ के पुजारी दक्षिणी होते हैं। मंदिर के सामने पश्चिम की ओर पीतल का एक बड़ा नंदी है। इसके अतिरिक्त महात्माओं के कई स्थान हैं। यात्रा के समय महात्माओं की भिक्षा का प्रबंध नेपाल सरकार की ओर से रहता है। शिवरात्रि के तीसरे या चौथे दिन साधुओं को नेपाल सरकार की ओर से मार्ग-व्यय के लिये १ रुपये से लेकर ५० रुपये तक बिदाई मिलती है। शिवरात्रि के अवसर पर मंदिर में बहुत भीड़ रहती है, तथा रातभर दीपाराधन और जागरण होता है। मेला चार-पाँच दिनों तक रहता है। मंदिर के ठीक सामने वाग्मती या बाघमती के बाएँ किनारे पर नेपाल के दिवंगत महाराजाओं की समाधियों की पंक्तियाँ हैं। बाघमती यहाँ पर दो ऊँचे पहाड़ों के बीच में होकर बहती है। यात्रा के दिनों में नदी में १½ फीट से अधिक जल नहीं रहता।

यहाँ से ½ मील ईशान कोण में गुह्येश्वरी देवी का स्थान है, जो अष्टादश देवीपीठों में एक माना जाता है। वहाँ से ¾ या १ मील उत्तर में

पशुपतिनाथ का मंदिर है।

बोधा नामक एक भारी स्तूप है। इसे कुछ लोग महाबोधि भी कहते हैं। कहा जाता है कि इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इसके चारों ओर मकान बने हुए हैं, जिनमें रहने वाले विशेषकर तिब्बती हैं। काठमांडू से २½ मील दक्षिण में पट्टन नामक शहर है, जिसे ललित पट्टन या अशोक पट्टन भी कहते हैं। इसे महाराज अशोक ने बसाया था। यहाँ से ½ मील आगे एक सुप्रसिद्ध बौद्ध मंदिर है (महाबोधि) जिस पर कई बौद्ध-मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इसे कुछ लोग नमोबुद्धाय भी कहते हैं। काठमांडू के पश्चिम में एक पहाड़ की चोटी पर स्वयंभू नामक एक बड़ा बौद्धस्तूप है। इनके अतिरिक्त काठमांडू के आस-पास में बालाजी, बूढ़ा नीलकंठ, वज्रयोगिनी, उग्रतारा, भगवती, दत्तात्रेय, दक्षिण काली, गोदावरी, आदि कई तीर्थ हैं। काठमांडू के आस-पास कई स्थानों में रुद्राक्ष के पेड़ होते हैं। परंतु भारत में प्रयोग होने वाले रुद्राक्ष विशेषकर सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों से आयात होते हैं। १२ दिन के मार्ग पर मुक्तिनाथ नामक एक तीर्थ है, जहाँ से २-३ दिन के मार्ग पर गंडकी नदी का उद्गम—दामोदरकुंड है, जहाँ पर शालग्राम मिलते हैं। मुक्तिनाथ से एक मार्ग खोचारनाथ होकर कैलास और मानसरोवर जाता है; परंतु यह मार्ग बहुत लंबा और कष्टप्रद है। इसलिये कुछ साधुओं के अतिरिक्त अन्य कोई उस मार्ग से नहीं जाता।

पशुपतिनाथ की यात्रा का समय शीतकाल होने के कारण वहाँ पर अत्यधिक ठंड पड़ती है, तथा कभी-कभी बर्फ भी गिरती है, इसलिये यात्रियों को चाहिये कि वे अपने साथ पर्याप्त कंबल, लोई, और, गर्म कपड़े लेते जायँ, जिससे वहाँ की कड़ी शीत का सामना कर सकें।

---

९. काठमांडू और आस-पास के तीर्थ

परिशिष्ट १

कुछ तिब्बती और अन्य शब्दों का कोश

[कु० = कुमायूँनी, हिं० = हिंदी, सं० = संस्कृत, भो० = भोटिया। अन्य सभी तिब्बती शब्द हैं।]

उड्यार (कु०) = गुफा।
उपत्यका (हिं०) = घाटी, 'वेली'।
उर्को-कोङ = बड़ा वायसराय।
उर्को-योक = छोटा वायसराय।
ओमा = दूध।
कंजूर = बुद्ध भगवान् के श्रीमुख-वचन के ग्रंथ, १०८ खंड हैं।
कङरिम्पोछे = पवित्र कैलास।
कङरी = हिमनदी, कैलास।
करा = मिसरी।
कियङ = जंगली घोड़ा।
कुन-शोक्-सुम् = शपथ।
कुर = तंबू।
कुशोक = साहब, श्रीमान्।
कोरलो = हाथ का मणि-चोंगा।
कोरा = परिक्रमा।
खमजमभो = नमस्कार।
खंपा = भारत में बसे हुए तिब्बती, खम नामक सूबा के निवासी।
खङबा = घर।
खतक = देवताओं, लामाओं, या अफसरों को माला के स्थान पर दिये जाने वाले हल्की बिनाई के कपड़े।
खिर = लाना।
खी = कुत्ता।
गङरी = हिमनदी, कैलास।
गरपोन = वायसराय।
गाड़ (कु०) = छोटी सी पहाड़ी नदी।
गोकपा = तिब्बती लहसुन।
गुटंग = नेपाली मोहर (३ टंके के समान है।)
गोपा = गाँव का मुखिया, प्रधान।
गोम्पा = बौद्धमठ, विहार।
गोरमो = रुपया।
ग्य-गर = सफेद-मैदान या भारत।
ग्य-नक = काला मैदान या चीन।

घाटा (हिं०) = 'पास', धुरा, 'ला'।
ङङ्बा = हंस।
ङरी = पश्चिमी तिब्बत।
ङाटो, सङो = कल (भूतकाल)।
ङीमा = दिन।
ङुल = चाँदी।
चंपा = सत्तू।
चंबा = मैत्रेय।
चक्टक् = साँकल।
चट्टी (कु०) = बदरीनाथ या पशुपतिनाथ के यात्रा-मार्ग में यात्रियों के ठहरने का पड़ाव या स्थान, जहाँ दुकान, धर्मशाला, आदि होते हैं।
चकटा = दियासलाई।
चकङ = नित्य पूजा का देव-मंदिर।
चम = कितना, श्रीमती।
चम-कुशोक = मेमसाहिबा, श्रीमती।
चिमा-करा = चीनी।
चेनरेसी = अवलोकितेश्वर।
चेमा = रेत।
चेमानेङा = पाँच रंग की रेत।
चोङा = पूर्णिमा।
चोमो = भिक्षुणी।
छक्छल-गङ = जहाँ से साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया जाता है।
छङ = जौ की शराब।

छङ्पो
छम्पो } = बड़ी नदी।
छङ्रिङ = पुरस्कार।
छन = रात।
छबो = गरम।
छरवा = वर्षा।
छा = नमक।
छानादोर्जे = वज्रपाणि।
छासू = टैक्स कलक्टर, कर एकत्रित करने वाला।
छुरा = दूध या मट्ठे की पनीर।
छू = पानी, नाला, नदी, गाड़।
छूमर = घी।
छेमे = घी का दीया।
छोंगरा = मंडी।
छो = सर, तालाब, झील।
छोरतेन = स्तूप, समाधि, चैत्य।
जम्बयङ = मंजुश्री।
जब = आधा टंका।
जा = चाय।
जिंबू = तिब्बत की जंगली प्याज।
जिलब = प्रसाद।
जू = नमस्कार।
जोङ
जोङपोन } = गवर्नर।
झब्बू = याक और भारतीय गाय के

संयोग से उत्पन्न हुआ बैल ।

टंका, टंगा = तिब्बत का चाँदी का सिक्का, जो दो आने के बराबर होता है ।

टमो = ठंढ ।

टिमा = मलाई ।

टुलकू लामा = अवतारी लामा ।

टे = खच्चर ।

ठुआं, ठुमा = एक वीर्यवर्द्धक औषधि ।

ट्रमा = मटर ।

डजङ = मठ का प्रधान व्यवस्थापक ।

डमा = एक प्रकार का काँटेदार पौधा, जो हरा भी जलता है ।

डाबा = साधारण भिक्षु ।

डुक = भूटान (राज्य) ।

डू = जौ ।

डे = चावल ।

डेमो = चमरी गाय, चँवरी गाय, सुरागाय ।

डो = जाओ ।

डोकपा = तिब्बती गड़रिया ।

डोङखङ = धर्मशाला ।

ढक = नेपाली रुपया, (६ टंके के समान है ।)

तंजूर = शास्त्रों के अनुवाद के ग्रंथ, २२५ खंड हैं ।

तज़म, तरज़म, तसम = पोस्ट-स्टेज ऑफिसर या ऑफिस ।

तमचोक खम्बब् = अश्व के मुख से निकली हुई नदी या ब्रह्मपुत्र ।

तरचोक = रंग-बिरंगे झंडे और तोरण ।

तरचेमा = चूक ।

तरा = मट्ठा ।

ता = घोड़ा ।

तालो = इस वर्ष ।

तिसी = कैलास ।

तो, दो = पत्थर ।

थंका = चित्रपट, 'बैनर पेन्टिंग' ।

थंगा = अधित्यका ।

थुकपा = सत्तू, छुरा, और मांस के साथ बनाया हुआ लेई जैसा भोज्य पदार्थ ।

दङ = कल (भविष्य) ।

दलाई लामा = गुरु-समुद्र, तिब्बत का राजा ।

दावा = मास ।

दिरिङ = आज ।

दुक् = है ।

दून (हिं०) = विशाल घाटी ।

दुवङ = देव-मंदिर ।

नमकङ = अमावस्या ।

ननिङ = गत वर्ष ।

नेर्पा = 'सेक्रेटरी', मंत्री ।

न्यीमा = दिन, सूर्य ।
पर = फ़ोटो ।
पुरम = गुड़ ।
पोंबो = अफ़सर ।
पो = धूप ।
पो, पोयुल = तिब्बत ।
पोमो = स्त्री ।
फगबे = आटा ।
फिंग = सेंवई ।
फुक् = गुफा ।
फुलदो = आग में जलाया हुआ सेरु छा ।
बोत, बोद्-युल = तिब्बत ।
बोधिसत्त्व (सं०) = बुद्धत्त्व प्राप्ति करने का अधिकारी ।
भोट (हिं०) = भारत की सीमा के प्रांत ।
भोटिया (हिं०) = भोट प्रांत के निवासी ।
मंडी (हिं०) = हाट ।
मंडल = एक के ऊपर एक रखे हुए दस-पंद्रह पत्थरों का ढेर ।
मगपोन = पटवारी ।
मणि = 'ॐ म णि प द्मे हुं' मंत्र ।
मणि-पत्थर (हिं०) = जिस पत्थर पर मणिमंत्र खुदा हुआ हो ।
मणि-दीवाल (हिं०) = जिस दीवाल पर मणि-पत्थर रखे हुए हों ।
मणि चोंगे (हिं०) = जिस चोंगे में कागजों पर लिखे हुए कई हज़ार मणि-मंत्र डालकर एक ध्रुव पर घुमाए जाते हैं ।
मप्चा खम्बब् = मयूर के मुख से निकली हुई नदी या करनाली ।
मफम् = मानसरोवर ।
मयुर = जमे हुए मानसरोवर के ऊपर की दरारें या फाड़ ।
मर = मक्खन ।
मरकू = तेल ।
मवङ् = मानसरोवर ।
मि-दुक् = नहीं ।
मी = पुरुष ।
मे = आग, नहीं ।
मेन = औषधि ।
यंबू = नेपाल ।
याक = तिब्बत का बैल, चँवरी बैल, सुराबैल ।
याङ्त्सी (भो०) = नदी ।
युङ्छोङ = तिब्बत का सरकारी व्यापारी ।
युल = गाँव ।
रा = बकरी ।
रिन्पोछे, रिम्पोछे = रत्न, मणि, पवित्र ।
री = पहाड़ ।
रे = सूती कपड़ा ।

लङ्गाक् छो = रावणह्रद, राक्षसताल, रक्कसताल, लंका-सर।

लङ्चेन खम्बब् = हस्ति के मुख से निकली हुई नदी या सतलज।

लम = मार्ग।

लप्चे = पत्थरों का ढेर।

लबू = मूली।

ला = घाटा, जी, मोमबत्ती।

लामा = आचार्य कोटि के भिक्षु।

लुक = भेड़।

लुंग, लुंगबा, लुंगवा, लुंगमा = घाटी, वेली।

ल्हखङ = देव-मंदिर।

ल्हम = तिब्बती ऊनी जूता।

ल्हरची = कस्तूरी।

ल्हा = देवता।

ल्हो = वर्ष।

शपजे = पाद-चिह्न।

शाक्य थुब्बा = शाक्य मुनि या बुद्ध भगवान्।

शींग = पेड़ या लकड़ी।

शोक = आग्रो।

श्या = मांस।

श्यो = दही।

संपो, सम्पो = बड़ी नदी या ब्रह्मपुत्र।

सपटा = मानचित्र।

सराय (हिं०) = धर्मशाला।

सा = वार।

सिंगी खम्बब् = सिंह के मुख से निकली हुई नदी या सिंधु नदी।

सुग = दर्द।

सेर = स्वर्ण।

सेरु छा = एक प्रकार का सोडा।

स्रोत या सोता (हिं०) = चश्मा, 'स्प्रिंग', इसे काश्मीर में नाग कहते हैं।

हूण, हूण देश (हिं०, भो०) = तिब्बत।

हूणिया (हिं०, भो०) = तिब्बती।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	२०	३०
चिक	ञी	सुम	शी	ङा	टुग	दुन	गे	गु	चू	ञिशु	सुमचू

४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
शिमचू	मपचू	टुगचू	दुनचू	गेचू	गुपचू	ग्या थंबा

२००	१०००	१००००	१०००००	१००००००	१०००००००
ञीग्या	तोंग	ठी	बुम्	तुंग्युर	छीवा

½	२½	३½	४½
फेका या छेका	छेदंग-सुम	छेदंग-शी	छेदंग-ङा

परिशिष्ट २

पुरङ दून के गाँवों के नाम

करनाली नदी के बाएँ किनारे पर नीचे से ऊपर—१. शर (७ घर), २. खोचार (१०० घर), ये दोनों तरछेन लब्रङ के अधिकार में हैं। इनके बाद नालुङ्वा छू है। ३. लीलो (गोम्पा और ४ घर), ४. कङजे (६), ये दोनों कङजे नाम से पुकारे जाते हैं और तोयो मगपोन के अधिकार में हैं। पास ही कङजे छू है। ५. गेजिन (७), ६. तोजा (५), ये दोनों परखा तसम के अधिकार में हैं। पास ही गेजिन छू है। ७. थाँयप (७), ८. सूजे (१०), ९. छुलुङ (१०), यहाँ किरोङ मगपोन का घर है। १०. मफुक (६), ११. कुंगरतो (६), १२. डंगेछिन (२०), ये छः गाँव किरोङ मगपोन के अधिकार में हैं। पास ही कुंगरलुङ्वा या डंगेछिन छू है, जिसके दाहिने तट पर छगंग है, और जहाँ पर गर्मी के दिनों में नेपालियों की मंडी लगती है। १३. छोरतेन छेमो (६), १४. खेले (२), १५. तोपा (५), यहाँ तोयो मगपोन का घर और जोरावर सिंह की समाधि है। १६. लगुन (४), १७. शुलुङ (५), इनके पास ही गरू छू है। १८. गरू (३), १९. ठेजी गोंबा (३), २०. देलालिङ (४), यहाँ गुरु फोंवा का छोरतेन है। २१. लीं या तोयोलिङ (७ ?), ये नौ गाँव तोयो के नाम से पुकारे जाते हैं और तोयो मगपोन के अधिकार में हैं। २२. रोनम (३), इसके बाद रिंगुंग छू है। २३. रिंगुंग (४), इसके बाद फुरबू छू है। २४. फुरबू या बुरफू (१), २५. दुङमर (११), ये चार रिंगुंग नाम से पुकारे जाते हैं और तरछेन लब्रङ और पुरङ जोङ, इन दोनों के अधिकार में हैं। इनके बाद बलङक छू है। २६. करदुङ (७), यह परखा तसम के अधिकार में है।

करनाली नदी के दाहिने किनारे पर ऊपर से नीचे—२७. हरकोङ (१), पुरङ जोङ के अधिकार में है। २८. दोह (६), यह तरछेन लब्रङ के अधिकार में है। २९. सलङ (४), यह गेङटा गोम्पा के अधिकार में है। इनके

बाद यङसे छू है। ३०. गुक्कुङ या कुंफुर (३०), यह किरोङ मगपोन के अधिकार में है। यहाँ सब घर गुफाओं में हैं। एक गोम्पा भी गुफा में है, जो डेकुङ विहार की शाखा है। ३१. तकलाखर या तकलाकोट (३), सिंबिलिङ गोम्पा, साक्या गोम्पा, और जोङ के कोट हैं। पहाड़ के नीचे भोटिये व्यापारियों की मंडी है। ३२. पींलीफुक (३०), यहाँ भी सब घर गुफाओं में हैं, यह ठिथी और तोयो मगपोनों के अधिकार में है। ३३. छुङुर (१०), ३४. यीडी (२), ये दोनों यीडी और टगला छू के बीच में हैं। ३५. दुलुम (३), ३६. टाशीगोङ (२), ३७. छिलचुङ (३), ३८. मगरुम या ठिथी (३०), ३९. नाई (७), ४०. गुनम (४), ४१. रीलाशर (३), ४२. छूमिथङ (६), ये दस गाँव ठिथी के नाम से पुकारे जाते हैं। इनमें से टाशीगोङ गरतोक के ऊपर के टाशीगोङ गोम्पा के अधिकार में है, बाकी नौ गाँव ठिथी मगपोन के अधिकार में हैं। तोयो, किरोङ, और ठिथी ये तीनों पट्टी मिलकर छोसुम कहलाते हैं। इसी नाम से इनकी सम्मिलित एक पंचायत है। ४३. फुलक (३), ४४. छोकरो (३), यहाँ छोकरो छू है। ४५. तोगङ (४), ४६. शिदीखर (३), गाँव के ऊपर गोम्पा और खर (कोट) है। ४७. दोर्जेगङ (४), ४८. मयुल (२), इनके बाद लोक छू है। ४९. लोक या लो (२०), ५०. लुकपू (३), ये आठ गाँव सिंबिलिङ गोम्पा के अधिकार में हैं।

चित्र-सूची

२९. बालों का शृंगार।
३०. चोंगों में चाय का मंथन।
३१. ठुमोल्हो में चाय की केटली बनाना।
३२. याक—तिब्बती बैल।
३३. तिब्बती काला तंबू।
३४. ऊन की कढ़ाई।
३५. पुरुख छीङरा में एक नेपाली व्यापारी का तंबू।
३६. दारमा का कस्तूरी का नाभा।
३७. गुकुङ—गुफाओं में स्थित एक गाँव।
३८. खोचार गोम्पा।
३९. खोचार गोम्पा में सिंहासन।
४०. तोयो में जनरल जोरावरसिंह की समाधि।
४१. मंजुश्री की मूर्ति, खोचारनाथ।
४२. परखू में जोरावर सिंह के तोड़े हुए दुर्ग के खंडहर।
४३. करदुङ गोम्पा।
४४. गुरला ला घाटा से मांधाता का दृश्य।
४५. ज्ञानिमा मंडी।
४६. मंडी में गुड़, चाय, और कपड़ों की गठरियाँ।
४७. तीर्थपुरी का प्रधान गोम्पा।
४८. गुफा में स्थित दूसरा गोम्पा।
४९. तीर्थपुरी गोम्पा के नीचे डोलमा का एक प्रतीक।
५०. तीर्थपुरी के गर्म जल के सोते।
५१. गङ्गा छू के मुखद्वार से कैलास का दृश्य।
५२. तरछेन।
५३. वैशाख पूर्णिमा के दिन कैलास के पश्चिम में ध्वजारोहण समारोह।
५४. तरबोछे (ध्वजा) और कैलास-शिखर।
५५. न्यनरी गोम्पा—श्री कैलास का पहला मठ।
५६. न्यनरी गोम्पा से कैलास और गोंबोफंग (रावण-पर्वत)।
५७. कैलास की पीठ—पश्चिमी दृश्य।
५८. कैलास के वायव्य कोण का दृश्य।
५९. डिरफुक् गोम्पा—कैलास का दूसरा मठ।
६०. पूर्णिमा की चाँदनी में कैलास की दिव्य छटा।
६१. अवलोकितेश्वर और मंजुश्री शिखरों की मध्यवर्ती हिम-पीठिका पर स्थित कैलास का दृश्य।
६२. खंडोखङलम ला।
६३. डोलमा ला।
६४. गौरी कुंड।
६५. गौरी कुंड में गिरनेवाले हिमखंड।
६६. जंुटुलफुक् गोम्पा—कैलास का

मानचित्र (पुस्तक के अंत में)

[चित्र ७३ का विवरण]

१. श्री कैलास-शिखर।
२. तिजुङ।
३. छेरिङ-चेङा।
४. न्यनरी।
५. पोनरी।
६. गुरला मांधाता।
७. गौरीकुंड।
८. छो कपाला।
९. कुक्र्यल छुंगो।
१०. मानसरोवर।
११. रावणह्रद।
१२. लाचातो।
१३. तोप्सेरमा।
१४. ल्हा छू।
१५. तरछेन छू।
१६. झोङ छू।
१७. गङ्गा छू।
१८. समो छुम्पो।
१९. टग छुम्पो।
२०. नमरेल्डी छू।
२१. तरछेन।
२२. परखा।
२३. न्यनरी गोम्पा।
२४. जुन्टुलफुक् गोम्पा।
२५. गेङटा गोम्पा।
२६. सिलुङ गोम्पा।
२७. गोछुल गोम्पा।
२८. च्यू गोम्पा।
२९. चेरक्पि गोम्पा।
३०. लङपोना गोम्पा।
३१. पोनरी गोम्पा।
३२. सेरालुङ गोम्पा।
३३. येर्नगो गोम्पा।
३४. ठुगोल्हो गोम्पा।
३५. छपगे गोम्पा।
३६. तरछेन छकछल-गङ।
३७. तरबोछे (ध्वजा)।
३८. छोरतेन-कङनी।
३९. शपजे।
४०. हनुमानजू।
४१. सेरदुङ-चुकसुम।
४२. डोलमा ला।
४३. शपजे-डकथोक।
४४. सेरा ला छकछल-गङ।

संशोधन और परिवर्द्धन

[देखिए पृष्ठ १३०]

'इयोसीन' काल भूल से "२१००००० वर्ष से १५०००० वर्ष पूर्व" छप गया है। इसका वास्तविक काल आज से ५५०००००० (पाँच करोड़ पचास लाख) वर्ष पूर्व है।

[देखिए पृष्ठ १३३]

'मेसोजोइक युग' भूल से ३० लाख वर्ष पूर्व लिखा गया है, परंतु इस युग का प्रारंभ १६ करोड़ वर्ष पूर्व से है। इसके अनुसार कैलास से लाये गये प्रस्तरावशेष १६ करोड़ वर्ष पूर्व के हैं।

[देखिए पृष्ठ २४०]

श्री कश्यपजी सन् १९२२ में लीपूलेख घाटा होकर कैलास गए और थुलिङ तथा माना घाटा होकर लौटे। वे पुनः सन् १९२६ में लीपूलेख होकर गए और ऊँटाधुरा तथा मिलम होकर लौटे। उन्होंने कैलास-परिक्रमा की, परंतु मानसरोवर की नहीं। बिना किनारे-किनारे चलकर देखे ही उन्होंने गङ्गा छू की लंबाई तीन मील बताई थी, यद्यपि उसकी लंबाई छः मील है।

सन् १९२६ में अल्मोड़े के डिपुटी कमिश्नर श्री रटलेज् लीपूलेख होकर मानसरोवर और कैलास गए थे।

[देखिए पृष्ठ ३७४]

कैलास-ज्ञानिमा मंडी के मार्ग में आने वाले छूमिक्शला नामक स्थान छूमरशला, छूमीशला, और छुमिगशला नामों से भी प्रसिद्ध है।